दण्डक प्रकरण

विवेचन एवं प्रश्नोत्तरी सहित

• मुनि मनितप्रभसागर •

शरीर
अवगाहना
संघयण
संज्ञा
संस्थान
कषाय
लेश्या
इन्द्रिय
समुद्घात
दृष्टि
दर्शन
ज्ञान

नरक
पृथ्वीकाय
अप्काय
तेउकाय
वायुकाय
वनस्पतिकाय
द्वीन्द्रिय
त्रीन्द्रिय
चतुरिन्द्रिय
गर्भज तिर्यंच
गर्भज मनुष्य
भवनपतिदेव
व्यन्तर देव
ज्योतिष्क देव
वैमानिक देव

अज्ञान
योग
उपयोग
उपपात
च्यवन
स्थिति
पर्याप्ति
किमाहार
संज्ञा
गति
आगति
वेद

श्री गजसार गणि कृत

दण्डक प्रकरण

गाथा-संस्कृत छाया-शब्दार्थ-भावार्थ
विवेचन एवं प्रश्नोत्तरी सहित

मणि चरण रज

मुनि मनितप्रभसागर

दण्डक प्रकरण के अद्‌भुत रहस्यों को
प्रस्तुत करता अनूठा प्रकाशन

कृपादृष्टि
पूज्य गुरूदेव उपाध्याय प्रवर श्री मणिप्रभसागरजी म.सा.
अनुवाद-विवेचन :
मुनि मनितप्रभसागर
संशोधन :
पू.साध्वी डॉ. नीलांजनाश्रीजी म.
संपादन :
प्रखर तत्त्वज्ञ श्री नरेन्द्रभाई कोरडिया
मूल्य : 90 रूपये
प्रतियाँ : 1300
प्रकाशन :
प्रथम संस्करण
प्रकाशक :
रतनमालाश्री प्रकाशन
प्राप्ति स्थान :
श्री जिनकान्तिसागरसूरि स्मारक ट्रस्ट,
जहाज मंदिर, माण्डवला-343042 (जालोर-राज.)
फोन : (02973) 256107
मुद्रक : जय जिनेन्द्र ग्राफिक्स
30, स्वाति सोसायटी, सेन्टझेवियर्स हाईस्कूल रोड,
नवरंगपुरा, अहमदाबाद-14 मो.: 98250 24204
फोन : (घर.) 26562795, (ओ.) 25621623
E-mail : jayjinendra90@yahoo.com

अर्पण-समर्पण

प्रस्तुत प्रकरण के कर्ता
साहित्य जगत के
पवित्र आयाम
श्री गजसार गणि
को
श्रद्धा सह.....

मुनि मनितप्रभ

अर्थ सौजन्य

श्री जैन श्वेताम्बर खरतरगच्छ संघ

जोधपुर के ज्ञान खाते की राशि से

कुशल भवन
आहोर की हवेली
चांदी हॉल
जोधपुर-342001 (राज.)
दूरभाष : 0291 - 2626242, 2433833

कृपया...

- पुस्तक को पाँव न लगावें ।
- पुस्तक की आशातना न करें ।
- पुस्तक को गंदे-झूठे हाथ न लगावें ।
- पुस्तक का झूठे मुँह स्वाध्याय न करें ।
- पुस्तक को जमीन पर न रखें ।
- पुस्तक को फाडे-बिगाडे नहीं ।

-: सूचना :-

प्रस्तुत पुस्तक का प्रकाशन
ज्ञान-द्रव्य से होने से
श्रावक-श्राविका
पुस्तक का उपयोग
मूल्य चुकाकर ही करें ।

'मंगलामृतम्'

चार प्रकरणों में महत्त्वपूर्ण प्रकरण है - दंडक ! क्योंकि दंडक को समझे बिना अन्य तीनों प्रकरण अपूर्ण है । दंडक का वर्णन ही हमें हमारे अतीत और भविष्य से परिचित कराता है ।

दंडक शब्द का अर्थ है - जो हमें हमारे कर्मों के अनुसार दंडित करें !

केवल थप्पड मारना ही दंड नहीं है !

किसी को सजा देना ही दंड नहीं है !

किसी की हत्या कर देना ही दंड नहीं है !

ये दंड तो व्यवहार की भाषा के हैं... सामान्य हैं ।

असली दंड तो एक ही है! और वह है जन्म-मरण करते हुए विभिन्न गतियों... योनियों में भटकना ।

व्यवहार के जगत में दंड देने वाला कोई और होता है.... झेलने वाला कोई और होता है । पर यह दंड ऐसा है, जिसे देने वाला भी वह स्वयं होता है.... पाने वाला भी वह स्वयं होता है । मैं ही मुझे दंडित करता हूँ ।

यह तथ्य समझ में आने के बाद उस दंड से बचने का उपाय करना सरल हो जाता है ।

मांडवला-जहाज मंदिर के पवित्र प्रांगण में चल रही जिनेश्वर विद्यापीठ के दिव्य वातावरण में ज्ञान-पुष्पों की निरंतर वर्षा हो रही है। इस विद्यापीठ के लिये साहित्य-योजना तैयार की गई, तदनुसार जीवविचार का कार्य मुनि मनितप्रभ ने किया, नवतत्त्व का कार्य साध्वी डॉ. नीलांजनाश्रीजी ने किया। उसी कडी मे दंडक का कार्य अत्यन्त परिश्रम के साथ साध्वी प्रियस्नेहांजनाश्रीजी ने किया। दंडक पर उनके कार्य को देखने के बाद महसूस हुआ कि उनके इस कार्य को और अधिक विस्तार दिया जा सकता है। क्योंकि दंडक प्रकरण अपने आप में जितना सरल और सहज दिखाई देता है, उतना है नहीं। वह अत्यन्त गूढ है। इसे पूर्ण रुप से समझने के लिये सूक्ष्म दृष्टि से अवलोकन करते हुए विस्तार अत्यन्त जरुरी है।

इस कार्य में मुनि मनितप्रभ ने अपनी पैनी प्रज्ञा का उपयोग कर इस विषय को वैज्ञानिक विस्तार दिया है। मुझे उसकी कार्यक्षमता पर अत्यन्त प्रसन्नता है। निश्चित ही यह ग्रन्थ जिज्ञासुओं के लिये अत्यन्त उपयोगी होगा।

(उपाध्याय मणिप्रभसागर)

शुभामृतम्

'दण्डयते यस्मिन् जीवः, सः दण्डकः'

जिसमें जीव दण्डित होता है, उसे दण्डक कहते है । 'दण्ड' शब्द का सामान्य अर्थ है - सजा । दण्डक से अभिप्राय है - दण्डित करने वाला, सजा देने वाला ।

जैनदर्शन के अनुसार हमारी आत्मा स्वयं में अमूर्त और परम विशुद्ध स्वभावी है परंतु वह शरीर के साथ मूर्तिमान बनकर नानाविध योनियों में भटक रही है । स्वयं परमानन्द स्वरूप होने पर भी सुख-दुःख के चक्र में पिस रही है । स्वयं अजर-अमर होने पर भी जन्म-मरण की असह्य वेदना भोग रही है । स्वयं अनन्तशक्ति सम्पन्न होने पर भी दीन-हीन बनकर संसार के प्रवाह में बह रही है ।

यह जीव कभी दिव्य सुख-समृद्धि पाता है, तो कभी नारकीय जीवन की यंत्रणा । कभी मनुष्य जीवन की अनुकूलता या प्रतिकूलता पाता है तो कभी तिर्यंच जीवन की त्रासदी ।

अनादिकाल से चल रहे इस परिभ्रमण का एक मात्र कारण

है - कर्म। कर्म ही जन्म और मृत्यु का, सुख और दुःख का मूल है। कर्म बलवान भी है तो बलहीन भी हैं। स्वतन्त्र रूप से कर्म पुद्गलों में कोई शक्ति नहीं है। परन्तु राग, द्वेष के निमित्त पाकर शुभाशुभ अध्यवसायों के द्वारा जो कर्म पुद्गल आत्मा से चिपकते हैं, वे बलवान और शक्तिशाली बनकर आत्मा को विभिन्न प्रकार के सुख-दुःख रूप फल प्रदान करते हैं।

यदि कर्मसत्ता बलवान् होती है तो जीव को पछाड देती है, परंतु जब आत्मसत्ता बलवान बनती है तो इन कर्मों के छक्के छुडा देती है। इस प्रकार इन कर्मों का कर्ता, अपने सुख-दुःख का निर्माता स्वयं आत्मा ही है और अपने पुरुषार्थ द्वारा इन कर्मों की बेडियों को तोड़कर शाश्वत् सुख का भोक्ता बनने वाला भी आत्मा ही है।

कर्माधीन जीव जिन-जिन पर्यायों में दुःख अथवा सुख भोगता है, उन-उन पर्यायों को यहाँ उस-उस दण्डक के नाम से निर्दिष्ट किया गया है। 24 प्रकार के दण्डकों में संसारी जीव, जब तक कर्मसत्ता के अधीन है, भटकता रहता है।

जिस प्रकार अपराधी को जेल अधीक्षक जेल में डालकर उसके अपराध के अनुपात में उसे सजा देता है, ठीक उसी प्रकार कर्म-राजा जीव को उसके भले-बुरे कार्यों के अनुरूप उस-उस दण्डक रूप गति अथवा योनि (कारावास) में डालकर दण्ड देता है।

जीव पुण्य/शुभ कर्मों का फल देवगति या मनुष्य गति सम्बन्धी सुख-साधन प्राप्त कर भोगता है तो अशुभ/पाप कर्मों का फल तिर्यञ्च अथवा नरक जीवन की यातना प्राप्त कर भोगता है।

प्रस्तुत दण्डक प्रकरण खरतरगच्छीय महामुनीश्वर श्री गजसार मुनि द्वारा रचित है, जो समस्त मूर्तिपूजक समुदाय में समान रूप से मान्य है। 44 कारिकाओं से युक्त लघुकाय यह रचना जहाँ गागर में सागर की उक्ति को चरितार्थ करती है, वहीं अर्थगांभीर्य से भरपूर यह कृति रचनाकार के गूढ तत्त्वज्ञान और प्रखर वैदूष्य को भी उजागर करती है।

रचनाकार ने बालजीवों को सरलता एवं सुगमता से अर्थबोध कराने के लक्ष्य से अत्यंत सहज एवं सरस शैली में प्रस्तुत प्रकरण का निर्माण किया है। 24 दण्डकों में 24 द्वारों का सुव्यवस्थित रूप से क्रमशः निरूपण रचनाकार की एक विशिष्ट शैली है।

प्रस्तुत रचना के विवेचनकार बंधु मुनि श्री मनितप्रभजी महाराज द्वारा इस लघुकाय प्रकरण पर जो विस्तृत विवेचना एवं व्याख्या की गयी है, निश्चित ही उनकी स्वाध्याय-प्रवणता के साथ तत्त्वज्ञान की गंभीरता को प्रकट करती है। वर्षीतप की तपश्चर्या के दौरान निरंतर लेखन, संपादन तथा संशोधन कार्य उनकी ज्ञाननिष्ठा को तो उजागर करता ही है, साथ ही उनकी

अप्रमत्तता को भी अभिव्यक्त करता है। इसका साक्षात् प्रमाण है - प्रस्तुत ग्रंथ का केवल चार माह में आलेखन।

मुनिश्री ने इस ग्रंथ के विशद विवेचन के साथ 24 दण्डकों में 24 द्वारों को प्रश्नोत्तरी के रूप में प्रस्तुत करके हिन्दीभाषी तत्त्वजिज्ञासुओं के लिये जहाँ अनमोल उपहार प्रस्तुत किया है, वहीं तत्त्वज्ञान साहित्य जगत को एक अनूठा रत्न प्रदान किया है।

अनुज मुनि को अथक श्रमसाध्य इस सर्जन के लिये मेरी अनंतशः बधाई एवं ज्ञान-दर्शन-चारित्र एवं तपमय जीवन की हार्दिक शुभकामना।

यह ग्रंथ बाल जीवों के तत्त्वज्ञान को समृद्ध करता हुआ उनकी आत्मा को इन दण्डकों की कारा से मुक्त करें तथा आत्मा परमपद का वरण करें। इन्ही मंगलभावनाओं के साथ ....

विद्युत चरण रज

साध्वी नीलांजना

साध्वी डॉ. नीलांजनाश्री

मेरी कलम से...

जीवन और मरण का प्रवाह अनादिकाल से प्रवाहित है । जीवन-प्रवाह का प्रारंभ कब से-कहाँ से हुआ ?, बताने में कोई भी समर्थ नहीं ।

जीव की जीवन-धारा अनन्तकाल से विविध रूपों में बह रही है । कभी उसका आकार बदला है, कभी प्रकार बदला है। लम्बाई-चौडाई-मोटाई बदली है, उसका बाह्य कलेवर एवं व्यवस्थाएँ बदली हैं ।

इसके साथ भीतर के प्रवाह भी परिवर्तित हुए हैं। सुख-दुःख, अभाव-सद्भाव, अनुकूलता-प्रतिकूलता में भी परिवर्तन आता रहा है। कभी दैव्य सुखों का साम्राज्य मिला है तो कभी नरक की अपार त्रासदी ।

सच तो यह है कि शरीर का प्रवाह महत्त्वपूर्ण नहीं है, महत्त्वपूर्ण है भीतर का प्रवाह... चेतना का प्रवाह... संवेग-निर्वेद के प्रवाह... ।

भीतर में यदि कषायों के आवेग हैं, दुःख के दावानल सुलग रहे हैं, मूर्च्छा के गंदे नाले बह रहे हैं, मलीनता का पंक जमा हुआ है, तब बाहर का प्रवाह कितना ही रमणीय एवं कमनीय क्यों न हो, अर्थहीन है । इसलिये भीतर के प्रवाह को सही दिशा देनी जरूरी है । एक गति एवं नेक गति देनी जरूरी है, और इस बात का अंदाज जरूरी है कि गति के साथ दिशा भी सम्यक् हो ।

गति हो पर दिशा गलत हो तो वह भटका देती है और गति के अभाव में दिशा का संज्ञान भी व्यर्थ हो जाता है । जब तक संतुलित गति और सम्यक् दिशा में सामंजस्य स्थापित नहीं हो जाता, तब तक सारा 'प्रवाह'

कहने को 'प्रवाह' है, हकीकत में तो वह केवल एक भटकाव है। जन्म-मरण का बहाव है।

वह नदी भले ही दिन-रात बहे, परन्तु सागर नहीं बन सकती जिसका प्रवाह मनचाहे आधार पर प्रवाहित होता हो।

जो कभी उत्तर से दक्षिण में बहती है तो कभी दक्षिण की ओर बहती-बहती पूर्व में मुड़ जाती है, वह भला कैसे तो सागर में मिल पायेगी और कैसे सागर बन पायेगी ?

निश्चयतः जरूरी है कि प्रवाह को सम्यक्रूपेण समझा जाये। उसमें संतुलन स्थापित हो गया तो फिर प्रवाह की धारा कभी मोटी से पतली-हो सकती है। उसकी गति तीव्र से मंद हो सकती है। परन्तु प्रवाह अपनी दिशा कभी नहीं भूल सकता।

फिर उसका प्रवाहित होना तो प्रवाहित होने के लिये है ही, उसका रुकना भी प्रवाहित होना हो जाता है।

पर इस अवस्था का जन्म होना अतिविकट है क्योंकि जीव और जीवन, सुख-दुःख के प्रवाह में अनादिकाल से बहता जा रहा है।

जब तक सम्यक्दर्शन की रोशनी चेतना में जन्म नहीं लेती है, तब तक उसके सारे संवेदन, सारे विचार, हर सोच बाह्य प्रवाहों पर ही स्थिर होती है।

भोग-उपभोग के साधन, शरीर की सुविधा, अनुकूलता का जीवन, इन निम्न-तुच्छ पदार्थों में ही उसकी अनंतज्ञान-दर्शनपूरक चेतना प्रवाहित होती रहती है।

जब काललब्धि परिपाक के साथ चेतना में एक विस्फोट होता है, जीव में-जीवन में क्रान्ति घटित होती है, तब सारे प्रवाह निजता में लीन हो जाते हैं। भीतर की ओर मुड़ जाती है सारी आत्म-शक्तियाँ, ज्ञान-कोष एवं चैतन्य प्रवाह।

वेदन-संवेदन की सारी धाराएँ आत्म-पथारूढ़ हो जाती है । आत्म-श्रद्धा के अनन्त फूल खिल उठते हैं चेतना के धरातल पर । निर्वेद और संवेग के सहस्र कोष उजागर हो जाते हैं जीवात्मा में । शांति और समाधि के अगणित द्वार स्वतः सहज खुल जाते हैं चारित्र के प्रकाश में ।

फिर बाह्य प्रवाहों के साथ बहता हुआ भी वह प्रतिपल अपने आत्म-प्रवाह में रमण करता है, डुबकी लगाता है और अनिर्वचनीय आनंद के अद्भुत मुक्ता प्राप्त करता है ।

देशोन अर्द्धपुद्गल परावर्तन काल में कभी ऐसा दिव्य पल आता है जब बाहर के सारे प्रवाह सदा के लिये थम जाते हैं, रुक जाते हैं और अन्तरात्मा के उन अनन्त प्रवाहों में सदा के लिये अवस्थित-उपस्थित हो जाता है, जिसके आगे न जन्म-मरण है, न शरीर-वचन है, न आकार-प्रकार है ।

यह सब लिखना-कहना अत्यन्त सहज है, उसकी प्राप्ति, उसमें आत्म-स्थिरता बहुत कठिन है क्योंकि जीवात्मा अनन्तकाल से वस्तु-वासना में ही जीया है । उससे अन्य-अनन्य सुख का उसे कोई अनुभव ही नहीं है ।

दण्डित होकर प्रसन्न होना जैसे उसका स्वभाव बन गया है । यह स्वभाव उसे परभाव जैसा कैसे लगे और उसका स्व-भाव कैसे जगे, इस हेतु तीर्थंकर परमात्मा अनन्त करुणा कर अमिय-आत्मप्रिय उपदेशामृत की गंगा बहाते हैं ।

उस आप्त-गंगा में डूबकी लगा संतप्त जीवात्मा इतना तृप्त-तुष्ट हो जाता है कि ममता-मूर्च्छा-मादकता नामशेष हो जाती हैं ।

तब मुझे मेरी बात सहज ही समझ में आ जाती है कि -

* मुझे क्या करना था ?

* मैं क्या करता रहा ?

* अब मुझे क्या करना है ?

मुझे चुनने थे मुक्ति के पुष्प और मैं चुनता गया जन्म-मरण की जंजीरों को ।

कर्म-बंधन की शृंखलाओं में बंधकर, अपने आपके बांधकर प्रसन्न होता गया । जितनी शृंखलाएँ बढी, जितना कर्म-राज ने दण्डित किया, मैं उतना ही आनंदित होता गया । मेरा सुख बढता गया । कभी नरक की त्रासदी ने रुलाया तो कभी स्वर्गीय सुखों ने दण्डित किया !

पर अब मुझे समझ में आ गया है कि पद या पदार्थ नहीं, मैं ही मुझे दण्डित करता हूँ, कोई व्यक्ति अथवा परिस्थिति नहीं, पर से जुडे मेरे भाव ही मुझे भवों की कारा में कैद करते हैं ।

स्वर्ग का सुख भी मुझे सजा देता है यदि मैं उसकी आसक्ति में बंध जाता हूँ और नरक की दारुण-वेदना भी मुझे मुक्त करती है यदि मैं उसे समभाव से स्वीकार कर लेता हूँ ।

इसलिये सुख में इतराना नहीं है, दुःख से घबराना नहीं है ।

संपन्नता से चिपकना नहीं है, दरिद्रता में रोना नहीं है ।

और यह जीवन-कला मात्र एक दण्डक में ही संभव है, जहाँ व्यक्ति जीव से शिव की यात्रा को संपन्न कर सकता है - वह है गर्भज मनुष्य का ।

शेष दण्डकों में जीव अधिकतर दण्डित होने का ही सामान एकत्र करता है, पर मनुष्य के भव में चाहे तो वह सदा-सदा के लिये दण्डकों में दण्डित-पीडित होने की सजा से मुक्त हो सकता है ।

इतनी बात समझ में आ जाने के बाद दण्ड-दण्डक मुक्ति का प्रयास सहज ही सध जाता है । दण्ड-दण्डक की समझ और कर्म-कारा-मुक्ति में वीर्य-स्फुरण के एक मात्र लक्ष्य से प्रस्तुत प्रकरण का प्रकटीकरण हुआ है ।

यद्यपि देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण तक श्रुति-परंपरा गतिशील थी, तत्पश्चात् काल-प्रभाव से, स्मृति-दौर्बल्यादि कारणों से आप्त-परमात्म-वाणी रूप आगमों का लेखन प्रारंभ हुआ ।

पूर्व में चौरासी आगमों की संपदा थी परन्तु अनेक आगम विकराल अकाल के गाल में समा गये अथवा दीमक का आहार बन गये । वर्तमान में उपलब्ध पैंतालीस आगमों में से हर आगम अलग-अलग वैशिष्ट्य लिये हुए हैं ।

आचारांग, दशवैकालिक आदि में साध्वाचार का वर्णन है तो ज्ञाताधर्मकथा, उपासकदशा में कथाओं का कथन है । उत्तराध्ययनादि उपदेशप्रधान ग्रंथ है तो जीवाभिगम, प्रज्ञापना, भगवती आदि में जीव तत्त्व, नवतत्त्व, दण्डक, लोकालोक आदि का विशिष्ट-विस्तृत विवेचन प्राप्त होता है परन्तु उनका परिशीलन-अनुशीलन एवं उनकी धारणा सामान्य बुद्धिजीवियों के लिये कठिन है । अतः श्रुत-पिपासुओं की तत्त्व-तृषा को शांत करने के लक्ष्य से अनेक सरल-तरल प्रकरणों की रचना पूर्वाचार्यों ने की ।

किसी भी तत्त्व के संदर्भ में प्रारंभिक ज्ञान पाने के लिये जिस ग्रंथ-विशेष की रचना की जाती है, उसे प्रकरण कहा जाता है ।

वर्तमान में तत्त्व के मौलिक एवं प्रारंभिक अभ्यासाध्ययन के लिये चार प्रकरण विशेष उपयोगी सिद्ध एवं प्रसिद्ध हुए हैं जिसमें आचार्य वादिवेताल आचार्य शांतिसूरि विरचित जीव विचार प्रकरण, चिरंतनाचार्य विरचित नवतत्त्व प्रकरण, मुनि श्री गजसार गणि विरचित दण्डक प्रकरण तथा मूर्धन्य आचार्य हरिभद्रसूरि विरचित लघुसंग्रहणी प्रकरण महत्त्वपूर्ण एवं यशस्वी है । इन्हें प्रकरण चतुष्टय भी कहा जाता है ।

जिस प्रकरण में 24 द्वारों के संदर्भ में 24 दण्डक पदों की व्याख्या की गयी है, उसे दण्डक प्रकरण कहते है ।

दण्डक से अभिप्राय - दण्डयते जीवाः यस्मिन् सः दण्डकः ।

जिसमें जीव बार-बार दण्डित होता है, उसे दण्डक कहते है।

दण्डक का एक अर्थ प्रतिज्ञा सूत्र भी होता है जिसका उच्चारण सामायिक ग्रहण करते समय किया जाता है ।

प्रस्तुत प्रकरण की प्रारंभिक गाथाओं में 24 दण्डकों की व्याख्या की गयी है - स्थावर पंचक के पांच, विकलेन्द्रिय के तीन, नारकी का एक, देवों के तेरह एवं गर्भज तिर्यंच-मनुष्य का एक-एक दण्डक कहा गया है ।

चतुर्विंशति दण्डकों के संदर्भ में कुछ प्रश्न सहज ही उपस्थित हो जाते हैं, यथा -

(1) दण्डक चौबीस ही क्यों कहे गये ?

(2) संमूर्च्छिम मनुष्यों और संमूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यंच को चौबीस दण्डकों में क्यों नहीं लिया गया ?

(3) दस भवनपति देवों के दस दण्डक कहे गये जबकि व्यंतर, ज्योतिष्क एवं वैमानिक देवों का एक-एक दण्डक ही क्यों कहा गया ?

इन प्रश्नों का समाधान इस प्रकार है -

(1) तीर्थंकरों ने इसी प्रकार प्ररूपणा की है ।

(2) आगमों में भी इसी प्रकार का उल्लेख प्राप्त होता है ।

(3) पूर्ववर्ती आचार्यों की प्ररूपणा का अनुकरण किया गया है ।

इन चतुर्विंशति दण्डकों की व्याख्या चौबीस द्वारों के संदर्भ में की गयी है, जो इस प्रकार है -

चौबीस दण्डक - (1) शरीर द्वार, (2) अवगाहना द्वार, (3) संघयण द्वार, (4) संज्ञा द्वार, (5) संस्थान द्वार, (6) कषाय द्वार, (7) लेश्या द्वार, (8) इन्द्रिय द्वार, (9) समुद्घात द्वार, (10) दृष्टि द्वार, (11) दर्शन द्वार, (12) ज्ञान द्वार, (13) अज्ञान द्वार, (14) योग द्वार, (15) उपयोग द्वार,

(16) उपपात द्वार, (17) च्यवन द्वार, (18) स्थिति द्वार, (19) पर्याप्ति द्वार, (20) किमाहार द्वार, (21) संज्ञी द्वार, (22) गति द्वार, (23) आगति द्वार, (24) वेद द्वार ।

प्रस्तुत दण्डक प्रकरण में 24 महत्त्वपूर्ण द्वारों के संदर्भ में विवेचना होने से जिज्ञासु के लिये जितना उपयोगी एवं रसप्रद है, उतना ही गहन एवं तात्त्विक भी है ।

प्रस्तुत प्रकरण की यह दिव्य यशस्विता है कि खरतरगच्छीय गणि विरचित यह ग्रंथ समस्त गच्छों एवं संप्रदायों में सादर सश्रद्ध पढ़ा जाता है ।

कृति का अतीत

दण्डक प्रकरण का स्वर्णिम इतिहास लगभग 500 वर्ष पुराना है । प्रस्तुत प्रकरण रचनाकार पूज्य गणि प्रवर श्री गजसार मुनि विधिपक्ष नाम से प्रसिद्ध खरतरगच्छ की गरिमामयी परम्परा के विद्वद्वर्य तत्त्वाचार्य थे ।

पूज्य आचार्यवर श्री जिनहंससूरीश्वरजी म.सा. के शासन काल में उन्होंने गणिवर्य श्री धवलचंद्रजी महाराज का पावन शिष्यत्व स्वीकारा था ।

उनका सारा आगमिक-तात्त्विक अध्ययन महामनीषी श्री अभयोदय गणि की पवित्र सानिध्यता में हुआ था ।

तीव्र मेधा-प्रज्ञा के परिणामस्वरूप अल्पावधि में ही उन्होंने शास्त्र-व्याकरण-न्याय आदि विषयों का तलस्पर्शी अध्ययन कर लिया था । तत्पश्चात् उन्हें गणिपद प्रदान किया गया था ।

प्रस्तुत प्राचीन, पावन कृति का आलेखन अणहिल्लपुरपत्तन (पाटण) में संवत् 1581 में हुआ था ।

प्रस्तुत प्रकरण का मूल नाम विचारषट्त्रिंशिका है क्योंकि इसमें छत्तीस गाथाओं में चौबीस द्वारों के संदर्भ में चतुर्विंशति दण्डकों की सुविचारणा की गयी है । इसके अतिरिक्त इसे विज्ञप्तिषट्त्रिंशिका, विचार स्तव, लघु संग्रहणी आदि नामों से भी जाना जाता है ।

वर्तमान में प्रस्तुत प्रकरण में जो 44 गाथाएँ दिखायी देती हैं, उनमें से 8 गाथाएँ बाद में समाविष्ट की जाने से वे प्रक्षिप्त हैं। मूल प्रकरण तो षट्त्रिंशत् गाथाओं में ही परिपूर्ण हो जाता है।

प्रस्तुत प्रकरण पर समय-समय अनेकानेक साधक-विद्वज्जनों ने लेखिनी का प्रयोग-उपयोग किया है।

स्वयं प्रकरणकार श्री गजसार गणि ने इस पर वृत्ति रची है। अकबर प्रतिबोधक दादा श्री जिनचन्द्रसूरि के प्रशिष्य वाचनाचार्य विद्वद्वर्य श्री समयसुंदरोपाध्याय ने भी वृत्ति का निर्माण अहमदाबाद में संवत् 1696 में किया।

सतरहवीं शताब्दी में श्री विमलकीर्ति गणि ने, संवत् 1803 में नवानगर में आनंदजी कल्याणजी पेढी के अधिष्ठाता श्रीमद् देवचंद्र ने एवं संवत् 1880 में अजीमगंज में श्री आनंदवल्लभ गणि ने बालावबोध की रचना की।

17वीं शताब्दी में श्री हीरकलशोपाध्याय ने विचारषट्त्रिंशिका स्वोपज्ञ अर्थ सहित रचना की है। संवत् 1724 में बेगडशाखावर्ती आचार्य श्री जिनसमुद्रसूरि ने विचार षट्त्रिंशिका प्रश्नोत्तर नामक ग्रंथ की रचना की।

उन्नीसवीं सदी में श्री ज्ञानसागरोपाध्याय ने विचारषट्त्रिंशिका अर्थ की तथा श्री सुमतिवर्द्धन गणि ने विचारषट्त्रिंशिका यंत्र की रचना की। इस प्रकार तत्त्वज्ञ श्रमणों ने स्व-प्रतिभा से जहाँ श्रुत-भण्डार को अपनी नवीन कृतियों से सजाया, वहीं प्रस्तुत कृति की महिमा-महत्ता को भी अनावृत्त किया।

इन समस्त कृतियों के प्रकाश में यह सुस्पष्ट है कि प्रस्तुत कृति जिनशासन की अनमोल धरोहर है।

गणिप्रवर श्री गजसार मुनि विरचित विभिन्न कृतियाँ उपलब्ध होती हैं जिसमें षष्टि प्रकरण वृत्ति, आदिनाथ स्तोत्र विज्ञप्तिका अवचूरि, सम्यक्त्व स्तोत्र अवचूरि आदि प्रमुख हैं।

अनुवाद-अनुभव -

दण्डक प्रकरण के अनुवाद कार्य बहुत पहले प्रकाशित हो चुके हैं परन्तु वे या तो गुर्जर भाषा में हैं, या फिर हिन्दी - भाषान्तर है । अतः एक ऐसे अनुवाद कार्य की अनिवार्यता बहुत पहले से समझी जाती रही है जो हिन्दी भाषियों के लिये उपयुक्त एवं उपयोगी सिद्ध हो ।

कुछ माह पूर्व प्रस्तुत प्रकरण का हिन्दी अनुवाद कार्य साध्वीश्री प्रियस्नेहांजनाश्रीजी म. के द्वारा प्रकाशित हुआ है ।

जिनेश्वर विद्यापीठ के लक्ष्य से काफी अनुवाद कार्य प्रकाशित हो चुके हैं जिसमें जीव विचार प्रकरण, तृतीय प्रत्याख्यान भाष्य एवं कर्म विपाक नामक प्रथम कर्मग्रंथ के अनुवाद-विवेचन का कार्य मेरे द्वारा किया गया है और नवतत्त्व प्रकरण की विवेचना अग्रजा साध्वी श्री नीलांजनाश्रीजी म. ने प्रस्तुत की है । शेष भाष्यों एवं कर्मग्रंथों पर भी कार्य चल रहा है ।

दण्डक प्रकरण के अनुवाद-विवेचना का प्रकाशन मेरे मन-मानस को प्रमोद भावों से प्रपूरित कर रहा है । इसका कारण एक ही है कि प्रस्तुत अनुवाद के लक्ष्य से मेरे तात्त्विक अभ्यास को नयी गति और नयी दिशा मिली है ।

थका देने वाले विहार..... तीव्र सर्दी का प्रकोप..... आवागमन की व्यस्तता । फिर भी शासनदेव एवं गुरूदेव की कृपा से यह कार्य देशोन तीन माह में ही परिपूर्ण हो गया ।

प्रस्तुत अनुवाद कार्य को सरल, सरस और सुगम बनाने के लिये मैंने मेरा अधिकतम पुरुषार्थ प्रस्तुत विवेचन कार्य में नियोजित-संयोजित किया ।

यद्यपि प्रस्तुत प्रकरण में 24 द्वार विवेच्य है परन्तु गहन अभ्यासकों के लिये पर्याप्ता-अपर्याप्ता, संज्ञी-असंज्ञी, सूक्ष्म-बादर, संमूर्च्छिमज-गर्भज-औपपातज, प्रत्येक-साधारण, चतुर्विध गति, गुणस्थानक, त्रस-स्थावर, उर्ध्व-मध्य-अधोलोक, एकेन्द्रिय-विकलेन्द्रिय-पंचेन्द्रिय, पृथ्वीकाय यावत् त्रसकाय, वेदत्रिक, भव्य-अभव्य, सम्यक्त्व-मिथ्यात्व आदि संदर्भों

में भी चतुर्विंशति द्वारों एवं दण्डकों की व्याख्या की गयी है और इसी में मुझे विशेष परिश्रम करना पड़ा है, फिर भी यह बात मुझे अत्यन्त आनंद दे रही है कि प्रस्तुत कार्य से मेरा तत्त्वज्ञान प्रखर जरूर हुआ है। प्रस्तुत प्रकरण की विवेचना में मुझे पदार्थ की गहराई में उतरने का अद्भुत अवसर मिला। शास्त्रों में अलग-अलग स्थानों पर अनेक नवीन तत्वों की जानकारी मिली, यथा-

1 प्रज्ञापना सूत्र में विवेचित इकतीसवां संज्ञी पद एक नया चिंतन ही नहीं देता है, बल्कि तत्त्वानुसंधान के लिये भी प्रेरित करता है।

प्रस्तुत पद में मुक्त-अमुक्त समस्त जीव राशि को संज्ञी, असंज्ञी, और नो संज्ञी नो असंज्ञी, इन तीन भागों में विभक्त करके विचारणा प्रस्तुत की गयी है।

मुक्त-सिद्ध संज्ञी और असंज्ञी, दोनों नहीं है, अतः उन्हें नो संज्ञी नो असंज्ञी कहा है। मनोव्यापार का अभाव होने के कारण सदेही केवली को भी यही संज्ञा दी गयी है।

अमुक्त-संसारी जीव संज्ञी और असंज्ञी, दो प्रकार के कहे गये हैं।

प्रस्तुत पद में परमात्मा महावीर के सम्मुख प्रमुख गणधर गौतम स्वामी ने अपनी जिज्ञासा प्रकट की है, उन्होंने प्रश्न किया है-

णेरइयाणं भंते ! किं सण्णी असण्णी णो सण्णी णो असण्णी ?

भंते ! नारकी जीव संज्ञी, असंज्ञी और नो संज्ञी नो असंज्ञी, इन तीनों में से क्या है ?

परमात्मा महावीर जिज्ञासा को इस प्रकार समाहित करते हैं-

गोयमा ! णेरइया सण्णी वि असण्णी वि णो णो सण्णी णो असण्णी।

गौतम ! नारकी संज्ञी और असंज्ञी, दोनों है परंतु नो संज्ञी नो असंज्ञी नहीं है।

भवनपति एवं वाणव्यंतर देवों के संदर्भ में भी यही प्रज्ञापना की है।

जीवाभिगम सूत्र की प्रथम प्रतिपत्ति में देवों के विवेचन में **'सण्णी वि असण्णी वि'** कहकर संज्ञी व असंज्ञी कहा गया है ।

यहाँ 'संज्ञा' शब्द का तात्पयार्थ क्या है, यह पद-विवेचन में कहीं पर भी स्पष्ट नहीं है ।

यद्यपि वृत्तिकार आचार्य मलयगिरि ने संज्ञा शब्द के दो अर्थों का उल्लेख किया है तथापि समाधान नहीं हो पाता है । वे कहते है - जो नारकी, भवनपति एवं वाणव्यंतर देव पूर्व में संज्ञी थे, उन्हें संज्ञी कहा है तथा जो असंज्ञी थे, उन्हें असंज्ञी कहा है । पर यहाँ यह कतई स्पष्ट नहीं है कि नरक एवं स्वर्ग लोकों में जो असंज्ञी जीव उत्पन्न होते हैं, वे संज्ञी होते हैं अथवा असंज्ञी ?

यहाँ समस्या यह है कि 'संज्ञा' शब्द का प्रयोग विविध ग्रंथों में विविध अपेक्षाओं को लेकर होने से उसके अनेक अर्थ घटित होते है, उनमें में किसे ग्रहण किया जाये, यह चिंतन का विषय है ।

आचारांग तथा दशाश्रुतस्कंध में 'संज्ञा' शब्द जाति स्मरण ज्ञान के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है । आवश्यक निर्युक्ति में भी संज्ञा को अभिनिबोध अर्थात् मतिज्ञान कहा गया है ।

मलयगिरि ने नंदीवृत्ति में 'संज्ञा' शब्द का अर्थ व्यंजनावग्रह के उपरांत होने वाली एक मति के रूप में किया है । आचार्य अभयदेव ने स्थानांग वृत्ति में 'संज्ञा' शब्द के दो अर्थ प्रस्तुत किये हैं जिसमें से एक अर्थ मलयगिरि कृत नंदी वृत्ति से मेल खाता है तो दूसरा अर्थ 'अनुभूति' के रूप में अभिव्यक्त होता है ।

स्थानांग वृत्ति में आहार आदि चार अथवा दस प्रकार की संज्ञाओं में भी 'अनुभूति' अर्थ प्रकट होता है ।

षट्खण्डागम के मार्गणा द्वार में संज्ञी द्वार में 'संज्ञा' शब्द का अर्थ पूर्णरूपेण स्पष्ट नहीं है ।

आचार्य उमास्वाति ने तत्त्वार्थ सूत्र में 'संज्ञिनः समनस्काः' सूत्र में मन वाले को संज्ञी कहा है और तत्त्वार्थ भाष्य में भी वही अर्थ प्राप्त होता

है। वर्तमान में यही अर्थ सर्वाधिक प्रचलित है। इस आधार पर अर्थ-घटन करने पर संज्ञी का अर्थ होता है- मन सहित जीव, तथा असंज्ञी का अर्थ होगा-मन रहित जीव।

इस प्रकार आगम तथा आगमेतर साहित्य में 'संज्ञा' शब्द अनेकविध अर्थों में व्यवहृत हुआ है, अतः संज्ञी पद में वर्णित 'संज्ञा' शब्द किस अर्थ का द्योतक है, यह तत्त्ववेत्ताओं के लिये शोध का विषय है।

प्रस्तुत प्रकरण में मैंने दण्डक प्रकरणानुसार एवं संप्रतिकालिन परम्परानुसार देवों और नारकी को संज्ञी ही कहा है।

2 जीवाभिगम सूत्र की प्रथम प्रतिपत्ति, जिसमें सूक्ष्म-बादर पृथ्वीकायिक आदि एकेन्द्रिय जीवों के संदर्भ मे तैवीस द्वारों की विवेचना की गयी है। उसमें तृतीय संघयण द्वार में एक नयी बात जानने-देखने को प्राप्त होती है।

गौतम स्वामी ने प्रश्न किया है-

तेसिणं भंते ! जीवाणं सरीरा किं संघयणा पण्णत्ता ?

भगवन् ! उन जीवों के शरीर किस संघयण वाले कहे गये है ?

परमात्मा महावीर कहते हैं-

गोयमा ! छेवट्ठ संघयणा पण्णत्ता ।

गौतम ! उन जीवों में सेवार्त्त संघयण पाया जाता है।

वर्तमान में दण्डक प्रकरण के साथ-साथ अनेक ग्रंथों में एकेन्द्रिय को संघयण रहित कहा है पर यहाँ परमात्मा सेवार्त्त संघयण की प्ररूपणा करते हैं।

संघयण के दो अर्थ किये जा सकते हैं - एक अर्थ अस्थि संरचना होता है और दूसरा अर्थ कायिक बल होता है। इस व्याख्या के आधार पर यह समझा जा सकता है कि जीवाभिगम में जो सेवार्त्त संघयण एकेन्द्रिय जीवों के संदर्भ में कहा गया है, वह अस्थि बंधारण की अपेक्षा से न होकर बल की अपेक्षा से है। अन्य ग्रंथों में संघयण का दूसरा अर्थ जो कायिक

बल होता है, वह अत्यल्प होने से उसे नगण्य और उपेक्षित मानकर अस्थि हीन एकेन्द्रिय जीवों को प्रथम अर्थ के परिप्रेक्ष्य में संघयण रहित कह दिया है ।

जीवभिगम और अन्य ग्रंथों में जो यह भेद दिखायी देता है, वह किस संदर्भ में है, यह अन्वेषण का विषय है । प्रस्तुत प्रकरण में वर्तमान में चल रही तत्त्व प्ररूपणा के अनुरूप एकेन्द्रिय को संघयण रहित कहा गया है ।

कृतज्ञता-विनम्रता

प्रस्तुत कार्य में जिन-जिन जिनागमों, ग्रंथों एवं अनुवाद कार्यों की रश्मियों ने मेरे लेखन-पथ को आलोकित किया, उनके प्रति मैं हार्दिक कृतज्ञ हूँ ।

जिन्होंने निरन्तर प्रेरणा देकर मेरी लेखिनी को गतिमान रखा, मेरी सुषुप्त प्रतिभा को उजागर किया, उन पूज्येश्वर उपाध्याय प्रवर श्री मणिप्रभसागरजी म.सा. के प्रति मेरी वंदनाएँ समर्पित हैं ।

उनकी रचनात्मक प्रेरणा-संप्रेरणा जीवन की ऊर्जा बनकर मुझे हमेशा तरोताजा रखती है । अपने आशीर्वाद के द्वारा मुझे हमेशा प्रवाहमय रखे, यही मेरी कामना है ।

हर कार्य की भाँति प्रस्तुत कार्य में भी आत्मीय अग्रजा साध्वी डॉ. नीलांजनाश्रीजी म. का सुंदर-सहकार प्राप्त हुआ है ।

वे मेरे अपने हैं और अपनों के प्रति आभार की अभिव्यक्ति कैसी ! उनके समुज्ज्वल भविष्य के प्रति मैं अत्यन्त आश्वस्त हूँ ।

परम आत्मीय पंडित प्रवर श्री नरेन्द्रभाई कोरडिया के प्रति मैं सादर कृतज्ञ हूँ जिन्होंने अपनी ज्ञान-प्रतिभा का प्रस्तुत कार्य में विनियोग कर अनुवाद कार्य को सूक्ष्मता से देखा, परखा और आवश्यक संशोधनों के साथ दिशा-निर्देश प्रदान किये ।

मुझे उनका बहुत पूर्व से स्नेहिल मार्गदर्शन प्राप्त होता रहा है । संशोधक एवं संपादक के प्रति साधुवाद-संवाद प्रस्तुत कर उनके अपनेपन को तौलने का अनुचित प्रयास नहीं करूंगा ।

मुझे उनका बहुत पूर्व से स्नेहिल मार्गदर्शन प्राप्त होता है । संशोधक एवं संपादक के प्रति साधुवाद-संवाद प्रस्तुत कर उनके अपनेपन को तोलने का अनुचित प्रयास नहीं करूंगा ।

पंडित प्रवर श्री केतनभाई शाह, अहमदाबाद का समय-समय पर जो अपनत्व से परिपूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ, उसे कैसे भूलाया जा सकता है ! उनके प्रति मेरी मंगलकामनाएँ हैं ।

हालांकि प्रस्तुत कार्य में मैंने अत्यन्त सजगता रखी है, फिर भी छद्मस्थ होने से त्रुटि का होना सहज है, अतः सादर निवेदन है कि कृति में कोई त्रुटि हो तो पाठक उस ओर मेरा ध्यान जरूर आकृष्ट करें ताकि आगामी प्रकाशन संशोधन किया जा हो सके ।

ज्ञाताज्ञातभाव से जिनाज्ञा विरूद्ध कुछ भी लिखा तो अन्त:करण से क्षमाप्रार्थी हूँ ।

ज्ञानपिपासु एवं तत्त्वजिज्ञासु प्रस्तुत अनुवाद के माध्यम से दण्डक-मुक्ति हेतु प्रयत्नशील बने तथा अज्ञान-तम को छेद कर अपने अमृत-आत्म प्रकाश को उपलब्ध करें, आध्यात्मिक जीवन की अगणित अपेक्षाओं के साथ.....

(मुनि मनितप्रभसागर)

हमारे प्रकाशन

प्रवचन साहित्य

उठ जाग मुसाफिर भोर भई	(अप्राप्य)
अमर भये ना मरेंगे	(अप्राप्य)
बीती रजनी जाग जाग	(अप्राप्य)
जय सिद्धाचल	(अप्राप्य)
तीर्थंकर तारणहार रे	(अप्राप्य)
पाथेय / आचार्य जिनकान्तिसागरसूरि	15 रुपये
अनुगूंज / आचार्य जिनकान्तिसागरसूरि	30 रुपये
मणि मंथन / मणिप्रभसागर	(अप्राप्य)
जागरण / मणिप्रभसागर	30 रुपये
विद्युत् तरंगे / साध्वी डॉ. विद्युत्प्रभा	30 रुपये
नवप्रभात / मणिप्रभसागर	25 रुपये
वक्त की आवाज / मणिप्रभसागर	5 रुपये
अहम् कोऽस्मि / मणिप्रभसागर	5 रुपये
मन के घोड़े की थामे लगाम / मणिप्रभसागर	5 रुपये
जैन धर्म और विज्ञान / मणिप्रभसागर	5 रुपये
परिवार बने प्यार का मधुवन / मणिप्रभसागर	25 रुपये
प्रवाह (खण्ड-1) / मुनि मनितप्रभसागर	50 रुपये
प्रवाह (खण्ड-1) / मुनि मनितप्रभसागर	50 रुपये
पूज्य उपाध्यायश्री हैदराबाद चातुर्मास के संपूर्ण प्रवचन डीवीडी	100 रुपये
पर्युषण प्रवचन सीडी	50 रुपये

काव्य साहित्य

चिंतन चक्र	(अप्राप्य)

अमीझरणा	(अप्राप्य)
पूजन सुधा	(अप्राप्य)
वंदना	(अप्राप्य)
बज उठी बांसुरी	(अप्राप्य)
समर्पण	(अप्राप्य)
चौबीशी	(अप्राप्य)
शत्रुंजय स्तवनावली	(अप्राप्य)
संगीत के स्वर	(अप्राप्य)
स्तुति स्तवन सज्झाय संग्रह	(अप्राप्य)
ऋषिदत्ता रास / मणिप्रभसागर	10 रुपये
मलयसुंदरी रास / मणिप्रभसागर	20 रुपये
पूजन वाटिका / मणिप्रभसागर	50 रुपये
नाच उठा मन मोर / मणिप्रभसागर	40 रुपये
सुधारस / मणिप्रभसागर	10 रुपये
प्रतिध्वनि / मणिप्रभसागर	10 रुपये
प्रार्थना / संकलन	1 रुपये

कथा साहित्य

राही और रास्ता	(अप्राप्य)
अधूरा सपना	(अप्राप्य)
इनसे शिक्षा लो	(अप्राप्य)
गुरुदेव की कहानियाँ भाग-1, 2	(अप्राप्य)
भीगी भीगी खुशबू / साध्वी डॉ. विद्युत्प्रभाश्री	30 रुपये
दिशा बोध	(अप्राप्य)
जटाशंकर / मणिप्रभसागर	25 रुपये
सेठश्री मोतीशा / साध्वी डॉ. विद्युत्प्रभाश्री	20 रुपये
खुशबू कहानियों की / मुनि मनितप्रभसागर	80 रुपये
दिव्य कथा किरण / साध्वी विराग-विश्वज्योतिश्री	20 रुपये

शांतिनाथ चित्रकथा	20 रूपये

इतिहास

नाकोड़ा तीर्थ का इतिहास	(अप्राप्य)
अनुभूति अभिव्यक्ति	(अप्राप्य)
क्षमाकल्याण चरित्रम्	(अप्राप्य)
करूणामयी माँ	(अप्राप्य)
जैन तीर्थ परिचायिका	100 रूपये
दादाचित्र संपुट / मणिप्रभसागर	100 रूपये
तस्मै श्री गुरवे नमः / मणिप्रभसागर	100 रूपये
गुरूदेव / साध्वी डॉ. विद्युत्प्रभाश्री	30 रूपये
कुशल गुरूदेव / साध्वी डॉ. विद्युत्प्रभाश्री	30 रूपये
जहाज मंदिर का इतिहास / मणिप्रभसागर	5 रूपये
गच्छ गौरव गाथा / मुनि मनितप्रभसागर	10 रूपये

आवश्यक साहित्य

पंच प्रतिक्रमण विधि सहित	50 रूपये
पंच प्रतिक्रमण अर्थ सहित	80 रूपये
पंच प्रतिक्रमण सूत्र (पाठशाला संस्करण)	20 रूपये
दो प्रतिक्रमण सूत्र (पाठशाला संस्करण)	10 रूपये
दो प्रतिक्रमण सूत्र (अंग्रेजी) / मुनि मनितप्रभसागर	30 रूपये

तत्त्वज्ञान साहित्य

प्यासा कंठ मीठा पानी / मुनि मनितप्रभसागर	200 रूपये
जीव विचार प्रकरण सार्थ / मुनि मनितप्रभसागर	80 रूपये
नवतत्त्व प्रकरण सार्थ / साध्वी डॉ. नीलांजनाश्री	80 रूपये
दण्डक प्रकरण सार्थ / मुनि मनितप्रभसागर	80 रूपये
दण्डक प्रकरण सार्थ / साध्वी प्रियस्नेहांजनाश्री	60 रूपये
प्रत्याख्यान भाष्य सार्थ / मुनि मनितप्रभसागर	80 रूपये

प्रथम कर्मग्रंथ सार्थ / मुनि मनितप्रभसागर	80 रुपये
प्रीत की रीत / साध्वी डॉ. विद्युत्प्रभाश्री	20 रुपये
ज्ञानसार अर्थ (पद्यानुवाद) / मणिप्रभसागर	40 रुपये
स्वाध्याय माला / संकलन	30 रुपये
संस्कृत चैत्यवंदन स्तुति संग्रह / संकलन	10 रुपये
प्रीत प्रभु से कीजिये / साध्वी विज्ञांजनाश्री	5 रुपये
पहला पाठ / संकलन	2 रुपये

शोध प्रबन्ध

द्रव्य विज्ञान / साध्वी डॉ. विद्युत्प्रभाश्री	40 रुपये
सूत्रकृतांग का दार्शनिक अध्ययन / साध्वी डॉ. नीलांजनाश्री	50 रुपये

विविध

विहार डायरी / मणिप्रभसागर	50 रुपये
स्तोत्र वाटिका / संकलन	20 रुपये
प्रव्रज्या योग विधि / सं. मणिप्रभसागर	30 रुपये
जैन धर्म विज्ञान के आलोक में / डॉ. एम. आर. गेलड़ा	30 रुपये
दीक्षा रंगशाला (भाग 1 से 8) / मिश्रीमल बोथरा	20 रुपये प्रत्येक
सुप्रभातम् / संकलन	भेंट
भव आलोचना / मुनि मनितप्रभसागर	5 रुपये
श्रमण आलोचना / मुनि मनितप्रभसागर	भेंट
क्षमापना / मुनि मनितप्रभसागर	5 रुपये
मिच्छामि दुक्कडम् / मुनि मनितप्रभसागर	5 रुपये
मित्ती मे सव्वभूएसु / मुनि मनितप्रभसागर	5 रुपये
खामेमि सव्व जीवे / मुनि मनितप्रभसागर	5 रुपये
खमिअव्वं खमाविअव्वं / मुनि मनितप्रभसागर	5 रुपये

जहाज मंदिर पत्रिका का मासिक - प्रकाशन

पंचाग का प्रतिवर्ष प्रकाशन

प्रकाशन की प्रक्रिया में

दादावाडी दर्शनम्
बारसा सूत्र (सचित्र)
श्रमणाचार
देवद्रव्यादि विचार
तप विधि संग्रह
बारह व्रत स्वीकारी

लेखन की प्रक्रिया में

आचारांग सूत्र सविवेचन
चैत्यवंदन भाष्य सार्थ
द्वितीय कर्मग्रंथ सार्थ

प्राप्ति स्थल :

व्यवस्थापक, **श्री जिनकांतिसागरसूरि स्मारक ट्रस्ट**
जहाज मंदिर, मांडवला-343042, जिला-जालौर (राजस्थान)
दूरभाष : 02937-256107

व्यवस्थापक, **श्री जिन हरि विहार धर्मशाला**
तलेटी रोड़, पालीताणा-364270 (गुजरात)
दूरभाष : 02848-252653

व्यवस्थापक, **श्री जिनकुशलसूरि दादावाड़ी ट्रस्ट**
89/90, गोविंदप्पा रोड़, बसवनगुड़ी, बैंगलोर (कर्नाटक)
दूरभाष : 080-22423548

व्यवस्थापक, **श्री जिनकुशलसूरि दादावाड़ी**
मालपुरा, जिला-टोंक (राजस्थान)
दूरभाष : 01437-226243

ॐ ह्रीं नमो नाणस्स

जहाज मंदिर-मांडवला के पवित्र वातावरण में संस्थापित
जीवन को शिक्षित-दीक्षित एवं संस्कारित करने वाली
भारतवर्ष की एक गौरमयी विद्याशाला

श्री जिनेश्वर विद्यापीठ

*(श्रीमती शान्तिदेवी पुखराजजी तेजराजजी गुलेच्छा
मोकलसर द्वारा समायोजित)*

- निश्रा -

पूज्य उपाध्याय श्री मणिप्रभसागरजी म. सा.

- प्रेरणा -

पूजनीया बहिन म. साध्वी डॉ. श्री विद्युत्प्रभाश्रीजी म. सा.

- मार्गदर्शन -

पंडित प्रवर श्री नरेन्द्रभाई कोरडीया

एक ऐसी पाठशाला, जिसमें आपके पुत्र को मिलेगी

* जीवन जीने की कला.....
* संस्कारमय जीवन प्रणाली.....
* सम्यक्ज्ञान में अभिवृद्धि करने वाली अभिनव विद्या.....
* जीवन-निर्माण-निर्वाह की अद्भुत प्रायोगिक रश्मियाँ.....

जहाँ होगी

* रत्नत्रयी के द्वारा आत्म शुद्धि
* तत्वत्रयी के द्वारा भाव शुद्धि
* संस्कारों के द्वारा जीवन शुद्धि
* प्रशिक्षण के द्वारा विचार शुद्धि
* अनुशासन के द्वारा आचार शुद्धि
* मर्यादा के द्वारा हृदय शुद्धि

सुखद प्रतिफल

- कर्म मुक्ति
- पुण्यानुबंधी पुण्य का संचय
- संस्कृत प्राकृत की विद्वत्ता
- षड्दर्शन-षड्द्रव्य का ज्ञान
- विधि-विधान की विद्या
- चिंतन, वक्तव्य-लेखन कला की योग्यता

जहाँ आकर आपका पुत्र बनेगा

- जिनाज्ञा उपासक
- जिनधर्मानुयायी
- सच्चा गुरुभक्त
- माता-पिता की सेवा करने वाला
- राष्ट्र का नवयुवा
- संघ की दिव्य शक्ति
- समाज का सच्चा सिपाही
- अहिंसा धर्म का प्रचारक
- माँ सरस्वती का कृपापात्र

☺ **सम्पर्क सूत्र** ☺

श्री जिनकान्तिसागरसूरि स्मारक ट्रस्ट

जहाज मंदिर

पोस्ट : मांडवला - 343 042, जिला - जालोर (राज.)

फोन : 02973 - 256107 / 94136 00888

अनुक्रमणिका

		पेज नं.
	मंगलामृतम्	7
	शुभामृतम्	9
	मेरी कलम से	12
1.	दण्डक प्रकरण मूल	38
2.	दण्डक प्रकरण गाथा - संस्कृत छाया शब्दार्थ - भावार्थ - विशेष विवेचन	42
•	दण्डक प्रकरण प्रश्नोत्तरी	
3.	ग्रंथ एवं ग्रंथकार का परिचय	229
4.	मंगलाचरण का विवरण	235
5.	अनुबंध चतुष्टय का कथन	240
6.	चौबीस दण्डकों का विवरण	246
7.	चौबीस दण्डकों का विशेष विवेचन	253
8.	चौबीस द्वारों का विवेचन	264
9.	शरीर द्वार का विवेचन	268
10.	अवगाहना द्वार का विवेचन	289
11.	संघयण द्वार का विवेचन	301
12.	संज्ञा द्वार का विवेचन	308
13.	संस्थान द्वार का विवेचन	321
14.	कषाय द्वार का विवेचन	329
15.	लेश्या द्वार का विवेचन	339
16.	इन्द्रिय द्वार का विवेचन	351
17.	समुद्घात द्वार का विवेचन	365

18.	दृष्टि द्वार का विवेचन	380
19.	दर्शन द्वार का विवेचन	393
20.	ज्ञान द्वार का विवेचन	402
21.	अज्ञान द्वार का विवेचन	414
22.	योग द्वार का विवेचन	420
23.	उपयोग द्वार का विवेचन	437
24.	उपपात द्वार और च्यवन द्वार का विवेचन	448
25.	उपपात तथा च्यवन विरहकाल का कथन	453
26.	स्थिति द्वार का विवेचन	467
27.	पर्याप्ति द्वार का विवेचन	488
28.	किमाहार द्वार का विवेचन	495
29.	संज्ञी द्वार का विवेचन	508
30.	गति द्वार का विवेचन	515
31.	आगति द्वार का विवेचन	534
32.	वेद द्वार का विवेचन	550
33.	संमूर्च्छिम पंचेन्द्रिय मनुष्य एवं मनुष्य में चौबीस द्वारों का विवेचन	555
34.	तीर्थंकर परमात्मा में चौबीस द्वारों का विवेचन	560
35.	केवलज्ञानी में चौबीस द्वारों का विवेचन	564
36.	सिद्ध में चौबीस द्वारों का विवेचन	567
37.	काल का विवेचन	573
38.	माप का विवेचन	577
39.	अल्प बहुत्व का विवेचन	579
40.	24 दण्डकों की तालिका	589
41.	परीक्षा - पत्र	596

पहले इसे पढ़िये.......

प्रस्तुत दण्डक प्रकरण को पढते समय यह बात अवश्यमेव ध्यान में रखे कि स्थान-स्थान पर तत्त्व निरूपण समुच्चय से किया गया है ।

सकल तथ्यों की अपेक्षा से किया गया पदार्थ-कथन समुच्चय कहलाता है । यहाँ कुछ विशेष समुच्चय को अभिव्यक्त किया जा रहा है, यथा -

जाति पंचक का अर्थ होता है - एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय ।

गति चतुष्क का अर्थ होता है - देव गति, मनुष्य गति, तिर्यंच गति और नरक गति ।

कायषट्क का अर्थ होता है - पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय ।

एकेन्द्रिय और स्थावर का अर्थ होता है - पृथ्वीकाय यावत् वनस्पतिकाय ।

पंचेन्द्रिय का अर्थ होता है - पंचेन्द्रिय तिर्यंच, नारकी, देव और मनुष्य ।

तिर्यंच का अर्थ होता है - एकेन्द्रिय यावत् पंचेन्द्रिय ।

1 जाति पंचक की अपेक्षा से समुच्चय - जहाँ पंचेन्द्रिय जीवों में पांच ज्ञान कहे गये हैं तो वहाँ पंचेन्द्रिय के चार भेदों में से देव आदि तीन को ग्रहण न करके मनुष्य को ग्रहण करना चाहिये ।

2 गति चतुष्क की अपेक्षा से समुच्चय - जहाँ तिर्यंच गति में एकादश योग कहे गये हैं तो वहाँ पर एकेन्द्रिय आदि चार को समझकर पंचेन्द्रिय तिर्यंच के संदर्भ में समझना चाहिये ।

3 कायषट्क की अपेक्षा से समुच्चय - जहाँ त्रसकाय में पांच शरीर कहे गये हैं वहाँ पर द्वीन्द्रिय आदि तीन के परिप्रेक्ष्य में न स्वीकार करके पंचेन्द्रिय में और पंचेन्द्रिय में भी गर्भज मनुष्य के परिप्रेक्ष्य में स्वीकार करना चाहिये ।

स्वाध्यायियों से सादर निवेदन है कि वे प्रस्तुत प्रकरण का स्वाध्याय करते समय 'समुच्चय' शब्द सर्वदा स्मरण में रखें ।

श्री दण्डक प्रकरण-मूल

नमिउं चउवीस जिणे, तस्सुत्तवियार लेसदेसणओ ।
दंडगपएहिं ते च्चिय, थोसामि सुणेह भो भव्वा ॥1॥
नेरइआ असुराई, पुढवाई बेइन्दियादओ चेव;
गब्भयतिरिय-मणुस्सा, वंतर जोइसिय वेमाणी ॥2॥
संखित्तयरी उ इमा, सरीरमोगाहणा य संघयणा ।
सन्ना संठाण कसाय, लेसिन्दिय दु समुग्घाया ॥3॥
दिट्ठी दंसण नाणे, जोगुवओगोववाय चवण ठिई ।
पज्जत्ति किमाहारे, सन्नि गई आगई वेए ॥4॥
चउ गब्भतिरिय वाउसु, मणुआणं पंच सेस तिसरीरा ।
थावर चउगे दुहओ, अंगुल असंख भागतणु ॥5॥
सव्वेसिं पि जहन्ना, साहाविय अंगुलस्सऽसंखंसा ।
उक्कोस पणसय धणू, नेरइया सत्तहत्थ सुरा ॥6॥
गब्भतिरि सहस्स जोयण, वणस्सई अहिय जोयण सहस्सं ।
नर तेइंदि तिगाउ, बेइंदिअ जोयणे बार ॥7॥
जोयणमेगं चउरिंदि, देहमुच्चत्तणं सुए भणियं ।
वेउव्विय देहं पुण, अंगुलसंखं समारंभे ॥8॥
देवनर अहियलक्खं, तिरियाणं नव य जोयणसयाइं ।
दुगुणं तु नारयाणं, भणियं वेउव्विय सरीरं ॥9॥
अंतमुहुत्तं निरए, मुहुत्त चत्तारि तिरिय मणुएसु ।
देवेसु अद्धमासो, उक्कोस विउव्वणा कालो ॥10॥

थावर सुर नेरइया, असंघयणा य विगल छेवट्ठा ।
संघयण छग्गं गब्भय, नर तिरिएसुवि मुणेयव्वं ॥11॥
सव्वेसिं चउ दह वा सन्ना, सव्वे सुरा अ चउरंसा ।
नरतिरि छसंठाणा, हुंडा विगलिंदि नेरइया ॥12॥
नाणाविह धयसूई, बुब्बुय वण वाउ तेउ अपकाया ।
पुढवी मसूर चंदा, कारा संठाणओ भणिया ॥13॥
सव्वेवि चउकसाया, लेसछग्गं गब्भतिरिय मणुएसु ।
नारय तेऊवाऊ, विगला वेमाणियतिलेसा ॥14॥
जोइसिय तेउलेसा, सेसा सव्वेवि हुंति चउलेसा ।
इंदियदारं सुगमं, मणुआणं सत्त समुग्घाया ॥15॥
वेयण कसाय मरणे, वेउव्विय तेयए य आहारे ।
केवलि य समुग्घाया, सत्त इमे हुंति सन्नीणं ॥16॥
एगिंदियाण केवल, तेउ आहारगविणा उ चत्तारि ।
ते वेउव्वियवज्जा, विगला सन्नीण ते चेव ॥17॥
पण गब्भतिरि सुरेसु, नारय वाउसु चउर तिय सेसे ।
विगल दु दिट्ठी थावर, मिच्छत्ति सेस तिय दिट्ठी ॥18॥
थावर बि तिसु अचक्खु, चउरिंदिसु तद्दुगं सुए भणियं ।
मणुआ चउ दंसणिणो, सेसेसु तिगं तिगं भणियं ॥19॥
अन्नाण नाणतिय तिय, सुरतिरि निरए थिरे अन्नाण दुगं ।
नाणान्नाणदुविगले, मणुए पण नाण ति अनाणा ॥20॥
सच्चेअर मीस असच्चमोस, मण वय विउव्वि आहारे ।
उरलं मीसा कम्मण, इम जोगा देसिया समए ॥21॥

इक्कारस सुर निरए, तिरिएसु तेर पन्नर मणुएसु ।
विगले चउ पण वाए, जोगतियं थावरे होइ ॥22॥
तिअनाण नाण पण चउ, दंसण बार जिअलक्खणुवओगा ।
इय बारस उवओगा, भणिया तेलुक्कदंसीहिं ॥23॥
उवओगा मणुएसु बार, नव निरय तिरिय देवेसु ।
विगलदुगे पण छक्कं, चउरिंदिसु थावरे तियगं ॥24॥
संखमसंखा समए, गब्भयतिरि विगल नारय सुरा य ।
मणुआ नियमासंखा, वणणंता थावर असंखा ॥25॥
असन्नि नर असंखा, जह उववाए तहेव चवणेवि ।
बावीस सगति दसवास, सहस्स उक्किट्ठ पुढवाई ॥26॥
तिदिणग्गि तिपल्लाऊ, नरतिरि सुरनिरय सागर तित्तीसा ।
वंतर पल्लं जोइस, वरिस-लक्खाहियं पलियं ॥27॥
असुराण अहिय अयरं, देसूण दुपल्लयं नव निकाए ।
बारस-वासुण-पणदिण-छम्मासुक्किट्ठ विगलाऊ ॥28॥
पुढवाइ-दसपयाणं, अंतमुहुत्तं जहन्न आउठिई ।
दस सहस वरिस-ठिइआ, भवणाहिव निरय वंतरिया ॥29॥
वेमाणिय-जोइसिया, पल्ल-तयट्ठंस आउआ हुंति ।
सुर-नर-तिरि-निरएसु, छ पज्जत्ती थावरे चउगं ॥30॥
विगले पंच पज्जत्ती, छद्दिसि आहार होइ सव्वेसिं ।
पणगाइपए भयणा, अह सन्नितियं भणिस्सामि ॥31॥
चउविह-सुर-तिरिएसु, निरएसु य दीहकालिगी सन्ना ।
विगले हेउवएसा, सन्नारहिया थिरा सव्वे ॥32॥

मणुआण दीहकालिय, दिट्ठिवाओवएसिआ केवि,
पज्जपणतिरि-मणुअच्चिय, चउविह देवेसु गच्छंति ॥33॥
संखाउ पज्जपणिंदि, तिरियनरेसु तहेव पज्जत्ते ।
भूदगपत्तेयवणे, एएसु च्चिय सुरागमणं ॥34॥
पज्जत्त-संखगब्भय, तिरियनरा निरयसत्तगे जंति ।
निरय उवट्टा-एएसु, उववज्जंति न सेसेसु ॥35॥
पुढवी आउ-वणस्सइ, मज्झे नारय विवज्जिया जीवा ।
सव्वे उववज्जंति, निय निय कम्माणुमाणेणं ॥36॥
पुढवाइ दसपएसु, पुढवी आऊ वणस्सई जन्ति ।
पुढवाइ दसपएहि य, तेऊ वाउसु उववाओ ॥37॥
तेऊवाऊ गमणं, पुढवी-पमुहम्मि होइ पयनवगे ।
पुढवाई-ठाण दसगा, विगलाइ तियं तहिं जंति ॥38॥
गमणा-गमणं गब्भय, तिरियाणं सयल-जीव-ठाणेसु ।
सव्वत्थ जंति मणुआ, तेऊवाउहिं नो जंति ॥39॥
वेयतिय तिरिनरेसु, इत्थी पुरिसो य चउविह-सुरेसु ।
थिर विगल-नारएसु, नपुंसवेओ हवइ एगो ॥40॥
पज्जमणु बायरग्गी, वेमाणिय भवण निरय वंतारिया ।
जोइस चउ पणतिरिया, बेइंदि तेइंदि भू आऊ ॥41॥
वाऊ वणस्सइ च्चिय, अहिया अहिया कमेणिमे हुंति ।
सव्वेवि इमे भावा, जिणा मए णंतसो पत्ता ॥42॥
संपइ तुम्ह भत्तस्स, दंडगपय भमण-भग्ग-हिययस्स ।
दंड-तिय-विरय(इ) सुलहं, लहु मम दिंतु मुक्खपयं ॥43॥
सिरि-जिणहंस-मुणीसर, रज्जसिरि धवलचंद-सीसेण ।
गजसारेण लिहिया, एसा विन्नत्ति अप्पहिया ॥44॥

ॐ
ॐ ॐ
ॐ ॐ ॐ
ॐ ॐ
ॐ
ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ
ॐ ॐ

ॐ ह्रीँ श्री स्तंभन पार्श्वनाथाय नमो नमः
दादा गुरुदेव श्री जिनदत्त-मणिधारी जिनचन्द्र-जिनकुशल-जिनचन्द्रसूरिसद्‌गुरुभ्यो नमः
पू. गणनायक श्रीमत् सुखसागरसद्‌गुरुभ्यो नमो नमः
पू. आचार्य श्री जिनकान्तिसागरसूरिसद्‌गुरुभ्यो नमो नमः
ऐँ सरस्वत्यै नमः

अथ दण्डक प्रकरणम्

मंगलाचरण, विषय, सम्बन्ध, अधिकारी और प्रयोजन

गाथा

नमिउं चउवीसजिणे, तस्सुत्तवियारलेसदेसणओ ।
दंडगपएहिं ते च्चिय, थोसामि सुणेह भो ! भव्वा ॥1॥

संस्कृत छाया

नत्वा चतुर्विंशतिजिनान्, तत्सूत्रविचारलेशदेशनतः ।
दण्डकपदैस्तानेव, स्तोष्यामि श्रृणुध्वं भो ! भव्याः ॥1॥

शब्दार्थ

नमिउं - नमन-वंदन करके	चउवीस - चौबीस
जिणे - जिन (तीर्थंकर) को	तस्सुत्त - उनके द्वारा प्ररूपित सूत्र-सिद्धांत का
वियार - विचार-स्वरूप	लेस - अल्प, थोडी
देसणओ - कहने से	दंडग - दण्डक
पएहिं - पदों के द्वारा	ते - उन जिनेंद्रों की
च्चिय - निश्चित रूप से	थोसामि - स्तुति-स्तवना करूंगा
सुणेह - श्रवण करो	भो - हे !
भव्वा - भव्य प्राणियों	

भावार्थ

हे ! भव्य प्राणियों ! सभी श्रवण करो । मैं चौबीस तीर्थंकर परमात्मा को नमस्कार करके चौबीस दण्डक पदों की विवेचना करता हुआ उनके द्वारा प्ररूपित सूत्र-सिद्धान्त का संक्षिप्त पर विशेष स्वरूप कहता हुआ उनकी स्तुति-स्तवना करता हूँ ।।1।।

विशेष विवेचन

प्रस्तुत तृतीय दण्डक प्रकरण की प्रथम गाथा में प्रकरणकार मुनीश्वर श्री गजसार मुनि ने मंगलाचरण एवं अनुबंध चतुष्टय की विवेचना की है ।

अनुबंध चतुष्टय से अभिप्राय - प्रत्येक ग्रंथ के लेखनारंभ में जिन चार बातों का कथन अनिवार्यरूपेण किया जाता है, उसे अनुबंध चतुष्टय कहते है ।

अनुबंध चतुष्टय में समाहित चार बातें -

(1) विषय, (2) अधिकारी, (3) संबंध, (4) प्रयोजन । (प्रज्ञापना मलयगिरिवृत्ति पत्रांक 1-2)

अनुबंध चतुष्टय के उपलक्षण से मंगलाचरण का स्पष्टीकरण भी जानना चाहिए ।

मंगलाचरण - मंगलाचरण दो शब्दों से बना है -

(1) **मंगल** - शुभकारी, पुण्यकारी, सुखकारी ।

(2) **आचरण** - क्रिया, प्रवृत्ति, आचार ।

मंगलाचरण वह है जो -

(1) पुण्यानुबंधी पुण्य का बंध करवाता है ।

(2) पाप-मल को नष्ट करता है एवं आत्मा को अमल-धवल बनाता है ।

(3) आचार-विचार को शुद्ध-प्रशुद्ध बनाता है ।

(4) शुभदायक एवं समाधिप्रदायक फल प्रदान करता है ।

मंगलाचरण करने का प्रयोजन -

(1) मंगलाचरण करने से पढने-पढाने में आने वाली बाधाएँ समाप्त हो जाती है ।

(2) मंगलाचरण से ग्रंथ-आलेखन में आने वाले उपद्रवों की उपशमना होती है एवं ग्रंथ परिपूर्ण बनता है ।

(3) परमात्मा महावीर के महान् शासन में हुए समस्त महापुरुषों ने प्रत्येक ग्रंथ के प्रारंभ में मंगलाचरण की अनमोल विधा अपनायी है, उसी शिष्ट-विशिष्ट प्रवृत्ति को जीवन में उतारने के लिये, आचरण में बनाये रखने के लिये प्रकरणकार ग्रंथ का श्रीगणेश मंगलाचरणपूर्वक करते हैं ।

(4) जिनेश्वर एवं गुरुवर की कृपा-सुधा सहज ही प्राप्त हो जाती है ।

(5) मंगलाचरण से यह बात भी स्पष्ट हो जाती है कि प्रकरणकार किस धर्म-दर्शन का अनुयायी है ।

मंगलाचरण के प्रकार -

मंगलाचरण के अनेकानेक भेद शास्त्रों में बताये गये हैं -

(1) **दो प्रकार से** - (1) द्रव्य मंगलाचरण (2) भाव मंगलाचरण ।

(1) लौकिक मंगलाचरण (2) लोकोत्तर मंगलाचरण ।

(2) **तीन प्रकार से** - (1) आदि मंगलाचरण (2) मध्य मंगलाचरण (3) अन्त मंगलाचरण ।

(1) मानसिक मंगलाचरण (2) वाचिक मंगलाचरण (3) कायिक मंगलाचरण ।

प्रस्तुत प्रकरण के प्रारंभ में गाथा के प्रथम चरण में (नमिउं चउवीस जिणे) प्रकरणकार ने मंगलाचरण किया है ।

तीर्थंकर परमात्मा हमारे प्रथम उपकारी है । अतः प्रथम युगपुरुष आदिनाथ भगवान से चरम तीर्थाधिपति परमात्मा श्री महावीर स्वामी, इन चौबीस तीर्थंकरों को नमन, वंदन एवं कीर्तन करके मंगलाचरण किया गया है ।

जिन से अभिप्राय - जिन्होंने समस्त कर्मशत्रुओं पर विजय प्राप्त कर ली है, उन्हें जिन कहा जाता है । आत्मा को जीतने वाले जिनेश्वर कहलाते हैं ।

(1) **विषय** - गाथा के तृतीय चरण (दंडगपएहिं) में दण्डक प्रकरण का विषय स्पष्ट किया गया है ।

दण्डक से अभिप्राय -

यस्मिन् जीवाः दण्डयन्ति, सः दण्डकः ।

जिसमें जीव दण्डित होते हैं, उसे दण्डक कहते है ।

जीव परमात्म-स्वरूप और सिद्ध-बुद्ध-शुद्ध होने पर भी वह जिन कर्म रूपी दण्डों से दण्डित-पीडित होता है, उसे दण्डक कहते है ।

- दण्डक के कारण जीवात्मा अनन्त ज्ञान से युक्त होने पर भी अज्ञानता का दण्ड भोगता है ।
- अक्षय स्थिति से संयुत् होने पर भी विविध गतियों में परिभ्रमण करता है ।
- अनन्त वीर्यवान् होने पर भी निर्बलता का शिकार होता है ।
- अनन्त सुखमयी होने पर भी दुःख और पीडाओं को झेलता है ।

प्रस्तुत प्रकरण में दुःखकारी 24 दण्डकों का विवेचन किया गया है ।

विषय का स्पष्टीकरण जरुरी क्यों ? -

1 विषय का स्पष्टीकरण होने से विद्यार्थी सहजता से उस ग्रंथ में प्रवेश कर सकता है ।

2 ज्ञानार्थी रुचि, उत्साह और परिश्रम को बढाता हुआ शीघ्र ही ज्ञानार्जन कर सकता है ।

(2) अधिकारी - प्रस्तुत प्रकरण को केवल भव्यात्मा ही पढ सकते हैं क्योंकि वे जीव ही मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं । अभव्य जीव कभी भी मोक्ष में नहीं जायेंगे, अतः उनको उपदेश देना जिनाज्ञा विरुद्ध है ।

प्रकरण अध्ययन, अध्यापन, चिन्तन और मनन के अधिकारी का कथन गाथा के चतुर्थ चरण (भो ! भव्वा) में किया गया है ।

(3) संबंध - अनुबंध चतुष्टय के तृतीय 'संबंध' का स्पष्टीकरण प्रकरणकार ने गाथा के तृतीय चरण 'तस्सुत्तवियारलेसदेसणओ' के द्वारा किया है ।

गजसार मुनि कहते हैं - यह प्रकरण मैं निजमति अथवा कल्पना रुपक के रुप में नहीं कह रहा हूँ ।

दण्डक प्रकरण में मैं जिन तत्त्वों की चर्चा-विचारणा करुँगा, उनका आधार तीर्थंकर परमात्मा के सूत्र एवं सिद्धांत हैं । जिनवाणी के उत्तम-अमृत सिंधु में से कुछ बिंदु प्रस्तुत प्रकरण में प्रकट करने का मुझे दिव्य-लाभ प्राप्त हो रहा है । इस प्रकार प्रकरण का सीधा संबंध जिनेश्वर परमात्मा एवं जिनवाणी से है ।

(4) प्रयोजन - जीवन की हर प्रक्रिया किसी न किसी लक्ष्य को ध्यान में रखकर ही गतिमान होती है, वह चाहे उसका व्यावहारिक पक्ष हो अथवा आध्यात्मिक-तात्त्विक पक्ष ।

व्यावहारिक-सांसारिक क्रिया-कलापों के केन्द्र में धन-परिजन, सत्ता-सम्पत्ति होती है, जबकि आत्मिक-धार्मिक चर्या-क्रिया के केन्द्र में जन्म-मरण से मुक्ति एवं मोक्ष की युक्ति होती है ।

प्रयोजन के मुख्यतः दो प्रकार कहे गये हैं -

(1) अनन्तर प्रयोजन (2) परंपर प्रयोजन ।

इन्हें क्रमशः तात्कालिक एवं दीर्घकालीन प्रयोजन भी कहा जा सकता है ।

इन दोनों प्रयोजनों को हम एक उदाहरण के द्वारा समझ सकते हैं - एक व्यक्ति भोजन करता है तो भूख को शान्त करना एवं तृप्ति को प्राप्त करना उसका तात्कालिक प्रयोजन है तथा उसके द्वारा स्वस्थता को प्राप्त करके कार्य-शक्ति प्राप्त करना और भविष्य में विविध कार्यों को संपादित करना उसका दीर्घकालीन प्रयोजन है ।

(1) अनन्तर प्रयोजन - यह प्रयोजन दो प्रकार का कहा गया है -

(i) **कर्ता का अनन्तर प्रयोजन** - प्रकरणकार के ग्रंथ-लेखन का निकट का प्रयोजन यह है कि दण्डक ज्ञान संबंधी पिपासु आत्माओं को उससे संबंधित ज्ञान करवाना ।

(ii) **श्रोता का अनन्तर प्रयोजन** - श्रोता का ग्रंथ-अध्ययन का निकट का प्रयोजन 24 दण्डकों के विषय, स्वरूप एवं विवेचन को समझकर ज्ञान-प्रकाश प्राप्त करना है और अज्ञान-अंधकार का छेदन-भेदन करना है ।

(2) परम्पर प्रयोजन - यह प्रयोजन भी अनन्तर प्रयोजन की भाँति दो प्रकार का कहा गया है -

(i) **कर्ता का परम्पर प्रयोजन** - प्रकरणकार का ग्रंथ-लेखन का ही प्रयोजन नहीं होता है । बल्कि लेखन के द्वारा सिद्धान्त-महासागर में डूबकी लगाकर मुक्ति के मोती प्राप्त करना होता है ।

(ii) **श्रोता का परम्पर प्रयोजन** - जिनोक्त तत्त्वों को मात्र जानने के लक्ष्य से ही कोई भी श्रोता ग्रंथ-प्रकरण-भाष्यादि का अध्ययन-ज्ञानार्जन नहीं करता है, बल्कि उस तत्त्व के रहस्य को उपलब्ध कर और जड़-चेतन का भेद विज्ञान जानकर परमात्म रूप सर्वोच्च पद को प्राप्त करने के लिये करता है।

यहाँ अनुबंध चतुष्टय का कथन परिपूर्ण होता है।

प्रकरण में वर्णित चौबीस दण्डकों का कथन

गाथा

नेरइया असुराई, पुढवाई बेइन्दियादओ चेव ।
गब्भय-तिरिय-मणुस्सा, वंतर-जोइसिय वेमाणी ॥2॥

संस्कृत छाया

नैरयिका असुरादयः पृथ्व्यादयो द्वीन्द्रियादयश्चैव ।
गर्भज-तिर्यग्-मनुष्याः व्यंतरो ज्योतिष्को वैमानिकः ॥2॥

शब्दार्थ

नेरइआ - नारकी जीव	**असुर** - असुरकुमार
आई - आदि (भवनपति देव)	**पुढव** - पृथ्वीकाय
आई - आदि (अप्कायादि)	**बेइन्दिय** - द्वीन्द्रिय
आदओ - आदि (त्रीन्द्रियादि)	**चेव** - और
गब्भय - गर्भज	**तिरिय** - तिर्यंच
मणुस्सा - मनुष्य	**वंतर** - व्यंतर देव
जोइसिय - ज्योतिष्क देव	**वेमाणी** - वैमानिक देव

भावार्थ

दण्डक चौबीस कहे गये हैं - नारकी जीवों का एक दण्डक, असुर-नागकुमार आदि दस भवनपति के देवों के दस दण्डक, पृथ्वीकाय-अप्काय-तेउकाय-वायुकाय एवं वनस्पतिकाय, इन एकेन्द्रिय जीवों के पांच दण्डक, द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय रुप विकलेन्द्रिय जीवों के तीन दण्डक, गर्भज मनुष्य का एक दण्डक, गर्भज तिर्यंच का एक दण्डक, व्यंतर देवों का एक दण्डक, ज्यौतिष्क देवों का एक दण्डक एवं वैमानिक देवों का एक दण्डक ।।2।।

विशेष विवेचन

अनन्त ज्ञान-दर्शन-चारित्र-बल-वीर्य-सुख आदि अनन्त गुणों से शोभित आत्मा हिंसा-असत्य-अदत्तादान-मैथुन-परिग्रहादि अनन्त पाप प्रवृत्तियों के द्वारा कर्म से भारी बनकर जिनमें भटकती हैं, विविध रुप-रंग धारण करती है, उसे दण्डक कहते है ।

पाप-ताप-संताप युक्त जिन चौबीस दण्डकों में जीवात्मा कर्मवशात् परिभ्रमण करता है, उन चौबीस दण्डकों का प्रस्तुत गाथा में नामोल्लेख किया गया है ।

1 **नारकी जीवों का एक दण्डक** - पूर्व भव में की गयी कठोर-घोर पाप-क्रियाओं का अनिष्ट, अशुभ फल भोगने के लिये नरक में उत्पन्न होने वाले जीवों को नारकी कहते है ।

नरक भूमियाँ सात हैं - क्रमशः रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा एवं तमस्तमःप्रभा । इन सात नरक पृथ्वियों का सामूहिक रुप से एक दण्डक कहा गया है ।

2 **असुरकुमारादि देवों के दस दण्डक** - असुरकुमार आदि दस देव भवनपति देवों के भेद हैं ।

प्रथम रत्नप्रभा नरक पृथ्वी की एक लाख अस्सी हजार योजन की मोटाई में से उपर एवं नीचे के हजार-हजार योजन छोड़कर मध्य के 1,78,000 योजन में स्थित भवनों एवं आवास स्थलों में रहने वाले देव भवनपति कहलाते हैं ।

भवनपति देव दस होते है - 1 असुरकुमार 2 नागकुमार 3 विद्युत्कुमार 4 सुवर्ण (सुपर्ण) कुमार 5 अग्निकुमार 6 वात (वायु) कुमार 7 स्तनित (मेघ) कुमार 8 उदधिकुमार 9 द्वीपकुमार 10 दिक् (दिशि) कुमार ।

उपरोक्त दस भवनपति देवों में प्रत्येक का एक - एक दंडक होने से कुल दस दंडक होते हैं ।

3 **पृथ्वीकायिक जीवों का एक दण्डक** - जिन जीवों की काया पृथ्वी रूप है, उन्हें पृथ्वीकायिक जीव कहा जाता है । जैसे पाषाण, मिट्टी, लवण, सोना, चांदी, रत्नादि ।

समस्त पृथ्वीकायिक जीवों का एक दण्डक कहा गया है ।

4 **अप्कायिक जीवों का एक दण्डक** - जिन जीवों की काया जल रूप है, उन्हें अप्कायिक जीव कहते हैं । जैसे तालाब-कुएँ-बरसात आदि का पानी, ओले, कोहरा आदि ।

समस्त अप्कायिक जीवों का एक दण्डक कहा गया है ।

5 **तेउकायिक जीवों का एक दण्डक** - जिन जीवों की काया अग्नि रूप है, उन्हें तेउकायिक जीव कहते हैं । जैसे अंगारे, ज्वाला, वड़वानल, दावानल आदि ।

समस्त तेउकायिक जीवों का एक दण्डक कहा गया है ।

6 **वायुकायिक जीवों का एक दण्डक** - जिन जीवों की काया वायु रूप है, उन्हें वायुकायिक जीव कहते हैं । जैसे मंदवायु, चक्रावात, आंधी आदि ।

समस्त वायुकायिक जीवों का एक दण्डक कहा गया है ।

7 **वनस्पतिकायिक जीवों का एक दण्डक** - जिन जीवों की काया वनस्पति रूप है, उन्हें वनस्पतिकायिक जीव कहते हैं । आम, केला, टमाटर आदि प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीव है । आलू, लहसुन, प्याज, गाजर आदि साधारण वनस्पतिकायिक जीव हैं ।

समस्त वनस्पतिकायिक जीवों का एक दण्डक कहा गया है ।

8 **द्वीन्द्रिय जीवों का एक दण्डक** - जिन जीवों के स्पर्शन एव रसन रूप दो इन्द्रियाँ होती हैं, उन्हें द्वीन्द्रिय कहते हैं । जैसे शंख, जौंक आदि ।

समस्त द्वीन्द्रिय जीवों का एक दण्डक कहा गया है ।

9 **त्रीन्द्रिय जीवों का एक दण्डक** - जिन जीवों में स्पर्शन, रसन एवं घ्राण रूप तीन इन्द्रियाँ होती हैं, उन्हें त्रीन्द्रिय कहते हैं । जैसे कानखजूरा, चींटी, इल्ली, जूं आदि ।

समस्त त्रीन्द्रिय जीवों का एक दण्डक कहा गया है ।

10 **चतुरिन्द्रिय जीवों का एक दण्डक** - जिन जीवों में स्पर्शन, रसन, घ्राण एवं चक्षु रूप चार इन्द्रियाँ पायी जाती हैं, उन्हें चतुरिन्द्रिय कहते हैं । जैसे मक्खी, मच्छर आदि ।

समस्त चतुरिन्द्रिय जीवों का एक दण्डक कहा गया है ।

11 **गर्भज तिर्यंच का एक दण्डक** - नर एवं मादा के संयोग से पैदा होने वाले तिर्यंच प्राणी गर्भज तिर्यंच कहलाते हैं । जैसे गाय, बैल, घोडा आदि ।

समस्त गर्भज तिर्यंचों का एक दण्डक कहा गया है ।

12 **गर्भज मनुष्य का एक दण्डक** - पुरुष एवं स्त्री के संयोग से उत्पन्न होने वाले मनुष्य गर्भज मनुष्य कहलाते हैं । इसके तीन भेद होते हैं - कर्मभूमिज, अकर्मभूमिज एवं अन्तर्द्वीपज ।

समस्त गर्भज मनुष्यों का एक दण्डक कहा गया है ।

13 **व्यंतर देवों का एक दण्डक** - भवनपति देवों के उपर के हजार योजन में से उपर-नीचे के सौ-सौ योजन छोड़कर मध्यवर्ती आठ सौ योजन में स्थित आवासों में एवं पहाड़ों, गुफाओं के अन्तरों में रहने वाले देव व्यंतर कहलाते हैं।

समस्त व्यंतर देवों का एक दण्डक कहा गया है।

14 **ज्योतिष्क देवों का एक दण्डक** - वे देव जो ज्योति/प्रकाश करते हैं, ज्योतिष्क देव कहलाते हैं।

समस्त ज्योतिष्क देवों का एक दण्डक कहा गया है।

15 **वैमानिक देवों का एक दण्डक** - विशिष्ट ऐश्वर्य, बल एवं सम्पत्ति को भोगने वाले देव वैमानिक कहलाते हैं।

समस्त वैमानिक देवों का एक दण्डक कहा गया है।

शंका - वाणव्यंतर, तिर्यग्जृंभक, परमाधामी, नवलोकान्तिक, नवग्रैवेयक एवं अनुत्तर निकाय के देवों में भी जन्म-मरण होता है, तब उनका दण्डक क्यों नहीं कहा गया ?

समाधान - इन सभी देवों का दण्डक अध्याहार से समझ लेना चाहिये। परमाधामी देवों का भवनपति देवों में, वाणव्यंतर एवं तिर्यग्जृंभक देवों का व्यंतर देवों में, नवलोकान्तिक, नवग्रैवेयक एवं अनुत्तर वैमानिक देवों का वैमानिक देवों में अध्याहार करना चाहिये।

शंका - भवनपति देवों के दस दण्डक कहे गये जबकि व्यंतरादि तीन देवों के तीन दण्डक कहे गये, ऐसा भेद क्यों ?

समाधान - जिनेश्वर परमात्मा ने इसी प्रकार प्ररूपणा की है, आगमों में इन्हीं चौबीस दण्डकों की विवेचना की गयी है तथा पूर्वाचार्यों ने दण्डकों की इसी प्रकार गिनती की है। अतः यहाँ भी उसी का अनुकरण-अनुसरण करते हुए भवनपति देवों के दस दण्डक कहे गये हैं तथा व्यंतर-ज्योतिष्क एवं वैमानिक देवों का एक-एक दण्डक कहा गया है।

चौबीस दण्डकों का कोष्ठक

क्रम	दण्डक	संख्या	गति
1	सात नरक पृथ्वियों का दण्डक	1	नरक
2	असुरकुमार देवों का दण्डक	1	देव
3	नागकुमार देवों का दण्डक	1	देव
4	विद्युत्कुमार देवों का दण्डक	1	देव
5	सुवर्णकुमार देवों का दण्डक	1	देव
6	अग्निकुमार देवों का दण्डक	1	देव
7	वायुकुमार देवों का दण्डक	1	देव
8	मेघकुमार देवों का दण्डक	1	देव
9	उदधिकुमार देवों का दण्डक	1	देव
10	द्वीपकुमार देवों का दण्डक	1	देव
11	दिक्कुमार देवों का दण्डक	1	देव
12	पृथ्वीकायिक जीवों का दण्डक	1	तिर्यंच
13	अप्कायिक जीवों का दण्डक	1	तिर्यंच
14	तेउकायिक जीवों का दण्डक	1	तिर्यंच
15	वायुकायिक जीवों का दण्डक	1	तिर्यंच
16	वनस्पतिकायिक जीवों का दण्डक	1	तिर्यंच
17	द्वीन्द्रिय जीवों का दण्डक	1	तिर्यंच
18	त्रीन्द्रिय जीवों का दण्डक	1	तिर्यंच
19	चतुरिन्द्रिय जीवों का दण्डक	1	तिर्यंच
20	गर्भज तिर्यंच का दण्डक	1	तिर्यंच
21	गर्भज मनुष्य का दण्डक	1	मनुष्य
22	व्यंतर देवों का दण्डक	1	देव
23	ज्योतिष्क देवों का दण्डक	1	देव
24	वैमानिक देवों का दण्डक	1	देव

इन चौबीस दण्डकों में से -

1 नरक गति का एक दण्डक है ।

2 तिर्यंच गति के नौ दण्डक हैं ।

3 मनुष्य गति का एक दण्डक है ।

4 देव गति के तेरह दण्डक हैं ।

इन चौबीस दण्डकों में से -

1 पृथ्वीकाय का एक दण्डक है ।

2 अप्काय का एक दण्डक है ।

3 तेउकाय का एक दण्डक है ।

4 वायुकाय का एक दण्डक है ।

5 वनस्पतिकाय का एक दण्डक है ।

6 त्रसकाय के उन्नीस दण्डक हैं ।

इन चौबीस दण्डकों में से -

1 संमूर्च्छिम जीवों के आठ दण्डक हैं ।

2 गर्भज जीवों के दो दण्डक हैं ।

3 औपपातिक जीवों के चौदह दण्डक हैं ।

इन चौबीस दण्डकों में से -

1 मात्र बादर जीवों के उन्नीस दण्डक हैं ।

2 सूक्ष्म तथा बादर जीवों के पांच दण्डक हैं ।

3 मात्र सूक्ष्म जीवों का एक भी दण्डक नहीं है ।

चौबीस द्वारों का प्रस्तुतीकरण

गाथा

संखित्तयरी उ इमा, सरीरमोगाहणा य संघयणा ।
सन्ना संठाण कसाय, लेसिन्दिय दु समुग्घाया ।।3।।

संस्कृत छाया

संक्षिप्ततरा त्वियं, शरीरमवगाहना च संहननानि ।
संज्ञा संस्थान कषाय, लेश्येन्द्रिय द्वि समुद्घाताः ।।3।।

शब्दार्थ

संखित्तयरी - संक्षिप्त	उ - और
इमा - यह	सरीरं - शरीर द्वार
ओगाहणा - अवगाहना द्वार	य - और
संघयणा - संघयण द्वार	सन्ना - संज्ञा द्वार
संठाण - संस्थान द्वार	कसाय - कषाय द्वार
लेस - लेश्या द्वार	इंदिय - इन्द्रिय द्वार
दु - दो	समुग्घाया - समुद्घात द्वार

गाथा

दिट्ठी दंसण नाणे, जोगुवओगोववाय चवण ठिई ।
पज्जत्ति किमाहारे, सन्नि गई आगई वेए ।।4।।

संस्कृत छाया

दृष्टिर्दर्शनं ज्ञानं योगोपयोग-उपपातश्च्यवनं स्थितिः ।
पर्याप्तिः किमाहारः, संज्ञिर्गतिरागतिर्वेदः ।।4।।

शब्दार्थ

दिट्ठी - दृष्टि द्वार	दंसण - दर्शन द्वार
नाणे - ज्ञान द्वार	जोग - योग द्वार
उवओग - उपयोग द्वार	उववाय - उपपात द्वार
चवण - च्यवन द्वार	ठिई - स्थिति द्वार

पज्जत्ति - पर्याप्ति द्वार	**किमाहारे** - किमाहार द्वार
सन्नि - संज्ञी द्वार	**गई** - गति द्वार
आगई - आगति द्वार	**वेए** - वेद द्वार

भावार्थ

चौबीस द्वार इस प्रकार संक्षिप्त रूप से कहे गये है -

1 शरीर द्वार 2 अवगाहना द्वार 3 संघयण द्वार 4 संज्ञा द्वार 5 संस्थान द्वार 6 कषाय द्वार 7 लेश्या द्वार 8 इन्द्रिय द्वार 9 समुद्घात द्वार 10 दृष्टि द्वार 11 दर्शन द्वार 12 ज्ञान द्वार 13 अज्ञान द्वार 14 योग द्वार 15 उपयोग द्वार 16 उपपात द्वार 17 च्यवन द्वार 18 स्थिति द्वार 19 पर्याप्ति द्वार 20 किमाहार द्वार 21 संज्ञी द्वार 22 गति द्वार 23 आगति द्वार 24 वेद द्वार । ।।3-4।।

विशेष विवेचन

प्रस्तुत गाथान्तर्गत चौबीस द्वारों का नामांकन किया गया है ।

द्वार का अर्थ - प्रविष्ट होने के स्थान को द्वार कहा जाता है ।

चौबीस दण्डकों में स्थित जीवों के स्वभाव, जन्म-मरण, शरीर इन्द्रिय आदि को जानने हेतु जिनका प्रावधान किया गया है, उन्हें द्वार कहते है ।

चौबीस दण्डकों का नामांकन ही पर्याप्त नहीं होता है बल्कि उनका विशिष्ट रूप-स्वरूप-लक्षणादि का ज्ञान भी अनिवार्य है ।

उपरोक्त चतुर्विंशति द्वार प्रत्येक दण्डक में घटाये जायेंगे जिससे जीव तत्त्व का मौलिक ज्ञान-विज्ञान आसानी से समझ में आ सके ।

1 **शरीर द्वार** - जिस द्वार में चौबीस दण्डकवर्ती जीवों में पाये जाने वाले शरीरों का वर्णन है, उसे शरीर द्वार कहते है । इस द्वार में

बताया जायेगा कि किस जीव में पांच शरीरों में से कितने एवं कौन-कौन से शरीर पाये जाते हैं ।

शरीर पांच प्रकार के कहे गये हैं - (1) औदारिक शरीर (2) वैक्रिय शरीर (3) आहारक शरीर (4) तैजस शरीर (5) कार्मण शरीर ।

2 **अवगाहना द्वार** - जिस द्वार में चौबीस दण्डकवर्ती जीवों की अवगाहना की प्ररुपणा की गयी है, उसे अवगाहना द्वार कहते है । इस द्वार में जीवों की उत्कृष्ट एवं जघन्य रूप दो प्रकार से अवगाहना बतायी जायेगी ।

3 **संघयण द्वार** - जिस द्वार में चौबीस दण्डकवर्ती जीवों में स्थित संघयणों का कथन किया गया है, उसे संघयण द्वार कहते है । प्रस्तुत द्वार में छह प्रकार के संघयणों को 24 दण्डको में घटाया जायेगा कि किस दण्डक में कितने एवं कौन-कौनसे संघयण होते हैं ।

संघयण छह प्रकार के कहे गये हैं - (1) वज्रऋषभनाराच संघयण (2) ऋषभनाराच संघयण (3) नाराच संघयण (4) अर्द्धनाराच संघयण (5) कीलिका संघयण (6) सेवार्त्त संघयण ।

4 **संज्ञा द्वार** - जिस द्वार में चौबीस दण्डकवर्ती जीवों में पायी जाने वाली संज्ञा का प्रस्तुतीकरण है, उसे संज्ञा द्वार कहते है ।

- शास्त्रों में चार-छह-दस-सोलह प्रकार की संज्ञाएँ विवक्षा भेद से कही गयी हैं, उनका प्रत्येक दण्डक के संदर्भ में स्पष्टीकरण इस द्वार में किया गया है ।

5 **संस्थान द्वार** - जिस द्वार में चौबीस दण्डकवर्ती जीवों में पाये जाने वाले संस्थानों का विवेचन किया गया है, उसे संस्थान द्वार कहते है ।

संस्थान छह प्रकार के कहे गये हैं - (1) समचतुरस्त्र संस्थान (2) न्यग्रोध परिमंडल संस्थान (3) सादि संस्थान (4) वामन संस्थान (5) कुब्ज संस्थान (6) हुंडक संस्थान ।

6 **कषाय द्वार** - जिस द्वार में चौबीस दण्डकवर्ती जीवों में क्लिष्ट-अनिष्ट अध्यवसाय रुप कषायों का वर्णन किया गया है, उसे कषाय द्वार कहते है ।

कषाय चार प्रकार के कहे गये हैं - (1) क्रोध (2) मान (3) माया (4) लोभ ।

7 **लेश्या द्वार** - जिस द्वार में चौबीस दण्डकवर्ती जीवों में शुभाशुभ आत्म परिणाम रुप लेश्या का प्रस्तुतीकरण किया गया है, उसे लेश्या द्वार कहते है ।

लेश्या छह प्रकार की कही गयी हैं - (1) कृष्ण (2) नील (3) कापोत (4) तेजो (5) पद्म (6) शुक्ल ।

8 **इन्द्रिय द्वार** - जिस द्वार में चौबीस दण्डकवर्ती जीवों में पायी जाने वाली इन्द्रियों का वर्णन किया गया है, उसे इन्द्रिय द्वार कहते है ।
इन्द्रियाँ पांच प्रकार की कही गयी हैं - (1) स्पर्शनेन्द्रिय (2) रसनेन्द्रिय (3) घ्राणेन्द्रिय (4) चक्षुरिन्द्रिय (5) श्रोत्रेन्द्रिय ।

9 **समुद्घात द्वार** - जिस द्वार में चौबीस दण्डकवर्ती जीवों के परिप्रेक्ष्य में समुद्घात की विवेचना की गयी है, उसे समुद्घात द्वारकहते है । जीव एवं अजीव रुप दो प्रकार के समुद्घात होते हैं । **जीव समुद्घात सात प्रकार का कहा गया है** - (1) वेदना (2) कषाय (3) मरण (4) वैक्रिय (5) तैजस (6) आहारक (7) केवली ।

10 **दृष्टि द्वार** - जिस द्वार में चौबीस दण्डकवर्ती जीवों में पायी जाने वाली दृष्टि का आलेखन किया गया है, उसे दृष्टि द्वार कहते है ।
तीन प्रकार की दृष्टियाँ प्रस्तुत प्रकरण में वर्णित हैं - (1) मिथ्या (2) मिश्र (3) सम्यक् ।

11 **दर्शन द्वार** - जिस द्वार में चौबीस दण्डकवर्ती जीवों में पाये जाने वाले दर्शनों का विवेचन किया गया है, उसे दर्शन द्वार कहते है । चक्षु, अचक्षु, अवधि एवं केवल रुप चार प्रकार के दर्शन कहे गये हैं ।

12 **ज्ञान द्वार** - जिस द्वार में चौबीस दण्डकवर्ती जीवों मे पाये जाने वाले ज्ञान बताये गये हैं, उसे ज्ञान द्वार कहते है ।

ज्ञान पांच प्रकार के होते हैं - मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञान एवं केवलज्ञान ।

13 **अज्ञान द्वार** - जो द्वार चौबीस दण्डकवर्ती जीवों में पाये जाने वाले अज्ञानों का ज्ञान करवाता है, उसे अज्ञान द्वार कहते है ।

तीन प्रकार के अज्ञान शास्त्रों में उल्लिखित हैं - मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान एवं अवधिअज्ञान (विभंगज्ञान) ।

14 **योग द्वार** - जिस द्वार में चौबीस दण्डकवर्ती जीवों में पाये जाने वाले योगों की प्ररूपणा की गयी है, उसे योग द्वार कहते है । मन, वचन व काया के प्रभेदों से योग 15 प्रकार के कहे गये हैं ।

15 **उपयोग द्वार** - जिस द्वार में चौबीस दण्डकवर्ती जीवों में पाये जाने वाले उपयोगों का प्रस्तुतीकरण किया गया है, उसे उपयोग द्वार कहते है ।

साकार एवं निराकार रूप दो प्रकार के उपयोग कहे गये हैं । साकार उपयोग के आठ भेद एवं निराकार उपयोग के चार भेद कहे गये हैं ।

16 **उपपात द्वार** - जिस द्वार में चौबीस दण्डकवर्ती जीवों का उपपात (जन्म) विवेचित है, उसे उपपात द्वार कहते है ।

17 **च्यवन द्वार** - जिस द्वार में चौबीस दण्डकवर्ती जीवों का च्यवन (मरण) उल्लिखित है, उसे च्यवन द्वार कहते है ।

18 **स्थिति द्वार** - जिस द्वार में चौबीस दण्डकवर्ती जीवों का आयुष्य बताया गया है, उसे स्थिति द्वार कहते है ।

प्रस्तुत द्वार में जीवों का जघन्य एवं उत्कृष्ट, दो प्रकार का आयुष्य बताया गया है ।

19 **पर्याप्ति द्वार** - जिस द्वार में चौबीस दण्डकवर्ती जीवों में पायी जाने वाली पर्याप्तियाँ कही गयी हैं, उसे पर्याप्ति द्वार कहते है ।

आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा और मन रूप छह प्रकार की पर्याप्तियाँ कही गयी हैं ।

20 **किमाहार द्वार** - जिस द्वार में चौबीस दण्डकवर्ती जीवों द्वारा दिशाओं से लिये जाने वाले आहार का कथन है, उसे किमाहार द्वार कहते है ।

दिशा की अपेक्षा से आहार छह प्रकार का होता है ।

21 **संज्ञी द्वार** - चौबीस दण्डकवर्ती जीवों में से किन में कौनसी संज्ञा होती है, इसका विवेचन करने वाले द्वार को संज्ञी द्वार कहते है ।

संज्ञा तीन प्रकार की होती हैं - दृष्टिवादोपदेशिकी, दीर्घकालिकी और हेतुवादोपदेशिकी ।

22 **गति द्वार** - चौबीस दण्डकवर्ती जीव च्यवकर किस-किस गति में जा सकते हैं, इस जिज्ञासा को समाहित करने वाला द्वार गति द्वार कहलाता है ।

23 **आगति द्वार** - किस-किस गति वाले जीव आकर उनमें उत्पन्न हो सकते हैं, इसका प्रस्तुतीकरण जिस द्वार में किया गया है, उसे आगति द्वार कहते है ।

24 **वेद द्वार** - जिस द्वार में चौबीस दण्डकवर्ती जीवों में पाये जाने वाले वेद वर्णित हैं, उसे वेद द्वार कहते है ।

स्त्री, पुरुष एवं नपुंसक रूप तीन प्रकार के वेद कहे गये हैं ।

चौबीस दण्डकों का विशेष विवेचन

प्रथम शरीर द्वार एवं द्वितीय अवगाहना द्वार का कथन

गाथा

चउगब्भतिरिय वाउसु, मणुआणं पंच सेस तिसरीरा ।
थावर चउगे दुहओ, अंगुलअसंखभागतणु ।।5।।

संस्कृत छाया

चत्वारि-गर्भज-तिर्यग्वायुषु, मनुष्याणां पञ्च शेषेषु-त्रीणि-शरीराणि।
स्थावर-चतुष्के द्विधा, अंगुलासंख्येयभागतनुः ॥5॥

शब्दार्थ

चउ - चार	गब्भ - गर्भज
तिरिय - तिर्यंच	वाउसु - वायुकाय में
मणुआणं - मनुष्यों में	पंच - पाँच (शरीर)
सेस - शेष, अन्य	ति - तीन
सरीरा - शरीर	थावर - स्थावर (के)
चउगे - चार भेदों में	दुहओ - दो प्रकार से
अंगुल - अंगुल का	असंखभाग - असंख्यातवां भाग
तणु - शरीर	

भावार्थ

मनुष्यों में पांच शरीर, गर्भज तिर्यंच एवं वायुकाय के जीवों में चार शरीर तथा शेष (नारकी, देव, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय एवं वनस्पतिकाय) में तीन शरीर पाये जाते हैं।

प्रथम चार स्थावर (पृथ्वी-अप्-तेउ-वायुकाय) की जघन्य एवं उत्कृष्ट, दोनों प्रकार से अंगुल का असंख्यातवां भाग जितनी अवगाहना होती है ॥5॥

विशेष विवेचन

प्रस्तुत गाथा से दण्डक प्रकरण की विवेच्य वस्तु चौबीस द्वारों में से प्रथम शरीर द्वार एवं द्वितीय अवगाहना द्वार का प्रस्तुतीकरण है।

प्रथम शरीर द्वार का विवेचन

शरीर शब्द का अर्थ - 'यत् शीर्यते, तत् शरीरम्' जो क्षय को प्राप्त होता है, वह शरीर है ।

'शीर्यते प्रतिक्षणं विशरारूभावं बिभर्ति इति शरीरम् ।' जो प्रतिक्षण विनाश, भाव को प्राप्त होता रहता है, उसे शरीर कहते है ।

शरीर वह है जो -

1 नाशवंत एवं नश्वर है ।

2 अनित्य एवं अध्रुव है ।

देह, काया आदि के रूप में संबोधित किया जाने वाला शरीर पांच प्रकार का कहा गया है -

1 **औदारिक शरीर** - रस, अस्थि, मज्जा, रक्त, वीर्य, मांस और चर्बी इन सप्त धातुओं से बने शरीर को औदारिक शरीर कहते है । उदार शब्द के पाँच अर्थ अभिव्यक्त होते हैं -

(1) **विशाल** - विशाल शब्द अनेक अर्थों में प्रयुक्त हुआ है -

(i) वैक्रिय शरीर आश्रयवर्ती सर्वाधिक अवगाहना 500 धनुष प्रमाण की होती है, आहारक शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना एक हाथ की होती है, तैजस एवं कार्मण की स्वतन्त्र अवगाहना नहीं होती है जबकि औदारिक शरीर उत्कृष्ट रूप से साधिक हजार योजन प्रमाण है, अतः यह शरीर पांचों शरीरों में सर्वाधिक विशाल एवं विस्तृत होने से उदार है ।

(ii) तीर्थंकर, केवलज्ञानी, गणधर, चक्रवर्ती, वासुदेव, बलदेव आदि महापुरुषों को यह शरीर होने से अनेकानेक गुणों का स्थान है ।

(2) **तेजस्विता** - तीर्थंकर परमात्मा औदारिक शरीरधारी होते है । उनका मुखमंडल देवों के तेज से असंख्य गुणा तेजस्वी होता है, अतः औदारिक शरीर उदार कहा गया है ।

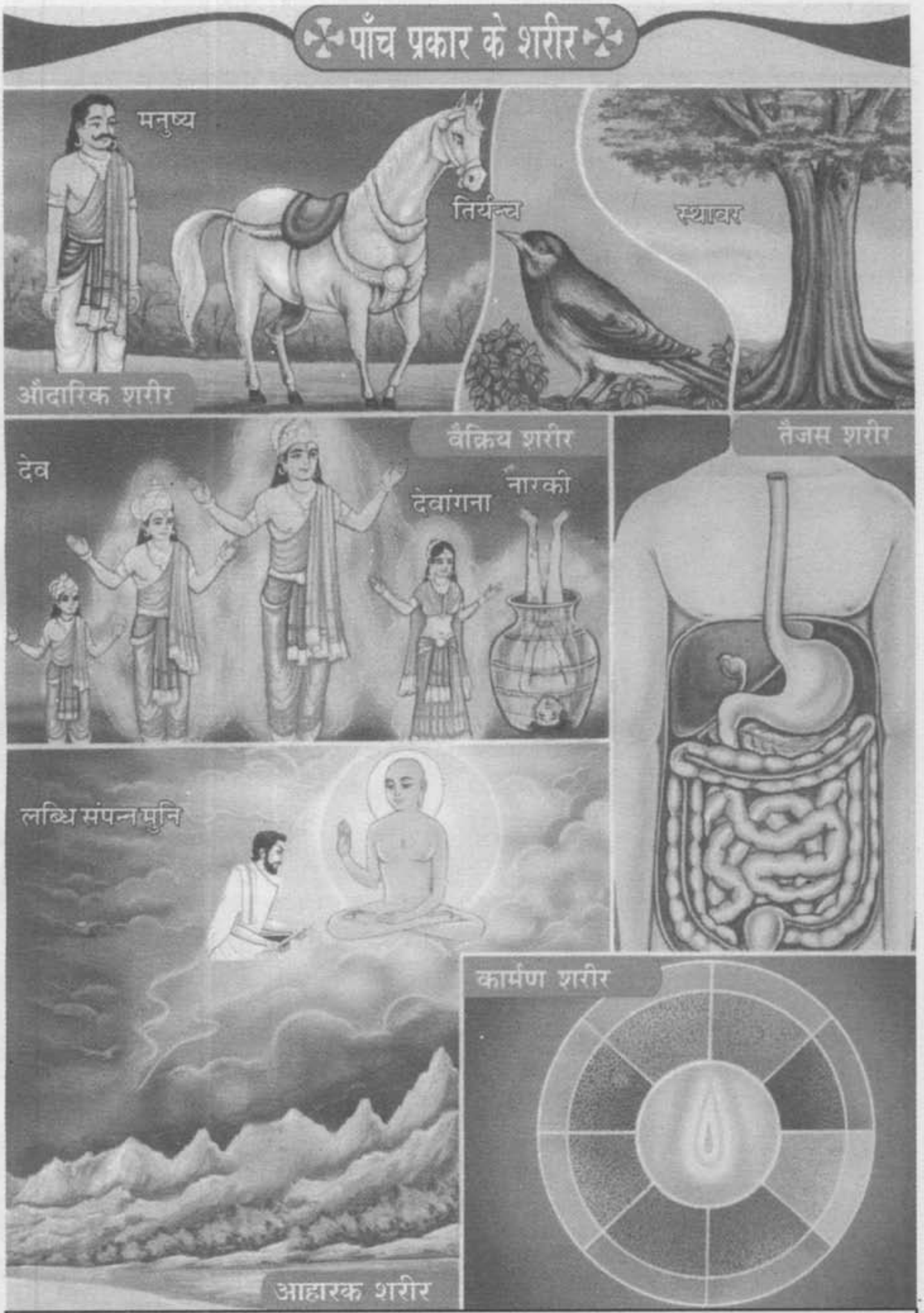
पाँच प्रकार के शरीर
मनुष्य
तिर्यञ्च
स्थावर
औदारिक शरीर
वैक्रिय शरीर
तैजस शरीर
देव
देवांगना
नारकी
लब्धि संपन्न मुनि
कार्मण शरीर
आहारक शरीर

(3) **उत्तम** - समस्त शरीरों में सर्वोत्कृष्ट/सर्वोच्च सुंदर रचना, कांति एवं शारीरिक सौष्ठव औदारिक शरीरवर्ती तीर्थंकरों का होने से औदारिक शरीर उदार गुण वाला है ।

(4) **दानेश्वरी** - वैक्रिय आदि शरीरों के कारण जीव चतुर्गतियों में भ्रमण करता है जबकि औदारिक शरीर केवलज्ञान का दान करके मोक्ष रूपी महान् फल देता है ।

(5) **स्थूल** - आठ पुद्‌गल वर्गणाओं में से औदारिक शरीर योग्य पुद्‌गल वर्गणा के परमाणु कम होते हैं पर परिणाम स्थूल होने से यह शरीर उदार है ।

मनुष्यों एवं तिर्यंचों में ही पाया जाने वाला यह औदारिक शरीर अग्नि से जल सकता है, पानी में बह सकता है, इसका छेदन-भेदन संभव है ।

2 **वैक्रिय शरीर** - वह शरीर जो छोटा-बड़ा, स्थूल-सूक्ष्म, दृश्य-अदृश्य, एक-अनेक आदि गुणों वाला है, वैक्रिय शरीर कहलाता है । **यह शरीर दो प्रकार का कहा गया है** - भवप्रत्ययिक तथा गुणप्रत्ययिक ।

जन्म से प्राप्त होने वाला भवप्रत्ययिक वैक्रिय शरीर कहलाता है । यह शरीर देव तथा नारकी जीवों में पाया जाता है ।

मनुष्य एवं तिर्यंच को जप, तप, संयम आदि गुणों के कारण प्राप्त होने वाला गुणप्रत्ययिक वैक्रिय शरीर कहलाता है ।

3 **आहारक शरीर** - आगमिक संशय का निराकरण आदि विशिष्ट उद्देश्य से चौदह पूर्वधर मुनिराज जिस दिव्य कान्तिमान शरीर की रचना करते हैं, उसे आहारक शरीर कहते है ।

इस शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना संपूर्ण एक हाथ एवं जघन्य अवगाहना देशोन एक हाथ की होती है ।

यह शरीर स्फटिक की भाँति अत्युज्जवल एवं व्याघात-बाधा रहित होता है ।

आहारक शरीर-निर्माण के कारण -

(1) संशय एवं जिज्ञासा का निराकरण करने के लिये ।

(2) तीर्थंकर, केवलज्ञानी की ऋद्धि-समृद्धि देखने के लिये ।

(3) तीर्थंकर, केवलज्ञानी आदि के वंदन-दर्शन के लिये ।

उपरोक्त कारणों से चतुर्दशपूर्वधर आहारक शरीर का निर्माण करके अरिहंतों के निकट भेजते हैं तब मूल औदारिक एवं आहारक शरीर के मध्य आत्म प्रदेशों की दीर्घ श्रेणी निर्मित होती है । वंदनादि का कार्य परिपूर्ण हो जाने के उपरान्त वह शरीर मूल शरीर में लौटकर तुरन्त बिखर जाता है ।

एक जीव संपूर्ण भवचक्र में अधिकतम चार बार ही आहारक लब्धि प्राप्त कर सकता है । इस शरीर का काल अन्तर्मुहूर्त है ।

4 **तैजस शरीर** - वह शरीर जो जीव के द्वारा ग्रहित आहार के पाचन में निमित्त होता है, तैजस शरीर कहलाता है ।

शरीर में स्थित जठराग्नि तैजस शरीर है । यह शरीर तेजोलेश्या एवं शीतलेश्यारूप है । मरण प्राप्त होने पर इस शरीर के निकल जाने से शरीर शीतल हो जाता है ।

- यह शरीर चारों गति के जीवों में पाया जाता है ।
- यह शरीर विग्रह गति में भी साथ ही रहता है ।
- यह शरीर अनादिकाल से जीव के साथ है ।
- यह शरीर निर्वाण (मोक्ष) के साथ विच्छेद को प्राप्त करता है ।

5 **कार्मण शरीर** - आत्मा के साथ लगे कार्मण परमाणुओं को कार्मण शरीर कहते है । इस शरीर के कारण जीव कर्म को भोगता है । यह शरीर भी तैजस शरीर की भाँति चारों गतियों के जीवों में अनादिकाल से है । यह मृत्यु के बाद भी जीव के साथ रहता है तथा निर्वाण होने पर विच्छेद को प्राप्त हो जाता है ।

चौबीस दण्डकों में शरीर द्वार -

- गर्भज मनुष्यों में पांचों शरीर पाये जाते हैं।
- गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यंच में आहारक शरीर रहित शेष चारों शरीर पाये जाते हैं।
- वायुकाय में भी आहारक रहित चार शरीर हो सकते हैं।
- शेष पृथ्वीकायादि चार स्थावरकाय में औदारिक, तैजस और कार्मण रूप तीन शरीर होते हैं।
- द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जीवों में भी औदारिक, तैजस तथा कार्मण नामक तीन शरीर पाये जाते हैं।
- देव एवं नारकी में वैक्रिय, तैजस एवं कार्मण नामक तीन शरीर पाये जाते हैं।

गति की अपेक्षा से शरीर द्वार -

1 मनुष्य गति में पांच शरीर पाये जाते हैं।
2 तिर्यंच गति में चार शरीर पाये जाते हैं।
3 देव गति में तीन शरीर पाये जाते हैं।
4 नरक गति में तीन शरीर पाये जाते हैं।

एकेन्द्रिय आदि जीवों की अपेक्षा से शरीर द्वार -

1 एकेन्द्रिय जीवों में चार शरीर पाये जाते हैं।
2-4 विकलेन्द्रिय जीवों में तीन शरीर पाये जाते हैं।
5 पंचेन्द्रिय जीवों में पांच शरीर पाये जाते हैं।

पृथ्वीकायिक आदि जीवों की अपेक्षा से शरीर द्वार -

1 पृथ्वीकायिक जीवों में तीन शरीर पाये जाते हैं।
2 अप्कायिक जीवों में तीन शरीर पाये जाते हैं।
3 तेउकायिक जीवों में तीन शरीर पाये जाते हैं।
4 वायुकायिक जीवों में चार शरीर पाये जाते हैं।
5 वनस्पतिकायिक जीवों में तीन शरीर पाये जाते हैं।
6 त्रसकायिक जीवों में पांच शरीर पाये जाते हैं।

औदारिक आदि शरीर कितने दण्डकों में -

1 औदारिक शरीर दस दण्डकों में पाया जाता है ।

2 वैक्रिय शरीर सत्रह दण्डकों में पाया जाता है ।

3 आहारक शरीर एक दण्डक में पाया जाता है ।

4-5 तैजस एवं कार्मण शरीर चौबीस दण्डकों में पाये जाते हैं ।

एक साथ कितने शरीर ?

1 एक साथ दो शरीर हो सकते हैं - तैजस और कार्मण शरीर ।

2 एक साथ तीन शरीर हो सकते हैं -

(1) औदारिक, तैजस और कार्मण शरीर ।

(2) वैक्रिय, तैजस और कार्मण शरीर ।

3 एक साथ चार शरीर हो सकते हैं -

(1) औदारिक, वैक्रिय, तैजस और कार्मण शरीर

(2) औदारिक, आहारक, तैजस और कार्मण शरीर

4 एक साथ पांच शरीर नहीं हो सकते हैं -

5 एक शरीर कभी नहीं होता है ।

कितने शरीर वाले कितने दण्डक ?

1 विग्रह गति की अपेक्षा से 24 दण्डकों में दो शरीर - तैजस एवं
- कार्मण शरीर पाये जाते हैं ।

2 तीन शरीर 21 दण्डकों में पाये जाते हैं -

(1) पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वनस्पतिकाय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, इन सात दण्डकों में औदारिक, तैजस और कार्मण शरीर पाये जाते हैं ।

(2) नारकी, दस भवनपति देव, व्यंतर, ज्योतिष्क एवं वैमानिक, इन चौदह दण्डकों में वैक्रिय, तैजस एवं कार्मण शरीर पाये जाते हैं ।

3 गर्भज तिर्यंच एवं वायुकाय, इन दो दण्डकों में औदारिक, वैक्रिय, तैजस एवं कार्मण शरीर पाये जाते हैं।

4 गर्भज मनुष्य के एक दण्डक में पांचों शरीर पाये जाते हैं।

पांच शरीर एक साथ क्यों नहीं ?

आहारक एवं वैक्रिय लब्धि संपन्न साधु एक समय में दोनों में से किसी एक शरीर का ही निर्माण कर सकता है। दोनों लब्धियों का उपयोग एक साथ असंभव है। वैक्रिय शरीर निर्माण के काल में आहारक शरीर नहीं होता है और आहारक शरीर निर्माण के काल में वैक्रिय शरीर नहीं होता है, अतः एक साथ पांच शरीर कभी नहीं होते हैं।

यहाँ प्रथम शरीर द्वार का विवेचन परिपूर्ण होता है।

द्वितीय अवगाहना द्वार का विवेचन
नारकी एवं देवों की अवगाहना का प्रस्तुतीकरण

गाथा

सव्वेसिंपि जहन्ना, साहाविय अंगुलस्सऽसंखंसा।
उक्कोसपण-सय-धणू, नेरइया सत्तहत्थ सुरा ॥6॥

संस्कृत छाया

सर्वेषामपि-जघन्या स्वाभाविकी अंगुलस्यासंख्येयांशाः।
उत्कृष्टतः पञ्चशतधनुष्का नैरयिकाः सप्तहस्ताः सुराः ॥6॥

शब्दार्थ

सव्वेसिं - सभी दण्डकों में	**पि** - भी
जहन्ना - जघन्यतः	**साहाविय** - स्वाभाविक (मूल शरीर)

अंगुलस्स - अंगुल का	**असंखंसा** - असंख्यातवां भाग
उक्कोस - उत्कृष्टतः	**पण** - पांच
सय - सौ	**धणू** - धनुष्य
नेरइया - नारकी जीवों की	**सत्त** - सात
हत्थ - हाथ, हस्त की	**सुरा** - देवों की

भावार्थ

चौबीस दण्डकवर्ती समस्त जीवों की स्वाभाविक (जन्म से प्राप्त मूल शरीर की) जघन्य अवगाहना अंगुल का असंख्यातवां भाग होती है । नारकी जीवों की अधिकतम अवगाहना पांच सौ धनुष की एवं देवों की उत्कृष्ट अवगाहना सात हाथ की होती है ||6||

विशेष विवेचन

प्रस्तुत गाथा में पूर्व गाथा में कथित द्वितीय अवगाहना द्वार का प्रस्तुतीकरण किया गया है ।

जीवों के शरीर प्रमाण (ऊंचाई) को अवगाहना कहते है । जीव जितने क्षेत्र (अवगाहन) को रोकता/घेरता है, उसे अवगाहना कहते है ।

शरीर की अवगाहना दो प्रकार से कही गयी है - जघन्य एवं उत्कृष्ट ।

जीव की न्यूनतम शारीरिक ऊँचाई को जघन्य अवगाहना कहते है । जीव की अधिकतम शारीरिक ऊँचाई को उत्कृष्ट अवगाहना कहते है ।

अवगाहना की अपेक्षा से जीव दो प्रकार के होते हैं -

(1) **सूक्ष्म जीव** - जिन जीवों की अवगाहना इतनी अल्प होती है कि चर्म-चक्षु अथवा सूक्ष्मदर्शी यंत्र से जिन्हें नहीं देखा जा सकता है, उन्हें सूक्ष्म जीव कहते है । एकेन्द्रिय जीव ही सूक्ष्म होते हैं ।

ऐसे असंख्य-अनंत जीवों के शरीर एकत्र होने पर भी ज्ञान के द्वारा ही उनका ज्ञान संभव है, आँख अथवा यंत्र से वे अग्राह्य ही होते हैं।

(2) **बादर जीव** - जिन जीवों की अवगाहना के अनुसार एक अथवा अनेक शरीर एकत्र होने पर नयन या यंत्र आदि से देखा जा सकता है, उन्हें बादर जीव कहते है।

द्वीन्द्रिय यावत् पंचेन्द्रिय जीव बादर ही होते हैं।

एकेन्द्रिय जीवों की अवगाहना -

प्रथम स्थावर चतुष्क अर्थात् पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय एवं वायुकाय के जीवों की उत्कृष्ट तथा जघन्य, दोनों प्रकार की अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण होती है।

पृथ्वीकाय आदि चार की अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी होने से वे चक्षु ग्राह्य नहीं हैं। व्यवहार में हम जो पृथ्वीकाय के जीव (रेत, पाषाण, पर्वतादि) देखते हैं, वह एक जीव नहीं, असंख्य जीवों का पिण्ड है।

पृथ्वीकाय आदि चार की जघन्य एवं उत्कृष्ट अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी होने पर भी उनमें असंख्य भेद होते हैं जैसे -

1 सूक्ष्म साधारण वनस्पतिकाय की अवगाहना सबसे अल्प होती है।

2 उससे सूक्ष्म वायुकाय की अवगाहना असंख्यगुणा अधिक होती है।

3 उससे सूक्ष्म तेउकाय की अवगाहना असंख्यगुणा अधिक होती है।

4 उससे सूक्ष्म अप्काय की अवगाहना असंख्यगुणा अधिक होती है।

5 उससे सूक्ष्म पृथ्वीकाय की अवगाहना असंख्यगुणा अधिक होती है।

6 उससे बादर वायुकाय की अवगाहना असंख्यगुणा अधिक होती है।

7 उससे बादर अग्निकाय की अवगाहना असंख्यगुणा अधिक होती है।

8 उससे बादर अप्काय की अवगाहना असंख्यगुणा अधिक होती है।

9 उससे बादर पृथ्वीकाय की अवगाहना असंख्यगुणा अधिक होती है।

10 उससे बादर साधारण वनस्पतिकाय की अवगाहना असंख्यगुणा अधिक होती है।

11 उससे प्रत्येक वनस्पतिकाय की अवगाहना असंख्यगुणा अधिक होती है।

नारकी जीवों की अवगाहना -

नारकी जीवों की जघन्य अवगाहना अंगुल का असंख्यातवां भाग एवं उत्कृष्ट अवगाहना पांच सौ धनुष्य की कही गयी है।

पर्याप्त नारकी जीवों की जघन्य एवं उत्कृष्ट अवगाहना

क्रम	नरक का नाम	जघन्य अवगाहना	उत्कृष्ट अवगाहना
1	रत्नप्रभा नरक	3 हाथ	7 धनुष 78 अंगुल
2	शर्कराप्रभा नरक	7 धनुष 78 अंगुल	15 धनुष 60 अंगुल
3	वालुकाप्रभा नरक	15 धनुष 60 अंगुल	31 धनुष 24 अंगुल
4	पंकप्रभा नरक	31 धनुष 24 अंगुल	62 धनुष 48 अंगुल
5	धूमप्रभा नरक	62 धनुष 48 अंगुल	125 धनुष
6	तम:प्रभा नरक	125 धनुष	250 धनुष
7	तमस्तम:प्रभा नरक	250 धनुष	500 धनुष

- अपर्याप्त (करण) नारकी जीवों की उत्कृष्ट एवं जघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी होती है ।
- प्रथम नरक की उत्कृष्ट अवगाहना की अपेक्षा दूसरी नरक में दुगुनी, दूसरी नरक की अपेक्षा तीसरी नरक में दुगुनी, क्रमशः सातवीं नरक तक इसी प्रकार जानना चाहिये ।
- इसे इस प्रकार भी कह सकते हैं कि सातवीं नरक की अपेक्षा छट्ठी नरक में आधी, छट्ठी की अपेक्षा पांचवीं नरक में आधी, क्रमशः पहली नरक तक इसी प्रकार आधी-आधी समझनी चाहिये ।
- 96 अंगुल का एक धनुष होता है ।

देवों की अवगाहना -

- देवों की जघन्य अवगाहना अंगुल का असंख्यातवां भाग एवं उत्कृष्ट अवगाहना सात हाथ प्रमाण कही गयी है ।
- अपर्याप्त (करण) देवों की जघन्य एवं उत्कृष्ट अवगाहना अंगुल का असंख्यातवां भाग कही गयी है ।
- पर्याप्त देवों की जघन्य अवगाहना एक हाथ और उत्कृष्ट अवगाहना सात हाथ प्रमाण होती है ।

पर्याप्त देवों की जघन्य तथा उत्कृष्ट अवगाहना

क्रम	देवलोक	उत्कृष्ट	जघन्य
1	भवनपति देवलोक	सात हाथ	छह हाथ
2	परमाधामी देवलोक	सात हाथ	छह हाथ
3	व्यंतर देवलोक	सात हाथ	छह हाथ
4	वाणव्यंतर देवलोक	सात हाथ	छह हाथ
5	तिर्यग्जृंभक देवलोक	सात हाथ	छह हाथ

6	ज्योतिष्क देवलोक	सात हाथ	छह हाथ
7	प्रथम एवं द्वितीय देवलोक	सात हाथ	छह हाथ
8	तृतीय एवं चतुर्थ देवलोक	छह हाथ	छह हाथ
9	पंचम देवलोक	छह हाथ	5 $4/_{11}$ हाथ
10	षष्टम देवलोक	5 $4/_{11}$ हाथ	5 हाथ
11	सप्तम देवलोक	5 हाथ	4 $1/_{11}$ हाथ
12	अष्टम देवलोक	4 $1/_{11}$ हाथ	4 हाथ
13	नवम देवलोक	4 हाथ	3 $3/_{11}$ हाथ
14	दशम देवलोक	3 $3/_{11}$ हाथ	3 $2/_{11}$ हाथ
15	एकादशम देवलोक	3 $2/_{11}$ हाथ	3 $1/_{11}$ हाथ
16	द्वादशम देवलोक	3 $1/_{11}$ हाथ	3 हाथ
17	प्रथम - ग्रैवेयक देवलोक	3 हाथ	2 $8/_{11}$ हाथ
18	द्वितीय - ग्रैवेयक देवलोक	2 $8/_{11}$ हाथ	2 $7/_{11}$ हाथ
19	तृतीय - ग्रैवेयक देवलोक	2 $7/_{11}$ हाथ	2 $6/_{11}$ हाथ
20	चतुर्थ - ग्रैवेयक देवलोक	2 $6/_{11}$ हाथ	2 $5/_{11}$ हाथ
21	पंचम - ग्रैवेयक देवलोक	2 $5/_{11}$ हाथ	2 $4/_{11}$ हाथ
22	षष्टम - ग्रैवेयक देवलोक	2 $4/_{11}$ हाथ	2 $3/_{11}$ हाथ
23	सप्तम - ग्रैवेयक देवलोक	2 $3/_{11}$ हाथ	2 $2/_{11}$ हाथ
24	अष्टम - ग्रैवेयक देवलोक	2 $2/_{11}$ हाथ	2 $1/_{11}$ हाथ
25	नवम - ग्रैवेयक देवलोक	2 $1/_{11}$ हाथ	2 हाथ
26	विजयादि चार अनुत्तर विमान	2 हाथ	1 हाथ
27	सर्वार्थसिद्ध विमान	1 हाथ	1 हाथ

तिर्यंचों में उत्कृष्ट अवगाहना का कथन

गाथा

गब्भतिरि सहस्स जोयण, वणस्सई अहिय जोयण सहस्सं ।
नर-तेइंदि तिगाउ, बेइन्दिय जोयणे बार ॥7॥

संस्कृत छाया

गर्भजतिर्यञ्चः सहस्रयोजना, वनस्पतिरधिक योजन-सहस्रम् ।
नरत्रीन्द्रियास्त्रिगव्यूता, द्वीन्द्रिया-योजनानि द्वादश ॥7॥

शब्दार्थ

गब्भ - गर्भज	**तिरि** - तिर्यंच
सहस्स - हजार, सहस्र	**जोयण** - योजन
वणस्सई - वनस्पति	**अहिय** - अधिक
जोयण - योजन	**सहस्सं** - हजार
नर - मनुष्य	**तेइंदि** - त्रीन्द्रिय
ति - तीन	**गाउ** - गव्यूत, कोस
बेइन्दिय - द्वीन्द्रिय	**जोयणे** - योजन
बार - बारह	

भावार्थ

गर्भज तिर्यंच की उत्कृष्ट अवगाहना हजार योजन की होती है । वनस्पतिकाय की उत्कृष्ट अवगाहना हजार योजन से कुछ अधिक होती है । गर्भज मनुष्य और त्रीन्द्रिय की उत्कृष्ट अवगाहना तीन गाऊ की होती है । द्वीन्द्रिय की उत्कृष्ट अवगाहना बारह योजन की कही गयी है ॥7॥

विशेष विवेचन

प्रस्तुत गाथा में पूर्वोक्त गाथान्तर्गत कथित अवगाहना द्वार को आगे बढाया गया है । इस गाथा में गर्भज तिर्यंच, गर्भज मनुष्य, वनस्पतिकाय, त्रीन्द्रिय एवं द्वीन्द्रिय जीवों की उत्कृष्ट अवगाहना कही गयी है ।

1 गर्भज तिर्यंच की उत्कृष्ट अवगाहना एक हजार योजन प्रमाण होती है । यह अवगाहना ढाई द्वीप के बाहर स्थित स्वयंभूरमण समुद्र में रहने वाले महामत्स्य रूप जलचर जीवों की अपेक्षा से कही गयी है ।

2 गर्भज मनुष्य की तीन गाऊ की उत्कृष्ट अवगाहना देवकुरु-उत्तरकुरु नामक अकर्मभूमियों में स्थित युगलिक मनुष्यों की अपेक्षा से कही गयी है।

अवसर्पिणी के प्रथम एवं उत्सर्पिणी के अन्तिम आरे में भी मनुष्यों की उत्कृष्ट अवगाहना तीन गाऊ प्रमाण कही गयी है ।

3 वनस्पतिकाय की साधिक हजार योजन की अवगाहना कमल आदि की अपेक्षा से समझनी चाहिये ।

4 द्वीन्द्रिय की उत्कृष्ट अवगाहना, जो बारह योजन प्रमाण कही गयी है, वह ढाई द्वीप के बाहर स्थित द्वीप-समुद्रों में उत्पन्न होने वाले शंखादि की जाननी चाहिये ।

5 त्रीन्द्रिय की उत्कृष्ट तीन गाऊ की अवगाहना प्रायः ढाई द्वीप के बाहर स्थित समुद्रादि में उत्पन्न कानखजूरा आदि जीवों की जाननी चाहिये ।

गाऊ से अभिप्राय - दो हजार धनुष्य का एक गाऊ होता है । व्यवहार में 3.20 कि.मी. का एक गाऊ होता है । गाऊ को गव्यूत, कोस भी कहा जाता है ।

योजन से अभिप्राय - चार कोस का एक योजन होता है । व्यवहार में 12.80 कि.मी. का एक योजन होता है ।

पुनः अवगाहना द्वार का कथन

गाथा

जीयणमेगं चउरिंदि,-देहमुच्चत्तणं सुए भणियं ।
वेउव्वियदेहं पुण, अंगुलसंखंसमारंभे ।।8।।

संस्कृत छाया

योजनमेकं चतुरिन्द्रिय, देहोच्चत्वं श्रुते भणितं ।
वैक्रिय-देहः पुनरङ्गुल,-संख्येयांश-आरम्भे ।।8।।

शब्दार्थ

जीयणं - योजन	**एगं** - एक
चउरिंदि - चतुरिन्द्रिय	**देहं** - देह-काय की
उच्चत्तणं - ऊँचाई	**सुए** - शास्त्रों में
भणियं - कही गयी है	**वेउव्विय** - वैक्रिय (उत्तर)
देहं - देह प्रमाण	**पुण** - पुनः
अंगुल - अंगुल का	**संखंसं** - संख्यातवां भाग
आरंभे - प्रारंभ में	

भावार्थ

शास्त्रों में चतुरिन्द्रिय जीवों की उत्कृष्ट अवगाहना एक योजन की कही गयी है । वैक्रिय शरीर की आरंभ में अवगाहना अंगुल के संख्यातवें भाग जितनी होती है ।।8।।

विशेष विवेचन

प्रस्तुत गाथा में चतुरिन्द्रिय जीवों की अवगाहना बतायी गयी है ।

चतुरिन्द्रिय जीवों की उत्कृष्ट अवगाहना एक योजन की कही गयी है। ऐसी महद् अवगाहना मनुष्य क्षेत्र के बाहर स्थित भ्रमरादि की जाननी चाहिये।

वैक्रिय शरीर की आरंभ में अवगाहना अंगुल का संख्यातवां भाग कही गयी है।

वैक्रिय शरीर भी दो प्रकार के होते हैं -

(1) **मूल वैक्रिय शरीर** - जन्म के साथ मूल रूप से मिला वैक्रिय शरीर, मूल वैक्रिय शरीर कहलाता है। इसे भवप्रत्ययिक वैक्रिय शरीर भी कहा जा सकता है।

(2) **उत्तर वैक्रिय शरीर** - मूल देह से अतिरिक्त विशेष प्रयोजन से निर्मित वैक्रिय शरीर, उत्तर वैक्रिय शरीर कहलाता है।

यह लब्धिप्रत्ययिक एवं भवप्रत्ययिक, दोनों प्रकार का होता है।

प्रस्तुत गाथा में वैक्रिय शरीर की प्रारंभ में जो अवगाहना कही गयी है, वह उत्तर वैक्रिय शरीर के परिप्रेक्ष्य में है।

मूल वैक्रिय शरीर की प्रारंभ में अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी होती है।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच, मनुष्य, देव और नारकी जीवों की उत्तर वैक्रिय शरीर की प्रारंभ में अंगुल के संख्यातवें भाग जितनी अवगाहना होती है परंतु बादर वायुकाय की उत्तर वैक्रिय शरीर की प्रारंभ में अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी ही होती है क्योंकि उसकी वैक्रिय शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी ही होती है।

उत्तर वैक्रिय शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना

गाथा

देव-नर-अहिय-लक्खं, तिरियाणं नव य जोयणसयाइं।
दुगुणं तु नारयाणं, भणियं वेउव्वियसरीरं ॥9॥

संस्कृत छाया

देवनराणामधिकलक्षं, तिरश्चां नव च योजन-शतानि ।
द्विगुणं तु नारकाणां, भणितं वैक्रियशरीरम् ॥9॥

शब्दार्थ

देव - देवों की	नर - मनुष्य की
अहिय - अधिक, ज्यादा	लक्खं - लाख, लक्ष
तिरियाणं - तिर्यंचों की	नव - नौ
य - और	जोयण - योजन
सयाई - सौ	दुगुणं - दुगुनी
तु - भी	नारयाणं - नारकी जीवों की
भणियं - कही गयी है	वेउव्विय - वैक्रिय
सरीरं - शरीर की	

भावार्थ

देवों के उत्तर वैक्रिय शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना एक लाख योजन कही गयी है ।

मनुष्यों के उत्तर वैक्रिय शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना साधिक एक लाख योजन कही गयी है ।

तिर्यंच के उत्तर वैक्रिय शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना नौ सौ योजन कही गयी है ।

नारकी जीवों के उत्तर वैक्रिय शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना अपने-अपने मूल वैक्रिय शरीर से दुगुनी कही गयी है ॥9॥

विशेष विवेचन

प्रस्तुत गाथा में देव, मनुष्य, तिर्यंच और नारकी के उत्तर वैक्रिय शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना की विवेचना की गयी है।

- देवों के उत्तर वैक्रिय शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना - **एक लाख योजन** ।
- मनुष्यों के उत्तर वैक्रिय शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना - **साधिक एक लाख योजन** ।
- यहाँ साधिक का अर्थ चार अंगुल प्रमाण जानना चाहिये ।

जिज्ञासा - **देव और मनुष्य के उत्तर वैक्रिय शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना में चार अंगुल का अन्तर किस कारण होता है ?**

समाधान - देवों का उत्तर वैक्रिय और मनुष्यों का वैक्रिय शरीर, उन दोनों में उपरी अर्थात् शीर्ष भाग तो समान ही होता है परंतु देव जमीन से चार अंगुल उपर रहते हैं, अतः मनुष्यों और देवों की उत्कृष्ट उत्तर वैक्रिय शारीरिक अवगाहना में चार अंगुल का अन्तर दृष्टिगोचर होता है।

- पंचेन्द्रिय तिर्यंच संबंधी उत्तर वैक्रिय शरीर की अवगाहना नौ सौ योजन प्रमाण कही गयी है ।
- प्रत्येक नारकी अपने मूल वैक्रिय शरीर से दुगुना उत्तर वैक्रिय शरीर निर्मित कर सकता है । इस अपेक्षा नरक में उत्कृष्ट रूप से 1000 धनुष्य प्रमाण उत्तर वैक्रिय शरीर की अवगाहना कही गयी है ।

मूल शरीर की अवगाहना

दण्डक	पृथ्वी, अप् तेउ, वायु	वनस्पति	द्वीन्द्रिय	त्रीन्द्रिय	चतुरिंद्रिय	गर्भज तिर्यंच	गर्भज मनुष्य	देव	नारकी
जघन्य अवगाहना	अंगुल का असंख्यातवां भाग								
उत्कृष्ट अवगाहना	अंगुल का असंख्यातवां भाग	साधिक हजार योजन	बारह योजन	तीन गाऊ	एक योजन	हजार योजन	तीन गाऊ	सात हाथ	500 धनुष

उत्तर वैक्रिय शरीर की अवगाहना

दण्डक	देव	नारकी	गर्भज मनुष्य	गर्भज तिर्यंच	वायुकाय
जघन्य अवगाहना	अंगुल का संख्यातवां भाग				अंगुल का असंख्यातवां भाग
उत्कृष्ट अवगाहना	एक लाख योजन	हजार धनुष्य	साधिक एक लाख योजन	नौ सौ योजन	अंगुल का असंख्यातवां भाग

शेष पृथ्वी-अप्-तेउ-वनस्पतिकाय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, इन सात दण्डकों में वैक्रिय शरीर नहीं होता है ।

उत्तर वैक्रिय शरीर की विकुर्वणा का काल

गाथा

अंतमुहुत्तं निरए, मुहुत्त चत्तारि तिरिय-मणुएसु ।
देवेसु अद्धमासो, उक्कोस विउव्वणा कालो ॥10॥

संस्कृत छाया

अन्तर्मुहूर्त्तं नैरयिके, मुहूर्त्ताश्चत्वारः तिर्यग्मनुजेषु ।
देवेष्वर्धमास, उत्कृष्टो विकुर्वणाकालः ॥10॥

शब्दार्थ

अन्तमुहुत्तं - अन्तर्मुहूर्त	निरए - नारकी में
मुहुत्त - मुहूर्त	चत्तारि - चार
तिरिय - तिर्यंच	मणुएसु - मनुष्यों में
देवेसु - देवों में	अद्ध - आधा, अर्द्ध
मासो - मास, माह	उक्कोस - उत्कृष्ट
विउव्वणा - विकुर्वणा	कालो - काल, समय

भावार्थ

नारकी जीवों के उत्तर वैक्रिय शरीर का काल अन्तर्मुहूर्त्त का कहा गया है । देवों के उत्तर वैक्रिय शरीर का काल अर्द्धमाह (15 दिन) का कहा गया है । मनुष्य और तिर्यंच के वैक्रिय शरीर का काल चार मुहूर्त्त का कहा गया है ॥10॥

विशेष विवेचन

प्रस्तुत गाथा में वैक्रिय शरीर की विकुर्वणा का काल बताया गया है ।

- देव जो उत्तर वैक्रिय शरीर बनाते हैं, उसका उत्कृष्ट काल पन्द्रह दिन का कहा गया है ।
- नारकी के उत्तर वैक्रिय शरीर की विकुर्वणा का काल अन्तर्मुहूर्त का कहा गया है ।
- तिर्यंच और मनुष्यों के वैक्रिय शरीर का उत्कृष्ट काल चार मुहूर्त का कहा गया है ।

यहाँ एक बात ध्यान में रखनी चाहिये कि उपरोक्त गाथा में वैक्रिय शरीर की विकुर्वणा का जो काल कहा गया है, वह कालपूर्ण होने पर वैक्रिय शरीर स्वतः विलय को प्राप्त हो जाता है । यदि आवश्यकता न हो तो गाथान्तर्गत काल से पूर्व भी उसका संहरण किया जा सकता है ।

पूर्वोक्त पांच गाथाओं में तीन शरीरों (औदारिक, वैक्रिय एवं उत्तर वैक्रिय) की अवगाहना एवं काल बताया गया है ।

सामान्य जानकारी के लिये शेष आहारक, तैजस तथा कार्मण शरीर की अवगाहना एवं काल बताया जा रहा है ।

आहारक शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना संपूर्ण एक हाथ और जघन्य देशोन एक हाथ प्रमाण कही गयी है । परन्तु इस शरीर के निर्माण के प्रारम्भ में अंगुल का असंख्यातवां भाग की अवगाहना होती है । आहारक शरीर का जघन्य एवं उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है परन्तु दोनों अन्तर्मुहूर्त में भी विशेष अन्तर होता है ।

तैजस तथा कार्मण शरीर की जघन्य अवगाहना अंगुल का असंख्यातवां भाग है । उत्कृष्ट अवगाहना साधिक एक लाख योजन प्रमाण है, वह उत्तर वैक्रिय शरीर की अपेक्षा से जाननी चाहिये ।

केवली समुद्घात की अपेक्षा से तैजस एवं कार्मण शरीर की अवगाहना संपूर्ण लोकाकाश प्रमाण है ।

यहाँ अवगाहना द्वार का विवेचन परिपूर्ण होता है ।

तृतीय संघयण द्वार का प्रस्तुतीकरण

गाथा

थावर सुर नेरइया, असंघयणा य विगल छेवट्ठा ।
संघयण-छग्गं गब्भय,-नर-तिरिएसु वि मुणेयव्वं ।।11।।

संस्कृत छाया

स्थावर-सुर-नैरयिकाः, असंहननाश्च विकलाः सेवार्त्ताः ।
संहननषट्कं गर्भजनर,-तिर्यक्ष्वपि ज्ञातव्यम् ।।11।।

शब्दार्थ

थावर - स्थावर	**सुर** - देव
नेरइया - नारकी	**असंघयणा** - संघयण रहित
य - और	**विगल** - विकलेन्द्रिय
छेवट्ठा - सेवार्त्त	**संघयण** - संघयण
छग्गं - छह, षट्क	**गब्भय** - गर्भज
नर - मनुष्यों में	**तिरिएसु** - तिर्यंचों में
वि - एवं	**मुणेयव्वं** - जानना चाहिये

भावार्थ

पृथ्वीकाय आदि पांच स्थावर, देव और नारकी जीव संघयण रहित होते हैं । विकलेन्द्रिय त्रिक में सेवार्त्त संघयण ही पाया जाता है ।

गर्भज मनुष्यों और गर्भज तिर्यंचों में छहों संघयण पाये जाते हैं ।।11।।

विशेष विवेचन

प्रस्तुत गाथा में दण्डक प्रकरण में वर्णित चौबीस द्वारों में से तीसरे संघयण द्वार का वर्णन किया गया है।

संघयण से अभिप्राय - शरीर में स्थित अस्थि-बंध को संघयण कहा जाता है। हड्डियों की मजबूत अथवा कमजोर रचना को संघयण कहा जाता है।

पांच प्रकार के शरीरों में से केवल औदारिक शरीर में ही संघयण पाये जाते हैं।

संघयण छह प्रकार के कहे गये हैं - (1) वज्रऋषभनाराच संघयण (2) ऋषभनाराच संघयण (3) नाराच संघयण (4) अर्द्धनाराच संघयण (5) कीलिका संघयण (6) सेवार्त्त संघयण।

1 **वज्रऋषभनाराच संघयण** -

वज्र अर्थात् कील। ऋषभ अर्थात् पट्टा। नाराच अर्थात् दोनों तरफ मर्कट बंध।

मर्कट अर्थात् बंदर।

बंध अर्थात् बंधारण।

बंदरी का पुत्र जिस तरह उससे चिपक कर रहता है, उस प्रकार के अस्थि-बंध को मर्कट बंध कहते है।

जिस संघयण में हड्डियाँ दोनों तरफ मर्कट बंध की भाँति जुडी हुई हो और उस पर पट्टा हो तथा उसके आर-पार जाने वाली कील हो, उसे वज्रऋषभनाराच संघयण कहते है।

तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव एवं प्रतिवासुदेव, इन त्रिषष्ठिशलाका पुरुषों में तथा गणधर, चरम शरीरी एवं युगलिक मनुष्यों तथा तिर्यंचों में नियमतः वज्रऋषभनाराच संघयण ही पाया जाता है। इस संघयण वाला जीव ही तद्भव मोक्षगामी हो सकता है।

2 **ऋषभनाराच संघयण** - जिस संघयण में हड्डियाँ दोनों तरफ मर्कट बंध की भाँति जुडी हुई हो और उस पर पट्टा हो पर उसके आर-पार जाने वाली कील नहीं हो, उसे ऋषभनाराच संघयण कहा जाता है।

3 **नाराच संघयण** - जिस संघयण में हड्डियाँ दोनों तरफ मर्कटबंध की भाँति जुड़ी हुई हो पर उस पर पट्टा न हो, न उसके आर-पार जाने वाली कील हो, उसे नाराच संघयण कहते है ।

4 **अर्द्धनाराच संघयण** - जिस संघयण में हड्डियाँ मात्र एक तरफ से मर्कट बंध की भाँति जुड़ी हुई हो और उस पर पट्टा तथा कील हो, उसे अर्द्धनाराच संघयण कहते है ।

5 **कीलिका संघयण** - जिस संघयण में मर्कटबंध और पट्टा, दोनों न हो, केवल कील लगी हुई हो, उसे कीलिका संघयण कहते है ।

6 **छेवट्ठ/सेवार्त्त संघयण** - जिस संघयण में केवल हड्डियाँ परस्पर मात्र स्पर्श की हुई हो, उसे छेवट्ठ संघयण कहते है ।

जिसके किनारे तेलादि की मालिश से ही सेवा में दृढ रहते हैं, उसे सेवार्त्त संघयण कहते है अथवा जो तेलादि की मालिश की सेवा से ही स्वस्थ रहती है, उस अस्थि-रचना को सेवार्त्त संघयण कहते है ।

संघयण सहित जीव -

1 द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जीवों में छेवट्ठ/सेवार्त्त संघयण पाया जाता है ।

2 गर्भज तिर्यंचों और मनुष्यों में छहों संघयण पाये जाते हैं ।

संघयण रहित जीव -

- पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय और वनस्पतिकाय, इन पांच दण्डकों में कोई भी संघयण नहीं होता है ।
- देवों में कोई भी संघयण नहीं पाया जाता है ।
- नारकी जीव भी संघयण रहित होते हैं ।

चौबीस दण्डकों में संघयण द्वार -

- चौबीस दण्डकों में से पांच दण्डकों में संघयण पाया जाता है - विकलेन्द्रिय त्रिक, गर्भज तिर्यंच, गर्भज मनुष्य ।
- चौबीस दण्डकों में से उन्नीस दण्डकों में संघयण नहीं होता है 1-5 पांच स्थावर, 6-15 दस भवनपति देव, 16 व्यंतर, 17 ज्योतिष्क, 18 वैमानिक देव, 19 नारकी ।

छह प्रकार के संघयण

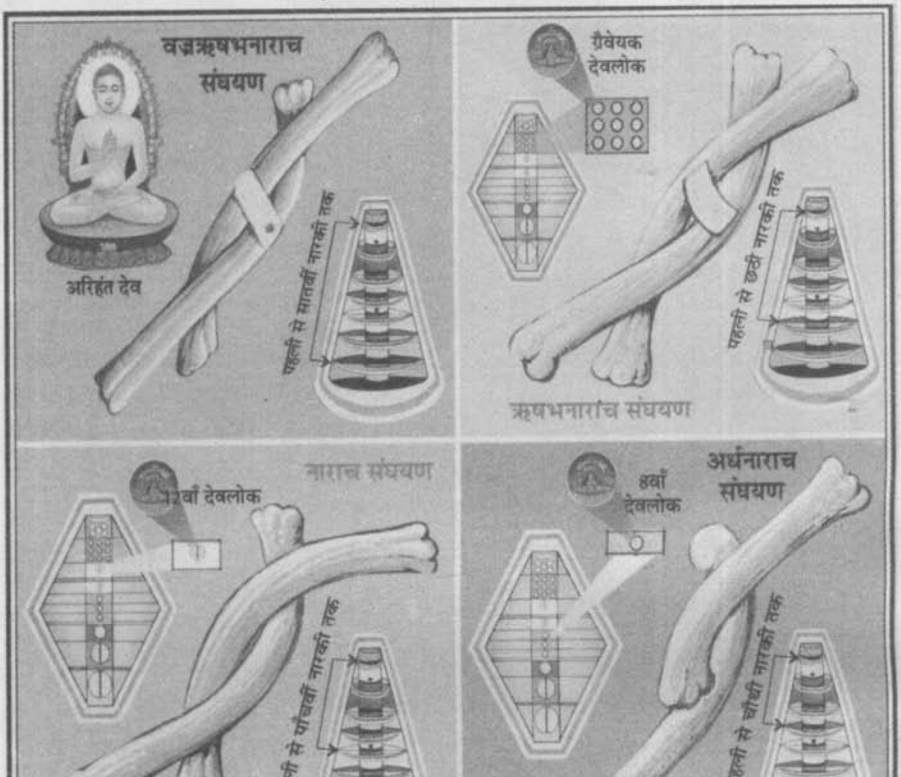

जिज्ञासा - शास्त्रों-सूत्रों में जब देवों में वज्रऋषभनाराच संघयण और नारकी, पृथ्वीकाय आदि पांच स्थावर जीवों में अन्तिम छेवट्ठ संघयण कहा गया है फिर दण्डक प्रकरण में उससे विपरीत देव, नारकी एवं एकेन्द्रिय जीव संघयण रहित क्यों कहे गये ?

समाधान - शास्त्रों-सूत्रों में देवों में वज्रऋषभनाराच संघयण तथा नारकी और एकेन्द्रिय जीवों में छेवट्ठ संघयण कहा गया है, वह उनके बल की अपेक्षा से है, न कि अस्थि-बंध व्यवस्था की अपेक्षा से है।

देवों में वज्रऋषभनाराच संघयण वाले जीव के समान बल होता है नारकी और एकेन्द्रिय जीवों में छेवट्ठ संघयण वाले जीव के समान बल होता है।

दण्डक प्रकरण में बल की अपेक्षा से नहीं, अस्थि-बंध की अपेक्षा से कथन किया गया है। एकेन्द्रिय जीवों में कोई अस्थि नहीं है। देव और नारकी भी अस्थि रहित होते हैं, उनके च्यवनोपरान्त उनका शरीर कपूर की भाँति बिखर जाता है। अतः उनमें संघयण सद्भाव नहीं होता है।

कौनसा संघयण कितने दण्डकों में ?

1 प्रथम वज्रऋषभनाराच संघयण गर्भज मनुष्य एवं गर्भज तिर्यंच, इन दो दण्डकों में पाया जाता है।

2 मध्यवर्ती चार संघयण भी उपरोक्त दो दण्डकों में ही पाये जाते हैं।

3 अन्तिम छेवट्ठ संघयण गर्भज मनुष्य, गर्भज तिर्यंच, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय एवं चतुरिन्द्रिय, इन पांच दण्डकों में पाया जाता है।

चार गतियों में संघयण द्वार -

1 मनुष्य गति में छहों संघयण पाये जाते हैं।

2 देव गति में एक भी संघयण नहीं पाया जाता है।

3 तिर्यंच गति में छहों संघयण पाये जाते हैं ।

4 नरक गति में एक भी संघयण नहीं पाया जाता है ।

एकेन्द्रिय आदि में संघयण द्वार -

1 एकेन्द्रिय जीव संघयण रहित होते हैं ।

2 द्वीन्द्रिय जीवों में सेवार्त्त संघयण पाया जाता है ।

3 त्रीन्द्रिय जीवों में सेवार्त्त संघयण पाया जाता है ।

4 चतुरिन्द्रिय जीवों में सेवार्त्त संघयण पाया जाता है ।

5 पंचेन्द्रिय जीवों में छहों संघयण पाये जाते हैं ।

षट्कायिक जीवों में संघयण द्वार -

1 पृथ्वीकाय के जीवों में एक भी संघयण नहीं होता है ।

2-5 अप्काय, तेउकाय, वायुकाय और वनस्पतिकाय के जीवों में एक भी संघयण नहीं होता है ।

6 त्रसकायिक जीवों में छहों संघयण पाये जाते हैं ।

यहाँ तृतीय संघयण द्वार का विवेचन संपूर्ण होता है ।

चतुर्थ संज्ञा द्वार तथा पंचम संस्थान द्वार का कथन

गाथा

सव्वेसिं चउ दह वा, सन्ना सव्वे सुरा य चउरंसा ।
नर-तिरि छस्संठाणा, हुंडा विगलिंदि नेरइया ।।12।।

संस्कृत छाया

सर्वेषां चतस्रो दश वा, संज्ञा सर्वे सुराश्च चतुरस्राः ।
नर-तिर्यञ्चः षट्संस्थाना, हुण्डका विकलेन्द्रिय-नैरयिकाः ।।12।।

शब्दार्थ

सव्वेसिं - सभी दण्डकों में	**चउ** - चार (संज्ञाएँ)
दह - दस (संज्ञाएँ)	**वा** - अथवा
सन्ना - संज्ञा	**सव्वे** - सभी
सुरा - देवों (में)	**य** - और
चउरंसा - समचतुरस्र संस्थान	**नर** - मनुष्यों में
तिरि - तिर्यंचों में	**छस्संठाणा** - छहों संस्थान
हुंडा - हुंडक संस्थान	**विगलिंदि** - विकलेन्द्रियों में
नेरइया - नारकी जीवों में	

भावार्थ

चौबीस दण्डकवर्ती समस्त जीवों में चार अथवा दस प्रकार की संज्ञाएँ पायी जाती हैं ।

समस्त देवों में एक मात्र समचतुरस्र संस्थान पाया जाता है । गर्भज मनुष्यों और तिर्यंचों में छहों संस्थान पाये जाते हैं । नारकी तथा विकलेन्द्रिय जीवों में केवल हुंडक संस्थान पाया जाता है ।।12।।

एकेन्द्रिय जीवों की शारीरिक-संरचना

गाथा

नाणाविह धय सुई,-बुब्बुय वण वाउ तेउ अपकाया ।
पुढवी मसूर चंदा,-कारा संठाणओ भणिया ।।13।।

संस्कृत छाया

नानाविध-ध्वज-सूची-बुद्बुदा, वनवायु-तैजसाप्कायिकाः ।
पृथ्वी-मसूर-चंद्राकारा, संस्थानतो भणिताः ।।13।।

शब्दार्थ

णाणाविह - नानाविध, विविध	**धय** - ध्वज (के आकार वाले)
सुई - सुई (के आकार वाले)	**बुब्बुय** - बुदबुदे (के आकार वाले)
वण - वनस्पतिकाय के जीव	**वाउ** - वायुकाय के जीव
तेउ - तेउकाय के जीव	**अपकाया** - अप्काय के जीव
पुढवी - पृथ्वीकाय के जीव	**मसूर** - मसूर की दाल (के आकार वाले)
चंदाकारा - चंद्र आकार वाले	**भणिया** - कहे गये हैं ।
संठाणओ - संस्थान	

भावार्थ

पृथ्वीकाय का संस्थान मसूर की दाल के आकार का अथवा अर्द्धचंद्राकार का कहा गया है । अप्काय का संस्थान बुदबुदे के आकार का कहा गया है । तेउकाय का संस्थान सूई के आकार का कहा गया है । वायुकाय का संस्थान ध्वजाकार का कहा गया है । वनस्पतिकाय का संस्थान विविध प्रकार का कहा गया है ।।13।।

विशेष विवेचन

उपरोक्त गाथाद्वय में प्रस्तुत प्रकरण में विवेच्य चौबीस द्वारों में से चतुर्थ संज्ञा द्वार एवं पंचम संस्थान द्वार का विवेचन किया गया है ।

चतुर्थ संज्ञा द्वार का विवेचन -

संज्ञा से अभिप्राय - व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ -

संज्ञानं संज्ञा आभोग इत्यर्थः यदिवा संज्ञायते अनया अयं जीवः इति संज्ञा ।

(i) जिससे जीव का सम्यकरूपेण ज्ञान होता है, जीव जाना-पहचाना जाता है, उसे संज्ञा कहते है ।

(ii) संज्ञान अर्थात् आभोग (रुझान, झुकाव) को संज्ञा कहते है ।

(iii) 'यह जीव है' यह जिससे जाना जाता है, उसे संज्ञा कहते है ।

शास्त्रीय अर्थ - वेदनीय, मोहनीय आदि कर्मोदय से एवं ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीयादि कर्म के क्षयोपशम से जीव की आहारादि की अभिलाषा-मनोवृत्ति रूप क्रिया को संज्ञा कहते है ।

संज्ञा दो प्रकार की कही गयी हैं - (1) ज्ञान संज्ञा (2) अनुभव संज्ञा ।

1 **ज्ञान संज्ञा** - जीव के मूल गुण रूप मतिज्ञान, श्रुतज्ञान आदि ज्ञान गुण को ज्ञान संज्ञा कहते है ।

2 **अनुभव संज्ञा** - मोहनीय आदि कर्मों के उदय अथवा क्षयोपशम से उत्पन्न होने वाली संज्ञा, अनुभव संज्ञा कहलाती है ।

इस चतुर्थ द्वार में अनुभव संज्ञा का विवेचन किया गया है । अनुभव संज्ञा विवक्षा भेद से चार, छह, दस अथवा सोलह प्रकार की कही गयी है ।

चार प्रकार की संज्ञाएँ - (1) आहार संज्ञा (2) भय संज्ञा (3) मैथुन संज्ञा (4) परिग्रह संज्ञा ।

उपरोक्त चार संज्ञाओं में ओघ संज्ञा और लोक संज्ञा जोड़ने से छह प्रकार की संज्ञाएँ होती हैं ।

उपरोक्त छह प्रकार की संज्ञाओं में क्रोध-मान-माया-लोभ संज्ञा को जोड़ने से दस प्रकार की संज्ञाएँ होती हैं ।

मोह, धर्म, सुख, दुःख, जुगुप्सा एवं शोक संज्ञा सहित सोलह प्रकार - की संज्ञाएँ होती हैं ।

1 **आहार संज्ञा** - जीव की आहार की अभिलाषा को आहार संज्ञा कहते है । अशन, पान, खादिम एवं स्वादिम रूप चार प्रकार के आहार कहे गये हैं ।

2 **भय संज्ञा** - सात प्रकार के भय रूप जीव-भाव को भय संज्ञा कहते है ।

सात भय - 1 इहलोक भय 2 परलोक भय 3 आजीविका भय 4 अकस्मात् भय 5 अपयश भय 6 मरण भय 7 आदान भय ।

3 **मैथुन संज्ञा** - जीव की तीन प्रकार के मैथुन (कामभोग) की अभिलाषा को मैथुन संज्ञा कहते है। मनुष्य, देव, तिर्यंच संबंधी तीन प्रकार की मैथुन संज्ञा कही गयी है।

4 **परिग्रह संज्ञा** - जीव की नौ प्रकार के पदार्थों के संग्रह की प्रवृत्ति/ कामना को परिग्रह संज्ञा कहते है।

नौ प्रकार का परिग्रह - 1 धन 2 धान्य 3 क्षेत्र 4 वस्तु 5 रूपा 6 सुवर्ण 7 कुप्य 8 दास-दासी 9 घोडा, बैलादि चौपाये।

5 **ओघ संज्ञा** - पूर्व जन्मों के संस्कार आदि से जीव में जो गुण प्रकट होता है, उसे ओघ संज्ञा कहते है। जैसे बालक की जन्म से ही स्तनपान करने की जो प्रवृत्ति होती है, वह सिखायी नहीं जाती, पूर्व संस्कारों के परिणामस्वरूप स्वतः प्रकट होती है।

6 **लोक संज्ञा** - लौकिक व्यवहार के अनुसार प्रवृत्ति या विशेष मान्यता को जानने की कामना को लोक संज्ञा कहते है। जैसे अगस्त्य ऋषि समुद्र को पी गये थे।

7 **क्रोध संज्ञा** - जीव की आवेश, क्रोध कषाय रूप मनःस्थिति को क्रोध संज्ञा कहते है।

8 **मान संज्ञा** - जीव की मान-अभिमान रूप मनःस्थिति को मान संज्ञा कहते है।

आठ प्रकार के मद कहे गये हैं - 1 जाति मद 2 कुल मद 3 बल मद 4 तप मद 5 रूप मद 6 ऐश्वर्य मद 7 लाभ मद 8 श्रुत मद।

9 **माया संज्ञा** - जीव की माया-कपट रूप मनःस्थिति को माया संज्ञा कहते है।

10 **लोभ संज्ञा** - जीव की लोभ-लालच रूप मनःस्थिति को लोभ संज्ञा कहते है।

11 **मोह संज्ञा** - जीव की व्यक्ति, वस्तु आदि के प्रति मूर्च्छा, आसक्ति रूप मनःस्थिति को मोह संज्ञा कहते है।

12 **धर्म संज्ञा** - जीव की स्वाभाविक धर्म रूप प्रवृत्ति को धर्म संज्ञा कहते है ।

13 **सुख संज्ञा** - जीव की अनुकूलता में सुखानुभूति रूप मनःस्थिति को सुख संज्ञा कहते है ।

14 **दुःख संज्ञा** - जीव की प्रतिकूलता में दुःखानुभूति रूप मनःस्थिति को दुःख संज्ञा कहते है ।

15 **जुगुप्सा संज्ञा** - जीव की प्रकृति, पुरुष, पदार्थ आदि के प्रति घृणा/अरुचि का भाव, जुगुप्सा संज्ञा कहलाती है ।

16 **शोक संज्ञा** - इष्ट के वियोग में एवं अनिष्ट के संयोग में खेदपूर्ण मनःस्थिति को शोक संज्ञा कहते है ।

किस संज्ञा का उदय किस कर्मोदय अथवा क्षयोपशम से -

1 **आहार संज्ञा** - अशाता वेदनीय कर्म के उदय से ।

2 **भय संज्ञा** - भय मोहनीय कर्म के उदय से ।

3 **मैथुन संज्ञा** - वेद मोहनीय कर्म के उदय से ।

4 **परिग्रह संज्ञा** - लोभ मोहनीय कर्म के उदय से ।

5 **ओघ संज्ञा** - मतिज्ञानावरणीय एवं दर्शनावरणीय के क्षयोपशम से ।

6 **लोक संज्ञा** - मतिज्ञानावरणीय एवं दर्शनावरणीय के क्षयोपशम से ।

7 **क्रोध संज्ञा** - क्रोध कषाय मोहनीय कर्म के उदय से ।

8 **मान संज्ञा** - मान कषाय मोहनीय कर्म के उदय से ।

9 **माया संज्ञा** - माया कषाय मोहनीय कर्म के उदय से ।

10 **लोभ संज्ञा** - लोभ कषाय मोहनीय कर्म के उदय से ।

11 **मोह संज्ञा** - मोहनीय कर्म के उदय से ।

12 **धर्म संज्ञा** - मोहनीय कर्म के क्षयोपशम से ।

13 **सुख संज्ञा** - रति मोहनीय कर्म के उदय से ।

14 **दुःख संज्ञा** - अरति मोहनीय कर्म के उदय से ।

15 **जुगुप्सा संज्ञा** - जुगुप्सा मोहनीय कर्म के उदय से ।

16 **शोक संज्ञा** - शोक मोहनीय कर्म के उदय से ।

संज्ञा का सद्भाव -

1 पृथ्वीकाय यावत् त्रसकाय में समस्त संज्ञा पायी जाती हैं ।
2 एकेन्द्रिय यावत् पंचेन्द्रिय में समस्त संज्ञा पायी जाती हैं ।
3 मनुष्य आदि चारों गतियों में समस्त संज्ञा पायी जाती हैं ।
4 संज्ञी एवं असंज्ञी जीवों में समस्त संज्ञा पायी जाती हैं ।
5 पुरुष-स्त्री-नपुंसक वेदी जीवों में समस्त संज्ञा पायी जाती हैं ।
6 तीनों लोकों में समस्त संज्ञा पायी जाती हैं ।
7 गर्भज-संमूर्च्छिम-औपपातिक जीवों में समस्त संज्ञा पायी जाती हैं ।

यद्यपि समस्त दण्डकों में समस्त संज्ञाएँ पायी जाती हैं तथापि उनमें विशेष अन्तर होता है -

1 देवों में परिग्रह संज्ञा एवं लोभ संज्ञा की प्रधानता होती है ।
2 मनुष्यों में मैथुन संज्ञा एवं मान संज्ञा की प्रधानता होती है ।
3 तिर्यंचों में आहार संज्ञा एवं माया संज्ञा की प्रधानता होती है ।
4 नारकी में भय संज्ञा तथा क्रोध संज्ञा की प्रधानता होती है ।

जीव को संज्ञी अथवा असंज्ञी कहने में कारण रूप उपरोक्त अनुभव संज्ञाएँ नहीं हैं । उसमें कारण रूप संज्ञाएँ आगामी गाथाओं में इक्कीसवें द्वार में वर्णित दीर्घकालिकी आदि संज्ञाएँ हैं ।

चार गति में आहारादि चार संज्ञाओं का अल्पबहुत्व - नरक गति में मैथुन संज्ञा वाले जीव अल्प, पश्चात् आहार संज्ञा वाले जीव संख्यगुणा, पश्चात् भय संज्ञा वाले जीव संख्यगुणा, पश्चात् परिग्रह संज्ञा वाले जीव संख्यगुणा होते हैं ।

देव गति में आहार-भय-मैथुन-परिग्रह तथा मनुष्य गति में भय-आहार-परिग्रह-मैथुन और तिर्यंच गति में परिग्रह-मैथुन-भय-आहार संज्ञा वाले जीव क्रमशः संख्य गुणा जानने चाहिये ।

एक समय में एक जीव को एक ही संज्ञा स्पष्ट अनुभव में होती है प्रत्येक अंतर्मुहूर्त में सभी जीवों की संज्ञा बदलती रहती हैं ।

यहाँ चतुर्थ संज्ञा द्वार का कथन परिपूर्ण होता है ।

पंचम संस्थान द्वार का विवेचन

संस्थान से अभिप्राय - जीव के शरीर की आकृति/संरचना को संस्थान कहते है।

सामान्य रूप से संस्थान दो प्रकार के कहे जा सकते हैं -

(1) **शुभ संस्थान** - सामुद्रिक शास्त्र में वर्णित प्रमाणों से युक्त शारीरिक संरचना/बनावट को शुभ संस्थान कहते है।

(2) **अशुभ संस्थान** - सामुद्रिक शास्त्र में वर्णित प्रमाणों से रहित शारीरिक संरचना/बनावट को अशुभ संस्थान कहते है।

शास्त्रों में छह प्रकार के संस्थान कहे गये हैं -

(1) समचतुरस्र संस्थान -

सम अर्थात् समान।

चतुर् अर्थात् चार।

अस्र अर्थात् कोने, किनारे।

पर्यंकासन (पद्मासन) में बैठे हुए मनुष्य के (i) दाये स्कंध से बाये घुटने का (ii) बाये स्कंध से दाये घुटने का (iii) बाये घुटने से दाये घुटने का तथा (iv) पर्यंकासन से नासिका के अग्रभाग तक का, ये चारों माप समान हो, उसे समचतुरस्र संस्थान कहते है।

जिस शरीर के सभी अंग, उपांग और अंगोपांग, सामुद्रिक शास्त्र में वर्णित प्रमाणानुसार हो, उसे समचतुरस्र संस्थान कहते है।

1 त्रिषष्ठिशलाकापुरूष (तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, प्रतिवासुदेव) समचतुरस्र संस्थान वाले ही होते हैं।

2 अन्तर्द्वीपज एवं अकर्मभूमिज मनुष्य समचतुरस्र संस्थान वाले ही होते हैं।

3 अवसर्पिणी के पहले, दूसरे और तीसरे आरे में समचतुरस्र संस्थान ही होता है।

4 उत्सर्पिणी के चौथे, पांचवें और छट्ठे आरे में समचतुरस्र संस्थान ही होता है ।

5 देवों, गणधर, युगलिक मनुष्यों तथा युगलिक तिर्यंचों में समचतुरस्र संस्थान ही पाया जाता है ।

(2) न्यग्रोध परिमंडल संस्थान -

न्यग्रोध अर्थात् वटवृक्ष (की भाँति) ।

परि अर्थात् चारों तरफ ।

मंडल अर्थात् उपर से मंडलाकार ।

जिस प्रकार वटवृक्ष के उपर का भाग सुंदर-मंडलाकार होता है, और नीचे का भाग बेडौल होता है, उसी प्रकार जिस शरीर में नाभि से उपर के अंग-अवयव सामुद्रिक शास्त्रों में वर्णित प्रमाणोपेत एवं सुंदर होते हैं और नाभि से नीचे के भाग अप्रामाणिक होते हैं, उसे न्यग्रोध परिमंडल संस्थान कहते है ।

(3) सादि संस्थान -

स - सहित (प्रमाणयुक्त) ।

आदि - पाँव के तलवे से नाभि तक का भाग ।

जिस शरीर में नाभि से नीचे के अंग-अवयव प्रमाण युक्त, सुंदर एवं शुभ हो तथा नाभि से उपर के अंग-अवयव प्रमाण रहित और अशुभ हो, उसे सादि संस्थान कहते है ।

(4) वामन संस्थान - जिस शरीर में मस्तक, ग्रीवा, हाथ एवं पाँव, ये चार अंग प्रामाणिक तथा सुंदर हो तथा शेष पीठ, उदर, स्कंध, नाक, सीना आदि अप्रामाणिक हो, उसे वामन संस्थान कहते है ।

(5) कुब्ज संस्थान - जिस शरीर में मस्तक, ग्रीवा, हाथ और पाँव, ये चार अंग प्रमाण रहित हो तथा पीठ, उदर आदि अंग प्रमाणयुत् हो, उसे कुब्ज संस्थान कहते है ।

छह प्रकार के संस्थान

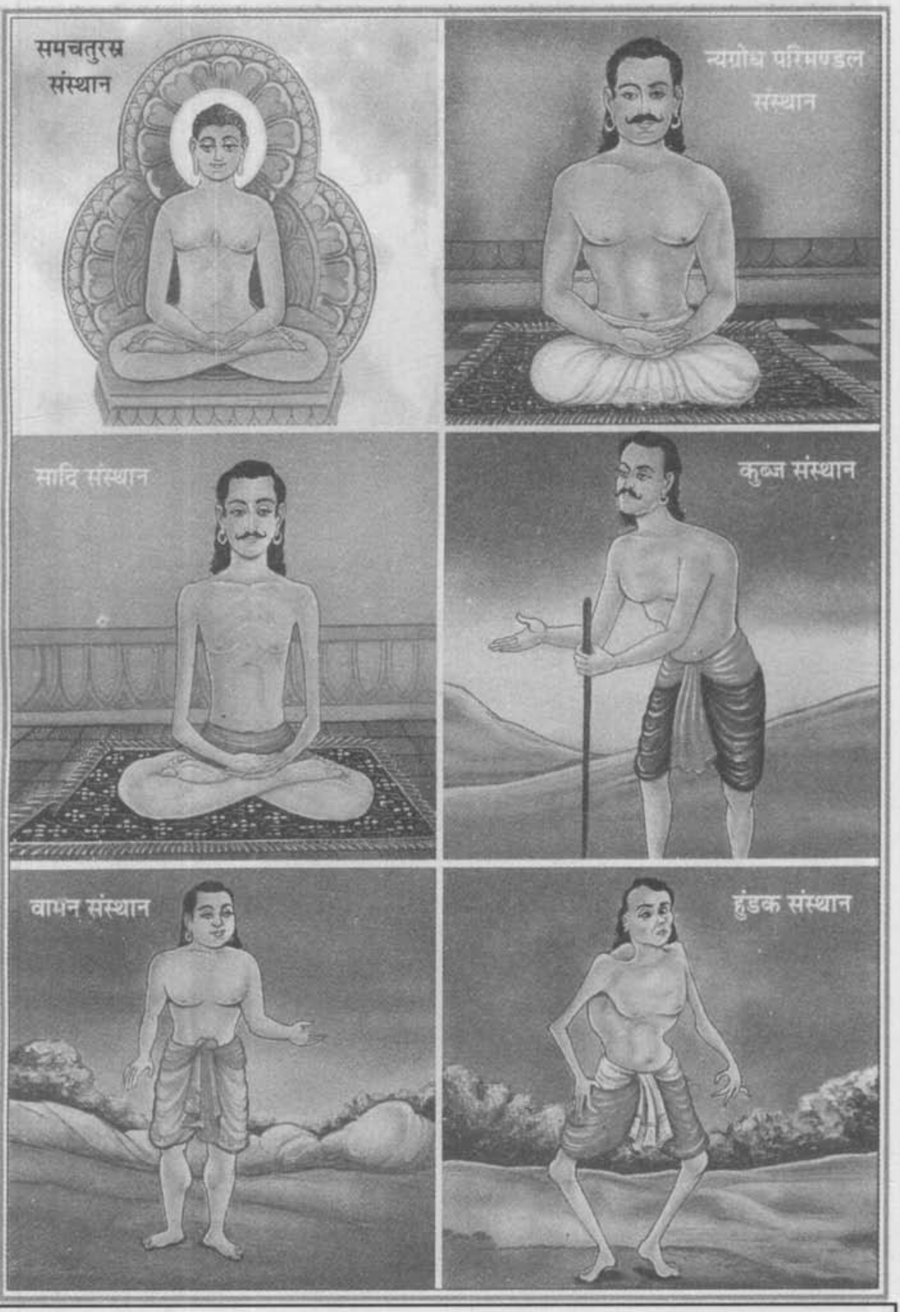

(6) **हुंडक संस्थान** - जिस शरीर के सारे अंग-उपांग प्रमाण रहित हो, उसे हुण्डक संस्थान कहते है ।

(1) एकेन्द्रिय तथा विकलेन्द्रिय में हुण्डक संस्थान ही पाया जाता है ।

(2) नारकी जीवों में हुण्डक संस्थान ही पाया जाता है ।

(3) अवसर्पिणी के पांचवें तथा छट्ठे आरे में एक मात्र हुण्डक संस्थान ही होता है ।

(4) उत्सर्पिणी के पहले और दूसरे आरे में केवल हुण्डक संस्थान ही पाया जाता है ।

चौबीस दण्डकों में संस्थान द्वार -

1 समस्त देवों में समचतुरस्र संस्थान ही पाया जाता है ।

2 पांच स्थावरों में हुंडक संस्थान पाया जाता है ।

3 विकलेन्द्रिय जीवों में हुंडक संस्थान पाया जाता है ।

4 नारकी जीवों में हुंडक संस्थान पाया जाता है ।

5 गर्भज मनुष्यों में छहों संस्थान पाये जाते हैं ।

6 गर्भज तिर्यंचों में छहों संस्थान पाये जाते हैं ।

कितने दण्डकों में कितने संस्थान ? -

1 नौ दण्डकों (पांच स्थावर, विकलेन्द्रिय त्रिक, नारकी) में केवल एक हुण्डक संस्थान पाया जाता है ।

2 तेरह दण्डकों (देव) में केवल एक समचतुरस्र संस्थान पाया जाता है ।

3 दो दण्डकों (गर्भज तिर्यंच - मनुष्य) में छहों संस्थान पाये जाते हैं ।

कौनसा संस्थान कितने दण्डकों में ? -

1 समचतुरस्र संस्थान पंद्रह दण्डकों में पाया जाता है ।

2 मध्यवर्ती चार संस्थान दो दण्डकों में पाये जाते हैं ।

3 हुण्डक संस्थान ग्यारह दण्डकों में पाया जाता है ।

एकेन्द्रिय आदि जीवों में संस्थान द्वार -

1 एकेन्द्रिय जीवों में एक मात्र हुण्डक संस्थान ही पाया जाता है ।

2-4 विकलेन्द्रिय त्रिक में एक मात्र हुण्डक संस्थान ही पाया जाता है ।

5 पंचेन्द्रिय जीवों में छहों संस्थान पाये जाते हैं ।

पृथ्वीकाय आदि जीवों में संस्थान द्वार -

1-5 पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय एवं वनस्पतिकाय, इन पांचों में हुण्डक संस्थान ही पाया जाता है ।

6 त्रसकायिक जीवों में छहों संस्थान पाये जाते हैं ।

चार गतियों में संस्थान द्वार -

1 मनुष्य गति में छहों संस्थान पाये जाते हैं ।

2 तिर्यंच गति में छहों संस्थान पाये जाते हैं ।

3 देव गति में केवल प्रथम समचतुरस्र संस्थान ही पाया जाता है ।

4 नरक गति में केवल अन्तिम हुण्डक संस्थान ही पाया जाता है ।

जिज्ञासा - देव वैक्रिय लब्धि वाले होने से विविध (बीभत्स, डरावना) शरीर बना सकते हैं, बनाते भी हैं जैसे संगम देव ने अनेकानेक शरीरों का निर्माण किया था, तो उनमें मात्र समचतुरस्र संस्थान ही कैसे कहा जा सकता है ?

समाधान - प्रस्तुत प्रकरण में तथा जिनागमों में देवों का जो समचतुरस्र संस्थान कहा गया है, वह भवधारणीय अर्थात् मूल शरीर की अपेक्षा से कहा गया है । अन्यथा देवों का उत्तर वैक्रिय संस्थान विविध-विभिन्न आकार-प्रकार का कहा गया है ।

एकेन्द्रिय जीवों में हुण्डक संस्थान की विविधता -

1 पृथ्वीकायिक जीवों का हुण्डक संस्थान मसूर की दाल के आकार का अथवा अर्द्धचन्द्र आकार का कहा गया है ।

2 अप्कायिक जीवों का हुण्डक संस्थान बुदबुदे के आकार का कहा गया है ।

3 तेजस्कायिक जीवों का हुण्डक संस्थान सुई के आकार का कहा गया है ।

4 वायुकायिक जीवों का हुण्डक संस्थान ध्वजा के आकार का कहा गया है ।

5 वनस्पतिकायिक जीवों का हुण्डक संस्थान विविध आकारों वाला कहा गया है ।

साधारण वनस्पतिकाय के हुण्डक संस्थान के संदर्भ में विविध भेद प्राप्त होते हैं । जीवाजीवाभिगम सूत्र में उसका विविध प्रकार/आकार का संस्थान कहा गया है जबकि संग्रहणी वृत्ति में निगोद (साधारण वनस्पतिकाय) का संस्थान स्तिबुक अर्थात् बुदबुदे के आकार वाला कहा गया है ।

यद्यपि आगमों में एकेन्द्रिय जीवों के संदर्भ में स्पष्टतः हुण्डक संस्थान कहीं भी नहीं कहा गया है तथापि उनके जो मसूर-दाल आदि आकार कहे गये हैं, वे भी हुण्डक संस्थान में ही समाविष्ट होते हैं ।

यहाँ पंचम संस्थान द्वार का विवेचन समाप्त होता है ।

षष्टम कषाय और सप्तम लेश्या द्वार का कथन

गाथा

सव्वेवि चउकसाया, लेस-छगं गब्भतिरिय-मणुएसु ।
नारय तेउ-वाऊ, विगला वेमाणिया ति-लेसा ।।14।।

संस्कृत छाया

सर्वेऽपि चतुष्कषाया, लेश्याषट्कं गर्भजतिर्यग्-मनुजेषु ।
नारक-तेजो-वायु, विकला वैमानिकाश्च त्रिलेश्याः ।।14।।

शब्दार्थ

सव्वेवि - सभी दण्डकों में	**चउ** - चार प्रकार के
कसाया - कषाय	**लेस** - लेश्या
छगं - छह प्रकार की	**गब्भ** - गर्भज
तिरिय - तिर्यंचों (में)	**मणुएसु** - मनुष्यों में
नारय - नारकी जीवों में	**तेउ** - तेजस्काय में
वाऊ - वायुकाय में	**विगला** - विकलेन्द्रिय में
वेमाणिया - वैमानिक देवों में	**ति** - तीन् प्रकार की
लेसा - लेश्या	

भावार्थ

समस्त दण्डकों में चारों कषाय (क्रोध, मान, माया तथा लोभ) पाये जाते हैं ।

गर्भज मनुष्यों और गर्भज तिर्यंचों में छहों लेश्या (कृष्ण, नील, कापोत, तेजो, पद्म और शुक्ल) पायी जाती हैं । नारकी, तेउकाय, वायुकाय, विकलेन्द्रिय एवं वैमानिक देवों में तीन-तीन लेश्या पायी जाती हैं ।।14।।

विशेष विवेचन

प्रस्तुत गाथा में षष्टम कषाय द्वार तथा सप्तम लेश्या द्वार का वर्णन किया गया है ।

षष्टम कषाय द्वार का वर्णन

कषाय जैन दर्शन का पारिभाषिक एवं अत्यन्त महत्वपूर्ण शब्द है । कषाय जीवात्मा को विकृत करता है ।

कषाय से तात्पर्य -

व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ - 'कष्यन्ते दुःखी भवन्ति प्राणिनो यस्मिन् स कषः (संसारः) इति संसारस्य आयः (लाभः) स कषायः ।'

कष् अर्थात् संसार, कर्मबंध ।

आय अर्थात् वृद्धि, लाभ ।

जिसके कारण संसार, कर्म और जन्म-मरण में वृद्धि होती है, उसे कषाय कहते है । जो जीव को संसार एवं कर्म-पाश में कसता है, उसे कषाय कहते है ।

आचारांग शीलांक वृत्ति एवं प्रज्ञापना वृत्ति में कहा गया है - जो जीव के शुद्धोपयोग में मलिनता उत्पन्न करते हैं, जो स्वभावतः शुद्ध जीव को कलुषित एवं कर्ममलिन करते हैं, वे कषाय कहलाते हैं ।

स्थानांगवृत्ति में कहा गया है - 'कषाय' शब्द कषैले रस का द्योतक है । जैसे कषाय प्रधान आहार सेवन से अन्न रुचि कम हो जाती है, वैसे ही कषाययुक्त जीवों की मोक्ष एवं धर्म की अभिलाषा कम हो जाती है ।

तत्त्वार्थ राजवार्तिक के अनुसार - चारित्र के परिणामों का कषण (घात) करने के कारण क्रोधादि चतुष्टय कषाय कहलाते हैं ।

क्रोधादि परिणाम आत्मा स्वरुप का कषण (हनन) करने के कारण कषाय कहलाते हैं ।

जिस प्रकार बड आदि वृक्षों का काषाय रस श्लेष्म (चिपकने) का कारण है, उसी प्रकार क्रोधादि कषाय कर्म-श्लेष के कारण हैं ।

तत्त्वार्थ सूत्रानुसार - 'सकषायत्वाज्जीवः कर्मणो योग्यान् पुद्गलानादत्ते' कषायरंजित जीवात्मा कर्म योग्य पुद्गलों को ग्रहण करता है ।

(i) 'कृष' को 'कष' आदेश होकर 'आय' प्रत्यय लगाने पर कषाय शब्द बनता है - जिसका अर्थ है - जो कर्म रुपी क्षेत्र को सुख-दुःख रुपी धान्य की उपज के लिये विलेखन (कर्षण) करते-जोतते हैं, वे कषाय हैं ।

(ii) 'कलुष' धातु को 'कष' आदेश होकर कषाय शब्द बनता है जिसका अर्थ होता है - जो सहज शुद्ध-विशुद्ध जीवात्मा को कलुषित-कर्मपंकयुक्त करते हैं, वे कषाय हैं ।

(iii) 'कष' अर्थात् कुरेदना-खोदना । कृषि करना । जिससे जीव में कर्म रूपी फसल लहलहाती है, उसे कषाय कहते है ।

कषाय के प्रकार - कषाय चार प्रकार के कहे गये हैं - (1) क्रोध (2) मान (3) माया (4) लोभ ।

1 **क्रोध कषाय** - जीव अथवा अजीव पर आवेश, गुस्सा करना, क्रोध कषाय कहलाता है ।

2 **मान कषाय** - वस्तु, व्यक्ति, गुण, धन-संपत्ति आदि के कारण अंहकार-अभिमान करना, मान कषाय कहलाता है। इसके जाति, कुलादि आठ प्रकार शास्त्रों में बताये गये हैं ।

3 **माया कषाय** - जीव के कपट रूप आत्मिक परिणामों को माया कषाय कहते है ।

4 **लोभ कषाय** - वस्तु, पदार्थ आदि का संग्रह एवं परिग्रह तथा उस पर मोह-मूर्च्छा रखना लोभ कषाय कहलाता है । पदार्थादि का लालच करना, लोभ कषाय कहलाता है ।

उपरोक्त चारों कषाय तरतमता की अपेक्षा से चार-चार प्रकार के कहे गये हैं - (1) अनन्तानुबंधी (2) अप्रत्याख्यानी (3) प्रत्याख्यानी (4) संज्वलन ।

(1) जो अनन्त संसार का बंध करवाता है, वह अनन्तानुबंधी कषाय कहलाता है ।

(2) जो जीव को प्रत्याख्यान धारण नहीं करने देता है, वह अप्रत्याख्यानी कषाय कहलाता है ।

(3) जो जीव को सर्वविरति धर्म स्वीकार नहीं करने देता है, उसे प्रत्याख्यानी कषाय कहते है ।

(4) जो यथाख्यात चारित्र को रोकता है, उसे संज्वलन कषाय कहते है ।

प्रज्ञापना सूत्र में कषाय चतुष्क के चार - चार भेद कहे गये हैं - (१) स्वप्रतिष्ठित कषाय (२) परप्रतिष्ठित कषाय (३) तदुभयप्रतिष्ठित कषाय (४) अप्रतिष्ठित कषाय ।

यद्यपि क्रोध, मान, माया तथा लोभ, ये चारों कषाय समस्त दण्डकों में पाये जाते हैं फिर भी उनमें विशेष अन्तर होता है, यथा

1 देवों में लोभ कषाय की अधिकता होती है ।

2 मनुष्यों में मान कषाय की अधिकता होती है ।

3 तिर्यंचों में माया कषाय की अधिकता होती है ।

4 नारकी में क्रोध कषाय की अधिकता होती है ।

कषाय उदय -

1 पांच एकेन्द्रिय जीवों में कषाय का अस्पष्ट उदय होता है ।

2 विकलेन्द्रिय जीवों में थोडा स्पष्ट दर्शन होता है ।

3 पंचेन्द्रिय प्राणियों में स्पष्टतः कषाय दिखायी देते हैं ।

कषाय विजय -

संसारी जीवों में समस्त कषाय होते हैं । केवलज्ञानी तथा सिद्ध परमात्मा ही कषायमुक्त होते है । कषाय के कारण जीव जन्म-मरण एवं संसार के चक्कर में फंसता है ।

जो कषायों का सेवन करता है, वह उसी प्रकार दुर्गति में जाता है जैसे -

- क्रोध कषाय के कारण मुनि को चण्डकौशिक सर्प बनना पडा ।
- मान कषाय के कारण आर्य स्थूलिभद्र अन्तिम चार पूर्व अर्थ सहित नहीं पढ पाये ।
- माया कषाय के कारण साध्वी लक्ष्मणा का भव-भ्रमण बढा ।
- लोभ कषाय के कारण मम्मण सेठ दुर्गति का पात्र बना ।

जो कषायों का त्याग करता है, कषाय-विजयी बनता है, वह महावीर, दशार्णभद्र, कपिल केवली आदि की भाँति परमोज्ज्वल आत्म-स्वरूप का स्वामी बनता है ।

कषायों का उदय मोहनीय कर्म के फलस्वरूप होता है, अतः मोह पर विजय प्राप्त करनी चाहिये ।

यहाँ षष्ठम कषाय द्वार का वर्णन परिपूर्ण होता है ।

सप्तम लेश्या द्वार का कथन

लेश्या से अभिप्राय - जीव के आत्मिक परिणामों को लेश्या कहते है। अभयदेवकृत स्थानांग वृत्ति एवं ध्यान शतकानुसार - **'लिश्यते श्लिष्यते कर्मणा सह आत्मा अनया सा लेश्या।'** जिसके द्वारा प्राणी कर्म से संलिश्ट होता है, उसे लेश्या कहते है।

धवला, गोम्मटसारानुसार - जिसके द्वारा जीव स्वयं को पुण्य एवं पाप से लिप्त करता है, उसे लेश्या कहते है।

कषायानुंरंजित योग परिणामो लेश्या । कषाय युक्त आत्म-परिणामों को लेश्या कहते है।

वर्तमान में वैज्ञानिक जिसे आभामंडल (ora) कहते है, उसे जैन दर्शन में 'लेश्या' कहा गया है।

जीवात्मा के जैसे विचार होते हैं, वैसा आभामंडल निर्मित होता है। यदि क्रोध, कषाय, कामना के विचार होते है, तो कृष्ण-नील वर्ण का आभामंडल निर्मित होता है और यदि करूणा, कोमलता, कल्याण के विचार होते हैं तो श्वेत-स्वच्छ-सुंदर आभामंडल तैयार होता है।

उतराध्ययन वृहद्वृत्ति में लेश्या के आणविक आभा, कान्ति, प्रभाव आदि अनेक अर्थ किये गये हैं।

व्यक्ति का आभामंडल अन्यों को प्रभावित भी करता है और प्रभावित भी होता है। जिस आभामंडल की प्रभावकता अधिक होती है, वह अन्य पर हावी-प्रभावी हो जाती है। जैसे परमात्मा महावीर आदि तीर्थंकर वीतरागात्माओं के निर्मल आभामंडल में आते ही क्रोधी-विरोधी, विद्वेषी-संक्लेशी जीव अपना वैर-भाव भूलकर अपने मूल स्वभाव में रमण करते हैं। सांप-नेवला, चूहा-बिल्ली, सिंह-मृग अपने कषाय छोड़कर समवसरण में निष्कषायी बन जाते हैं।

लेश्या के दो प्रकार कहे गये हैं -

(1) **द्रव्य लेश्या** - कर्म पुद्गलों को द्रव्य लेश्या कहते है। शुभ भावों एवं अशुभ भावों के कारण आकृष्ट कर्म पुद्गलों को क्रमशः शुभ एवं अशुभ द्रव्य लेश्या कहते है।
उत्तराध्ययन वृहद्वृत्ति में आणविक आभा तथा शारीरिक वर्ण को द्रव्य लेश्या कहा गया है।

(2) **भाव लेश्या** - द्रव्य लेश्या के परिणाम स्वरूप जीवात्मा में प्रकट परिणामों-अध्यवसायों को भाव लेश्या कहते है। शुद्ध परिणामों को शुभ भाव लेश्या और अशुद्ध परिणामों को अशुभ भाव लेश्या कहते है। गोम्मटसार में जीव के अन्तरंग अध्यवसायों-विचारों को भाव लेश्या कहा है।

लेश्या छह प्रकार की कही गयी हैं - (1) कृष्ण लेश्या (2) नील लेश्या (3) कापोत लेश्या (4) तेजो लेश्या (5) पद्म लेश्या (6) शुक्ल लेश्या।

(1) **कृष्ण लेश्या** - जिन कर्म पुद्गलों का काजल के समान कृष्ण वर्ण तथा नीम से अनन्त गुणा कड़वा स्वाद होता है, उसे द्रव्य कृष्ण लेश्या कहते है।
द्रव्य कृष्ण लेश्या रूप अति अशुद्ध कर्म पुद्गलों से जीव में उत्पन्न अति क्रूरता, हिंसा, आरंभ-समारंभ, रौद्रता एवं मूर्च्छा के परिणामों को भाव कृष्ण लेश्या कहते है।

(2) **नील लेश्या** - जिस कर्म पुद्गलों का नीलम के समान नीला वर्ण तथा सौंठ से अनन्त गुणा तीक्ष्ण स्वाद होता है, उसे द्रव्य नील लेश्या कहते है।
द्रव्य नील लेश्या रूप कर्म पुद्गलों के कारण जीवात्मा में उत्पन्न माया, निर्लज्जता, स्वाद-लोलुपता के अशुद्ध परिणामों को भाव नील लेश्या कहते है।

(3) **कापोत लेश्या** - जिन कर्म पुद्गलों का कबूतर के गले के समान कापोत वर्ण तथा कच्चे आम से अनन्त गुणा खट्टा/आम्ल स्वाद होता है, उसे द्रव्य कापोत लेश्या कहते है ।
द्रव्य कापोत लेश्या रूप कर्म पुद्गलों के कारण जीवात्मा में उत्पन्न जड़ता, वक्रता एवं कर्कशता के क्लिष्ट परिणामों को भाव कापोत लेश्या कहते है ।

(4) **तेजो लेश्या** - जिन कर्म पुद्गलों का हिंगुल के समान रक्त वर्ण तथा आम से अनन्त गुणा मधुर स्वाद होता है, उसे द्रव्य तेजो (पीत) लेश्या कहते है ।
द्रव्य तेजो लेश्या के पुद्गलों के कारण जीवात्मा में जो पापभीरुता, अमूर्च्छा एवं धर्म के प्रति प्रियता के भाव प्रकट होते हैं, उसे भाव तेजो लेश्या कहते है ।

(5) **पद्म लेश्या** - जिन कर्म पुद्गलों का हल्दी के समान पीत वर्ण तथा मधु से अनन्त गुणा मधुर स्वाद होता है, उसे द्रव्य पद्म लेश्या कहते है ।
द्रव्य पद्म लेश्या के परिणाम स्वरूप जीवात्मा में उद्भूत सरलता, समता, सहिष्णुता के परिणामों को भाव पद्म लेश्या कहते है ।

(6) **शुक्ल लेश्या** - जिन कर्म पुद्गलों का शंख के समान श्वेत वर्ण और मिश्री से अनन्तगुणा मधुर स्वाद होता है, उसे द्रव्य शुक्ल लेश्या कहते है ।
द्रव्य शुक्ल लेश्या के परिणाम स्वरूप जीवात्मा में उत्पन्न वीतरागता, निर्मोहता, आत्म-रमणता के अत्युज्ज्वल आत्म परिणामों को भाव शुक्ल लेश्या कहते है ।

क्रम	लेश्या	भाव	वर्ण	गंध	रस	स्पर्श
1	कृष्ण लेश्या	हिंसा, क्रोध, मूर्च्छा आरंभ, समारंभ	काजल के समान कृष्ण	अति दुर्गंध	नीम से अनन्तगुणा कड़वा	अति कठोर
2	नील लेश्या	माया, निर्लज्जता, स्वाद लोलुपता	नीलम के समान नीला	अल्प दुर्गंध	सौंठ से अनन्तगुणा तीक्ष्ण	अल्प कठोर
3	कापोत लेश्या	कठोरता, जड़ता, वक्रता, कर्कशता	कबूतर के गले के समान कापोत	सामान्य दुर्गंध	कच्चे आम से अनन्तगुणा खट्टा	सामान्य कठोर
4	तेजो लेश्या	अमूर्च्छा, पाप-भीरुता, धर्म-प्रियता	हिंगुल के समान रक्त	सामान्य सुगंध	आम से अनन्तगुणा मधुर	सामान्य स्निग्ध
5	पद्म लेश्या	सरलता, सहजता, समता, सहिष्णुता	हल्दी के समान पीला	अल्प सुगंध	मधु से अनन्तगुणा मधुर	अल्प स्निग्ध
6	शुक्ल लेश्या	वीतरागता, निर्मोहता, आत्म-रमणता	शंख के समान श्वेत	अति सुगंध	मिश्री से अनन्तगुणा मधुर	अति स्निग्ध

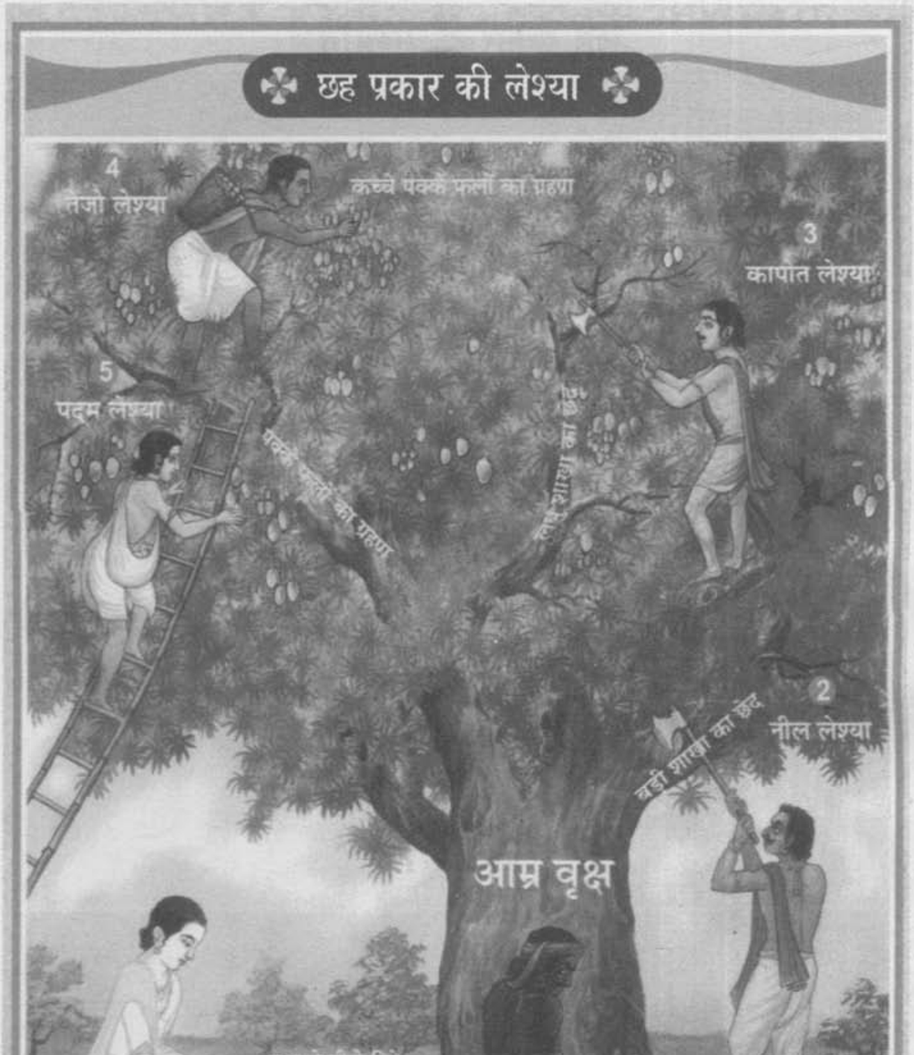
छह प्रकार की लेश्या
4
तेजो लेश्या
कच्चे पक्के फलों का ग्रहण
3
कापोत लेश्या
5
पद्म लेश्या
पक्के फलों का ग्रहण
2
नील लेश्या
बड़ी शाखा का छेद
आम्र वृक्ष
वृक्ष से नीचे गिरे
फलों का ग्रहण
6
शुक्ल लेश्या
आम्र के लिए मूल
का विच्छेद
1
कृष्ण लेश्या

• कृष्ण, नील एवं कापोत, ये तीनों लेश्या अशुभ कही गयी हैं पर कृष्ण से नील अल्प अशुभ और नील से कापोत अल्प अशुभ है।

• तेजो (पीत) पद्म और शुक्ल, ये तीनों लेश्या शुभ कही गयी हैं परन्तु तेजो से पद्म ज्यादा शुभ और पद्म से शुक्ल ज्यादा शुभ है।

प्रथम तीन लेश्या अशुद्ध, शेष तीन लेश्या शुद्ध हैं। इसे निम्नोक्त उदाहरण से समझ सकते हैं -

1 जामुन के लिये पेड को जड से उखाडना - **कृष्ण लेश्या।**

2 जामुन के लिये विस्तृत शाखाएँ काटना - **नील लेश्या।**

3 जामुन के लिये लघु शाखाएँ काटना - **कापोत लेश्या।**

4 जामुन के लिये गुच्छों को काटना - **तेजो लेश्या।**

5 जामुन के लिये फलों को ही तोडना - **पद्म लेश्या।**

6 भूमि पर गिरे हुए जामुन ही लेना - **शुक्ल लेश्या।**

अन्य उदाहरण इस प्रकार है -

(1) मनुष्यों और पशुओं को मार डालो - कृष्ण लेश्या।

(2) सिर्फ मनुष्यों को मार डालो - नील लेश्या।

(3) मनुष्यों में भी पुरुषों को मार डालो - कापोत लेश्या।

(4) शस्त्रधारी पुरुषों को मार डालो - तेजो लेश्या।

(5) प्रतिकार करने वाले शस्त्रधारी पुरुषों को मार डालो - पद्म लेश्या।

(6) किसी को भी मारे बिना धन लेकर चलो - शुक्ल लेश्या।

• गर्भज मनुष्यों और गर्भज तिर्यंचों में छहों लेश्या पायी जाती हैं।

• नारकी, तेउकाय, वायुकाय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय तथा वैमानिक देवों में तीन-तीन लेश्या पायी जाती हैं।

• कोई भी लेश्या अन्तर्मुहूर्त तक रहती है। अन्तर्मुहूर्त पश्चात् अन्य लेश्या प्रकट होती है।

लेश्या द्वार एवं इन्द्रिय द्वार का प्रस्तुतीकरण

गाथा

जोइसिय तेउलेसा, सेसा सव्वेवि हुंति चउलेसा ।
इंदियदारं सुगमं, मणुआणं सत्त समुग्घाया ॥15॥

संस्कृत छाया

ज्योतिष्कास्तेजोलेश्याकाः शेषाः सर्वेऽपि भवन्ति चतुर्लेश्याः ।
इन्द्रिय द्वारं सुगमं, मनुजानां सप्त समुद्घाताः ॥15॥

शब्दार्थ

जोइसिय - ज्योतिष्क देवों में	**तेउ** - तेजो (पीत)
लेसा - लेश्या	**सेसा** - शेष
सव्वेवि - सभी में	**हुंति** - होती हैं
चउ - चार प्रकार की	**लेसा** - लेश्या
इंदिय - इन्द्रिय	**दारं** - द्वार
सुगमं - सुगम, सरल	**मणुआणं** - मनुष्यों में
सत्त - सात	**समुग्घाया** - समुद्घात

भावार्थ

ज्योतिष्क देवों में तेजोलेश्या ही पायी जाती है । शेष दण्डकों में चार लेश्या पायी जाती हैं ।

इन्द्रिय द्वार सरल-सुगम है ।

मनुष्यों में सात समुद्घात पाये जाते हैं ॥15॥

विशेष विवेचन

प्रस्तुत गाथा में लेश्या तथा इन्द्रिय द्वार की विवेचना की गयी है।

चौबीस दण्डकों में लेश्या द्वार -

1 पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय में कृष्ण, नील, कापोत और तेजो नामक चार लेश्या पायी जाती हैं।

2 तेउकाय और वायुकाय में कृष्ण, नील, कापोत नामक तीन लेश्या पायी जाती हैं।

3 द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय में कृष्ण, नील, कापोत नामक तीन लेश्या पायी जाती हैं।

4 गर्भज मनुष्यों और गर्भज तिर्यंचों में छह लेश्या पायी जाती हैं।

5 नारकी जीवों में कृष्ण, नील, कापोत नामक तीन लेश्या पायी जाती हैं।

6 भवनपति और व्यंतर देवों में कृष्ण, नील, कापोत, तेजो नामक चार लेश्या पायी जाती हैं।

7 ज्योतिष्क देवों में मात्र तेजोलेश्या ही पायी जाती है।

8 वैमानिक देवों में तेजो, पद्म, शुक्ल नामक तीन लेश्या पायी जाती हैं।

कौनसी लेश्या कितने दण्डकों में ? -

1 कृष्ण लेश्या बावीस दण्डकों में पायी जाती है (ज्योतिष्क एवं वैमानिक देवों को छोड़कर)।

2 नील लेश्या कृष्ण लेश्या की भाँति बावीस दण्डकों में पायी जाती है।

3 कापोत लेश्या कृष्ण लेश्या की भाँति बावीस दण्डकों में पायी जाती है।

4 तेजो लेश्या अठारह दण्डकों में पायी जाती है (नरक, अग्निकाय, वायुकाय, विकलेन्द्रिय त्रिक को छोड़कर)।

5 पद्म लेश्या तीन दण्डकों में पायी जाती है (गर्भज मनुष्य - तिर्यंच तथा वैमानिक देव में)।

6 शुक्ल लेश्या पद्म लेश्या की भाँति तीन दण्डकों में पायी जाती है।

कितने दण्डकों में कितनी लेश्या ? -

1 एक दण्डक (ज्योतिष्क देव) में एक तेजो लेश्या पायी जाती है ।

2 छह दण्डकों (नारकी, विकलेन्द्रिय त्रिक, तेउ-वायुकाय) में तीन अशुभ और एक दण्डक (वैमानिक) में तीन शुभ लेश्या पायी जाती हैं ।

3 चौदह दण्डकों (पृथ्वी-अप्-वनस्पतिकाय, दस भवनपति देव, व्यंतर) में प्रथम चार लेश्या पायी जाती हैं ।

4 दो दण्डकों (गर्भज तिर्यंच-मनुष्य) में छह लेश्या पायी जाती हैं ।

चार गतियों में लेश्या द्वार -

1 मनुष्य गति में छहों लेश्या पायी जाती हैं ।

2 तिर्यंच गति में छहों लेश्या पायी जाती हैं ।

3 देव गति में छहों लेश्या पायी जाती हैं ।

4 नरक गति में तीन लेश्या पायी जाती हैं ।

षट्कायिक जीवों में लेश्या द्वार -

1-3 पृथ्वीकायिक, अप्कायिक तथा वनस्पतिकायिक जीवों में प्रथम चार लेश्या पायी जाती हैं ।

4-5 तेउकायिक एवं वायुकायिक जीवों में प्रथम तीन लेश्या पायी जाती हैं ।

6 त्रसकायिक जीवों में छहों लेश्या पायी जाती हैं ।

एकेन्द्रिय आदि जीवों में लेश्या द्वार -

1 एकेन्द्रिय जीवों में चार लेश्या पायी जाती हैं ।

2-4 विकलेन्द्रिय जीवों में तीन लेश्या पायी जाती हैं ।

5 पंचेन्द्रिय जीवों में छहों लेश्या पायी जाती हैं ।

जिज्ञासा - शास्त्रों में कहा गया है कि पृथ्वीकायिक, अप्कायिक तथा वनस्पतिकायिक जीवों में तीन या चार लेश्या पायी जाती हैं, इस प्रकार की व्यवस्था किस प्रकार संभव है ?

समाधान - तेजो लेश्या वाला कोई देव जब बादर लब्धि पर्याप्त पृथ्वीकाय आदि तीन दण्डकों में उत्पन्न होता है तब अपर्याप्त अवस्था तक इन तीनों में तेजो लेश्या का सद्भाव होता है। पर्याप्त अवस्था प्राप्त होने पर प्रथम तीन लेश्या ही होती हैं, अतः दोनों भेद संभव है।

अष्टम इन्द्रिय द्वार का विवेचन

इन्द्रिय से तात्पर्य - जिससे लिंग जीव को जाना जाये, उसे इन्द्रिय कहते है। आत्मा को जानने/पहचानने के चिह्न को इन्द्रिय कहते है।

जीव तथा अजीव मे भेद रेखा खींचने वाला चिह्न/लिंग/लक्षण इन्द्रिय है।

पूज्यपादकृत सर्वार्थसिद्धि के अनुसार - **इन्दति परमैश्वर्यम् भुनक्ति इन्द्रः, तस्य लिंगं-चिन्हं इति इन्द्रियं**। परम ऐश्वर्य को भोगने वाले आत्मा को इन्द्र तथा उस इन्द्र के चिन्ह को इन्द्रिय कहते है।

अनन्त ज्ञान-दर्शन-चारित्रादि अनन्त गुणों से युक्त होने से आत्मा परम ऐश्वर्य वाला कहा गया है।

इन्द्रियाँ पांच प्रकार की कही गयी हैं - (1) स्पर्शनेन्द्रिय (2) रसनेन्द्रिय (3) घ्राणेन्द्रिय (4) चक्षुरिन्द्रिय (5) श्रोत्रेन्द्रिय।

पाँच इन्द्रियाँ

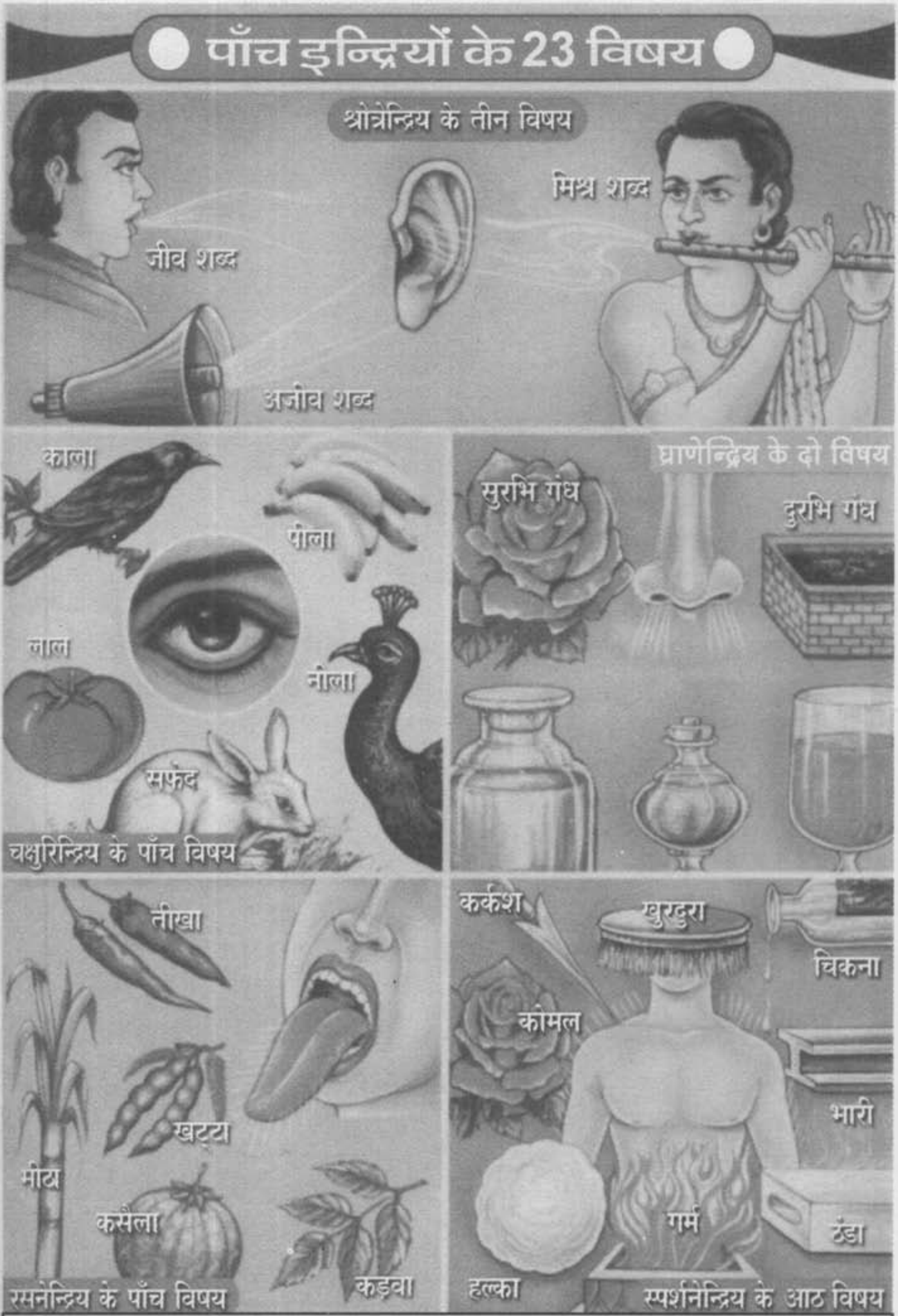
पाँच इन्द्रियों के 23 विषय
श्रोत्रेन्द्रिय के तीन विषय
जीव शब्द
मिश्र शब्द
अजीव शब्द
काला
पीला
लाल
नीला
सफेद
चक्षुरिन्द्रिय के पाँच विषय
घ्राणेन्द्रिय के दो विषय
सुरभि गंध
दुरभि गंध
तीखा
खट्टा
मीठा
कसैला
कड़वा
रसनेन्द्रिय के पाँच विषय
कर्कश
खुरदुरा
चिकना
कोमल
भारी
गर्म
ठंडा
हल्का
स्पर्शनेन्द्रिय के आठ विषय

(1) **स्पर्शनेन्द्रिय** - जिस इन्द्रिय से स्पर्श का अनुभव होता है, उसे स्पर्शनेन्द्रिय कहते है ।

स्पर्शनेन्द्रिय के आठ विषय कहे गये हैं - (1) कर्कश (2) मृदु (3) गुरु (4) लघु (5) शीत (6) उष्ण (7) स्निग्ध (8) रुक्ष ।

(2) **रसनेन्द्रिय** - जिस इन्द्रिय से रस/स्वाद का ज्ञान होता है, उसे रसनेन्द्रिय कहते है ।

रसनेन्द्रिय के पांच विषय कहे गये हैं - (1) तिक्त (2) कटु (3) कषाय (4) आम्ल (5) मधुर ।

(3) **घ्राणेन्द्रिय** - जिस इन्द्रिय से गंध का ज्ञान होता है, उसे घ्राणेन्द्रिय कहते है ।

घ्राणेन्द्रिय के दो विषय कहे गये हैं - (1) सुगंध (2) दुर्गंध ।

(4) **चक्षुरिन्द्रिय** - जिस इन्द्रिय से वर्ण का ज्ञान होता है, उसे चक्षुरिन्द्रिय कहते है ।

चक्षुरिन्द्रिय के पांच विषय कहे गये हैं - (1) कृष्ण (2) नील (3) रक्त (4) पीत (5) श्वेत ।

(5) **श्रोत्रेन्द्रिय** - जिस इन्द्रिय से शब्द का ज्ञान होता है, उसे श्रोत्रेन्द्रिय कहते है ।

श्रोत्रेन्द्रिय के तीन विषय कहे गये हैं - (1) सचित्त (जीव) शब्द (2) अचित्त (अजीव) शब्द (3) मिश्र (सचित्ताचित्त) शब्द ।

पांच प्रकार के जीव -

(1) जिन जीवों में मात्र स्पर्शनेन्द्रिय पायी जाती है, उन्हें एकेन्द्रिय कहते हैं ।

(2) जिन जीवों के स्पर्शनेन्द्रिय और रसनेन्द्रिय रुप दो इन्द्रियाँ होती हैं, उन्हें द्वीन्द्रिय कहते हैं ।

(3) जिन जीवों के स्पर्शन-रसन और घ्राण रुप तीन इन्द्रियाँ होती हैं, उन्हें त्रीन्द्रिय कहते हैं ।

(4) जिन जीवों के स्पर्शन-रसन-घ्राण और चक्षु रुप चार इन्द्रियाँ होती हैं, उन्हें चतुरिन्द्रिय कहते हैं ।

(5) जिन जीवों के पाँचों इन्द्रियाँ होती हैं, उन्हें पंचेन्द्रिय कहते हैं ।

चार गतियों में इन्द्रियाँ -

नरक-देव-मनुष्य और तिर्यंच, इन चारों गतियों में पांच-पांच इन्द्रियाँ पायी जाती हैं ।

कितने दण्डकों में कितनी इन्द्रियाँ ? -

1 पांच दण्डकों (पांच स्थावर) में एक इन्द्रिय (स्पर्शनेन्द्रिय) पायी जाती है ।

2 एक दण्डक (द्वीन्द्रिय) में दो इन्द्रियाँ (स्पर्शनेन्द्रिय एवं रसनेन्द्रिय) पायी जाती हैं ।

3 एक दण्डक (त्रीन्द्रिय) में तीन इन्द्रियाँ (स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय तथा घ्राणेन्द्रिय) पायी जाती हैं ।

4 एक दण्डक (चतुरिन्द्रिय) में चार इन्द्रियाँ (उपरोक्त सहित चक्षुरिन्द्रिय) पायी जाती हैं ।

5 सोलह दण्डकों (नारकी, देव, गर्भज मनुष्य, गर्भज तिर्यंच) में पांच इन्द्रियाँ पायी जाती हैं ।

कौनसी इन्द्रिय कितने दण्डकों में ? -

1 स्पर्शनेन्द्रिय समस्त चौबीस दण्डकों में पायी जाती है ।

2 रसनेन्द्रिय उन्नीस दण्डकों (स्थावर सिवाय) में पायी जाती है ।

3 घ्राणेन्द्रिय अठारह दण्डकों (स्थावर एवं द्वीन्द्रिय सिवाय) में पायी जाती है ।

4 चक्षुरिन्द्रिय सतरह दण्डकों (स्थावर, द्वीन्द्रिय एवं त्रीन्द्रिय सिवाय) में पायी जाती है ।

5 श्रोत्रेन्द्रिय सोलह दण्डकों (स्थावर एवं विकलेन्द्रिय त्रिक सिवाय) में पायी जाती है ।

षट्कायिक जीवों में इन्द्रियाँ -

1-5 पृथ्वीकायिक - अप्कायिक - तेउकायिक - वायुकायिक - वनस्पतिकायिक जीवों में एक मात्र स्पर्शनेन्द्रिय पायी जाती है ।

6 त्रसकायिक जीवों में पांचों इन्द्रियाँ पायी जाती हैं ।

इन्द्रिय-विषयाधीन होने वाले को दुःख उठाना होता है तथा भव-भव में गोते खाने पडते हैं -

हाथी स्पर्शनेन्द्रिय के वशीभूत होकर, मछली रसनेन्द्रिय स्वाद के वशीभूत होकर, भ्रमर घ्राणेन्द्रिय (गंध) के वशीभूत होकर, पतंग चक्षुरिन्द्रिय के वशीभूत होकर तथा हरिण श्रोत्रेन्द्रिय (शब्द) के वशीभूत होकर प्राण गंवाता है । अतः बुद्धिमान एवं आत्मप्रज्ञ को इन्द्रियों एवं उसके विषयों पर विजय प्राप्त कर जितेन्द्रिय बनना चाहिये ।

यहाँ अष्टम इन्द्रिय द्वार का विवेचन परिपूर्ण होता है ।

नवम समुद्घात द्वार का प्रारंभिक विवेचन

गाथा

वेयण कसाय मरणे, वेउव्विय तेयए अ आहारे ।
केवलि य समुग्घाया, सत्त इमे हुंति सन्नीणं ॥16॥

संस्कृत छाया

वेदना-कषाय-मरणं, वैक्रियस्तैजश्चाहारकः ।
केवलिकश्च समुद्घाताः सप्तेमे भवन्ति संज्ञिनाम् ॥16॥

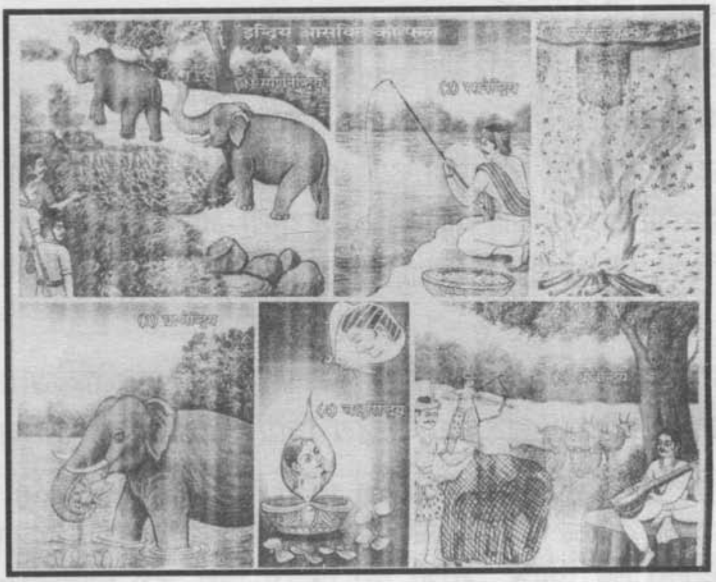

शब्दार्थ

वेयण - वेदना समुद्घात	**कसाय** - कषाय समुद्घात
मरणे - मरण समुद्घात	**वेउव्विय** - वैक्रिय समुद्घात
तेयए - तैजस समुद्घात	**य** - और
आहारे - आहारक समुद्घात	**केवलि** - केवली समुद्घात
य - और	**समुग्घाया** - समुद्घात
सत्त - सात	**इमे** - ये
हुंति - होते हैं	**सन्नीणं** - संज्ञी जीवों में

भावार्थ

समुद्घात सात प्रकार के कहे गये हैं - 1 वेदना समुद्घात 2 कषाय समुद्घात 3 मरण समुद्घात 4 वैक्रिय समुद्घात 5 तैजस समुद्घात 6 आहारक समुद्घात 7 केवली समुद्घात । संज्ञी जीवों में उपरोक्त सातों समुद्घात पाये जाते हैं ।।16।।

चौबीस दण्डकों में समुद्घात

गाथा

एगिंदियाण केवल,-तेउ-आहारग-विणा उ चत्तारि ।
ते वेउव्वियवज्जा विगला सन्नीण ते चेव ।।17।।

संस्कृत छाया

एकेन्द्रियाणां केवल-तैजसाहारकान् विना तु चत्वारः ।।
ते वैक्रियवर्ज्या विकलानां संज्ञिनां ते चेव ।।17।।

शब्दार्थ

एगिंदियाण - एकेन्द्रिय जीवों में	**केवल** - केवली समुद्घात
तेउ - तैजस समुद्घात	**आहारग** - आहारक समुद्घात
विणा - बिना	**उ** - तथा
चत्तारि - चार समुद्घात	**ते** - उन (चार समुद्घातों में से)
वेउव्विय - वैक्रिय समुद्घात	**वज्जा** - छोड़कर
विगला - विकलेन्द्रियों में	**सन्नीण** - संज्ञी जीवों में
ते - वे सातों समुद्घात	**चेव** - निश्चित रूप से

भावार्थ

एकेन्द्रिय जीवों में तैजस, आहारक और केवली समुद्घात के अतिरिक्त चार समुद्घात पाये जाते हैं ।

विकलेन्द्रिय जीवों में तैजस-आहारक-केवली और वैक्रिय समुद्घात के सिवाय तीन समुद्घात पाये जाते हैं । संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों में सातों समुद्घात पाये जाते हैं ।।17।।

विशेष विवेचन

उपरोक्त गाथाद्वय में नवम समुद्घात द्वार का वर्णन प्रस्तुत किया गया है।

समुद्घात से अभिप्राय -

सम् अर्थात् एक साथ।

उत् अर्थात् प्रबलतापूर्वक।

घात अर्थात् नष्ट करना।

एक साथ आत्म प्रदेशों को प्रबलतापूर्वक बाहर निकालकर उदीरणापूर्वक कर्मों का क्षय करना, समुद्घात कहलाता है।

समुद्घात सात प्रकार के कहे गये हैं - (1) वेदना समुद्घात (2) कषाय समुद्घात (3) मरण समुद्घात (4) वैक्रिय समुद्घात (5) तैजस समुद्घात (6) आहारक समुद्घात (7) केवली समुद्घात।

(1) वेदना समुद्घात - वेदना (अशाता) से आकुल-व्याकुल आत्मा प्रबलतापूर्वक उदरादि के रिक्त भाग एवं स्कंधादि के अंतर को भर के शरीर की ऊँचाई एवं मोटाई प्रमाण दण्डाकार होकर वेदनीय कर्म के पुद्गलों की उदीरणा करके उन्हें उदय आवलिका में लाकर एक साथ बहुत से कर्मों को प्रबलतापूर्वक खपाता है, उसे वेदना समुद्घात कहते है।

जिस समुद्घात के द्वारा अशाता वेदनीय के कर्म पुद्गलों का विशेष रूप से क्षय होता है, उसे वेदना समुद्घात कहते है।

वेदना समुद्घात वेदनीय कर्माश्रित होता है।

(2) कषाय समुद्घात - कषाय से आकुल-व्याकुल आत्मा प्रबलतापूर्वक वेदना समुद्घात में उक्त दण्डाकार होकर कषाय मोहनीय कर्म के पुद्गलों की उदीरणा करके उन्हें उदय आवलिका में लाकर एक साथ बहुत से कर्मों को प्रबलतापूर्वक खपाता है, उसे कषाय समुद्घात कहते है।

जिस समुद्घात के द्वारा कषाय मोहनीय के कर्म पुद्गलों का विशेष रूप से क्षय होता है, उसे कषाय समुद्घात कहते है ।
कषाय समुद्घात कषाय मोहनीय कर्माश्रित होता है ।

(3) **मरण समुद्घात** - अन्य कर्मों की अपेक्षा आयुष्य कर्म के अधिक पुद्गल होने पर मरणान्त काल में आकुल-व्याकुल आत्मा प्रबलतापूर्वक मरण से अंतर्मुहूर्त पूर्व शरीर के आत्म प्रदेशों को बाहर निकालकर आगामी उत्पत्ति स्थान तक अपने देह प्रमाण दण्डाकार करके (जघन्य से अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट से असंख्यात योजन) अंतर्मुहूर्त में आयुष्य कर्म के पुद्गलों की उदीरणा करके उन्हें उदय आवलिका में लाकर एक साथ बहुत से कर्मों को प्रबलतापूर्वक खपाता है, उसे मरण समुद्घात कहते है ।
जिस समुद्घात के द्वारा आयुष्य कर्म के पुद्गलों का विशेष रूप से क्षय होता है, उसे मरण समुद्घात कहते है ।
मारणान्तिक समुद्घात अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आयुष्य अवशिष्ट (शेष) रहने पर आयुष्य कर्माश्रित होता है ।

(4) **वैक्रिय समुद्घात** - वैक्रिय लब्धिधर आत्मा वैक्रिय शरीर निर्माण के समय दण्डाकार करके वैक्रिय शरीर नाम कर्म के पुद्गलों की उदीरणा करके, उन्हें उदय-आवलिका में लाकर एक साथ बहुत से कर्मों को प्रबलतापूर्वक खपाता है, उसे वैक्रिय समुद्घात कहते है ।
जिस समुद्घात के द्वारा वैक्रिय शरीर नाम कर्म के पुद्गलों का विशेष रूप से क्षय होता है, उसे वैक्रिय समुद्घात कहते है ।
वैक्रिय समुद्घात वैक्रिय शरीर नाम कर्म के आश्रित होता है ।

(5) **तैजस समुद्घात** - तेजोलेश्या-लब्धिधर आत्मा तैजस शरीर के

निर्माण के समय उत्कृष्ट से संख्यात योजन लंबाकार तथा स्वशरीर प्रमाण तैजस शरीर नाम कर्म के पुद्गलों की उदीरणा करके, उन्हें उदय-आवलिका में लाकर एक साथ बहुत से कर्मों का प्रबलतापूर्वक क्षय करता है, उसे तैजस समुद्घात कहते है ।

जिस समुद्घात के द्वारा तैजस शरीर नाम कर्म के पुद्गलों का विशेष रुप से क्षय होता है, उसे तैजस शरीर समुद्घात कहते है । तैजस समुद्घात तैजस शरीर नाम कर्म के आधार पर होता है ।

(6) आहारक समुद्घात - आहारक लब्धिधर आत्मा आहारक शरीर निर्माण के समय उत्कृष्ट से संख्यात योजन लंबाकार तथा स्वशरीर प्रमाण आहारक शरीर नाम कर्म के पुद्गलों की उदीरणा करके, उन्हें उदय आवलिका में लाकर प्रबलतापूर्वक एक साथ बहुत से कर्मों को प्रबलतापूर्वक खपाता है, उसे आहारक समुद्घात कहते है ।

जिस समुद्घात में आहारक शरीर नाम कर्म के पुद्गलों का विशेषरुपेण क्षय होता है, उसे आहारक समुद्घात कहते है । आहारक समुद्घात आहारक शरीर नाम कर्म के कारण होता है ।

(7) केवली समुद्घात - केवली भगवंत के नाम, गौत्र और वेदनीय इन तीन कर्मों की स्थिति आयुष्य कर्म से अधिक हो, तब तीन कर्मों की स्थिति को आयुष्य कर्म के समान बनाने के लिये वे अपने आत्म - प्रदेशों को बाहर निकालकर उत्कृष्ट से संख्यात योजन लंबाकार तथा स्वशरीर प्रमाण लोक में व्याप्त करते हैं, उसका संहरण करते हैं, तब नाम, गौत्र तथा वेदनीय कर्म के पुद्गलों की विशेष रुप से निर्जरा होती है, उसे केवली समुद्घात कहते है । केवली समुद्घात में नाम, गौत्र तथा वेदनीय इन तीन कर्मों का अपवर्तनाकरण के द्वारा विशेष रुप से क्षय होता है ।

केवली समुद्घात वेदनीय, नाम और गोत्र कर्म के आधार पर होता है।

विशेषावश्यक भाष्य, पंचसंग्रह आदि में केवली समुद्घात के आवर्जीकरण, आवर्जितकरण एवं आवश्यककरण, तीन नाम प्राप्त होते हैं।

वह क्रिया, जिससे कर्मदलिकों का उदयावलिका में निक्षेप होता है, उसे आवर्जीकरण कहते है।

केवली समुद्घात में आत्मा मोक्ष की ओर झुकी हुई होने के कारण इसे आवर्जितकरण कहते है।

केवलज्ञानियों के वेदनीय, नाम तथा गोत्र कर्म की स्थिति आयुष्य कर्म की अपेक्षा अधिक होने पर अवश्यमेव किये जाने के कारण इसे आवश्यककरण कहते है।

केवली समुद्घात आठ समय का होता है -

(1) पहले समय में आत्म प्रदेशों को शरीर से बाहर निकालकर संपूर्ण लोक प्रमाण ऊँचा एवं स्व देह प्रमाण चौड़ा दण्ड निर्मित करते हैं।

(2) दूसरे समय में उत्तर से दक्षिण अथवा पूर्व से पश्चिम लोकान्त तक पहला कपाट निर्मित करते हैं।

(3) तीसरे समय में पूर्व से पश्चिम अथवा उत्तर से दक्षिण तक लोकान्त प्रमाण दूसरा कपाट निर्मित करते हैं।

(4) चौथे समय में आत्म प्रदेश संपूर्ण चौदह राजलोक में व्याप्त हो जाते हैं।

(5) पांचवें समय में आंतरे (अन्तर) में से आत्म प्रदेशों को संकुचित करते हैं।

(6) छट्ठे समय में मंथान में से आत्म प्रदेशों को संकुचित करते हैं ।

(7) सातवें समय में कपाट में से आत्म प्रदेशों को संकुचित करते हैं ।

(8) आठवें समय में दण्ड में से आत्म प्रदेशों को संकुचित कर शरीरस्थ होते हैं ।

समुद्घात सप्तक के संदर्भ में विशेष तथ्य -

1 **<u>काल</u>** - केवली समुद्घात आठ समय का होता है, शेष समुद्घातों का काल अन्तर्मुहूर्त्त प्रमाण होता है ।

2 **<u>नवीन कर्मबंधन</u>** - कषाय समुद्घात में नये कर्मों का बंधन होता है और पुराने कर्मों की निर्जरा होती है ।

3 **<u>पूर्वोपार्जित कर्मों की निर्जरा</u>** - वेदना, मरण और केवली समुद्घात में पूर्वोपार्जित कर्मों की निर्जरा होती है परन्तु नये कर्मों का बंधन नहीं होता है ।

4 **<u>पुद्गलों का ग्रहण</u>** - वैक्रिय, आहारक और तैजस, इन तीन समुद्घातों में अपने-अपने शरीर नाम कर्म के कर्म प्रदेशों की निर्जरा होती है, परंतु नये कर्मों का आश्रव नहीं होता है । इन समुद्घातों में शरीर रचना के लिये आवश्यक पुद्गलों का ग्रहण अवश्यमेव होता है ।

5 **<u>अनिच्छित</u>** - वेदना, कषाय और मरण समुद्घात स्वेच्छा से नहीं होते हैं ।

6 **<u>इच्छित</u>** - वैक्रिय, आहारक, तैजस और केवली समुद्घात स्वेच्छा से किये जाते हैं ।

7 **<u>अनिश्चित</u>** - वेदना, कषाय और मरण समुद्घात, प्रत्येक वेदना, कषाय और मरण के प्रसंग पर नहीं होते हैं । केवली समुद्घात प्रत्येक केवली भगवंत को नहीं होता है ।

8 <u>निश्चित</u> - वैक्रिय, आहारक और तैजस समुद्घात उन-उन शरीरों के निर्माण के अवसर पर अवश्यमेव होते हैं ।

9 <u>सर्वाधिक</u> - सर्वाधिक संख्या वेदना समुद्घात करने वाले जीवों की हैं ।

10 <u>न्यूनतम</u> - न्यूनतम संख्या आहारक समुद्घात करने वाले जीवों की है क्योंकि संपूर्ण भवचक्र में जीव अधिकतम चार बार और एक भव में अधिकतम दो बार ही आहारक समुद्घात कर सकता है ।

11 <u>छद्मस्थ-केवली</u> - प्रथम छह समुद्घात छद्मस्थ जीवों में पाये जाते हैं परन्तु केवली समुद्घात केवली भगवंतों में ही हो सकता है ।

12 <u>अतीत</u> - पूर्वभवों में चौबीस दण्डकवर्ती जीवों को प्रथम पांचों समुद्घात अनन्त बार हो चुके हैं । आहारक समुद्घात बिना वाले भी हैं और आहारक समुद्घात वाले भी हैं । पूर्वभवों में केवली समुद्घात किसी भी जीव ने कभी नहीं किया है ।

समुद्घात तथा दशम दृष्टि द्वार का प्रस्तुतीकरण

-

गाथा

पणगब्भ-तिरिसुरेसु, नारय वाउसु चउर तिय सेसे ।
विगल दु दिट्ठि थावर, मिच्छत्ति सेस तिय दिट्ठी ।।18।।

संस्कृत छाया

पञ्च-गर्भजतिर्यक्-सुरेषु नारकवाटवोश्चत्वारस्रयः शेषेषु ।
विकले द्वे दृष्टीः स्थावरे, मिथ्येति शेषेषु तिस्रो दृष्टयः ।।18।।

शब्दार्थ

पण - पांच (समुद्घात)	गब्भ - गर्भज
तिरि - तिर्यंच (में)	सुरेसु - देवों में
नारय - नारकी (में)	वाउसु - वायुकाय में
चउर - चार (समुद्घात)	तिय - तीन (समुद्घात)
सेसे - शेष दण्डकों में	विगल - विकलेन्द्रिय में
दु - दो	दिट्ठि - दृष्टियाँ
थावर - स्थावर (में)	मिच्छ - मिथ्या (दृष्टि)
त्ति - इस प्रकार	सेस - शेष दण्डकों में
तिय - तीन	दिट्ठी - दृष्टियाँ

भावार्थ

गर्भज तिर्यंच और देव में पांच समुद्घात पाये जाते हैं। नारकी और वायुकायिक जीवों में चार समुद्घात पाये जाते हैं। शेष दण्डकों (पृथ्वीकायिक-अप्कायिक-तेउकायिक-वनस्पतिकायिक-विकलेन्द्रिय त्रिक) में तीन समुद्घात पाये जाते हैं।

स्थावर (पृथ्वी-अप्-तेउ-वायु-वनस्पतिकाय) में मिथ्यादृष्टि, विकलेन्द्रिय में दो दृष्टियाँ और शेष दण्डकों (देव-मनुष्य पंचेन्द्रिय तिर्यंच-नारकी) में तीन दृष्टियाँ पायी जाती हैं ।।18।।

विशेष विवेचन

प्रस्तुत गाथा में समुद्घात द्वार का एवं दशम दृष्टि द्वार का कथन किया गया है।

चौबीस दण्डकों में समुद्घात -

1 पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय और वनस्पतिकाय के जीवों में तीन समुद्घात (वेदना, कषाय और मरण) पाये जाते हैं।

2 द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवों में तीन समुद्घात (वेदना, कषाय और मरण) पाये जाते हैं।

3 वायुकायिक और नारकी जीवों में चार समुद्घात (वेदना, कषाय, मरण और वैक्रिय) पाये जाते हैं।

4 गर्भज तिर्यंच में और समस्त देवों में पांच समुद्घात (वेदना, कषाय, मरण, वैक्रिय एवं तैजस) पाये जाते हैं।

5 गर्भज मनुष्यों में सात समुद्घात पाये जाते हैं।

कितने दण्डकों में कितने समुद्घात ? –

1 सात दण्डकों में तीन समुद्घात पाये जाते हैं।

2 दो दण्डकों में चार समुद्घात पाये जाते हैं।

3 चौदह दण्डकों में पांच समुद्घात पाये जाते हैं।

4 एक दण्डक में सात समुद्घात पाये जाते हैं।

कौनसा समुद्घात कितने दण्डकों में ? –

1 वेदना समुद्घात समस्त दण्डकों में पाया जाता है।

2 कषाय समुद्घात समस्त दण्डकों में पाया जाता है।

3 मरण समुद्घात समस्त दण्डकों में पाया जाता है।

4 वैक्रिय समुद्घात सतरह दण्डकों (1-2 गर्भज मनुष्य - तिर्यंच, 3-15 समस्त देव, 16 नारकी, 17 वायुकाय) में पाया जाता है।

5 तैजस समुद्घात पन्द्रह दण्डकों (1-2 गर्भज मनुष्य - तिर्यंच, 3-15 समस्त देव) में पाया जाता है।

6 आहारक समुद्घात एक दण्डक (गर्भज मनुष्य) में पाया जाता है।

7 केवली समुद्घात एक दण्डक (गर्भज मनुष्य) में पाया जाता है।

जाति पंचक में समुद्घात –

1 एकेन्द्रिय जीवों में चार समुद्घात पाये जाते हैं।

2-4 विकलेन्द्रिय त्रिक में तीन समुद्घात पाये जाते हैं।

5 पंचेन्द्रिय जीवों में सात समुद्घात पाये जाते हैं।

षट्कायिक जीवों में समुद्घात द्वार -

4 पृथ्वीकायादि चार स्थावर जीवों में तीन समुद्घात पाये जाते हैं ।

5 वायुकाय में चार समुद्घात पाये जाते हैं ।

6 त्रसकाय में सात समुद्घात पाये जाते हैं ।

यहाँ समुद्घात द्वार का विवेचन परिपूर्ण होता है ।

दशम दृष्टि द्वार का विवेचन

दृष्टि से अभिप्राय - जीव के दृष्टिकोण को दृष्टि कहते है ।

शास्त्रों में तीन प्रकार की दृष्टियाँ कही गयी हैं - (1) मिथ्यादृष्टि (2) मिश्रदृष्टि (3) सम्यग्दृष्टि ।

1 **मिथ्यादृष्टि** - जो जैसा नहीं है, उसे वैसा मानना, मिथ्यादृष्टि कहलाती है । इसे मिथ्यात्व भी कहते है । मिथ्यादृष्टि वाले जीव को मिथ्यात्वी कहते है ।

मिथ्यात्व मोहनीय कर्मोदयादरुचित जिनवचना ।

मिथ्यात्व मोहनीय के उदय से जिनवचनों से विपरीत श्रद्धा वाला मिथ्यादृष्टि कहलाता है ।

जिस प्रकार मदिरापान के कारण बेभान-उन्मत्त बना व्यक्ति पिता को पुत्र और पुत्र को पिता मान लेता है, माता के साथ पत्नीवत् व्यवहार करता है और पत्नी के साथ मातृवत् व्यवहार करता है, उसी प्रकार मिथ्यात्वी जीव धर्म को अधर्म तथा अधर्म को धर्म मानता है । वह सुदेव, सुगुरु और सुधर्म में श्रद्धा-विश्वास न रखता हुआ कुदेव-कुगुरु-कुधर्म में श्रद्धा रखता है एवं उनकी उपासना-अर्चना करता है ।

सिद्धान्त में विवक्षा भेद से मिथ्यात्व अनेक भेदों वाला कहा गया है ।

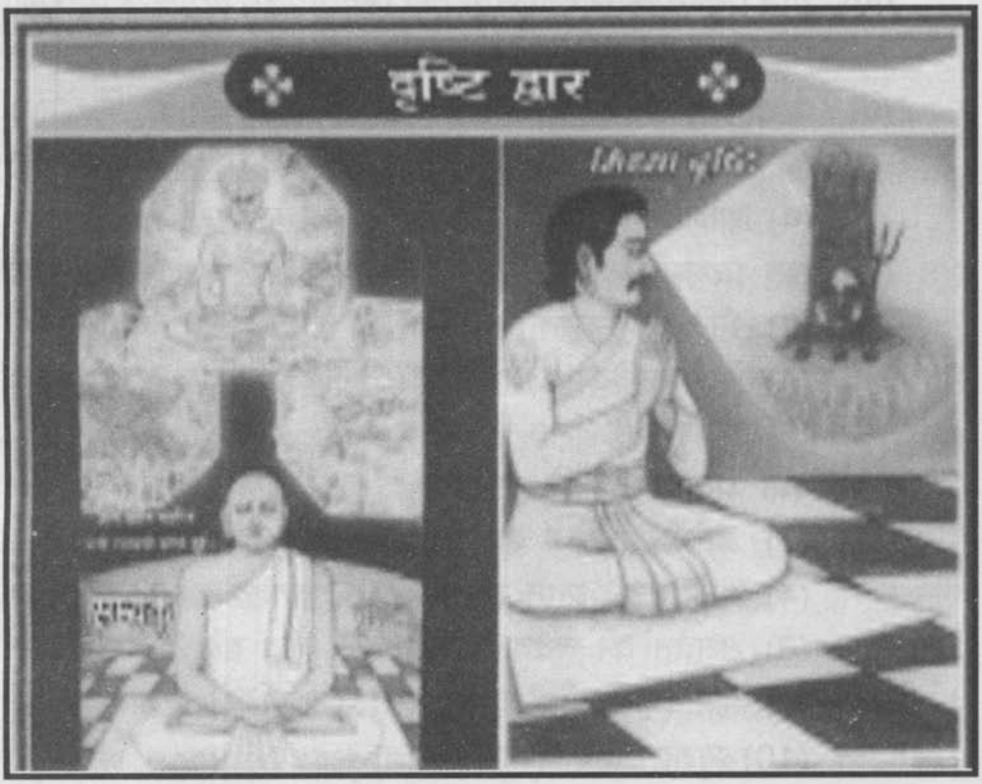
दृष्टि द्वार

(i) **दो प्रकार के मिथ्यात्व** - (1) व्यवहार राशि मिथ्यात्व (2) अव्यवहार राशि मिथ्यात्व ।

(ii) **तीन प्रकार के मिथ्यात्व** - (1) अविनय मिथ्यात्व (2) अज्ञान मिथ्यात्व (3) आशातना मिथ्यात्व ।

(iii) **समय की अपेक्षा से तीन प्रकार के मिथ्यात्व** - (1) अनादि अनन्त (2) अनादि सांत (3) सादि सांत ।

(iv) **चार प्रकार के मिथ्यात्व** - (1) प्रर्वतन मिथ्यात्व (2) प्ररुपणा मिथ्यात्व (3) परिणाम मिथ्यात्व (4) प्रदेश मिथ्यात्व ।

(v) **पांच प्रकार के मिथ्यात्व** - (1) आभिग्रहिक मिथ्यात्व (2) अनाभिग्रहिक मिथ्यात्व (3) सांशयिक मिथ्यात्व (4) आभिनिवेशिक मिथ्यात्व (5) अनाभोगिक मिथ्यात्व ।

(vi) **छह प्रकार के मिथ्यात्व** - (1) लौकिक देवगत मिथ्यात्व (2) लौकिक गुरुगत मिथ्यात्व (3) लौकिक धर्मगत मिथ्यात्व (4) लोकोत्तर देवगत मिथ्यात्व (5) लोकोत्तर गुरुगत मिथ्यात्व (6) लोकोत्तर धर्मगत मिथ्यात्व ।

(vii) **दस प्रकार के मिथ्यात्व** - (1) धर्म को अधर्म मानना (2) अधर्म को धर्म मानना (3) साधु को असाधु मानना (4) असाधु को साधु मानना (5) मुक्त को अमुक्त मानना (6) अमुक्त को मुक्त मानना (7) जीव को अजीव मानना (8) अजीव को जीव मानना (9) उन्मार्ग को सुमार्ग मानना (10) सुमार्ग को उन्मार्ग मानना ।

मिथ्यात्व मोहनीय कर्मोदय से जीव मिथ्यादृष्टि वाला होता है । उस कारण वह जड पदार्थों में ममत्व बुद्धि रखता है और आत्म के शुद्ध स्वभाव को विस्मृत कर कषाय, आसक्ति और मिथ्यात्व के अधीन होता है और कर्म बंधन करता हुआ संसार-कान्तार में परिभ्रमण करता है एवं दुःखों को भोगता है ।

2 **मिश्रदृष्टि** – जिस प्रकार नालिकेर द्वीप के मनुष्यों को अन्न पर न रुचि होती है, न अरुचि होती है, ठीक इसी प्रकार जिस व्यक्ति की आत्मधर्म (जैनधर्म) पर न रुचि होती है, न अरुचि होती है, उसे मिश्रदृष्टि कहा जाता है।

सम्यक् मिथ्या च दृष्टिर्येषां ते सम्यग्मिथ्यादृष्टिकाः जिनोक्त प्रति उदासीनाः। जो जिन वचनों के प्रति उदासीन हो, उस पर न रुचि हो, न अरुचि हो, वह मिश्रदृष्टि कहलाता है।

3 **सम्यक्दृष्टि** – जो जैसा है, उसे वैसा मानना सम्यक्दृष्टि कहलाती है। इसे समकित, सम्यक्त्व या सम्यक्दर्शन भी कहते हैं। शास्त्रों में इसे श्रद्धा, रुचि भी कहा गया है। सम्यक्दृष्टि युक्त जीव सयक्त्वी / सम्यक्दर्शनी कहलाता है।

सम्यग्-अविपरीता दृष्टि-दर्शनं रुचिस्तत्त्वानि प्रति येषां ते सम्यग्दृष्टिकाः। जो जीवादि पदार्थों को यथार्थ रूप से जानता हुआ उन पर श्रद्धा रखता है, वह सम्यग्दृष्टि कहलाता है।

यथार्थ को यथार्थ एवं भ्रम को भ्रम मानना, धर्म को धर्म और अधर्म को अधर्म मानना, सम्यक्त्व कहलाता है।

सम्यक्त्व अनेकानेक प्रकार के कहे गये हैं –

दो प्रकार के सम्यक्त्व – (१) निसर्गज, (२) अधिगमज; (१) व्यवहार, (२) निश्चय; (१) पौद्गलिक, (२) अपौद्गलिक।

तीन प्रकार के सम्यक्त्व – (१) दीपक, (२) रोचक, (३) कारक।

पांच प्रकार के सम्यक्त्व – (१) क्षायिक, (२) क्षायोपशमिक, (३) औपशमिक, (४) सास्वादन, (५) वेदक।

दस प्रकार की रुचि (सम्यक्त्व) – (१) निसर्ग रुचि, (२) आज्ञा रुचि, (३) उपदेश रुचि, (४) सूत्र रुचि, (५) बीज रुचि, (६) अभिगम रुचि, (७) विस्तार रुचि, (८) संक्षेप रुचि, (९) क्रिया रुचि, (१०) धर्म रुचि।

सम्यक्त्व दर्शन प्राप्त होने के पश्चात् जीव की जीवन-दृष्टि परिवर्तित हो जाती है। उसकी मोक्ष-प्राप्ति की लालसा अति तीव्र हो उठती है। सुदेव, सुगुरु और सुधर्म में वह श्रद्धान्वित होता है और कुदेव-कुगुरु-कुधर्म से मुक्त होता है।

इस दृष्टि वाला जीव संसार में धात्री की भाँति जीता है। नारियल की तरह व्यवहार से संसार में रहता है और निश्चयतः आत्मा की शुद्ध परिणति में रमण करता है। सम्यक्दर्शनी देशोण अर्द्धपुद्गल परावर्तन काल में अवश्यमेव सकल कर्मों को आत्मा से निर्जरित कर अनुत्तर मोक्ष धाम को प्राप्त करता है।

चौबीस दण्डकों में दृष्टि द्वार -

1 पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय के जीवों में दृष्टि के संदर्भ में मतांतर है।

सिद्धान्त के मत से इनमें केवल मिथ्यादृष्टि ही होती है।

कर्मग्रंथ के मत से इनमें मिथ्या और सम्यक् दो दृष्टियाँ होती हैं। पहले-दूसरे वैमानिक देवलोकों तक के देव जब सास्वादन गुणस्थान लेकर बादर-लब्धि पर्याप्ता पृथ्वी-अप्-प्रत्येक वनस्पतिकाय में उत्पन्न होते हैं तब अपर्याप्त अवस्था में सम्यग्दृष्टि पायी जाती है, शेष अवस्था में तो मिथ्यादृष्टि ही पायी जाती है, इस प्रकार कर्मग्रंथानुसार उनमें उपरोक्त दो दृष्टियाँ पायी जाती हैं।

2 तेउकाय और वायुकाय के जीवों में मिथ्यादृष्टि पायी जाती है।

3 विकलेन्द्रिय त्रिक में दो दृष्टियाँ (मिथ्या-सम्यक्) पायी जाती हैं। उनमें जाते हुए मनुष्य और तिर्यंच का सास्वादन गुणस्थानक होने पर उनमें पृथ्वीकायादि की भाँति अपर्याप्त अवस्था में सम्यक्दृष्टि पायी जाती है।

4 गर्भज मनुष्य, गर्भज तिर्यंच, देव और नारकी के दण्डकों में तीनों दृष्टियाँ पायी जाती हैं।

कितने दण्डकों में कितनी दृष्टियाँ ? -

सिद्धान्त के मत से -

1 पांच दण्डकों में एक दृष्टि पायी जाती है ।

2 तीन दण्डकों में दो दृष्टियाँ पायी जाती है ।

3 सोलह दण्डकों में तीन दृष्टियाँ पायी जाती है ।

कर्मग्रंथ के मत से -

1 दो दण्डकों में एक दृष्टि पायी जाती है ।

2 छह दण्डकों में दो दृष्टियाँ पायी जाती हैं ।

3 सोलह दण्डकों में तीन दृष्टियाँ पायी जाती हैं ।

चार गतियों में दृष्टि द्वार -

चारों गतियों में तीनों दृष्टियाँ पायी जाती हैं ।

जाति पंचक में दृष्टि द्वार -

1 एकेन्द्रिय जीवों में एक दृष्टि (सिद्धान्त के मतानुसार) एवं दो दृष्टियाँ (कर्मग्रन्थ के मतानुसार) होती है ।

2-4 विकलेन्द्रिय त्रिक में दो दृष्टियाँ पायी जाती हैं ।

5 पंचेन्द्रिय जीवों में तीन दृष्टियाँ पायी जाती हैं ।

षट्कायिक जीवों में दृष्टि द्वार -

1-3 पृथ्वीकाय-अप्काय और वनस्पतिकाय में सिद्धान्तानुसार एक दृष्टि एवं कर्मग्रंथानुसार दो दृष्टियाँ पायी जाती हैं ।

4-5 तेउकाय तथा वायुकाय में मात्र एक दृष्टि पायी जाती है ।

6 त्रसकाय में तीनों दृष्टियाँ पायी जाती हैं ।

कौनसी दृष्टि कितने दण्डकों में ? -

1 मिथ्यादृष्टि समस्त दण्डकों में पायी जाती है ।

2 मिश्रदृष्टि सोलह दण्डकों (1-13 समस्त देव, 14 नारकी, 15 गर्भज मनुष्य, 16 गर्भज तिर्यंच) में पायी जाती है ।

3 सम्यग्दृष्टि सिद्धान्तानुसार उन्नीस दण्डकों (पांच स्थावर के सिवाय) में तथा कर्मग्रन्थानुसार बावीस दण्डकों (तेउ-वायुकाय को छोडकर) में पायी जाती है ।

यहाँ दृष्टि द्वार का विवेचन परिपूर्ण होता है ।

एकादशम दर्शन द्वार का विवेचन

गाथा

थावर-बि-तिसु अचक्खु, चउरिंदिसु तद्दुगं सुए भणियं ।
मणुआ चउ दंसणिणो, सेसेसु तिगं तिगं भणियं ।।19।।

संस्कृत छाया

स्थावर-द्वि-त्रिष्वचक्षुश्चतुरिन्द्रियेषु तद्द्विकं श्रुते भणितं ।
मनुजाश्चतुर्दर्शनिनः, शेषेषु त्रिकं त्रिकं भणितं ।।19।।

शब्दार्थ

थावर - स्थावर (में)	**बि** - द्वीन्द्रिय (में)
तिसु - त्रीन्द्रिय में	**अचक्खु** - अचक्षुदर्शन
चउरिंदिसु - चतुरिन्द्रिय में	**तद्** - वह (दर्शन)
दुगं - दो	**सुए** - श्रुत-सिद्धान्त में
भणियं - कहा गया है	**मणुआ** - मनुष्यों में
चउ - चार	**दंसणिणो** - दर्शन
सेसेसु - शेष दण्डकों में	**तिगं** - तीन
तिगं - तीन	**भणियं** - कहे गये हैं ।

भावार्थ

श्रुत-सिद्धान्त में स्थावर (पृथ्वी-अप्-तेउ-वायु-वनस्पति) में तथा द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय में एक दर्शन कहा गया है। चतुरिन्द्रिय में दो दर्शन कहे गये हैं। गर्भज मनुष्य में चार दर्शन कहे गये हैं। शेष दण्डकों (देव-नारकी-गर्भज तिर्यंच) में तीन दर्शन कहे गये हैं ॥19॥

विशेष विवेचन

प्रस्तुत गाथा में ग्यारहवें दर्शन द्वार की व्याख्या की गयी है।

दर्शन से अभिप्राय - पदार्थ में रहे हुए सामान्य धर्म को जानने की आत्मिक शक्ति को दर्शन कहते है।

दर्शन चार प्रकार के कहे गये हैं -

1 **चक्षुदर्शन** - पदार्थ में स्थित सामान्य धर्म को चक्षुरिन्द्रिय (आँख) से जानने की आत्मिक शक्ति को चक्षुदर्शन कहते हैं। यह चक्षुरिन्द्रिय रूप एक प्रकार का ही होता है।

2 **अचक्षुदर्शन** - पदार्थ में स्थित सामान्य धर्म को अचक्षुरिन्द्रिय से जानने की आत्मिक शक्ति को अचक्षुदर्शन कहते है। स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, श्रोत्रेन्द्रिय तथा मन के द्वारा वस्तु में स्थित सामान्य धर्म को जानने की शक्ति को अचक्षुदर्शन कहते है।

3 **अवधिदर्शन** - मन और इन्द्रियों की सहायता के बिना रूपी पदार्थों में स्थित सामान्य धर्म को जानने की आत्मिक शक्ति को अवधिदर्शन कहते है।

4 **केवलदर्शन** - समस्त द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव (पर्याय) में स्थित सामान्य धर्म को जानने की आत्मिक शक्ति को केवलदर्शन कहते है।

चौबीस दण्डकों में दर्शन द्वार -

1 पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय एवं वनस्पतिकाय में एक अचक्षुदर्शन पाया जाता है।

2 द्वीन्द्रिय तथा त्रीन्द्रिय में अचक्षुदर्शन पाया जाता है ।

3 चतुरिन्द्रिय में चक्षु एवं अचक्षु, दो दर्शन पाये जाते हैं ।

4 देव, नारकी एवं गर्भज तिर्यंच में चक्षु, अचक्षु तथा अवधि, तीन दर्शन पाये जाते हैं ।

5 गर्भज मनुष्य में चक्षु, अचक्षु, अवधि तथा केवल, चार दर्शन पाये जाते हैं ।

कितने दण्डकों में कितने दर्शन ? -

1 सात दण्डकों में एक दर्शन पाया जाता है ।

2 एक दण्डक में दो दर्शन पाये जाते हैं ।

3 पंद्रह दण्डकों में तीन दर्शन पाये जाते हैं ।

4 एक दण्डक में चार दर्शन पाये जाते हैं ।

कौनसा दर्शन कितने दण्डकों में ? -

1 अचक्षुदर्शन समस्त दण्डकों में पाया जाता है ।

2 चक्षुदर्शन सतरह दण्डकों (1-13 समस्त देव, 14-15 गर्भज मनुष्य - गर्भज तिर्यंच, 16 नारकी, 17 चतुरिन्द्रिय) में पाया जाता है ।

3 अवधिदर्शन सोलह दण्डकों (पांच स्थावर एवं विकलेन्द्रिय त्रिक सिवाय) में पाया जाता है ।

4 केवलदर्शन एक दण्डक (गर्भज मनुष्य) में पाया जाता है ।

चार गतियों में दर्शन द्वार -

1 देव गति में तीन दर्शन पाये जाते हैं ।

2 मनुष्य गति में चार दर्शन पाये जाते हैं ।

3 तिर्यंच गति में तीन दर्शन पाये जाते हैं ।

4 नरक गति में तीन दर्शन पाये जाते हैं ।

जाति पंचक में दर्शन द्वार -

1 एकेन्द्रिय में एक दर्शन पाया जाता है ।

2-3 द्वीन्द्रिय एवं त्रीन्द्रिय में एक दर्शन पाया जाता है ।

4 चतुरिन्द्रिय में दो दर्शन पाये जाते हैं ।

5 पंचेन्द्रिय में चार दर्शन पाये जाते हैं ।

षट्कायिक जीवों में दर्शन द्वार -

1-5 पृथ्वीकाय-अप्-तेउ-वायु-वनस्पतिकाय में एक दर्शन पाया जाता है।

6 त्रसकाय में चार दर्शन पाये जाते हैं।

यहाँ दर्शन द्वार का विवेचन परिपूर्ण होता है।

द्वादशम ज्ञान एवं त्रयोदशम अज्ञान द्वार का कथन

गाथा

अन्नाण नाण तिय तिय, सुरतिरिनिरए थिरे अन्नाणदुगं ।
नाणन्नाण दु विगले, मणुए पण नाण ति अन्नाणा ।।20।।

संस्कृत छाया

अज्ञानज्ञानयोः त्रिकं त्रिकं, सुरतिर्यग्नैरयिकेषु स्थिरे अज्ञान द्विकं ।
ज्ञानाज्ञानद्विकं विकले, मनुजे पञ्च ज्ञानानि त्रीण्यज्ञानानि ।।20।।

शब्दार्थ

अन्नाण - अज्ञान	**नाण** - ज्ञान
तिय - तीन	**तिय** - तीन
सुर - देवों (में)	**तिरि** - तिर्यंचों (में)
निरए - नारकी (में)	**थिरे** - स्थावर में
अन्नाण - अज्ञान	**दुगं** - दो
नाण - ज्ञान	**अन्नाण** - अज्ञान
दु - दो	**विगले** - विकलेन्द्रिय में
मणुए - मनुष्यों में	**पण** - पांच
नाण - ज्ञान	**ति** - तीन
अन्नाणा - अज्ञान	

भावार्थ

देव, गर्भज तिर्यंच और नारकी में तीन ज्ञान तथा तीन अज्ञान पाये जाते हैं ।

स्थावर (पृथ्वी-अप्-तेउ-वायु-वनस्पतिकाय) में दो अज्ञान पाये जाते हैं ।

विकलेन्द्रिय (द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय) में दो ज्ञान तथा दो अज्ञान पाये जाते हैं ।

मनुष्य में पांच ज्ञान तथा तीन अज्ञान पाये जाते हैं ।।20।।

विशेष विवेचन

प्रस्तुत गाथा में बारहवें ज्ञान द्वार तथा तेरहवें अज्ञान द्वार की विवेचना की गयी है ।

ज्ञान द्वार का वर्णन

ज्ञान से अभिप्राय - जिसके द्वारा वस्तु में स्थित विशेष धर्म को जाना जाता है, उसे ज्ञान कहते है ।

ज्ञान पांच प्रकार के कहे गये हैं - (1) मतिज्ञान (2) श्रुतज्ञान (3) अवधिज्ञान (4) मनःपर्यवज्ञान (5) केवलज्ञान ।

(1) मतिज्ञान से तात्पर्य - मन और इन्द्रियों की सहायता से होने वाला ज्ञान, मतिज्ञान कहलाता है । मतिज्ञान के बत्तीस भेद कहे गये हैं । विवक्षा भेद से बहु, बहुविध से गुणित करने पर 336 भेद होते हैं । उनमें चार बुद्धियों का योग करने पर मतिज्ञान के कुल 340 भेद होते हैं ।

(2) श्रुतज्ञान से तात्पर्य - मन और इन्द्रियों की सहायता से शास्त्र, ग्रंथादि के श्रवण अथवा वांचन में शब्द में छिपे अर्थ को जानना, श्रुतज्ञान कहलाता है । श्रुतज्ञान के चौदह और बीस भेद कहे गये हैं ।

(3) **अवधिज्ञान से तात्पर्य** - मन और इन्द्रियों की सहायता के बिना रूपी पदार्थों में स्थित विशेष धर्म को बताने वाली आत्मिक शक्ति को अवधिज्ञान कहते है । अवधिज्ञान के भवप्रत्यय व गुणप्रत्यय रूप दो भेद कहे गये हैं जिसमें गुणप्रत्ययिक के हीयमानादि छह भेद कहे गये हैं ।

(4) **मनःपर्यवज्ञान से तात्पर्य** - मन और इन्द्रियों की सहायता के बिना ढाई द्वीप में स्थित संज्ञी जीवों के मानसिक परिणामों को बताने वाली आत्मिक शक्ति को मनःपर्यवज्ञान कहते है । यह ज्ञान विपुलमति तथा ऋजुमति रूप दो प्रकार का कहा गया है ।

(5) **केवलज्ञान से तात्पर्य** - मन और इन्द्रियों की सहायता के बिना रूपी एवं अरूपी समस्त द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव जिस आत्मिक शक्ति के द्वारा जाने जाते हैं, उसे केवलज्ञान कहते है । यह एक प्रकार का ही होता है ।

चौबीस दण्डकों में ज्ञान द्वार -

1 **सिद्धान्तानुसार** - पृथ्वीकाय-अप्काय-तेउकाय-वायुकाय-वनस्पतिकाय में एक भी ज्ञान नहीं होता है ।

कर्मग्रंथानुसार - पृथ्वीकाय-अप्काय और वनस्पतिकाय में दो ज्ञान पाये जाते हैं ।

दूसरे ईशान देवलोक तक का कोई सम्यक्त्वी देव आयुष्य कर्मानुसार बादर लब्धि पर्याप्ता पृथ्वी-अप्-वनस्पतिकाय में उत्पन्न होता है, तब अपर्याप्त अवस्था में सास्वादन सम्यक्त्व होने से दो ज्ञान कहे जाते हैं ।

2 विकलेन्द्रिय त्रिक में मति और श्रुत, दो ज्ञान पाये जाते हैं ।

3 गर्भज तिर्यंच में मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान रूप तीन ज्ञान पाये जाते हैं ।

4 दस भवनपति देव, व्यंतर देव, ज्योतिष्क देव, वैमानिक देव, इन देवों में मति ज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान पाये जाते हैं ।

5 नारकी जीवों में मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान पाये जाते हैं ।

6 गर्भज मनुष्य में मतिज्ञान-श्रुतज्ञान-अवधिज्ञान-मनःपर्यवज्ञान-केवलज्ञान रूप पाँच ज्ञान पाये जाते हैं ।

चार गतियों में ज्ञान द्वार -

1-3 देव, तिर्यंच और नरक गति में तीन ज्ञान (मति-श्रुत-अवधिज्ञान) पाये जाते हैं ।

4 मनुष्य गति में पांच ज्ञान पाये जाते हैं ।

कितने दण्डकों में कितने ज्ञान ? -

1 **सिद्धान्तानुसार** - पांच दण्डकों में एक भी ज्ञान नहीं पाया जाता है ।
कर्मग्रंथानुसार - दो दण्डकों में एक भी ज्ञान नहीं पाया जाता है ।

2 **सिद्धान्तानुसार** - तीन दण्डकों में दो ज्ञान (मति-श्रुत) पाये जाते हैं ।
कर्मग्रंथानुसार - छह दण्डकों में दो ज्ञान (मति-श्रुत) पाये जाते हैं ।

3 पंद्रह दण्डकों (1-13 - देव, 14 - नरक और 15 - गर्भज तिर्यंच) में तीन ज्ञान (मति-श्रुत-अवधिज्ञान) पाये जाते हैं ।

4 एक दण्डक (गर्भज मनुष्य) में पांच ज्ञान पाये जाते हैं ।

कौनसा ज्ञान कितने दण्डकों में ? -

1-2 **कर्मग्रंथानुसार** - मतिज्ञान और श्रुतज्ञान 22 दण्डकों (तेउ-वायुकाय के सिवाय) में पाये जाते हैं ।
सिद्धान्तानुसार - मतिज्ञान और श्रुतज्ञान 19 दण्डकों (पांच स्थावर को छोड़कर) में पाये जाते हैं ।

3 अवधिज्ञान सोलह दण्डकों (देव के तेरह दण्डक, गर्भज मनुष्य, गर्भज तिर्यंच, नारकी) में पाया जाता है ।

4 मनःपर्यवज्ञान एक गर्भज मनुष्य के दण्डक में पाया जाता है ।

5 केवलज्ञान एक गर्भज मनुष्य के दण्डक में पाया जाता है ।

जाति पंचक में ज्ञान द्वार -

1 **सिद्धान्तानुसार** - एकेन्द्रिय में एक भी ज्ञान नहीं पाया जाता है ।
कर्मग्रंथानुसार - दो (मति-श्रुत) ज्ञान पाये जाते हैं ।

2-4 विकलेन्द्रिय में दो (मति-श्रुत) ज्ञान पाये जाते हैं ।

5 पंचेन्द्रिय में पांच ज्ञान पाये जाते हैं ।

षट्कायिक जीवों में ज्ञान द्वार -

1 **सिद्धान्तानुसार** - पृथ्वीकाय में एक भी ज्ञान नहीं पाया जाता है ।
कर्मग्रंथानुसार - दो ज्ञान पाये जाते हैं ।

2 अप्काय में पृथ्वीकायानुसार जानना ।

3-4 तेउकाय और वायुकाय में एक भी ज्ञान नहीं पाया जाता है ।

5 वनस्पतिकाय में पृथ्वीकाय की भाँति जानना ।

6 त्रसकाय में पांच ज्ञान पाये जाते हैं ।

कितने ज्ञान एक साथ होते हैं ? -

1 **एक ज्ञान** - केवलज्ञान ।

2 **दो ज्ञान** - मतिज्ञान एवं श्रुतज्ञान ।

3 **तीन ज्ञान** - (1) मतिज्ञान (2) श्रुतज्ञान (3) अवधिज्ञान ।
(1) मतिज्ञान (2) श्रुतज्ञान (3) मनःपर्यवज्ञान ।

4 **चार ज्ञान** - (1) मतिज्ञान (2) श्रुतज्ञान (3) अवधिज्ञान (4) मनःपर्यवज्ञान ।

5 पांच ज्ञान एक साथ कभी नहीं होते हैं ।

यहाँ ज्ञान द्वार का विवेचन परिपूर्ण होता है ।

तेरहवें अज्ञान द्वार का विवेचन

अज्ञान से अभिप्राय - वस्तु में स्थित विशेष धर्म को बताने वाली सम्यक्त्व रहित आत्मिक शक्ति को अज्ञान कहते है।

मिथ्यात्व के कारण ज्ञान दूषित-प्रदूषित होकर अज्ञान में बदल जाता है। अतः सम्यक्त्वी जीवों का ज्ञान सम्यक्ज्ञान और मिथ्यात्वी जीवों का ज्ञान, मिथ्याज्ञान अथवा अज्ञान कहलाता है।

अज्ञान के प्रकार - (1) मतिअज्ञान (2) श्रुतअज्ञान (3) अवधिअज्ञान।

(1) मतिअज्ञान - मन और इन्द्रियों की सहायता से वस्तु में स्थित विशेष धर्म को बताने वाली सम्यक्त्व रहित आत्मिक शक्ति को मति अज्ञान कहते है।

मिथ्यात्वी का मतिज्ञान, मतिअज्ञान कहलाता है।

(2) श्रुतअज्ञान - मन और इन्द्रियों की सहायता से शास्त्रादि के शब्द में छिपे अर्थ को बताने वाली सम्यक्त्व रहित आत्मिक शक्ति को श्रुत अज्ञान कहते है।

मिथ्यात्वी का श्रुतज्ञान, श्रुतअज्ञान कहलाता है।

(3) अवधिअज्ञान - मन और इन्द्रियों की सहायता के बिना रुपी द्रव्यों में स्थित विशेष धर्म का ज्ञान कराने वाली सम्यक्त्व रहित आत्मिक शक्ति को अवधि अज्ञान कहते है। इसे विभंगज्ञान भी कहते है।

मिथ्यात्वी का अवधिज्ञान, अवधिअज्ञान अथवा विभंगज्ञान कहलाता है।

चौबीस दण्डकों में अज्ञान द्वार -

(1) पृथ्वी आदि पांच स्थावर जीवों में मति अज्ञान एवं श्रुत अज्ञान पाये जाते हैं।

(2) विकलेन्द्रिय त्रिक में मतिअज्ञान एवं श्रुत अज्ञान रुप दो अज्ञान पाये जाते हैं।

(3) गर्भज मनुष्य, गर्भज तिर्यंच, नारकी, भवनपति देव, व्यंतर-ज्योतिष्क-वैमानिक देवों में तीनों अज्ञान पाये जाते हैं।

कौनसा अज्ञान कितने दण्डकों में -

(1) मति अज्ञान और श्रुत अज्ञान चौबीसों दण्डकों में पाये जाते हैं।

(2) अवधि अज्ञान सोलह दण्डकों में पाया जाता है। (पांच स्थावर तथा विकलेन्द्रिय त्रिक को छोड़कर)

चार गतियों में अज्ञान द्वार -

1-4 चारों गतियों में तीनों अज्ञान पाये जाते हैं।

जाति पंचक में अज्ञान द्वार -

1-4 एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय में दो अज्ञान (मति तथा श्रुत) पाये जाते हैं।

5 पंचेन्द्रिय में तीनों अज्ञान पाये जाते हैं।

षट्कायिक जीवों में अज्ञान द्वार -

1-5 पृथ्वी-अप्-तेउ-वायु और वनस्पतिकाय में दो अज्ञान (मति तथा श्रुत) पाये जाते हैं।

2 त्रसकाय में तीनों अज्ञान पाये जाते हैं।

जिज्ञासा - मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान और अवधिअज्ञान कहे गये पर मनःपर्यवअज्ञान एवं केवलअज्ञान क्यों नहीं कहे गये ?

समाधान - सम्यक्त्वी आत्मा में मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान होते हैं और मिथ्यात्वी आत्मा में मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान और अवधिअज्ञान होते हैं।

मनःपर्यवज्ञान और केवलज्ञान सम्यक्त्वी एवं संयमी को ही होते हैं, मिथ्यात्वी को उपरोक्त दोनों ज्ञान नहीं हो सकते हैं क्योंकि उनमें सम्यक्त्व एवं संयम का अभाव होता है, अतः दोनों ज्ञान रूप ही होते हैं, अज्ञान रूप नहीं होते हैं।

यहाँ अज्ञान द्वार की विवेचना समाप्त होती है।

चतुर्दशम योग द्वार का कथन

गाथा

सच्चेअर मीस असच्चमोस, मण-वय विउव्वि आहारे ।
उरलं मीसा कम्मण, इय जोगा देसिया समए ॥21॥

संस्कृत छाया

सत्येतरमिश्रासत्यामृषा, मनोवचसी वैक्रियः आहारकः ।
औदारिको मिश्राः कार्मण, एते योगाः देशिताः समये ॥21॥

शब्दार्थ

सच्च - सत्य	इअर - इतर (असत्य)
मीस - मिश्र (सत्यासत्य)	असच्चमोस - असत्यामृषा (व्यवहार)
मण - मन	वय - वचन
विउव्वि - वैक्रिय	आहारे - आहारक
उरलं - औदारिक	मीसा - मिश्र
कम्मण - कार्मण	इय - ये
जोगा - योग	देसिया - दर्शित किये हैं
समए - सिद्धान्त में	

भावार्थ

योग पंद्रह प्रकार के कहे गये हैं ।

मनोयोग चार प्रकार का कहा गया है - 1 सत्य मनोयोग 2 असत्य मनोयोग 3 सत्यमृषा (मिश्र) मनोयोग 4 असत्यामृषा (व्यवहार) मनोयोग ।

वचनयोग चार प्रकार का कहा गया है - 1 सत्य वचनयोग 2 असत्य वचनयोग 3 सत्यमृषा वचनयोग 4 असत्यामृषा वचनयोग ।

काययोग के सात प्रकार कहे गये हैं - 1 औदारिक काययोग 2 औदारिक मिश्र काययोग 3 वैक्रिय काययोग 4 वैक्रिय मिश्र काययोग 5 आहारक काययोग 6 आहारक मिश्र काययोग 7 कार्मण काययोग ।।22।।

विशेष विवेचन

प्रस्तुत गाथा में चौदहवें योग द्वार का प्रस्तुतीकरण है ।

योग से अभिप्राय - सोचने, बोलने और क्रिया करने की प्रवृत्ति को योग कहते है ।

मन, वचन एवं काया के द्वारा आत्मा का जो व्यापार होता है, उसे योग कहते है ।

'यः आत्मानं अष्टविधेन कर्मणा योजयति इति योगः ।'

जो आत्मा को आठ प्रकार के कर्मों से जोड़ता है, उसे योग कहते है । भगवती सूत्र के 25 वे शतक के प्रथम उद्देशक में योग शब्द है परन्तु प्रज्ञापना सूत्र के षोडशम प्रयोग पद में योग के स्थान पर प्रयोग शब्द प्राप्त होता है ।

'प्र' उपसर्गपूर्वक युज् धातु से 'प्रयोग' शब्द बना है जिसका तात्पयार्थ होता है - जिन कारणों से आत्मा प्रकर्षरूपेण क्रियाओं से संबद्ध/संयुक्त होता है, वह प्रयोग कहलाता है ।

योग मुख्य रूप से तीन प्रकार के कहे गये हैं - (1) मनोयोग (2) वचनयोग (3) काययोग ।

मनोयोग - जीव के द्वारा मन से सोचने-विचार करने की प्रवृत्ति को मनोयोग कहते है ।

वचनयोग - जीव के द्वारा बोलने की प्रवृत्ति को वचनयोग कहते है ।

'भाष्यते पोच्यते इति भाषा ।'

जिसके द्वारा पदार्थों का स्पष्ट बोध हो, उसे भाषा कहते है । वचन, वाक्य, गिर, वचन योग, वाक्, भारती इत्यादि भाषा के पर्यायवाची शब्द हैं ।

काययोग - जीव के द्वारा शरीर से कार्य करने की प्रवृत्ति को काययोग कहते है ।

मनोयोग के चार प्रकार -

(1) **सत्य मनोयोग** - वस्तु के यथार्थ/वास्तविक स्वरूप, धर्म, गुण, लक्षण का मन से विचार करना, सत्य मनोयोग कहलाता है । यथावस्थित वस्तु स्वरूप का मनोव्यापार सत्य मनोयोग कहलाता है ।

उदाहरण - वीतराग परमात्मा का धर्म परम सत्य है । कल्याणकारी और निःशंक है, यह मानसिक चिन्तन, सत्य मनोयोग कहलाता है ।

(2) **असत्य मनोयोग** - सत्य से विपरीत असत्य है ।

वस्तु के अयथार्थ/विपरीत/गलत स्वरूप, धर्म, गुण और लक्षणादि का मन से विचार करना, असत्य मनोयोग कहलाता है । जीव नहीं है अथवा जीव अनित्य है, इत्यादि कुविकल्प करने में तत्पर मनोव्यापार असत्य मनोयोग कहलाता है ।

उदाहरण - वीतराग का धर्म सही नहीं है । अहिंसा, सत्य आदि दुर्गतिकारक है । इस प्रकार का चिन्तन करना, असत्य मनोयोग कहलाता है ।

(3) **सत्यमृषा मनोयोग** - इसे मिश्र मनोयोग भी कहते है क्योंकि सत्य और असत्य, दोनों का मिश्रण होता है ।

वस्तु के स्वरूप, गुण-धर्म के बारे में थोडा सही और थोडा गलत विचार करना, सत्यमृषा मनोयोग कहते है ।

जो जैसा है, उसके संदर्भ में थोडा अनुकूल और थोडा विपरीत मनोव्यापार असत्यमृषा मनोयोग कहलाते हैं ।

उदाहरण - महावीर परमात्मा परम उपकारी है । वे ही सुख, दुःख देने वाले हैं, सभी के कर्मों के कर्त्ता-हर्त्ता है । इस प्रकार का मानसिक विचार, सत्यमृषा मनोयोग कहलाता है ।

(4) **असत्यामृषा मनोयोग** -

असत्य अर्थात् सत्य नहीं ।

अमृषा अर्थात् असत्य नहीं ।

जो विचार न गलत/असत्य कहे जाते हैं, न सही/सत्य कहे जाते हैं, उसे असत्यामृषा मनोयोग कहते है । इसे व्यवहार मनोयोग भी कहते है क्योंकि यह गलत लगने पर भी व्यवहार में स्वीकार्य है । जो सत्य भी न हो और असत्य भी न हो, उसे व्यवहार मनोयोग कहते है ।

उदाहरण - मन से सोचना कि चूल्हा जल रहा है । सत्य यह है कि चूल्हा नहीं ईंधन जलता है फिर भी व्यवहार में मान्य होने से असत्यामृषा है ।

वचनयोग के चार प्रकार -

(1) **सत्य वचनयोग** - वस्तु के यथार्थ स्वरूप, गुणधर्म का कथन करना, वाणी से उच्चारण करना, सत्य वचनयोग कहलाता हैं ।

उदाहरण - आम के बाग को 'यह आम का उपवन है' ऐसा शब्द उच्चारण करना, सत्य वचनयोग कहलाता है ।

सत्य वचन दस प्रकार के कहे गये हैं ।

पन्द्रह योग

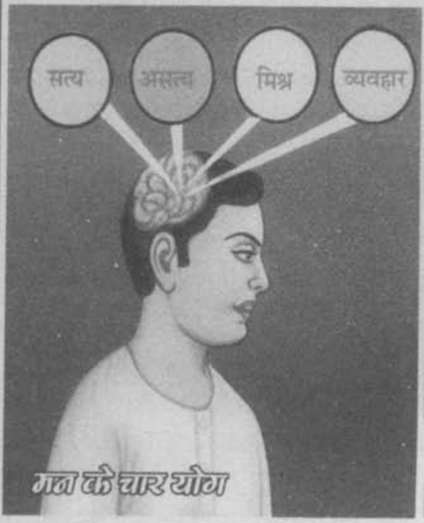

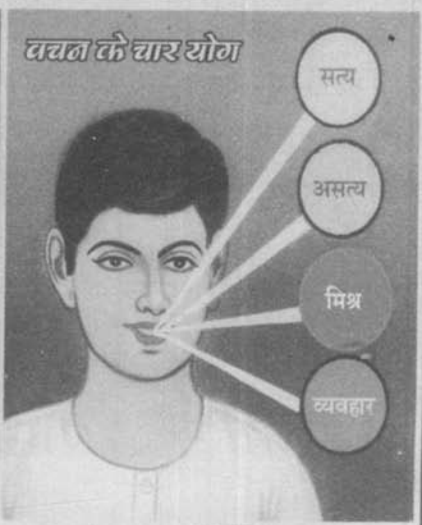

1. सत्य मनोयोग, 2. असत्य मनोयोग, 3. मिश्र मनोयोग, 4. व्यवहार मनोयोग।

1. सत्य वचनयोग, 2. असत्य वचनयोग, 3. मिश्र वचनयोग, 4. व्यवहार वचनयोग।

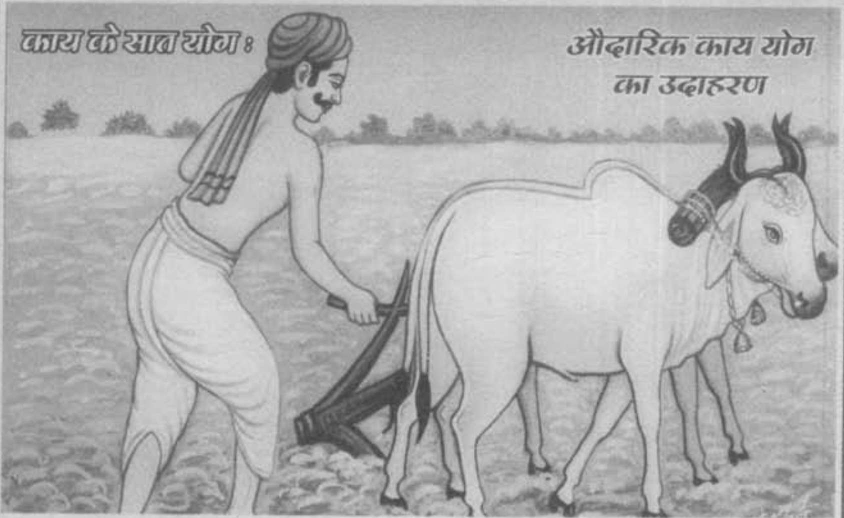

1. औदारिक काय योग, 2. औदारिक मिश्र काय योग, 3. वैक्रिय काय योग, 4. वैक्रिय मिश्र काय योग, 5. आहारक काय योग, 6. आहारक मिश्र काय योग, 7. कार्मण काय योग।

(2) **असत्य वचनयोग** - वस्तु के यथार्थ स्वरूप से पूर्णतः विपरीत कथन करना, असत्य वचनयोग कहलाता है ।

उदाहरण - आम के बाग को 'यह जामुन का उपवन है' कहना, असत्य वचनयोग कहलाता है ।

असत्य वचन दस प्रकार के कहे गये हैं ।

(3) **सत्यमृषा वचनयोग** - वस्तु के स्वरूप के बारे में थोड़ा सही और थोड़ा विपरीत कथन करना, सत्यमृषा वचनयोग कहलाता है ।

उदाहरण - आम, सेब इत्यादि फलों से युक्त उपवन को आम्र-वन अथवा सेब-वन कहना सत्यमृषा वचनयोग कहलाता है ।

मिश्र वचन दस प्रकार के कहे गये हैं ।

(4) **असत्यामृषा वचनयोग** - जो कथन गलत/असत्य होने पर भी व्यवहार में सत्य की भाँति स्वीकार्य होता है, उसे असत्यामृषा वचनयोग कहते हैं ।

उदाहरण - 'यह मार्ग अहमदाबाद जाता है' इस प्रकार वचनोच्चारण करना, असत्यामृषा वचनयोग कहलाता है क्योंकि मार्ग कहीं भी नहीं जाता है, व्यक्ति जाता है फिर भी व्यवहार में सत्य की भाँति स्वीकार्य होने से इसे असत्यामृषा वचनयोग कहते हैं ।

व्यवहार वचन दस प्रकार के कहे गये हैं ।

काययोग के सात प्रकार -

(1) **औदारिक काययोग** - औदारिक शरीरधारी जीव की गमनागमन आदि की क्रिया को औदारिक काययोग कहते हैं ।

(2) **औदारिक मिश्र काययोग** - औदारिक और कार्मण शरीर की संयुक्त अथवा औदारिक और वैक्रिय शरीर की संयुक्त अथवा औदारिक और आहारक शरीर की संयुक्त कायिक चेष्टा/प्रवृत्ति को औदारिक मिश्र काययोग कहते हैं ।

मतांतर - अनेक आचार्य शरीर पर्याप्ति पूर्ण होने से पूर्व शरीरयोग को औदारिक मिश्र काययोग कहते हैं। अनेक आचार्य शरीर सहित समस्त पर्याप्तियों के पूर्ण होने तक के योग को औदारिक मिश्र काययोग कहते है।

(i) मनुष्य और तिर्यंच के उत्पन्न होने के दूसरे समय से अपर्याप्तावस्था तक कार्मण शरीर के साथ औदारिक के पुद्गल मिश्रित होने से उसे औदारिक मिश्र काययोग कहते है।

(ii) उत्तरवैक्रिय शरीर के निर्माण के समय औदारिक वर्गणा के पुद्गल वैक्रिय पुद्गल के साथ होने से औदारिक मिश्र काययोग होता है।

(iii) आहारक शरीर की रचना के प्रारंभ में औदारिक वर्गणा के पुद्गल आहारक पुद्गल के साथ होने से औदारिक मिश्र काययोग होता है।

(iv) केवली भगवंत को केवली समुद्घात के 2रे, 6ठे, तथा 7वें समय में औदारिक वर्गणा के पुद्गल कार्मण से मिश्रित होने से औदारिक मिश्र काययोग होता है।

(3) वैक्रिय काययोग - वैक्रिय शरीरधारी जीव की गमनागमनादि की प्रवृत्ति को वैक्रिय काययोग कहते है।

(4) वैक्रिय मिश्र काययोग - वैक्रिय शरीर के पुद्गलों से कार्मण/औदारिक शरीर के पुद्गलों से संयुक्त होने पर उसकी प्रवृत्ति/क्रिया को वैक्रिय मिश्र काययोग कहते है।

(i) देव तथा नारकी जीवों को उत्पत्ति के दूसरे समय से अपर्याप्त अवस्था तक वैक्रिय मिश्र काययोग होता है।

(ii) देव तथा नारकी जीवों को उत्तर वैक्रिय शरीर-निर्माण के समय वैक्रिय मिश्र काययोग कहते है।

(iii) **सिद्धांतानुसार** - मनुष्य, पंचेन्द्रिय तिर्यंच तथा वायुकाय को वैक्रिय शरीर संहरण के समय वैक्रिय मिश्र काययोग होता है ।

(iv) **कर्मग्रंथानुसार** - मनुष्य, पंचेन्द्रिय तिर्यंच तथा वायुकाय को वैक्रिय शरीर निर्माण एवं संहरण, दोनों समय वैक्रिय मिश्र काययोग होता है ।

(5) आहारक काययोग - आहारक शरीरधारी जीव की गमनागमन आदि की प्रवृत्ति को आहारक काययोग कहते है ।

(6) आहारक मिश्र काययोग - औदारिक और आहारक शरीर के पुद्गल संयुक्त होने के समय को आहारक मिश्र काययोग कहते है ।

(i) **सिद्धांतानुसार** - आहारक शरीर के संहरण में आहारक मिश्र काययोग होता है ।

(ii) **कर्मग्रंथानुसार** - आहारक शरीर की रचना के प्रारंभ में तथा उसके संहरण के समय आहारक मिश्र काययोग होता है ।

(7) कार्मण काययोग - कार्मण और तैजस, इन दोनों के समय कार्मण काययोग होता है । इन दोनों शरीरों की प्रवृत्ति को कार्मण काययोग कहते है ।

(i) जीव जब नवीन भव की ओर जाता है, तब वहाँ उत्पन्न होने से पूर्व (विग्रह गति में) तथा उत्पत्ति के प्रथम समय में कार्मण काययोग होता है ।

(ii) केवली समुद्घात के 3रे, 4थे तथा 5वें समय में कार्मण काययोग होता है ।

तैजस तथा कार्मण शरीर हमेशा एक साथ रहते हैं, इसलिये उनके सम्मिलित व्यापार रूप काययोग को भी एक ही माना है ।

आचार्य मलयगिरि कृत प्रज्ञापना वृत्ति में कार्मण काययोग को तैजस काय से संयुक्त कर तैजस-कार्मण शरीर काययोग कहा है ।

चौबीस दण्डकों में योग द्वार

गाथा

इक्कारस सुर-निरए, तिरिएसु तेर पन्नर मणुएसु ।
विगले चउ पण वाए, जोगतियं थावरे होइ ।।22।।

संस्कृत छाया

एकादश सुर-नैरयिकयोः, तिर्यक्षु त्रयोदश पञ्चदश मनुजेषु ।
विगले चत्वारः पञ्च वाते (यो), योग-त्रिकं स्थावरे भवति ।।22।।

शब्दार्थ

इक्कारस - ग्यारह (योग)	**सुर** - देवों में
निरए - नारकी जीवों में	**तिरिएसु** - तिर्यंचों में
तेर - तेरह (योग)	**पन्नर** - पंद्रह (योग)
मणुएसु - मनुष्यों में	**विगले** - विकलेन्द्रिय में
चउ - चार (योग)	**पण** - पांच (योग)
वाए - वायुकाय में	**जोग** - योग
तियं - तीन	**थावरे** - स्थावर में
होइ - होते हैं ।	

भावार्थ

देव एवं नैरयिकों में ग्यारह योग पाये जाते हैं । पंचेन्द्रिय तिर्यंच में तेरह योग होते हैं ।

गर्भज मनुष्यों में पंद्रह योग पाये जाते हैं । विकलेन्द्रिय में चार योग पाये जाते हैं ।

वायुकाय में पांच योग पाये जाते हैं । स्थावर (पृथ्वी-अप्-तेउ-वनस्पतिकाय) में तीन योग पाये जाते हैं ।।22।।

विशेष विवेचन

प्रस्तुत गाथा में प्रस्तुत प्रकरण में विश्लेषित चौबीस द्वारों में से चौदहवां योग द्वार प्रस्तुत गाथा में चौबीस दण्डकों के संदर्भ में बताया गया है ।

चौबीस दण्डकों में योग द्वार -

1 **पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय और वनस्पतिकाय में तीन योग पाये जाते हैं** - (1) औदारिक काययोग (2) औदारिक मिश्र काययोग (3) कार्मण काययोग ।

2 **वायुकाय में पांच योग पाये जाते हैं** - (1) औदारिक काययोग (2) औदारिक मिश्र काययोग (3) वैक्रिय काययोग (4) वैक्रिय मिश्र काययोग (5) कार्मण काययोग ।

3 **विकलेन्द्रिय में चार योग पाये जाते हैं** - (1) औदारिक काययोग (2) औदारिक मिश्र काययोग (3) कार्मण काययोग (4) असत्यामृषा वचनयोग ।

4 **देव तथा नारकी जीवों में ग्यारह योग पाये जाते हैं, जिसमें मनोयोग के चार भेद, वचन योग के चार भेद तथा काय योग के तीन भेद होते हैं** - (1) सत्य मनोयोग (2) असत्य मनोयोग (3) सत्यमृषा मनोयोग (4) असत्यामृषा (व्यवहार) मनोयोग (5) सत्य वचनयोग (6) असत्य वचनयोग (7) सत्यमृषा वचनयोग (8) असत्यामृषा (व्यवहार) वचनयोग (9) वैक्रिय काययोग (10) वैक्रिय मिश्र काययोग (11) कार्मण काययोग ।

5 **गर्भज तिर्यंच में तेरह योग पाये जाते हैं । उपरोक्त ग्यारह योगों के अतिरिक्त दो योग पाये जाते हैं** - (1) औदारिक काययोग (2) औदारिक मिश्र काययोग ।

6 गर्भज मनुष्य में उपरोक्त तेरह योगों के अलावा आहारक एवं आहारक मिश्र काययोग होने से कुल पंद्रह योग पाये जाते हैं ।

कितने दण्डकों में कितने योग...? -

1 चार दण्डकों में तीन योग पाये जाते हैं ।

2 तीन दण्डकों में चार योग पाये जाते हैं ।

3 एक दण्डक में पांच योग पाये जाते हैं ।

4 चौदह दण्डकों में ग्यारह योग पाये जाते हैं ।

5 एक दण्डक में तेरह योग पाये जाते हैं ।

6 एक दण्डक में पंद्रह योग पाये जाते हैं ।

कौनसा योग कितने दण्डक में...? -

1 सत्य मनोयोग सोलह दण्डकों में पाया जाता है - दस भवनपति देव, व्यंतर देव, ज्योतिष्क देव, वैमानिक देव, नारकी, गर्भज तिर्यंच, गर्भज मनुष्य ।

2 असत्य मनोयोग उपरोक्त सोलह दण्डकों में पाया जाता है ।

3 सत्यमृषा मनोयोग उपरोक्त सोलह दण्डकों में पाया जाता है ।

4 असत्यामृषा मनोयोग उपरोक्त सोलह दण्डकों में पाया जाता है ।

5 सत्य वचनयोग सत्य मनोयोग की भाँति सोलह दण्डकों में पाया जाता है ।

6 असत्य वचनयोग उपरोक्त सोलह दण्डकों में पाया जाता है ।

7 सत्यमृषा वचनयोग उपरोक्त सोलह दण्डकों में पाया जाता है ।

8 असत्यामृषा वचनयोग उन्नीस दण्डकों में पाया जाता है - दस भवनपति देव, व्यंतर, ज्योतिष्क देव, वैमानिक देव, गर्भज तिर्यंच, गर्भज मनुष्य, नारकी, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय ।

9 औदारिक काययोग दस दण्डकों में पाया जाता है - पांच स्थावर, विकलेन्द्रिय त्रिक, गर्भज तिर्यंच और गर्भज मनुष्य ।

10 औदारिक मिश्र काययोग उपरोक्त दस दण्डकों में पाया जाता है ।

11 वैक्रिय काययोग सतरह दण्डकों में पाया जाता है - दस भवनपति देव, व्यंतर-ज्योतिष्क-वैमानिक देव, नारकी, गर्भज तिर्यंच, गर्भज मनुष्य तथा वायुकाय ।

12 वैक्रिय मिश्र काययोग उपरोक्त सतरह दण्डकों में पाया जाता है ।

13 आहारक काययोग गर्भज मनुष्य के एक दण्डक में पाया जाता है ।

14 आहारक मिश्र काययोग गर्भज मनुष्य के एक दण्डक में पाया जाता है ।

15 कार्मण काययोग समस्त चौबीस दण्डकों में पाया जाता है ।

तीन योग कितने दण्डकों में ? -

1 मनोयोग सोलह दण्डकों में पाया जाता है । (दस भवनपति देव, व्यंतर-ज्योतिष्क-वैमानिक, गर्भज तिर्यंच, गर्भज मनुष्य, नारकी)

2 वचनयोग उन्नीस दण्डकों में पाया जाता है । (उपरोक्त सोलह दण्डक के अतिरिक्त विकलेन्द्रिय के तीन दण्डक)

3 काययोग समस्त चौबीस दण्डकों में पाया जाता है ।

चार गतियों में योग द्वार -

1 मनुष्य गति में पंद्रह योग पाये जाते हैं ।

2 तिर्यंच गति में आहारक तथा आहारक मिश्र काययोग के अतिरिक्त तेरह योग पाये जाते हैं ।

3 देव गति में औदारिक, औदारिक मिश्र, आहारक तथा आहारक मिश्र - काययोग, इन चार योगों के अतिरिक्त ग्यारह योग पाये जाते हैं ।

4 नरक गति में उपरोक्त ग्यारह योग पाये जाते हैं ।

जाति पंचक में योग द्वार -

1 एकेन्द्रिय जीवों में पांच योग पाये जाते हैं - औदारिक, औदारिक, मिश्र, वैक्रिय, वैक्रिय मिश्र एवं कार्मण काययोग ।

2-4 विकलेन्द्रिय जीवों में चार योग पाये जाते हैं - औदारिक, औदारिक मिश्र, कार्मण काययोग तथा असत्यामृषा वचनयोग ।

5 पंचेन्द्रिय जीवों में पन्द्रह योग पाये जाते हैं ।

षट्कायिक जीवों में योग द्वार -

1-4 पृथ्वी-अप्-तेउ और वनस्पतिकाय में तीन योगों की प्ररूपणा की गयी है - (1) औदारिक (2) औदारिक मिश्र (3) कार्मण ।

5 वायुकाय में उपरोक्त तीन योगों सहित वैक्रिय-वैक्रिय मिश्र काययोग होने से पांच योग पाये जाते हैं ।

6 त्रसकाय में पन्द्रह योग पाये जाते हैं ।

यहाँ योग द्वार का वर्णन परिपूर्ण होता है ।

पंचदशम उपयोग द्वार का प्रस्तुतीकरण

गाथा

ति अनाण नाण पण चउ, दंसण बार जिअलक्खणुवओगा ।
इअ बारस उवओगा, भणिया तेलुक्कदंसीहिं ।।23।।

संस्कृत छाया

त्रीण्यज्ञानानि ज्ञानानिपञ्च, चत्वारि दर्शनानि द्वादश जीवलक्षणोपयोगाः ।
एते द्वादश उपयोगाः, भणितास्त्रैलोक्यदर्शिभिः ।।23।।

शब्दार्थ

ति - तीन	अनाण - अज्ञान
नाण - ज्ञान	पण - पांच
चउ - चार	दंसण - दर्शन
बार - बारह	जिअ - जीव
लक्खण - लक्षण	उवओगा - उपयोग
इअ - ये	बारस - बारह
उवओगा - उपयोग	भणिया - कहे गये हैं
तेलुक्क - त्रैलोक्य	दंसीहिं - दर्शियों द्वारा

भावार्थ

तीन अज्ञानोपयोग (मतिअज्ञानोपयोग - श्रुतअज्ञानोपयोग - अवधिअज्ञानोपयोग), पांच ज्ञानोपयोग (मतिज्ञानोपयोग - श्रुतज्ञानोपयोग - अवधिज्ञानोपयोग - मनःपर्यवज्ञानोपयोग - केवलज्ञानोपयोग) और चार दर्शनोपयोग (चक्षुदर्शनोपयोग - अचक्षुदर्शनोपयोग - अवधिदर्शनोपयोग - केवलदर्शनोपयोग), ये जीव के लक्षण रूप बारह उपयोग त्रैलोक्यदर्शी जिनेश्वर देवों के द्वारा कहे गये हैं ॥23॥

विशेष विवेचन

प्रस्तुत गाथा में पंद्रहवें उपयोग द्वार का विवेचन किया गया है ।

शास्त्रों में कहा गया है-उपयोगो लक्षणम्, उपयोगः जीवस्य लक्षणम् इत्यादि ।

उपयोग को जीव का लक्षण कहा गया है और ज्ञान-अज्ञान-दर्शन को उपयोग कहा गया है ।

ज्ञान आदि उपयोग ही वे लक्षण हैं जो जीव तथा अजीव में भेद रेखा का निर्माण करते हैं ।

अव्यवहार राशि के सूक्ष्म निगोद के जीवों में भी ज्ञान, दर्शनादि का सूक्ष्मांश खुला अवश्य रहता है, अतः इन उपयोगों से ही जड तथा चेतन की पहचान होती है ।

उपयोग जो बोधरूप व्यापार है, वह जीव का सर्वोत्कृष्ट लक्षण है ।

उपयोग से अभिप्राय - वस्तु में स्थित सामान्य अथवा विशेष धर्म को बताने वाली आत्मिक शक्ति के व्यापार को उपयोग कहते है ।

ज्ञान-अज्ञान-दर्शन, ये तीनों शक्ति-लब्धि रूप हैं और उनके प्रयोग की प्रक्रिया उपयोग है ।

बारह प्रकार के उपयोग

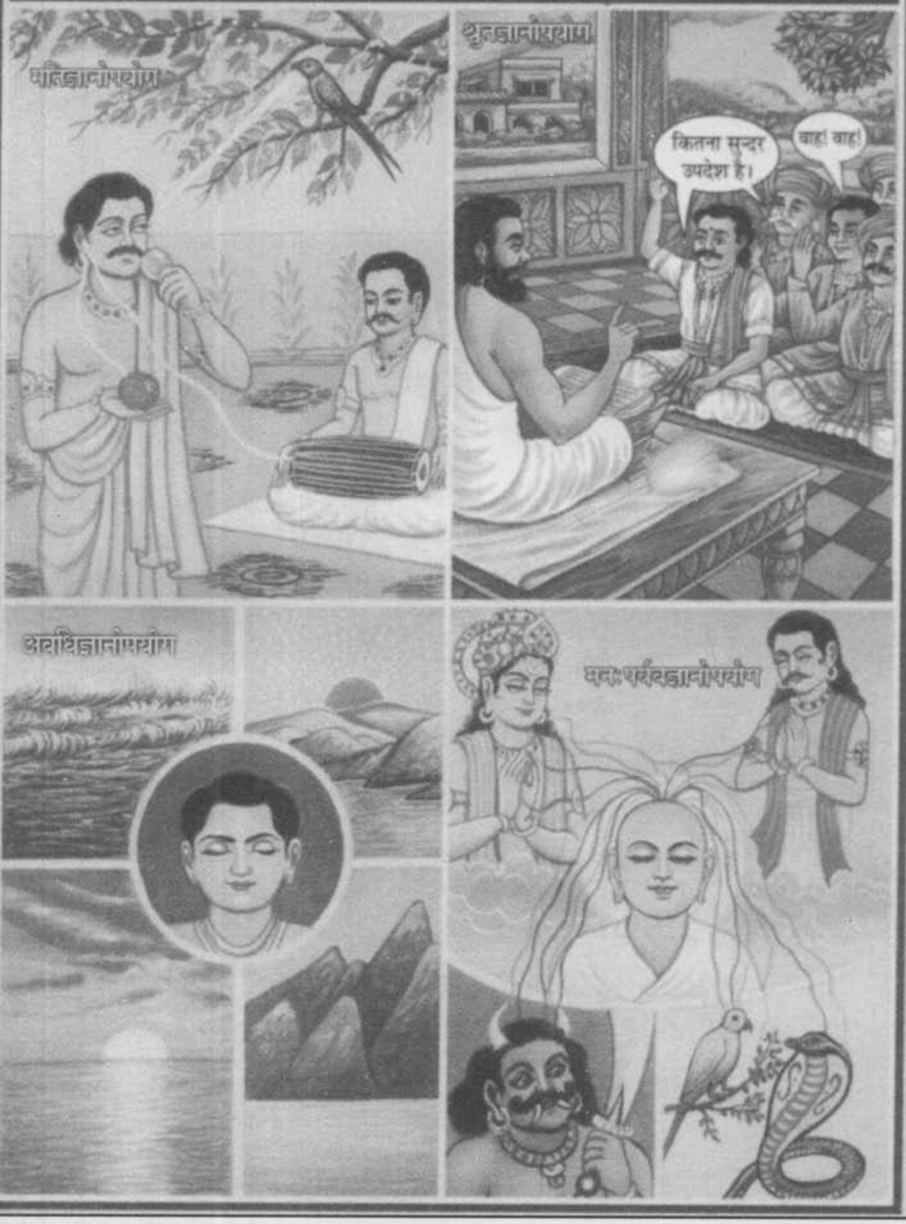

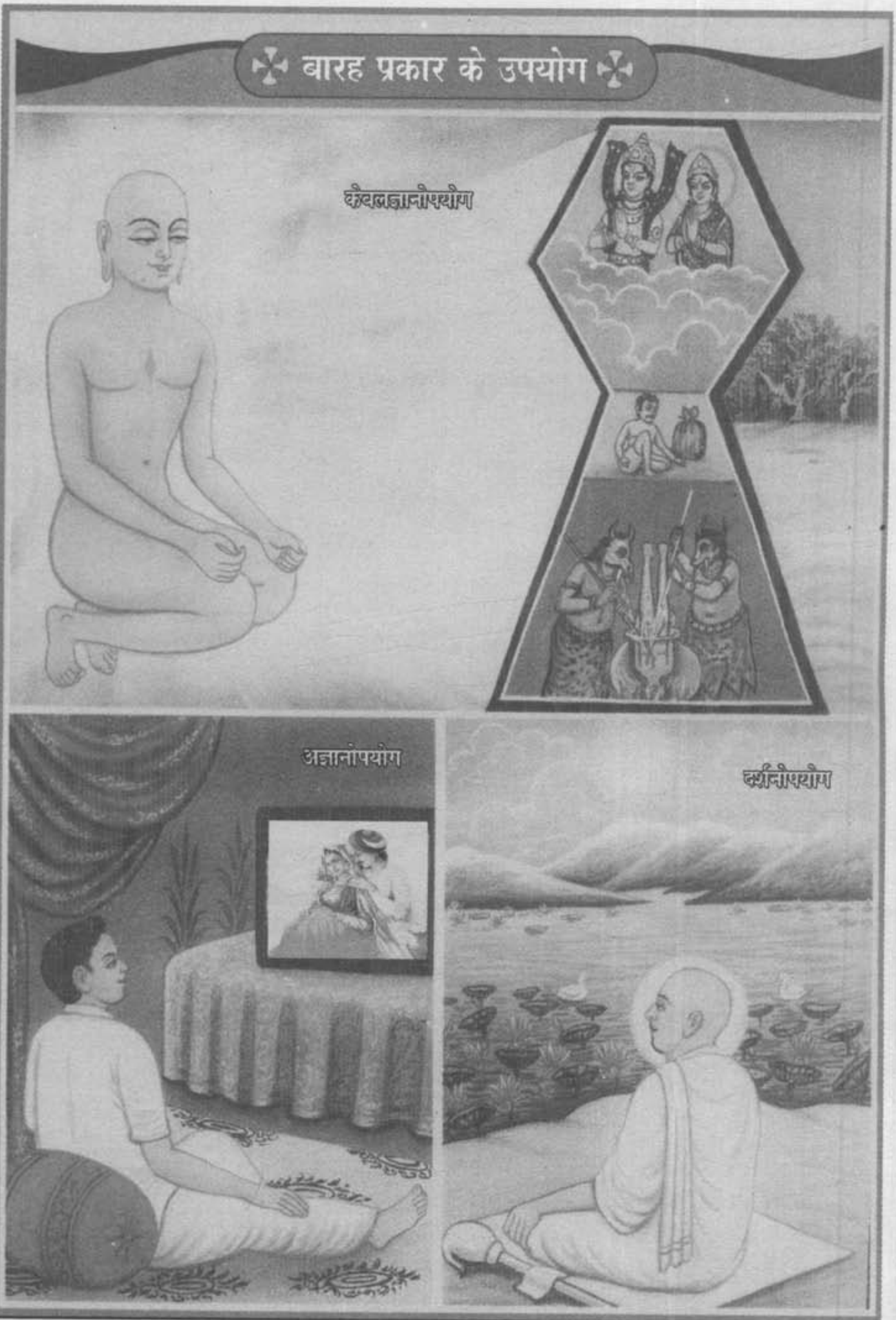
बारह प्रकार के उपयोग
केवलज्ञानोपयोग
अज्ञानोपयोग
दर्शनोपयोग

व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ -

'उपयुज्यते वस्तु परिच्छेदं प्रति व्यापार्यते जीवः अनेन इति उपयोगः ।'

वस्तु-तत्त्व का अवबोध पाने के लिये जीव जिसके द्वारा प्रेरित होता है, उसे उपयोग कहते है ।

उपयोग मुख्य रूप से दो प्रकार के कहे गये है - (1) साकारोपयोग, (2) निराकारोपयोग ।

साकारोपयोग दो प्रकार का होता है -

(i) ज्ञानोपयोग - वस्तु में स्थित विशेष धर्म को बताने वाली सम्यक्त्व सहित आत्मिक शक्ति के व्यापार को ज्ञानोपयोग कहते है ।

(ii) अज्ञानोपयोग - वस्तु में स्थित विशेष धर्म को बताने वाली सम्यक्त्व रहित आत्मिक शक्ति के व्यापार को अज्ञानोपयोग कहते है ।

निराकारोपयोग - वस्तु में स्थित सामान्य धर्म को बताने वाली आत्मिक शक्ति के व्यापार को निराकारोपयोग कहते है । इसे दर्शनोपयोग भी कहते है ।

उपयोग कुल बारह प्रकार के कहे गये हैं ।

साकारोपयोग के आठ भेद होते हैं, जिसमें से पांच भेद ज्ञानोपयोग के होते हैं और तीन अज्ञानोपयोग के होते हैं । निराकारोपयोग के चार प्रकार होते हैं ।

ज्ञानोपयोग के पांच भेद - (1) मतिज्ञानोपयोग (2) श्रुतज्ञानोपयोग (3) अवधिज्ञानोपयोग (4) मनःपर्यवज्ञानोपयोग (5) केवलज्ञानोपयोग ।

अज्ञानोपयोग के तीन भेद - (1) मतिअज्ञानोपयोग (2) श्रुतअज्ञानोपयोग (3) अवधिअज्ञानोपयोग (विभंगज्ञानोपयोग) ।

दर्शनोपयोग (निराकारोपयोग) के चार भेद - (1) चक्षुदर्शनोपयोग (2) अचक्षुदर्शनोपयोग (3) अवधिदर्शनोपयोग (4) केवलदर्शनोपयोग ।

(1) **मतिज्ञानोपयोग** - मन और इन्द्रियों की सहायता से वस्तु में स्थित विशेष धर्म को बताने वाली आत्मिक शक्ति के व्यापार को मतिज्ञानोपयोग कहते है ।

(2) **श्रुतज्ञानोपयोग** - मन और इन्द्रियों की सहायता से शास्त्र, ग्रंथादि के श्रवण अथवा वांचन के शब्द में छिपे अर्थ का ज्ञान कराने वाली आत्मिक शक्ति के व्यापार को श्रुतज्ञानोपयोग कहते है ।

(3) **अवधिज्ञानोपयोग** - मन और इन्द्रियों की सहायता के बिना मात्र रुपी द्रव्यों में स्थित विशेष धर्म को बताने वाली आत्मिक शक्ति के व्यापार को अवधिज्ञानोपयोग कहते है ।

(4) **मनःपर्यवज्ञानोपयोग** - मन और इन्द्रियों की सहायता के बिना ढाई द्वीप में स्थित संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों के मन के विचारों को बताने वाली आत्मिक शक्ति के व्यापार को मनःपर्यवज्ञानोपयोग कहते है ।

(5) **केवलज्ञानोपयोग** - त्रिकाल एवं लोकालोक में स्थित समस्त द्रव्यों एवं उनकी समस्त पर्यायों में स्थित विशेष धर्म को एक साथ बताने वाली आत्मिक शक्ति के व्यापार को केवलज्ञानोपयोग कहते है ।

(6) **मतिअज्ञानोपयोग** - मन और इन्द्रियों की सहायता से वस्तु में स्थित विशेष धर्म को बताने वाली सम्यक्त्व रहित आत्मिक शक्ति के व्यापार को मतिअज्ञानोपयोग कहते है ।

(7) **श्रुतअज्ञानोपयोग** - शास्त्र, ग्रंथादि के श्रवण अथवा वांचन से शब्द के साथ अर्थ का ज्ञान कराने वाली सम्यक्त्व रहित आत्मिक शक्ति के व्यापार को श्रुतअज्ञानोपयोग कहते है ।

(8) **अवधिअज्ञानोपयोग** - मन और इन्द्रियों की सहायता के बिना मात्र रुपी द्रव्यों में स्थित विशेष धर्म को बताने वाली सम्यक्त्व रहित

आत्मिक शक्ति के व्यापार को अवधिअज्ञानोपयोग कहते है । इसे विभंगज्ञानोपयोग भी कहते है ।

(9) चक्षुदर्शनोपयोग - चक्षु (आँख) की सहायता से वस्तु में स्थित सामान्य धर्म को बताने वाली आत्मिक शक्ति के व्यापार को चक्षु दर्शनोपयोग कहते है ।

(10) अचक्षुदर्शनोपयोग - चक्षुरिन्द्रिय के अतिरिक्त शेष चार इन्द्रियों में से किसी भी इन्द्रिय की सहायता से वस्तु में स्थित सामान्य धर्म को बताने वाली आत्मिक शक्ति के व्यापार को अचक्षुदर्शनोपयोग कहते है ।

(11) अवधिदर्शनोपयोग - मन और इन्द्रियों की सहायता के बिना मात्र रुपी द्रव्यों में स्थित सामान्य धर्म को बताने वाली आत्मिक शक्ति के व्यापार को अवधिदर्शनोपयोग कहते है ।

(12) केवलदर्शनोपयोग - त्रिकाल-लोकालोक में अवस्थित समस्त द्रव्यों एवं उनकी समस्त पर्यायों में स्थित सामान्य धर्म को बताने वाली आत्मिक शक्ति के व्यापार को केवलदर्शनोपयोग कहते है ।

साकारोपयोग और निराकारोपयोग में अन्तर

साकारोपयोग	निराकारोपयोग
1 साकारोपयोग विशेष धर्म में प्रवृत्त होता है ।	1 निराकारोपयोग सामान्य धर्म में प्रवृत्त होता है ।
2 साकारोपयोग के मुख्य दो भेद होते हैं ।	2 निराकारोपयोग मुख्य रुप से एक प्रकार का होता है ।
3 साकारोपयोग के आठ भेद होते हैं ।	3 निराकारोपयोग के चार भेद होते हैं ।
4 साकारोपयोग को ज्ञानोपयोग कहा जाता है ।	4 निराकारोपयोग को दर्शनोपयोग कहा जाता है ।

चौबीस दण्डकों में उपयोग द्वार

गाथा

उवओगा मणुएसु, बारस नव निरय तिरिय देवेसु ।
विगलदुगे पणछक्कं, चउरिंदिसु थावरे तियगं ।।24।।

संस्कृत छाया

उपयोगाः मनुजेषु द्वादश, नव नैरयिकतिर्यग्देवेषु ।
विकलद्विके पञ्च षट्कं, चतुरिन्द्रियेषु स्थावरे त्रयः ।।24।।

शब्दार्थ

उवओगा - उपयोग	मणुएसु - मनुष्यों में
बारस - बारह	नव - नव (उपयोग)
निरय - नारकी जीवों में	तिरिय - तिर्यंचों में
देवेसु - देवों में	विगल - विकलेन्द्रिय
दुगे - द्विक (द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय)	पण - पांच उपयोग
छक्कं - छह उपयोग	चउरिंदिसु - चतुरिन्द्रिय में
थावरे - स्थावर में	तियगं - तीन उपयोग

भावार्थ

मनुष्यों में पांच ज्ञानोपयोग, चार दर्शनोपयोग और तीन अज्ञानोपयोग, कुल बारह उपयोग पाये जाते हैं । देव, गर्भज तिर्यंच और नारकी जीवों में नव उपयोग पाये जाते हैं ।

द्वीन्द्रिय तथा त्रीन्द्रिय जीवों में पांच उपयोग पाये जाते हैं । चतुरिन्द्रिय जीवों में छह उपयोग पाये जाते हैं । स्थावर (पृथ्वी-अप्-तेउ-वायु-वनस्पतिकाय) में तीन उपयोग पाये जाते हैं ।।24।।

विशेष विवेचन

प्रस्तुत गाथा में चौबीस दण्डकों के संदर्भ में उपयोग द्वार का विवेचन किया गया है।

चौबीस दण्डकों में उपयोग द्वार -

1 पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय और वनस्पतिकाय, इन पांच स्थावरों में तीन उपयोग मतिअज्ञानोपयोग, श्रुतअज्ञानोपयोग और अचक्षुदर्शनोपयोग पाये जाते हैं।

कर्मग्रंथानुसार - पृथ्वी, अप् और वनस्पतिकाय, इन तीन स्थावरों में पांच उपयोग पाये जाते हैं। उपरोक्त तीन उपयोगों के अतिरिक्त मतिज्ञानोपयोग एवं श्रुतज्ञानोपयोग होते हैं।

2 द्वीन्द्रिय तथा त्रीन्द्रिय जीवों में पांच उपयोग पाये जाते हैं - 1 मतिज्ञानोपयोग 2 श्रुतज्ञानोपयोग 3 मतिअज्ञानोपयोग 4 श्रुतअज्ञानोपयोग 5 अचक्षुदर्शनोपयोग

3 चतुरिन्द्रिय जीवों में उपरोक्त पांच उपयोगों सहित चक्षुदर्शनोपयोग होने से कुल छह उपयोग होते हैं।

4 दस भवनपति देव, व्यंतर देव, ज्योतिष्क देव, वैमानिक देव, नारकी तथा गर्भज तिर्यंचों में मनःपर्यवज्ञानोपयोग, केवलज्ञानोपयोग और केवलदर्शनोपयोग के सिवाय नौ उपयोग पाये जाते हैं।

5 गर्भज मनुष्य में बारह उपयोग पाये जाते हैं।

कौनसा उपयोग कितने दण्डकों में ?

1-2 पांच स्थावर के सिवाय उन्नीस दण्डकों में मतिज्ञानोपयोग और श्रुतज्ञानोपयोग पाये जाते हैं।

कर्मग्रंथानुसार - तेउकाय तथा वायुकाय के सिवाय बावीस दण्डकों में मति और श्रुतज्ञानोपयोग पाये जाते हैं।

3 दस भवनपति देव, व्यंतर-ज्योतिष्क और वैमानिक देव, नारकी, गर्भज तिर्यंच तथा गर्भज मनुष्य, इन सोलह दण्डकों में अवधिज्ञानोपयोग पाया जाता है ।

4-5 मनःपर्यवज्ञानोपयोग तथा केवलज्ञानोपयोग, दोनों गर्भज मनुष्य के एक दण्डक में ही पाये जाते हैं ।

6-7 मतिअज्ञानोपयोग तथा श्रुतअज्ञानोपयोग, दोनों समस्त दण्डकों में पाये जाते हैं ।

8 अवधि अज्ञानोपयोग अवधिज्ञानोपयोग की भाँति सोलह दण्डकों में पाया जाता है ।

9 चक्षुदर्शनोपयोग समस्त देव, गर्भज मनुष्य, गर्भज तिर्यंच, नारकी तथा चतुरिन्द्रिय, इन सतरह दण्डकों में पाया जाता है ।

10 अचक्षुदर्शनोपयोग समस्त दण्डकों में पाया जाता है ।

11 अवधिदर्शनोपयोग समस्त देव, गर्भज मनुष्य, गर्भज तिर्यंच तथा नारकी, इन सोलह दण्डकों में पाया जाता है ।

12 केवलदर्शनोपयोग गर्भज मनुष्य के एक दण्डक में ही पाया जाता है ।

कितने दण्डकों में कितने उपयोग ? -

1 **सिद्धान्तानुसार** - पांच दण्डकों में तीन उपयोग पाये जाते हैं ।
कर्मग्रंथानुसार - दो दण्डकों में तीन उपयोग पाये जाते हैं ।

2 **सिद्धान्तानुसार** - दो दण्डकों में पांच उपयोग पाये जाते हैं ।
कर्मग्रंथानुसार - पांच दण्डकों में पांच उपयोग पाये जाते हैं ।

3 एक दण्डक में छह उपयोग पाये जाते हैं ।

4 पंद्रह दण्डकों में नव उपयोग पाये जाते हैं ।

5 एक दण्डक में बारह उपयोग पाये जाते हैं ।

चार गतियों में उपयोग द्वार -

1 मनुष्य गति में बारह उपयोग पाये जाते हैं ।

2-4 देव-तिर्यंच-नरक, इन तीनों गतियों में नव-नव उपयोग पाये जाते हैं ।

जाति पंचक में उपयोग द्वार -

1 एकेन्द्रिय में तीन उपयोग पाये जाते है। कर्मग्रंथानुसार पांच उपयोग पाये जाते हैं।

2-3 द्वीन्द्रिय तथा त्रीन्द्रिय में पांच उपयोग पाये जाते हैं।

4 चतुरिन्द्रिय में छह उपयोग पाये जाते हैं।

5 पंचेन्द्रिय में बारह उपयोग पाये जाते हैं।

षट्कायिक जीवों में उपयोग द्वार -

1 पृथ्वीकाय में सिद्धान्तानुसार तीन उपयोग पाये जाते हैं। कर्मग्रंथानुसार पांच उपयोग पाये जाते हैं।

2 अप्काय में पृथ्वीकाय की भाँति जानना।

3 तेउकाय में तीन उपयोग पाये जाते हैं।

4 वायुकाय में तीन उपयोग पाये जाते हैं।

5 वनस्पतिकाय में पृथ्वीकाय की भाँति जानना।

6 त्रसकाय में बारह उपयोग पाये जाते हैं।

यहाँ उपयोग द्वार का विवेचन परिपूर्ण होता है।

षोडशम उपपात द्वार का विवेचन

गाथा

संखमसंखा समए, गब्भयतिरि विगल नारयसुरा य।
मणुआ नियमा संखा, वणणंता थावर असंखा ।।25।।

संस्कृत छाया

संख्येयाः असंख्येयाः समये, गर्भजतिर्यग्विकलनारकसुराश्च।
मनुजाः नियमात्संख्येयाः, वना अनंताः स्थावरा असंख्येयाः ।।25।।

शब्दार्थ

संखं - संख्य	**असंखा** - असंख्य
समए - एक समय में	**गब्भय** - गर्भज
तिरि - तिर्यंच	**विगल** - विकलेन्द्रिय में
नारय - नारकी में	**सुरा** - देवों में
य - और	**मणुआ** - मनुष्यों में
नियमा - निश्चित् रूप से	**संखा** - संख्य
वण - वनस्पतिकाय में	**अणंता** - अनंत
थावर - स्थावर (शेष)	**असंखा** - असंख्य

भावार्थ

गर्भज तिर्यंच, नारकी, देव और विकलेन्द्रिय जीव एक समय में संख्य अथवा असंख्य उत्पन्न होते हैं।

एक समय में संख्य मनुष्य उत्पन्न होते हैं।

एक समय में वनस्पतिकाय के अनन्त जीव उत्पन्न होते हैं।

एक समय में पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय और वायुकाय के असंख्य जीव उत्पन्न होते हैं ।।25।।

विशेष विवेचन

प्रस्तुत गाथा में सोलहवें उपपात द्वार का विवेचन किया गया है। **उपपात से अभिप्राय** - उत्पन्न होने को, जन्म लेने को उपपात कहते है। नारक, देव आदि पर्यायों में जन्म लेने की प्रक्रिया को उपपात कहते है। एक समय में कितने जीव कौन से दण्डक में उत्पन्न होते हैं, इसका विवेचन प्रस्तुत उपपात द्वार में किया गया है।

- **संख्य** - जिसे संख्या के द्वारा प्रकट किया जा सके, उसे संख्य कहते है ।
- **असंख्य** - जिसे संख्या के द्वारा प्रकट न किया जा सके, उसे असंख्य कहते है ।
- **अनन्त** - जिसका अन्त न हो, उसे अनन्त कहते है ।

चौबीस दण्डकों में उपपात द्वार -

1 गर्भज तिर्यंच, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, नारकी, दस भवनपति देव, व्यंतर देव, ज्यौतिष्क देव, वैमानिक देव, इन अठारह दण्डकों में एक समय में संख्य अथवा असंख्य गर्भज तिर्यंचादि जीव उत्पन्न होते हैं ।

2 गर्भज मनुष्य के दण्डक में एक समय में संख्य गर्भज मनुष्य उत्पन्न होते हैं ।

3 वनस्पतिकाय के दण्डक में एक समय में वनस्पतिकाय के अनन्त जीव उत्पन्न होते हैं ।

4 पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय और वायुकाय के दण्डक में एक समय में असंख्य पृथ्वीकायादि जीव उत्पन्न होते हैं ।

कौनसा उपपात कौनसे दण्डक में -

(1) एक दण्डक में एक समय में अनन्त जीव उत्पन्न होते हैं ।

(2) अठारह दण्डकों में एक समय में संख्य अथवा असंख्य जीव उत्पन्न होते हैं ।

(3) एक दण्डक में एक समय में संख्य जीव उत्पन्न होते हैं ।

(4) चार दण्डकों में एक समय में असंख्य जीव उत्पन्न होते हैं ।

चार गतियों में उपपात द्वार -

(1) मनुष्य गति में एक समय में असंख्य मनुष्य (संमूर्च्छिम) उत्पन्न होते हैं ।

(2) तिर्यंच गति में एक समय में अनन्त जीव (वनस्पतिकाय के) उत्पन्न होते हैं ।

(3-4) देव गति तथा नरक गति में एक समय में संख्य अथवा असंख्य जीव उत्पन्न होते हैं ।

जाति पंचक में उपपात द्वार -

1 एकेन्द्रिय में एक समय में अनन्त जीव उत्पन्न होते हैं ।

2-4 विकलेन्द्रिय में एक समय में संख्य अथवा असंख्य जीव उत्पन्न होते हैं ।

5 पंचेन्द्रिय में एक समय में संख्य अथवा असंख्य जीव उत्पन्न होते हैं ।

षट्कायिक जीवों में उपपात द्वार -

1-4 पृथ्वी-अप्-तेउ-वायुकाय में एक समय में असंख्य जीव उत्पन्न होते हैं ।

5 वनस्पतिकाय में एक समय में अनन्त जीव उत्पन्न होते हैं ।

6 त्रसकाय में एक समय में संख्य अथवा असंख्य जीव उत्पन्न होते हैं ।

यहाँ उपपात द्वार का विवेचन परिपूर्ण होता है ।

सप्तदशम च्यवन तथा अष्टदशम स्थिति द्वार का विवेचन

गाथा

असन्नि-नर असंखा, जह उववाए तहेव चवणे वि ।
बावीस सगति दसवास, सहस्स उक्किट्ठ पुढवाई ।।26।।

संस्कृत छाया

असंज्ञिनराः असंख्येयाः, यथोपपातस्तथैव च्यवनमपि ।
द्वाविंशतिसप्तत्रिदशवर्ष-सहस्रा उत्कृष्टं पृथ्व्यादयः ।।26।।

शब्दार्थ

असन्नि - असंज्ञी	**नर** - मनुष्य
असंखा - असंख्य	**जह** - यथा, जिस प्रकार
उववाए - उपपात (जन्म)	**तह** - तथा, उस प्रकार
एव - ही	**चवणे** - च्यवन
वि - भी	**बावीस** - बावीस
सग - सात	**ति** - तीन
दस - दस	**वास** - वर्ष
सहस्स - सहस्र, हजार	**उक्किट्ठ** - उत्कृष्ट
पुढवाई - पृथ्वी आदि	

भावार्थ

एक समय में असंख्य असंज्ञी मनुष्य उत्पन्न होते हैं। जिस प्रकार चौबीस दण्डकों में उपपात कहा गया है, उसी प्रकार च्यवन भी समझना चाहिये।

पृथ्वीकाय का उत्कृष्ट आयुष्य बावीस हजार वर्ष, अप्काय का उत्कृष्ट आयुष्य सात हजार वर्ष, वायुकाय का उत्कृष्ट आयुष्य तीन हजार वर्ष तथा वनस्पतिकाय का उत्कृष्ट आयुष्य दस हजार वर्ष का कहा गया है ।।26।।

विशेष विवेचन

प्रस्तुत गाथा में च्यवन द्वार तथा आयुष्य द्वार का कथन किया गया है।

च्यवन - मृत्यु को प्राप्त होना च्यवन कहलाता है।

जीव का आयुष्य पूर्णता के उपरान्त अन्य जन्म को प्राप्त करना च्यवन कहलाता है।

जीवों का च्यवन (मरण) उपपात (जन्म) के समान समझना चाहिये।

1 एक समय में पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय एवं वायुकाय के असंख्य जीव मृत्यु को प्राप्त करते हैं।

2 एक समय में वनस्पतिकाय के अनन्त जीव मृत्यु को प्राप्त करते हैं।

3 एक समय में संख्य अथवा असंख्य गर्भज तिर्यंच मृत्यु को प्राप्त करते हैं।

4 एक समय में संख्य गर्भज मनुष्य एवं असंख्य संमूर्च्छिम मनुष्य मृत्यु को प्राप्त करते हैं।

5 एक समय में संख्य अथवा असंख्य देव मृत्यु को प्राप्त करते हैं।

6 एक समय में संख्य अथवा असंख्य नारकी मृत्यु को प्राप्त करते हैं।

7 एक समय में संख्य अथवा असंख्य विकलेन्द्रिय जीव मृत्यु को प्राप्त करते हैं।

यहाँ च्यवन द्वार परिपूर्ण होता है।

प्रसंगानुकूल यहाँ पर विरहकाल का भी विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है।

नरक, मनुष्य, देव एवं तिर्यंच गति में उस-उस गति के जीवों की उत्पत्ति एवं च्यवन में समय के अन्तराल को विरहकाल कहते है। जितने समय तक नरकादि चौबीस दण्डकों में नारकी आदि जीव उत्पन्न नहीं होते हैं अथवा मरते नहीं हैं, उसे विरहकाल कहते है। प्रज्ञापना, जीवाभिगम आदि सूत्रों में विरहकाल को अन्तर द्वार कहा है।

यद्यपि समस्त दण्डकों में जीवों के जन्म-मरण की प्रक्रिया सतत गतिशील रहती है तथापि कभी-कभी ऐसा काल भी आता है, जब उनमें उपपात अथवा च्यवन नहीं होता है। उत्कृष्टतः उपपात तथा च्यवन विरहकाल की परिपूर्णता के उपरान्त उन-उन दण्डकों जीवों का जन्म-मरण अवश्य ही होता है।

सामान्यरूपेण जघन्य विरहकाल -

- चारों गतियों में जघन्य से विरहकाल एक समय का कहा गया है।

- द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय-पंचेन्द्रिय में जघन्य से विरहकाल एक समय का कहा गया है।
- त्रसकाय में जघन्य से विरहकाल एक समय का कहा गया है।
- बादर जीवों में जघन्य से विरहकाल एक समय का कहा गया है।
- गर्भज, संमूर्च्छिम एवं औपपातिक जीवों में जघन्य से विरहकाल एक समय का कहा गया है।
- तीनों लोकों में जघन्य से विरहकाल एक समय का कहा गया है।
- प्रत्येक शरीरधारी जीवों का जघन्य से विरहकाल एक समय का कहा गया है।

अनेक जीवों की अपेक्षा से सामान्यरूपेण उत्कृष्टतः विरहकाल--

- नरक गति में उत्कृष्टतः विरहकाल छह मास का कहा गया है।
- मनुष्य गति में उत्कृष्टतः विरहकाल बारह मुहूर्त्त का कहा गया है।
- देव गति में उत्कृष्टतः विरहकाल पल्योपम का संख्यातवां भाग कहा गया है।
- तिर्यंच गति में उत्कृष्टतः विरहकाल बारह मुहूर्त्त का कहा गया है।
- विकलेन्द्रिय में उत्कृष्टतः विरहकाल एक मुहूर्त्त का कहा गया है।
- पंचेन्द्रिय में उत्कृष्टतः विरहकाल पल्योपम का संख्यातवां भाग कहा गया है।
- त्रस जीवों में भी उत्कृष्टतः विरहकाल पल्योपम का संख्यातवां भाग कहा गया है।
- अधोलोक में उत्कृष्टतः विरहकाल छह माह का कहा गया है।
- मध्यलोक में उत्कृष्टतः विरहकाल चौबीस मुहूर्त्त का कहा गया है।
- उर्ध्वलोक में उत्कृष्टतः विरहकाल पल्योपम का संख्यातवां भाग कहा गया है।
- बादर जीवों में उत्कृष्टतः विरहकाल पल्योपम का संख्यातवां भाग कहा गया है।

• गर्भज जीवों में उत्कृष्टतः विरहकाल बारह मुहूर्त का कहा गया है।
• औपपातिक जीवों में उत्कृष्टतः विरहकाल पल्योपम का संख्यातवां भाग कहा गया है।
• संमूर्च्छिम जीवों में उत्कृष्टतः विरहकाल एक मुहूर्त का कहा गया है।

विरहकाल का अभाव -

1 एकेन्द्रिय जीवों में विरहकाल का अभाव कहा गया है।
2 पृथ्वीकाय-अप्काय-तेउकाय-वायुकाय और वनस्पतिकाय में विरहकाल का अभाव कहा गया है।
3 स्थावर जीवों में विरहकाल का अभाव कहा गया है।
4 सूक्ष्म जीवों में विरहकाल का अभाव कहा गया है।
5 साधारण जीवों में विरहकाल का अभाव कहा गया है।

दण्डकों में विरहकाल -

• पांच दण्डक (स्थावर) विरहकाल रहित कहे गये हैं।
• शेष उन्नीस दण्डकों विरहकाल सहित कहे गये हैं।

प्रस्तुत विवेचन में चारों गतियों के जीवों के च्यवन तथा उपपात में जो विरह आता है, वह जघन्यतः एवं उत्कृष्टतः प्रस्तुत है -

नरक में उपपात-च्यवन विरहकाल

क्रमांक	नरक गति	उत्कृष्ट	जघन्य
1	सामान्य से	12 मुहूर्त	1 समय
2	प्रथम नरक में	24 मुहूर्त	"
3	द्वितीय नरक में	7 दिन	"
4	तृतीय नरक में	15 दिन	"
5	चतुर्थ नरक में	1 माह	"
6	पञ्चम नरक में	2 माह	"
7	षष्ठम नरक में	4 माह	"
8	सप्तम नरक में	6 माह	"

देवों में उपपात-च्यवन विरहकाल

क्रमांक	देव गति	उत्कृष्ट	जघन्य
1	सामान्य से	12 मुहूर्त	1 समय
2	दस भवनपति देवों में	24 मुहूर्त	,,
3	व्यंतर देवों में	24 मुहूर्त	,,
4	ज्योतिष्क देवों में	24 मुहूर्त	,,
5	वैमानिक देवों में (सामान्य से)	24 मुहूर्त	,,
6	पहले-दूसरे कल्प में	24 मुहूर्त	,,
7	तृतीय कल्प में	09 दिन 20 मुहूर्त	,,
8	चतुर्थ कल्प में	12 दिन 10 मुहूर्त	,,
9	पंचम कल्प में	22 दिन 15 मुहूर्त	,,
10	षष्ठम कल्प में	45 दिन	,,
11	सप्तम कल्प में	80 दिन	,,
12	अष्टम कल्प में	100 दिन	,,
13	नवम कल्प में	10 माह	,,
14	दशम कल्प में	11 माह	,,
15	एकादशम-द्वादशम कल्प में	100 वर्ष (लगभग)	,,
1-3 रे	ग्रैवेयक में	1000 वर्ष	,,
4-6 वें	ग्रैवेयक में	100000 वर्ष	,,
7-9 वें	ग्रैवेयक में	1 करोड़ वर्ष	,,
1-4 थे	चार अनुत्तर विमानों में	पल्योपम का असंख्यातवां भाग	,,
5 वें	सर्वार्थसिद्ध विमान में	पल्योपम का संख्यातवां भाग	,,

गर्भज तिर्यंच-मनुष्यादि में उपपात-च्यवन विरहकाल

क्रमांक	दण्डक	उत्कृष्ट	जघन्य
1	गर्भज तिर्यंच	12 मुहूर्त	1 समय
2	गर्भज मनुष्य	12 मुहूर्त	1 समय
3	एकेन्द्रिय	नहीं	नहीं
4	विकलेन्द्रिय	1 मुहूर्त	1 समय

सिद्ध गति में भी विरहकाल कहा गया है।

सिद्ध-गति में जघन्यतः एक समय का और उत्कृष्टतः छह मास का विरहकाल कहा गया है अर्थात् अधिकतम छह मास के बाद के कोई न कोई जीव अवश्यमेव सिद्ध होता है।

अष्टदशम आयुष्य द्वार का विवेचन

गाथा

तिदिणग्गि तिपल्लाउ, नर-तिरि सुर निरय सागर तित्तीसा।
`वंतर पल्लं जोइस, वरिसलक्खाहियं पलियं ।।27।।

संस्कृत छाया

त्रिदिनोऽग्निस्त्रिपल्यायुष्कौ, नरतिर्यंचौ सुरनैरयिकौ सागरत्रयस्त्रिंशत्कौ।
व्यंतरस्य पल्यं ज्योतिष्कौ वर्षलक्षाधिकं पल्यम् ।।27।।

शब्दार्थ

ति - तीन	दिण - दिन, दिवस
अग्गि - अग्नि	ति - तीन
पल्ल - पल्योपम	आउ - आयुष्य
नर - मनुष्य का	तिरि - तिर्यंच का
सुर - देव का	निरय - नारकी का
सागर - सागरोपम	तित्तीसा - तैंतीस
वंतर - व्यंतर देवों का	पल्लं - पल्योपम
जोइस - ज्योतिष्क देवों का	वरिस - वर्ष
लक्ख - लक्ष	अहियं - अधिक
पलियं - पल्योपम	

भावार्थ

अग्निकाय का उत्कृष्ट आयुष्य तीन दिन का कहा गया है। गर्भज मनुष्य तथा गर्भज तिर्यंच का उत्कृष्ट आयुष्य तीन पल्योपम का कहा गया है। देव और नारकी का उत्कृष्ट आयुष्य तैंतीस सागरोपम का कहा गया है।

व्यंतर तथा ज्योतिष्क देवों का उत्कृष्ट आयुष्य क्रमशः एक पल्योपम तथा एक लाख वर्ष अधिक एक पल्योपम का कहा गया है ।।27।।

गाथा

असुराण अहिय अयरं, देसूण दु-पल्लयं नव निकाए ।
बारस-वासुणपणदिण, छम्मासुक्किट्ठ विगलाऊ ।।28।।

संस्कृत छाया

अक्षुराणामधिकमतरं, देशोनद्विपल्यं नवनिकायेषु ।
द्वादशवर्षोन पंचाशद्दिनषण्मासा उत्कृष्टं विकलायुः ॥28॥

शब्दार्थ

असुराण - असुर कुमार का	अहिय - अधिक
अयरं - एक सागरोपम का	देसूण - कुछ कम
दु - दो	पल्लयं - पल्योपम
नव - नौ	निकाए - निकायों में
बारस - बारह	वास - वर्ष
उणपण - उनपचास	दिण - दिन
छम्मास - छह मास	उक्किट्ठ - उत्कृष्ट रूप से
विगल - विकलेन्द्रियों का	आऊ - आयुष्य

भावार्थ

असुरकुमार नामक भवनपति देवों का उत्कृष्ट आयुष्य पल्योपम का असंख्यातवां भाग अधिक एक सागरोपम का कहा गया है ।

असुरकुमार नामक भवनपति देवों के अतिरिक्त नव निकायों में रहे हुए नागकुमार इत्यादि देवों का उत्कृष्ट आयुष्य देशोन दो पल्योपम होता है ।

द्वीन्द्रिय जीवों का उत्कृष्ट आयुष्य बारह वर्ष, त्रीन्द्रिय जीवों का उत्कृष्ट आयुष्य उनपचास दिन और चतुरिन्द्रिय जीवों का उत्कृष्ट आयुष्य छह मास का होता है ॥28॥

विशेष विवेचन

पूर्वोक्त तीन गाथाओं में चौबीस दण्डकवर्ती जीवों में आयुष्य द्वार का कथन किया गया है ।

आयुष्य - जीवों की नारकादि के रूप में अवस्थिति जितने समय तक रहती है, उसकी विवेचना करने वाला स्थिति-आयुष्य द्वार कहलाता है ।

'व्युत्पत्तिपरक अर्थ - स्थीयते अवस्थीयते अनया आयुष्यकर्मानुभूत्या इति स्थितिः ।

आयुष्य कर्मानुसार जीव का भव में रहना स्थिति कहलाता है । जीवों का अवस्थान स्थिति कहा गया है ।

यद्यपि जीव द्रव्य नित्य है तथापि कर्मवशात् वह जो अनेक पर्याय/जन्म धारण करता है, वे नश्वर/अनित्य होने से जितने कालोपरान्त अवश्य नष्ट हो जाते हैं, उनका विश्लेषण प्रस्तुत द्वार में किया गया है ।

जीव जितना जीता है, उसे आयुष्य कहते है । आयुष्य को भव-स्थिति भी कहा जाता है ।

चतुर्विध गति में अवस्थित जीवों की आयु का विचार स्थिति कहलाता है ।

आयुष्य को पाँव में बंधी जंजीर के समान कहा गया है । जिस प्रकार बेडी से बंधा व्यक्ति काल पूर्ण होने से पहले छूट नहीं सकता । उसी प्रकार आयुष्य पूर्ण होने से पहले जीव मर नहीं सकता और आयुष्य पूर्ण होने के बाद जी नहीं सकता ।

समस्त संसारी जीवों की स्थिति सादि सान्त होती है । सिद्ध जीव की स्थिति सादि अपर्यवसित (अनन्त) कही गयी है, अतः उसमें आयुष्य तथा उद्वर्तना का अभाव है ।

दो प्रकार के आयुष्य -

(1) जघन्य आयुष्य - जीव के न्यूनतम आयुष्य को जघन्य आयुष्य

कहते है । जितना जीवन जीये बिना जीव मर नहीं सकता, उसे जघन्य आयुष्य कहते है ।

(2) **उत्कृष्ट आयुष्य** - जीव के अधिकतम आयुष्य को उत्कृष्ट आयुष्य कहते है । जितनी आयु भोगने के बाद जीव जी नहीं सकता, उसे उत्कृष्ट आयु कहते है ।

पूर्वोक्त गाथाओं में उत्कृष्ट आयुष्य का कथन इस प्रकार किया गया है -

चौबीस दण्डकों में उत्कृष्ट आयुष्य -

1	पृथ्वीकायिक जीवों का उत्कृष्ट आयुष्य	- 22000 वर्ष
2	अप्कायिक जीवों का उत्कृष्ट आयुष्य	- 7000 वर्ष
3	तेउकायिक जीवों का उत्कृष्ट आयुष्य	- 3 दिन
4	वायुकायिक जीवों का उत्कृष्ट आयुष्य	- 3000 वर्ष
5	वनस्पतिकायिक जीवों का उत्कृष्ट आयुष्य	- 10000 वर्ष
6	द्वीन्द्रिय जीवों का उत्कृष्ट आयुष्य	- 12 वर्ष
7	त्रीन्द्रिय जीवों का उत्कृष्ट आंयुष्य	- 49 दिन
8	चतुरिन्द्रिय जीवों का उत्कृष्ट आयुष्य	- 6 माह
9	गर्भज तिर्यंच का उत्कृष्ट आयुष्य	- 3 पल्योपम
10	गर्भज मनुष्य का उत्कृष्ट आयुष्य	- 3 पल्योपम
11	नारकी का उत्कृष्ट आयुष्य	- 33 सागरोपम
12	असुरकुमार देवों का उत्कृष्ट आयुष्य	- साधिक एक सागरोपम
13-21	नागकुमार आदि देवों का उत्कृष्ट आयुष्य	- देशोन दो पल्योपम
22	व्यंतर देवों का उत्कृष्ट आयुष्य	- 1 पल्योपम
23	ज्योतिष्क देवों का उत्कृष्ट आयुष्य	- साधिक एक लाख वर्ष 1 पल्योपम
24	वैमानिक देवों का उत्कृष्ट आयुष्य	- 33 सागरोपम

चार गतियों में उत्कृष्ट आयुष्य -

1-2 मनुष्य एवं तिर्यंच गति में उत्कृष्ट आयुष्य 3 पल्योपम का होता है ।

3-4 देव एवं नरक गति में उत्कृष्ट आयुष्य 33 सागरोपम का होता है ।

पल्योपम से अभिप्राय -

एक योजन लम्बे, एक योजन चौडे और एक योजन गहरे कुएँ को, युगलिक मनुष्य के सात दिन के शिशु के एक बाल के सात टुकडे किये जाये और उनके प्रत्येक के आठ-आठ टुकडे किये हुए बालों से इस प्रकार भरा जाये कि अग्नि उसे जला न सके, पानी बहा न सके, हवा उडा न सके, यहाँ तक कि चक्रवर्ती की विशाल सेना उसके उपर से गुजरे तो भी वे बाल दबे नहीं ।

सौ वर्ष व्यतीत होने पर एक बाल बाहर निकाला जाये । इस प्रकार संपूर्ण बाल निकालने में जितना काल व्यतीत हो जाये, उसे बादर अद्धा पल्योपम कहते हैं ।

एक पल्योपम असंख्य वर्षों का होता है और दस कोडाकोडी पल्योपम का एक सागरोपम होता है ।

कोडाकोडी - करोड को करोड से गुणा करने पर जो प्रतिफल मिलता है, उसे कोडाकोडी कहते है ।

समय सूचक यंत्र -

1 असंख्य समय की एक **आवलिका** ।

2 256 आवलिकाओं का एक **क्षुल्लक भव** ।

3 17.5 क्षुल्लक भवों का एक **श्वासोच्छ्वास** (प्राण) ।

4 7 श्वासोच्छ्वास (प्राण) का एक **स्तोक** ।

5 7 स्तोक का एक **लव** ।

6 38 1/2 लव अथवा 24 मिनट की एक **घडी** ।

7 77 लव अथवा दो घडी का एक **मुहूर्त** ।

8 15 मुहूर्त की एक रात अथवा एक **दिन** ।

9 15 दिन-रात का एक **पक्ष** ।

10 दो पक्षों का एक **माह** ।

11 दो माह की एक **ऋतु** ।

12 तीन ऋतु का एक **अयन** ।

13 दो अयन का एक **वर्ष** ।

14 पांच वर्षों का एक **युग** ।

15 चौरासी लाख वर्षों का एक **पूर्वांग** ।

16 चौरासी लाख पूर्वांगों का एक **पूर्व** अथवा 70 लाख 56 हजार करोड वर्षों का एक **पूर्व** ।

17 असंख्य वर्षों का एक **पल्योपम** ।

18 दस कोडाकोडी पल्योपम का एक **सागरोपम** ।

19 दस कोडाकोडी सागरोपम की एक **उत्सर्पिणी** अथवा **अवसर्पिणी** ।

20 एक उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी का एक **कालचक्र** ।

21 अनन्त कालचक्रों का एक **पुद्गल परावर्तन काल** ।

जघन्य आयुष्य का प्रस्तुतीकरण

गाथा

पुढवाइदसपयाणं, अंतमुहुत्तं जहन्न आऊ-ठिई ।
दस-सहस्स-वरिस ठिइया, भवणाहिव निरय-वंतरिया ॥29॥

संस्कृत छाया

पृथ्व्यादिदशपदानाम्, अन्तर्मुहूर्त्त-जघन्यायुः स्थितिः ।
दशसहस्रवर्षस्थितिका, भवनाधिपनैरयिकव्यंतराः ॥29॥

शब्दार्थ

पुढव - पृथ्वीकाय	आइ - आदि
दस - दस	पयाणं - पदों में
अंतमुहुत्तं - अन्तर्मुहूर्त	जहन्न - जघन्य
आऊ - आयुष्य	ठिई - स्थिति
दस - दस	सहस्स - हजार, सहस्र
वरिस - वर्ष	ठिइया - स्थिति वाला
भवणाहिव - भवनपति देव	निरय - नारकी
वंतरिया - व्यंतर देव	

भावार्थ

पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, गर्भज तिर्यंच, गर्भज मनुष्य, इन दस दण्डकों में जघन्य आयुष्य अन्तर्मुहूर्त्त प्रमाण कहा गया है ।

नारकी, भवनपति एवं व्यंतर देवों का जघन्य आयुष्य दस हजार वर्ष का कहा गया है ।।29।।

स्थिति तथा एकोनविंशतितम पर्याप्ति द्वार का कथन

गाथा

वेमाणिय-जोइसिया,-पल्ल-तयद्धंस आऊआ हुंति ।
सुर-नर-तिरि-निरएसु, छ पज्जत्ती थावरे चऊगं ।।30।।

संस्कृत छाया

वैमानिक-ज्यौतिष्काः पल्यतदष्टांशायुष्का भवन्ति ।
सुरनरतिर्यग्नैरयिकेषु, षट् पर्याप्तयः स्थावरे चतुष्कम् ।।30।।

शब्दार्थ

वेमाणिय - वैमानिक देव	**जोइसिया** - ज्योतिष्क देव
पल्ल - पल्योपम	**तय** - उसका
अट्ठंस - अष्टमांश, आठवां भाग	**आऊआ** - आयुष्य वाले
हुंति - होते हैं	**सुर** - देवों में
नर - मनुष्यों में	**तिरि** - तिर्यंचों में
निरएसु - नैरयिकों में	**छ** - छह
पज्जत्ती - पर्याप्तियाँ	**थावरे** - स्थावर में
चऊगं - चार पर्याप्तियाँ	

भावार्थ

वैमानिक देवों का जघन्य आयुष्य एक पल्योपम का एवं ज्योतिष्क देवों का जघन्य आयुष्य पल्योपम का आठवां भाग का कहा गया है ।

देवों, गर्भज मनुष्यों, गर्भज तिर्यंचों एवं नारकी जीवों में छहों पर्याप्तियाँ पायी जाती हैं ।

पृथ्वी-अप्-तेउ-वायु एवं वनस्पतिकाय के जीवों में चार पर्याप्तियाँ पायी जाती हैं ।।30।।

विशेष विवेचन

प्रस्तुत गाथाद्वय में जघन्य आयुष्य एवं पर्याप्ति द्वार का विवेचन किया गया है ।

चौबीस दण्डकों में जघन्य आयुष्य -

1-10 पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, गर्भज तिर्यंच और गर्भज मनुष्य, इन दस दण्डकवर्ती जीवों का जघन्य आयुष्य अन्तर्मुहूर्त का होता है ।

11 नारकी जीवों का जघन्य आयुष्य दस हजार वर्ष का होता है ।

12-22 दस भवनपति देव एवं व्यंतर देवों का जघन्य आयुष्य दस हजार वर्ष का होता है ।

23 ज्योतिष्क देवों का जघन्य आयुष्य पल्योपम का आठवां भाग होता है ।

24 वैमानिक देवों का जघन्य आयुष्य पल्योपम का होता है ।

यहाँ आयुष्य द्वार का विवेचन परिपूर्ण होता है ।

एकोनविंशतितम पर्याप्ति तथा विंशतितम किमाहार द्वार का प्रस्तुतीकरण

गाथा

विगले पंच पज्जत्ती, छद्दिसि आहार होइ सव्वेसिं ।
पणगाइपए भयणा, अह सन्नितियं भणिस्सामि ।।31।।

संस्कृत छाया

विकले पञ्च पर्याप्तयः, षड्दिगाहारी भवति सर्वेषाम् ।
पनकादिपदे भजना, अथ संज्ञित्रिकं भणिष्यामि ।।31।।

शब्दार्थ

विगले - विकलेन्द्रिय में	**पंच** - पांच
पज्जत्ती - पर्याप्तियाँ	**छद्दिसि** - छह दिशाओं का
आहार - आहार	**होइ** - होता है
सव्वेसिं - सभी दण्डकों में	**पणग** - सूक्ष्म वनस्पति
आइ - आदि	**पए** - पदों में
भयणा - भजना	**अह** - अब
सन्नि - संज्ञी	**तियं** - त्रिक
भणिस्सामि - कहूंगा	

भावार्थ

विकलेन्द्रिय में पांच पर्याप्तियाँ होती हैं। समस्त दण्डकों में छह दिशाओं का आहार होता है परन्तु पनक अर्थात् सूक्ष्म वनस्पतिकाय में छह दिशाओं का आहार हो भी सकता है और नहीं भी। आगामी गाथा में संज्ञी द्वार कहूंगा ||31||

विशेष विवेचन

प्रस्तुत गाथा में एकोनविंशतितम पर्याप्ति द्वार की पूर्णता की गयी है और विंशतितम किमाहार द्वार की विवेचना की गयी है।

पर्याप्ति से अभिप्राय - पुद्गल के समूह से आत्मा में प्रकट होने वाली शक्ति को पर्याप्ति कहते है।

पर्याप्तियाँ छह प्रकार की होती हैं - (1) आहार पर्याप्ति (2) शरीर पर्याप्ति (3) इन्द्रिय पर्याप्ति (4) श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति (5) भाषा पर्याप्ति (6) मनःपर्याप्ति।

(1) आहार पर्याप्ति - जिस शक्ति से जीव आहार ग्रहण करके उसे रस आदि में परिणत करता है, उसे आहार पर्याप्ति कहते है।

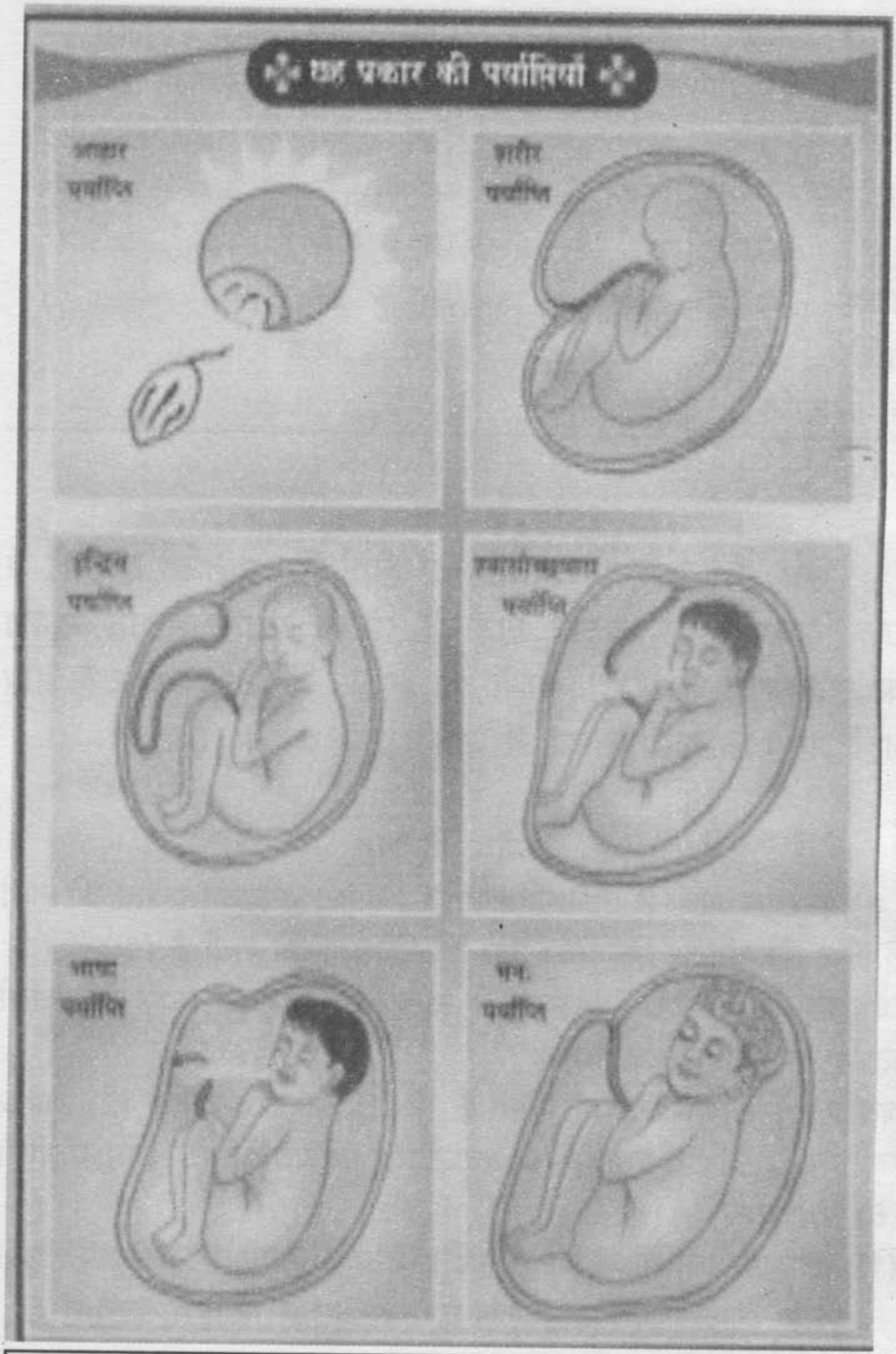
छह प्रकार की पर्याप्तियाँ
आहार पर्याप्ति
शरीर पर्याप्ति
इन्द्रिय पर्याप्ति
श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति
भाषा पर्याप्ति
मन: पर्याप्ति

(2) **शरीर पर्याप्ति** - जिस शक्ति से जीव रस रूप परिणत आहार को रस, रक्त, मांस, अस्थि, वसा, वीर्य और मज्जा रूप सप्त धातुओं में परिणत करता है, उसे शरीर पर्याप्ति कहते है ।

(3) **इन्द्रिय पर्याप्ति** - जिस शक्ति से जीव शरीर रूप परिणत पुद्गलों को स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय और श्रोत्रेन्द्रिय रूप पांच इन्द्रियों में परिणत करता है, उसे इन्द्रिय पर्याप्ति कहते है ।

(4) **श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति** - जिस शक्ति से जीव श्वासोच्छ्वास वर्गणा के पुद्गलों को ग्रहण करके श्वासोच्छ्वास में परिणत करता है और छोडता है, उसे श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति कहते है ।

(5) **भाषा पर्याप्ति** - जिस शक्ति से जीव भाषा वर्गणा के पुद्गलों को ग्रहण करके भाषा में परिणत करके छोडता है, उसे भाषा पर्याप्ति कहते है ।

(6) **मनःपर्याप्ति** - जिस शक्ति से जीव मनोवर्गणा के पुद्गलों को ग्रहण करके मन रूप में परिणत करता है और सोचता है, उसे मनःपर्याप्ति कहते है ।

चौबीस दण्डकों में पर्याप्ति द्वार -

1 पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय तथा वनस्पतिकाय में चार पर्याप्तियाँ पायी जाती हैं - आहार-शरीर-इन्द्रिय-श्वासोच्छ्वास ।

2 विकलेन्द्रिय में मनःपर्याप्ति के अतिरिक्त पांच पर्याप्तियाँ पायी जाती हैं ।

3 नारकी में छह पर्याप्तियाँ पायी जाती हैं ।

4 देवों में छह पर्याप्तियाँ पायी जाती हैं ।

5 गर्भज मनुष्य में छह पर्याप्तियाँ पायी जाती हैं ।

6 गर्भज तिर्यंच में छह पर्याप्तियाँ पायी जाती हैं ।

कितने दण्डकों में कितनी पर्याप्तियाँ ?

1 पांच दण्डकों में चार पर्याप्तियाँ पायी जाती हैं ।

2 तीन दण्डकों में पांच पर्याप्तियाँ पायी जाती हैं ।

3 सोलह दण्डकों में छह पर्याप्तियाँ पायी जाती हैं ।

कौनसी पर्याप्ति कितने दण्डकों में ?

1 आहार-शरीर-इन्द्रिय और श्वासोच्छ्वास, ये चार पर्याप्तियाँ समस्त दण्डकों में पायी जाती हैं ।

2 भाषा पर्याप्ति उन्नीस दण्डकों में पायी जाती है ।

3 मनःपर्याप्ति सोलह दण्डकों में पायी जाती है ।

चार गतियों में पर्याप्ति द्वार -

चारों गतियों में छह-छह पर्याप्तियाँ पायी जाती हैं ।

जाति पंचक में पर्याप्ति द्वार -

1 एकेन्द्रिय में चार पर्याप्तियाँ होती हैं ।

2-4 विकलेन्द्रिय में पांच पर्याप्तियाँ होती हैं ।

5 पंचेन्द्रिय में छह पर्याप्तियाँ होती हैं ।

षट्कायिक जीवों में पर्याप्ति द्वार -

1-5 पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय और वनस्पतिकाय में प्रथम चार पर्याप्तियाँ होती हैं ।

6 त्रस काय में छह पर्याप्तियाँ होती हैं ।

यहाँ पर्याप्ति द्वार परिपूर्ण होता है ।

किमाहार द्वार का विवेचन

किमाहार से अभिप्राय -

किमाहार शब्द दो शब्दों से बना है ।

किम् अर्थात् किस/कौन सी दिशा का ।

आहार अर्थात् भोजन ।

'आह्रियते परिगृह्यते जीवैः ।'

जीवों द्वारा जो पुद्गल ग्रहण किये जाते हैं, उसे आहार कहते है ।

कौन से दण्डक वाला जीव कितनी दिशाओं से आहार करता है, उसका प्रस्तुतीकरण किमाहार द्वार में किया गया है ।

इस द्वार का दूसरा नाम दिगाहार है ।

दिशाएँ छह प्रकार की हैं -

1 पूर्व 2 पश्चिम 3 उत्तर 4 दक्षिण 5 उर्ध्व 6 अधो ।

कोई जीव तीन दिशा का, कोई चार या पांच अथवा छह दिशा का आहार ग्रहण करता है । कोई भी जीव कम से कम तीन दिशा का आहार लेता ही है ।

चौबीस दण्डकों में किमाहार द्वार -

1 पांच स्थावर तीन-चार-पांच अथवा छह दिशा का आहार लेते हैं ।

2 देव, नारकी, गर्भज तिर्यंच, गर्भज मनुष्य तथा विकलेन्द्रिय छहों दिशाओं से आहार लेते हैं ।

ज्ञातव्य बिंदु -

1 एकेन्द्रिय जीव तीन, चार, पांच अथवा छह दिशाओं से आहार लेते हैं ।

2 विकलेन्द्रिय एवं पंचेन्द्रिय जीव छह दिशाओं से आहार लेते हैं ।

3 पृथ्वीकायादि पांच स्थावर जीव तीन, चार, पांच अथवा छह दिशाओं से आहार लेते हैं ।

4 त्रसकाय के जीव छहों दिशाओं से आहार लेते हैं ।

5 संमूर्च्छिम जीव तीन, चार, पांच अथवा छह दिशाओं से आहार लेते हैं ।

6 गर्भज एवं औपपातिक जीव छह दिशाओं से आहार लेते हैं ।

7 प्रत्येक एवं साधारण जीव तीन, चार, पांच अथवा छह दिशाओं से आहार लेते हैं ।

8 सूक्ष्म एवं बादर जीव तीन, चार, पांच अथवा छह दिशाओं से आहार लेते हैं।
9 नपुंसक वेदी जीव तीन, चार, पांच अथवा छह दिशाओं से आहार लेते हैं।
10 पुरुष एवं स्त्री वेदी जीव छहों दिशाओं से आहार लेते हैं।
11 संज्ञी जीव छहों दिशाओं से आहार लेते हैं।
12 असंज्ञी जीव तीन, चार, पांच अथवा छह दिशाओं से आहार लेते हैं।
13 भव्य तथा अभव्य जीव तीन, चार, पांच अथवा छह दिशाओं से आहार लेते हैं।

यहाँ किमाहार द्वार का विवेचन परिपूर्ण होता है।

एकविंशतितम संज्ञी द्वार का विवेचन -

गाथा

चउविह-सुर-तिरिएसु, निरएसु य दीहकालिगी सन्ना ।
विगले हेउवएसा, सन्ना रहिया थिरा सव्वे ।।32।।

संस्कृत छाया

चतुर्विधसुरतिर्यक्षु, नैरयिकेषु च दीर्घकालिकी संज्ञा ।
विकले हेत्वौपदेशिकी, संज्ञारहिताः स्थिराः सर्वे ।।32।।

शब्दार्थ

चउविह - चार प्रकार के	**सुर** - देवों में
तिरएसु - तिर्यंचों में	**निरएसु** - नैरयिकों में
य - और	**दीहकालिगी** - दीर्घकालिकी
सन्ना - संज्ञा	**विगले** - विकलेन्द्रिय में
हेउवएसा - हेतुवादोपदेशिकी	**सन्ना** - संज्ञा
रहिया - रहित, मुक्त	**थिरा** - स्थावर (पृथ्वीकायादि)
सव्वे - सभी	

भावार्थ

चार प्रकार के देवों (भवनपति-व्यंतर-ज्योतिष्क-वैमानिक) में, गर्भज तिर्यंच एवं नारकी जीवों में विशेषरूपेण दीर्घकालिकी संज्ञा होती है। विकलेन्द्रिय में हेतुवादोपदेशिकी संज्ञा होती है तथा पृथ्वीकायादि पांच स्थावरों में एक भी संज्ञा नहीं होती है ।।32।।

संज्ञी द्वार की परिपूर्णता एवं द्वाविंशतितम गति द्वार का प्रस्तुतीकरण

गाथा

मणुआण दीहकालिय, दिट्ठिवाओवएसिआ केवि ।
पज्ज-पण-तिरि-मणुअच्चिय, चउविह-देवेसु गच्छंति ।।**33**।।

संस्कृत छाया

मनुजानां दीर्घकालिकी, दृष्टिवादोपदेशिकाः केऽपि ।
पर्याप्तपञ्चेन्द्रिय तिर्यग्मनुजा एव, चतुर्विध-देवेषु गच्छन्ति ।।**33**।।

शब्दार्थ

मणुआण - मनुष्यों में	**दीहकालिय** - दीर्घकालिकी
दिट्ठिवाओवएसिया - दृष्टिवादोपदेशिकी	**के** - बहुतों को
वि - भी	**पज्ज** - पर्याप्त
पण - पंचेन्द्रिय	**तिरि** - तिर्यंच
मणुअच्चिय - मनुष्यों में भी	**चउविह** - चार प्रकार के
देवेसु - देवों में	**गच्छंति** - जाते हैं

भावार्थ

मनुष्यों में दीर्घकालिकी संज्ञा पायी जाती है । अनेक मनुष्यों में दृष्टिवादोपदेशिकी संज्ञा भी पायी जाती है ।

पर्याप्त पंचेन्द्रिय गर्भज तिर्यंच और मनुष्य ही मृत्यु को प्राप्त करके चार प्रकार के देवों में जाते हैं ।।33।।

विशेष विवेचन

पूर्वोक्त गाथाद्वय में संज्ञी द्वार का विवेचन प्रस्तुत किया गया है ।

संज्ञा से अभिप्राय - जिस विशेष ज्ञान से जीव अनिष्ट से निवृत्त तथा इष्ट में प्रवृत्त होता है, उसे संज्ञा कहते है ।

संज्ञा तीन प्रकार की कही गयी है - (1) हेतुवादोपदेशिकी संज्ञा (2) दीर्घकालिकी संज्ञा (3) दृष्टिवादोपदेशिकी संज्ञा ।

(1) हेतुवादोपदेशिकी संज्ञा - वह संज्ञा, जिसमें वर्तमान के संदर्भ में ही ज्ञान, चिंतन और उपयोग हो, उसे हेतुवादोपदेशिकी संज्ञा कहते है । वह संज्ञा, जिसमें वर्तमान काल में ही प्राप्त दुःख मुक्ति का एवं सुख प्राप्ति का उद्देश्य हो, उसे हेतुवादोपदेशिकी संज्ञा कहते है ।

इस संज्ञा में जीव उस उपाय को भी स्वीकार कर लेता है, जिससे वर्तमान में तो सुख मिलता है और भविष्य में वह उपाय दुःख का कारण बन जाये क्योंकि उन्हें मनोबल प्राण की प्राप्ति नहीं होती है । विकलेन्द्रिय तथा असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों में हेतुवादोपदेशिकी संज्ञा पायी जाती है ।

ये जीव अग्नि, जलादि का उपद्रव होने पर हटकर जिस स्थान पर जाकर सुख का अनुभव करते हैं, उस स्थान के बारे में यह भी नहीं सोच पाते हैं कि अग्नि, जल आदि का उपद्रव यहाँ पूर्व में हुआ था अथवा भविष्य में हो सकता है ।

हेतुवादोपदेशिकी संज्ञा वाले जीवों को केवल वर्तमानकालीन सुख से ही लेना-देना होता है। उनमें भविष्य का कोई भी विचार नहीं होता है।

(2) **दीर्घकालिकी संज्ञा** - वह संज्ञा, जिसमें भूत, वर्तमान एवं भविष्यकाल, तीनों कालों का विचार-चिन्तन होता है, उसे दीर्घकालिकी संज्ञा कहते हैं।

मनोबल प्राण वाले समस्त जीवों में यह संज्ञा पायी जाती है। इस संज्ञा के कारण ही जीव संज्ञी अर्थात् मनोबल प्राण वाले कहलाते हैं। इसका दूसरा नाम संप्रसारण संज्ञा भी है।

(3) **दृष्टिवादोपदेशिकी संज्ञा** - सम्यक्त्वी जीव की संज्ञा दृष्टिवादोपदेशिकी संज्ञा कहलाती है।

वे जीव, जो सम्यक्दर्शन के परिणाम स्वरूप आत्मा का हित-अहित सोचते हैं, अविवेक-अनिष्ट-अकरणीय-अभक्ष्य का त्याग करके इष्ट-करणीय एवं भक्ष्य को स्वीकार करते हैं, उन जीवों की संज्ञा को दृष्टिवादोपदेशिकी संज्ञा कहलाती है।

पंचेन्द्रिय गर्भज मनुष्यों में ही दृष्टिवादोपदेशिकी संज्ञा होती है।

जिज्ञासा - देव, नारकी एवं तिर्यंच पंचेन्द्रिय भी सम्यक्त्वी होते हैं, फिर उनमें दृष्टिवादोपदेशिकी संज्ञा क्यों नहीं कही गयी ?

समाधान -

(1) दण्डक अवचूरि तथा वृत्ति में पंचेन्द्रिय तिर्यंच में दृष्टिवादोपदेशिकी संज्ञा कही गयी है, परंतु अत्यल्प जीवों में होने से यहाँ उनमें दृष्टिवादोपदेशिकी संज्ञा नहीं कही गयी है।

(2) देव और नारकी सम्यक्दृष्टि होते है परंतु उनमें उसके अनुरूप आचरण अर्थात् चारित्र का अभाव होने से उनमें दृष्टिवादोपदेशिकी संज्ञा नहीं कही गयी।

यदि सम्यक्त्व की अपेक्षा से संज्ञा कही जाये तो देवादि चारों गतियों में दृष्टिवादोपदेशिकी संज्ञा पायी जाती है परंतु प्रकरणकार ने यहाँ सर्वविरति चारित्र पाये जाने वाले एक मात्र पंचेन्द्रिय गर्भज मनुष्य में ही दृष्टिवादोपदेशिकी संज्ञा कही है ।

चौबीस दण्डकों में संज्ञा -

1 दस भवनपति, व्यंतर-ज्योतिष्क तथा वैमानिक देवों में दीर्घकालिकी संज्ञा पायी जाती है ।

2 नारकी जीवों में दीर्घकालिकी संज्ञा पायी जाती है ।

3 गर्भज तिर्यंच में दीर्घकालिकी संज्ञा पायी जाती है ।

4 विकलेन्द्रिय में हेतुवादोपदेशिकी संज्ञा पायी जाती है ।

5 गर्भज मनुष्य में दीर्घकालिकी एवं दृष्टिवादोपदेशिकी संज्ञा पायी जाती है ।

संज्ञा रहित दण्डक -

पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय और वनस्पतिकाय, इन पांच दण्डकों में एक भी संज्ञा नहीं पायी जाती है ।

कौनसी संज्ञा कितने दण्डकों में ? -

1 हेतुवादोपदेशिकी संज्ञा तीन दण्डकों में पायी जाती है ।

2 दीर्घकालिकी संज्ञा सोलह दण्डकों में पायी जाती है ।

3 दृष्टिवादोपदेशिकी संज्ञा एक दण्डक में पायी जाती है ।

चार गतियों में संज्ञा द्वार -

1 मनुष्य गति में तीनों संज्ञा पायी जाती हैं क्योंकि संज्ञी मनुष्यों में दृष्टिवादोपदेशिकी एवं दीर्घकालिकी संज्ञा पायी जाती है एवं असंज्ञी मनुष्यों में हेतुवादोपदेशिकी संज्ञा पायी जाती है ।

2 तिर्यंच गति में दीर्घकालिकी तथा हेतुवादोपदेशिकी संज्ञा पायी जाती है ।

3 देव तथा नरक गति में दीर्घकालिकी संज्ञा पायी जाती है ।

जाति पंचक में संज्ञा द्वार -

1 एकेन्द्रिय जीवों में एक भी संज्ञा नहीं पायी जाती है ।

2-4 विकलेन्द्रिय जीवों में हेतुवादोपदेशिकी संज्ञा पायी जाती है ।

5 पंचेन्द्रिय जीवों में तीनों संज्ञा पायी जाती हैं क्योंकि गर्भज मनुष्य-तिर्यंच में दीर्घकालिकी तथा दृष्टिवादोपदेशिकी संज्ञा पायी जाती है एवं असंज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच तथा असंज्ञी मनुष्य में हेतुवादोपदेशिकी संज्ञा पायी जाती है ।

षट्कायिक जीवों में संज्ञा द्वार -

1-5 पृथ्वी-अप्-तेउ-वायु-वनस्पतिकाय में एक भी संज्ञा नहीं पायी जाती है ।

6 त्रसकाय में तीनों संज्ञा पायी जाती हैं ।

कितनी संज्ञा कितने दण्डकों में -

1 एक संज्ञा अठारह दण्डकों में पायी जाती है ।

2 दो संज्ञा एक दण्डक में पायी जाती है ।

3 तीन संज्ञा एक भी दण्डक में नहीं होती है ।

यहाँ संज्ञी द्वार परिपूर्ण होता है ।

देवों में आगति का प्रस्तुतीकरण

गाथा

संखाऊ पज्ज पणिंदि,-तिरिय-नरेसु-तहेव पज्जत्ते ।
भू-दग-पत्तेय-वणे, एएसु च्चिय सुरा-गमणं ।।34।।

संस्कृत छाया

संख्येयायुष्कपर्याप्तपञ्चेन्द्रिय-तिर्यग्नरेषु तथैव पर्याप्तेषु ।
भूदकप्रत्येकवनेषु, एतेष्वेव सुरागमनम् ।।34।।

शब्दार्थ

संख - संख्य	**आऊ** - आयुष्य वाले
पज्ज - पर्याप्त	**पणिंदि** - पंचेन्द्रिय
तिरिय - तिर्यंच में	**नरेसु** - मनुष्य में
तहेव - उसी प्रकार	**पज्जत्ते** - पर्याप्त
भू - पृथ्वीकाय में	**दग** - अप्काय में
पत्तेय - प्रत्येक	**वणे** - वनस्पतिकाय
एएसु - इन दण्डकों में	**च्चिय** - निश्चित ही
सुर - देव	**आगमणं** - आगति

भावार्थ

देवों की आगति पांच दण्डकों में होती है - 1-2 संख्य वर्ष के आयु वाले मनुष्य एवं तिर्यंच 3 बादर पर्याप्त पृथ्वीकाय 4 बादर पर्याप्त अप्काय 5 बादर पर्याप्त वनस्पतिकाय (प्रत्येक) ||34||

विशेष विवेचन

पूर्वोक्त गाथा से गति-आगति द्वार की विवेचना का प्रारंभ किया गया है।

गति से अभिप्राय - चौबीस दण्डक के जीव मृत्यु प्राप्त करके जिस दण्डक में उत्पन्न होते हैं, उसे गति कहते है।

जैसे गर्भज मनुष्य मृत्यु प्राप्त कर समस्त चौबीस दण्डकों में जा सकता है।

आगति से अभिप्राय - चौबीस दण्डक के जीव जिस दण्डक में आकर उत्पन्न होते हैं, उसे आगति कहते है।

जैसे तेउकाय तथा वायुकाय को छोडकर शेष बावीस दण्डकवर्ती जीव गर्भज मनुष्य के दण्डक में आते हैं ।

देवों में आगति - दस भवनपति, व्यंतर, ज्योतिष्क एवं वैमानिक, इन चार देव निकायों में दो दण्डक के जीव उत्पन्न होते हैं - (1) पर्याप्त गर्भज पंचेन्द्रिय मनुष्य (2) पर्याप्त गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यंच ।

देव की गति - चार प्रकार के निकायवर्ती भवनपति-व्यंतर-ज्योतिष्क-वैमानिक देव च्यवकर पांच दण्डकों में उत्पन्न होते हैं - (1) संख्य वर्षायु वाले पर्याप्त गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यंच (2) संख्यवर्षायु वाले पर्याप्त गर्भज पंचेन्द्रिय मनुष्य (3) बादर पर्याप्त पृथ्वीकाय (4) बादर पर्याप्त अप्काय (5) बादर पर्याप्त प्रत्येक वनस्पतिकाय ।

नारकी जीवों की गति एवं आगति

गाथा

पज्जत्त संख-गब्भय,-तिरिय-नरा निरय-सत्तगे जंति ।
निरय-उवट्टा एएसु, उववज्जंति न सेसेसु ।।35।।

संस्कृत छाया

पर्याप्तसंख्येयायुर्गर्भज, तिर्यग्नरा नरकसप्तके यान्ति ।
नरकोद्वृत्ता एतेषू-पपद्यन्ते न शेषेषु ।।35।।

शब्दार्थ

पज्जत्त - पर्याप्त	**संख** - संख्य वर्षायु वाले
गब्भय - गर्भज	**तिरिय** - तिर्यंच

नरा - मनुष्य	**निरय** - नरक
सत्तगे - सात	**जंति** - जाते हैं
निरय - नरक से	**उवट्टा** - निकले हुए
एएसु - इन दण्डकों में	**उववज्जंति** - उत्पन्न होते हैं
न - नहीं	**सेसेसु** - शेष दण्डकों में

भावार्थ

सातों नरकों में दो दण्डकवर्ती जीव आते हैं - (1) पर्याप्त संख्य वर्षायु गर्भज तिर्यंच (2) पर्याप्त संख्य वर्षायु गर्भज मनुष्य ।

नारकी मरकर दो दण्डक में ही जाते हैं - (1) पर्याप्त संख्य वर्षायु गर्भज तिर्यंच (2) पर्याप्त संख्य वर्षायु गर्भज मनुष्य ॥35॥

विशेष विवेचन

प्रस्तुत गाथा में नरक संबंधी गति एवं आगति का विवेचन किया गया है ।

नरक में आगति - दो दण्डक - (1) पर्याप्त संख्य वर्षायु गर्भज तिर्यंच (2) पर्याप्त संख्य वर्षायु गर्भज मनुष्य ।

गति - नारकी जीव मरकर इन दो दण्डकों में ही उत्पन्न होते हैं, शेष दण्डकों में नहीं जाते हैं ॥

जिज्ञासा - देव तथा नारकी मृत्यु प्राप्त कर नरक एवं देवलोकों में उत्पन्न क्यों नहीं होते हैं ?

समाधान -

(i) देवों और नारकी जीवों में महारंभ, महापरिग्रह का अभाव होने के कारण वे मृत्यु प्राप्त कर नरक में नहीं जाते हैं ।

(ii) स्वर्गलोक एवं नरकलोक में संयमासंयम, बालतप का अभाव होने से वे देवविमानों में उत्पन्न नहीं होते हैं ।

(iii) वे इस प्रकार के देव अथवा नरक आयुष्य का बंध नहीं करते हैं ।

(iv) जीव स्वभावेन वे उन स्थानों में सांतर ही उत्पन्न होते हैं ।

पृथ्वी-अप् एवं वनस्पतिकाय में आगति

गाथा

पुढवी आउ-वणस्सइ, - मज्झे नारय-विवज्जिया जीवा ।
सव्वे उववज्जंति, निय - निय कम्माणुमाणेणं ।।36।।

संस्कृत छाया

पृथिव्यप् वनस्पतिर्मध्ये, नारकविवर्जिता जीवाः ।
सर्वे उत्पद्यन्ते, निजनिजकर्मानुमानेन ।।36।।

शब्दार्थ

पुढवी - पृथ्वीकाय	**आउ** - अप्काय
वणस्सइ - वनस्पतिकाय	**मज्झे** - में
नारय - नारक	**विवज्जिया** - विवर्जित, रहित
जीवा - जीवों	**सव्वे** - सभी
उववज्जंति - उत्पन्न होते हैं	**नियनिय** - अपने - अपने
कम्म - कर्म	**अणुमाणेणं** - अनुसार

भावार्थ

पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय में नारकी जीवों को छोड़कर सभी जीव अपने-अपने कर्मानुसार उत्पन्न होते हैं ।।36।।

विशेष विवेचन

उपरोक्त गाथा में पृथ्वीकाय, अप्काय, वनस्पतिकाय की आगति दर्शाई गई है -

चौबीस दण्डकवर्ती जीवों में से नारकी जीव मरकर पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय में उत्पन्न नहीं होते हैं अर्थात् शेष सभी 23 दण्डकों के जीव पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय में पैदा होते हैं ।

असत्य बोलना, विश्वासघात करना, महात्माओं से मशकरी करना, झूठा कलंक लगाना इत्यादि पाप कर्मों से जीवों को पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय में जन्म लेना पड़ता है ।

जो देव क्रीड़ा-कुतूहल वाले होते हैं, प्रकृति में ज्यादा आसक्त रहते हैं, वे देव मरकर पृथ्वी-अप् और वनस्पति में जन्म लेते हैं ।

पृथ्वी, अप् और वनस्पति की गति व तेउ-वायु में आगति

गाथा

पुढवाइ दस-पएसु, पुढवी आउ वणस्सई जन्ति ।
पुढवाइ - दसपएहि य, तेउ वाउसु उववाओ ।।37।।

संस्कृत छाया

पृथिव्यादिदशपदेषु, पृथव्यप् वनस्पतयो यान्ति ।
पृथिव्यादिदशपदेभ्यश्च, तेजोवाय्वोरुपपातः ।।37।।

शब्दार्थ

पुढवाइ - पृथ्वी आदि	**दस** - दस
पएसु - पदों में	**पुढवी** - पृथ्वीकाय
आउ - अप्काय	**वणस्सई** - वनस्पतिकाय
जन्ति - उत्पन्न होते हैं	**पुढवाइ** - पृथ्वी आदि
दस - दस	**पएहि** - पदों के जीव
य - और	**तेउ** - अग्निकाय में
वाउसु - वायुकाय में	**उववाओ** - उत्पन्न होते हैं

भावार्थ

पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय के जीव मृत्यु को प्राप्त कर पृथ्वीकायादि पांच स्थावर, विकलेन्द्रिय त्रिक, गर्भज तिर्यंच-मनुष्य, इन दस दण्डकों में उत्पन्न होते हैं । इन्हीं पृथ्वीकायादि दस पदों दण्डकों के जीव अग्निकाय और वायुकाय में उत्पन्न होते हैं ।।37।।

विशेष विवेचन

प्रस्तुत गाथा में पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय जीवों की गति तथा अग्निकाय और वायुकायिक जीवों की आगति पर प्रकाश डाला गया है ।

पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय की गति - इन तीनों दण्डकों के जीव मरकर पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, गर्भज तिर्यंच और गर्भज मनुष्य, इन दस दण्डकों में उत्पन्न होते हैं ।

तेउ-वायुकाय में आगति - तेउकाय और वायुकाय में पृथ्वीकाय आदि उपरोक्त दस दण्डकों के जीव आकर उत्पन्न होते हैं।

तेउ-वायु की गति व विकलेन्द्रिय की गति-आगति

गाथा

तेऊवाऊ - गमणं, पुढवी-पमुहंमि होइ पयनवगे।
पुढवाइ-ठाण दसगा, विगलाइ तियं तहिं जंति ॥38॥

संस्कृत छाया

तेजोवायुगमनं, पृथ्वीप्रमुखे भवति पदनवके।
पृथ्व्यादिस्थानदशकाद्, विकलादित्रिकं तत्र यान्ति ॥38॥

शब्दार्थ

तेऊ - तेउकाय की	**वाऊ** - वायुकाय की
गमणं - गति	**पुढवी** - पृथ्वी
पमुहंमि - आदि (प्रमुख) में	**होइ** - होती है
पय - पद	**नवगे** - नवमें
पुढव - पृथ्वी	**आइ** - आदि
ठाण - स्थान, दण्डक	**दसगा** - दस में से
विगल - विकलेन्द्रिय	**आइ** - आदि
तियं - त्रिक, तीन	**तहिं** - वहाँ (पृथ्वी आदि 10 में)
जंति - जाते हैं	

भावार्थ

अग्निकाय और वायुकाय की गति पृथ्वीकायादि पांच स्थावर, विकलेन्द्रिय त्रिक तथा गर्भज तिर्यंच, इन नव पदों में होती है।

विकलेन्द्रिय त्रिक में पृथ्वीकायादि स्थावर पंचक, विकलेन्द्रिय त्रिक, गर्भज तिर्यंच और गर्भज मनुष्य, इन दस (पदों) दण्डकों के जीव आते हैं (आगति)। विकलेन्द्रिय त्रिक पृथ्वीकाय आदि दस पदों में जाते हैं (गति) ।।38।।

विशेष विवेचन

प्रस्तुत गाथा में गति-आगति द्वारान्तर्गत अग्निकाय तथा वायुकाय की गति तथा विकलेन्द्रिय त्रिक की गति-आगति का वर्णन किया गया है।

तेउ-वायु की गति - अग्निकाय और वायुकाय के जीव च्यवकर पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय विकलेन्द्रिय त्रिक, और गर्भज तिर्यंच, इन 9 (पदों) दण्डकों में उत्पन्न होते हैं।

जिज्ञासा - पृथ्वी-अप् तथा वनस्पति के जीव गर्भज मनुष्य में जाते हैं तो फिर तेउ-वायुकाय की उसमें गति क्यों नहीं है ?

समाधान - तथाविध भव स्वभाव के कारण एवं भावों की संक्लिष्टता के कारण तेउ-वायुकाय के जीव मनुष्य गति में जन्म नहीं ले सकते हैं।

विकलेन्द्रिय त्रिक की गति - द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय एवं चतुरिन्द्रिय के जीव च्यवन (मृत्यु) के उपरान्त दस दण्डकों में जाते हैं - (1-5) पृथ्वीकायादि पांच स्थावर (6-8) विकलेन्द्रिय त्रिक (9) गर्भज तिर्यंच (10) गर्भज मनुष्य।

आगति - उपरोक्त दसों दण्डकों के जीव मरकर विकलेन्द्रिय त्रिक में आते हैं (आगति)। अर्थात् विकलेन्द्रिय की गति जिन दस दण्डकों में होती है, उन्हीं दस दण्डकों की आगति होती है।

गर्भज तिर्यंच और मनुष्य की गति-आगति

गाथा

गमणा-गमणं गब्भय,-तिरियाणं सयल-जीव-ठाणेसु ।
सव्वत्थ जंति मणुआ, तेऊवाउहिं नो जंति ॥39॥

संस्कृत छाया

गमनागमनं गर्भज,-तिरश्चां सकलजीवस्थानेषु ।
सर्वत्र यान्ति मनुजास्तेजोवायुभ्यां नो यान्ति ॥39॥

शब्दार्थ

गमणागमणं - जाना, आना	गब्भय - गर्भज
तिरियाणं - तिर्यंचों का	सयल - सभी
जीव - जीव	ठाणेसु - स्थानों में (24 दण्डक में)
सव्वत्थ - सर्वत्र	जंति - जाते हैं
मणुआ - मनुष्य में	तेउवाउहिं - तेउ-वायु से
नो - नहीं	जंति - जाते हैं

भावार्थ

गर्भज तिर्यंचों की गति-आगति सभी दण्डकों में होती है अर्थात् वे समस्त 24 दण्डकों में जाते हैं और चौबीस दण्डक के जीव उसमें आते हैं । गर्भज मनुष्य सभी दण्डक पदों में जाते हैं परन्तु गर्भज मनुष्य में अग्निकाय तथा वायुकाय के जीव नहीं आते हैं ॥39॥

विशेष विवेचन

प्रस्तुत गाथा में गर्भज तिर्यंच और गर्भज मनुष्य की गति और आगति की विवेचना की गयी है।

गर्भज तिर्यंच 24 दण्डक पदों में जाकर उत्पन्न हो सकते हैं तथा 24 दण्डक पदों के जीव गर्भज तिर्यंच में आकर उत्पन्न हो सकते हैं।

मनुष्य मरणोपरांत 24 दण्डक पदों में उत्पन्न होते हैं। अग्निकाय और वायुकाय के दो दण्डकों के अतिरिक्त शेष बावीस दण्डकवर्ती जीव मनुष्य गति में आते हैं।

24 दण्डकों में गति - आगति

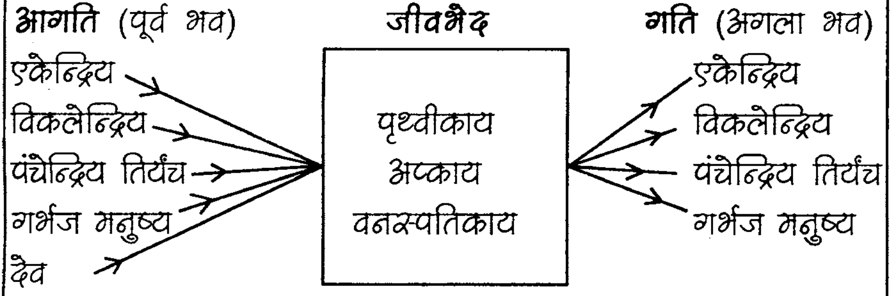

(प्रथम दो वैमानिक देवलोक तक के देव ही बादर पर्याप्त पृथ्वीकाय, अप्काय एवं प्रत्येक वनस्पतिकाय में आते हैं।)

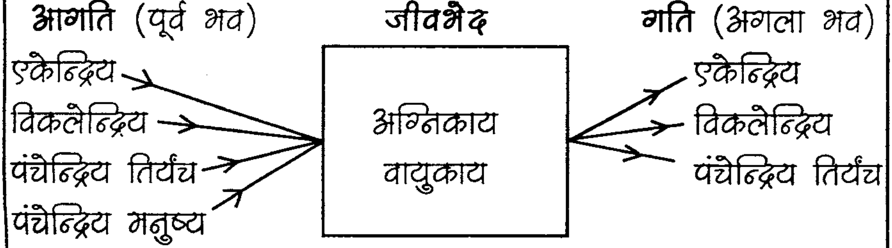

(अग्नि एवं वायुकाय के जीव मनुष्य गति में नहीं जाते हैं।)

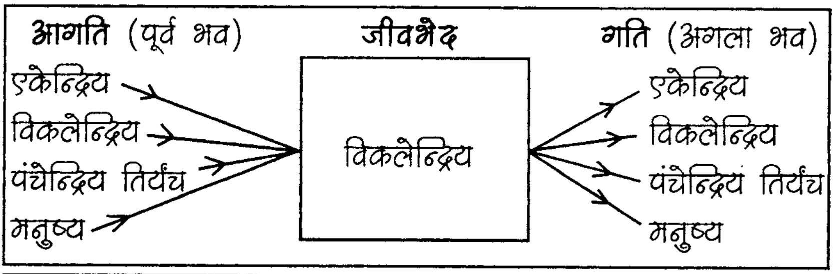

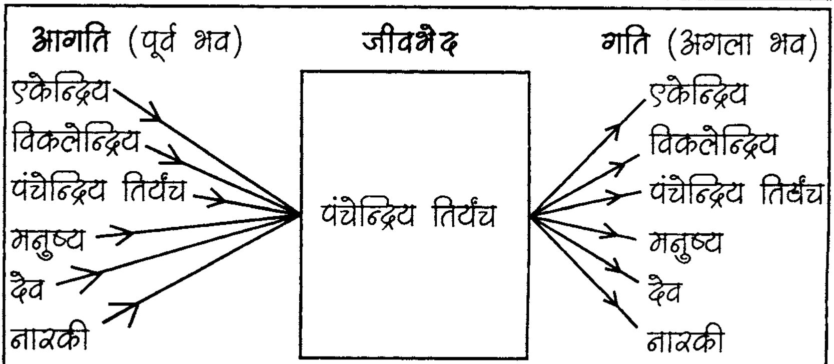

(i) संमूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यंच पहली नरक तक तथा गर्भज तिर्यंच सातवीं नरक तक जाते हैं।

(ii) संमूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यंच भवनपति, व्यंतर देवों में एवं गर्भज तिर्यंच आठवें देवलोक तक जाते हैं।

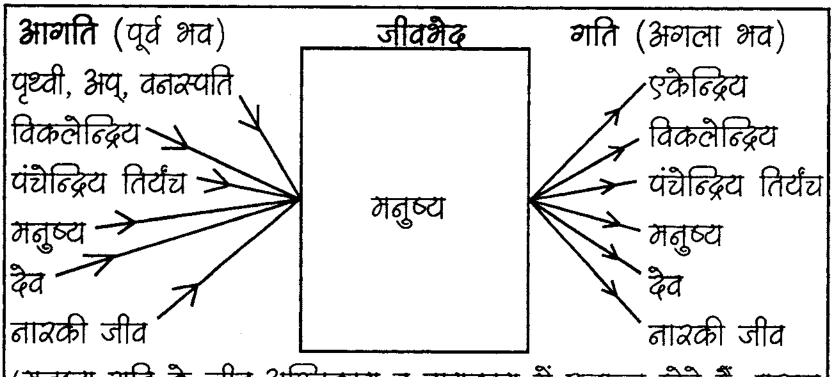

(मनुष्य गति के जीव अग्निकाय व वायुकाय में उत्पन्न होते हैं, परन्तु अग्निकाय व वायुकाय के जीव मनुष्य में उत्पन्न नहीं होते हैं।)

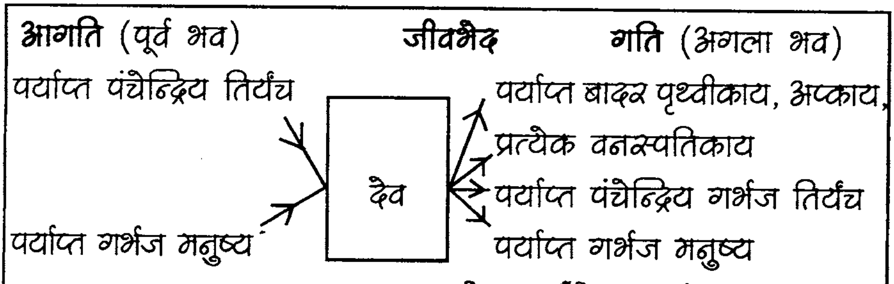

(9-10-11-12 कल्प के, नवग्रैवेयक एवं अनुत्तर विमान के देव मनुष्य गति में ही जाते हैं ।)

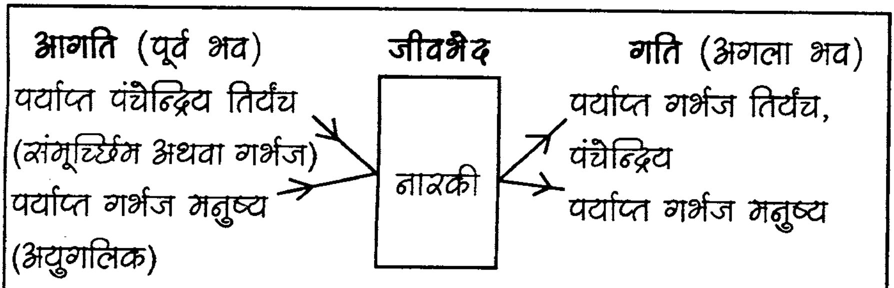

(सप्तम नरकवर्ती नारकी मरकर तिर्यंच गति में ही जाते हैं ।)

गति द्वार का विशेष विवेचन

चतुर्गति के जीवों की गति -

1 मनुष्य गति के जीव चारों गतियों में जाते हैं ।

2 तिर्यंच गति के जीव चारों गतियों में जाते हैं ।

3 देव गति के जीव दो गतियों (मनुष्य/तिर्यंच) में जाते हैं ।

4 नरक गति के जीव दो गतियों (मनुष्य/तिर्यंच) में जाते हैं ।

जाति पंचक के जीवों की गति -

1 एकेन्द्रिय जाति के जीव दो गतियों (मनुष्य तथा तिर्यंच) में जाते हैं ।

2-4 विकलेन्द्रिय जाति के जीव दो गतियों (मनुष्य तथा तिर्यंच) में जाते हैं ।

5 पंचेन्द्रिय जाति के जीव चारों गतियों में जाते हैं ।

कायषट्क के जीवों की गति -

1 पृथ्वीकाय के जीव दो गतियों (मनुष्य/तिर्यंच) में जाते हैं ।

2 अप्काय के जीव पृथ्वीकाय की भाँति दो गतियों में जाते हैं ।

3 तेउकाय के जीव तिर्यंच गति में ही जाते हैं ।

4 वायुकाय के जीव तिर्यंच गति में ही जाते हैं ।

5 वनस्पतिकाय के जीव मनुष्य तथा तिर्यंच, दो गतियों में जाते हैं ।

6 त्रसकाय के जीव चारों गतियों में जाते हैं ।

चौबीस दण्डकों में गति द्वार -

1 पृथ्वीकाय के जीव दस दण्डकों (स्थावर, विकलेन्द्रिय, गर्भज तिर्यंच-मनुष्य) में जाते हैं ।

2 अप्काय के जीव पूर्वोक्त दस दण्डकों में जाते हैं ।

3 तेउकाय के जीव नौ दण्डकों (स्थावर, विकलेन्द्रिय तथा गर्भज तिर्यंच) में जाते हैं ।

4 वायुकाय के जीव पूर्वोक्त नौ दण्डकों में जाते हैं ।

5 वनस्पतिकाय के जीव पृथ्वीकाय की भाँति दस दण्डकों में जाते हैं ।

6 द्वीन्द्रिय जीव पृथ्वीकाय की भाँति दस दण्डकों में जाते हैं ।

7-8 त्रीन्द्रिय एवं चतुरिन्द्रिय जीव पृथ्वीकाय की भाँति दस दण्डकों में जाते हैं ।

9 गर्भज तिर्यंच के जीव चौबीसों दण्डकों में जाते हैं ।

10 गर्भज मनुष्य चौबीसों दण्डकों में जाते हैं ।

11-23 दस भवनपति देव, व्यंतर, ज्यौतिष्क एवं वैमानिक देव मरकर गर्भज मनुष्य, गर्भज तिर्यंच, पृथ्वीकाय, अप्काय, एवं वनस्पतिकाय, इन पांच दण्डकों में उत्पन्न होते हैं ।

24 नारकी मरकर गर्भज मनुष्य तथा गर्भज तिर्यंच, इन दो दण्डकों में उत्पन्न होते हैं ।

आगति द्वार का विशेष विवेचन

चतुर्विध गतियों में आगति द्वार -

1 मनुष्य गति में चारों गतियों से जीव आकर उत्पन्न होते हैं ।

2 तिर्यंच गति में चारों गतियों से जीव आकर उत्पन्न होते हैं ।

3 देव गति में मनुष्य-तिर्यंच गति से जीव आकर उत्पन्न होते हैं ।

4 नरक गति में मनुष्य-तिर्यंच गति से जीव आकर उत्पन्न होते हैं ।

जाति पंचक में आगति द्वार -

1 एकेन्द्रिय जीवों में नरक के सिवाय तीन गति से जीव आकर उत्पन्न होते हैं ।

2-4 विकलेन्द्रिय में मनुष्य तथा तिर्यंच गति से जीव आकर उत्पन्न होते हैं ।

5 पंचेन्द्रिय में चारों गति से जीव आकर उत्पन्न होते हैं ।

कायषट्क में आगति द्वार -

1 पृथ्वीकाय में नरक सिवाय तीन गति के जीव आकर उत्पन्न होते हैं ।

2 अप्काय में पृथ्वीकाय की भाँति आगति जानना ।

3 तेउकाय में मनुष्य एवं तिर्यंच गति के जीव आकर उत्पन्न होते हैं ।

4 वायुकाय में तेउकाय की भाँति आगति जानना ।

5 वनस्पतिकाय में नरक सिवाय तीन गति के जीव आकर उत्पन्न होते हैं ।

6 त्रसकाय में चारों गति के जीव आकर उत्पन्न होते हैं ।

चौबीस दण्डकों में आगति द्वार -

1 पृथ्वीकाय में नरक सिवाय तैवीस दण्डकों के जीव आकर उत्पन्न होते हैं ।

2 अप्काय में नरक सिवाय तैवीस दण्डकों के जीव आकर उत्पन्न होते हैं ।

3 तेउकाय में नरक तथा देव सिवाय दस दण्डकों के जीव आकर उत्पन्न होते हैं।

4 वायुकाय में नरक तथा देव सिवाय दस दण्डकों के जीव आकर उत्पन्न होते हैं।

5 वनस्पतिकाय में नरक सिवाय तैवीस दण्डकों के जीव आकर उत्पन्न होते हैं।

6-8 विकलेन्द्रिय त्रिक में नरक तथा देव सिवाय दस दण्डकों के जीव आकर उत्पन्न होते हैं।

9 गर्भज तिर्यंच में चौबीस दण्डकों के जीव आकर उत्पन्न होते हैं।

10 गर्भज मनुष्य में तेउकाय एवं वायुकाय के सिवाय बावीस दण्डकों के जीव आकर उत्पन्न होते हैं।

11 नरक में गर्भज मनुष्य तथा गर्भज तिर्यंच के जीव आकर उत्पन्न होते हैं।

12-24 भवनपति-व्यंतर-ज्योतिष्क-वैमानिक, इन चतुर्विध देव निकायों में गर्भज मनुष्य तथा गर्भज तिर्यंच के जीव आकर उत्पन्न होते हैं।

यहाँ गति तथा आगति द्वार का विवेचन पूर्ण होता हैं।

गति तथा आगति के आंकड़ों की विस्तृत समझ

5 -	पर्याप्त गर्भज तिर्यंच (जलचर, स्थलचर, खेचर, उरपरिसर्प, भुजपरिसर्प)
15 -	15 कर्मभूमि के पर्याप्त गर्भज मनुष्य
16 -	15 + प. गर्भज जलचर
17 -	15 + प. गर्भज जलचर + प. गर्भज उरपरिसर्प
18 -	15 + प. गर्भज जलचर + प. गर्भज उरपरिसर्प + प. ग. स्थलचर
19 -	15 + प. ग. भुजपरिसर्प सिवाय चार प. ग. तिर्यंच पंचेन्द्रिय
20 -	15 + प. गर्भज तिर्यंच - 5

23 -	20 + बादर पर्याप्त पृथ्वीकाय, अप्काय, प्रत्येक वनस्पतिकाय
25 -	20 + पर्याप्त संमूर्च्छिम तिर्यंच पंचेन्द्रिय
40 -	20 + हिमवंत हिरण्यवंत रहित 20 पर्या. अकर्मभूमिज ग. मनुष्य
48 -	22 स्थावर, 6 विकलेन्द्रिय, 20 पंचे. तिर्यंच
50 -	15 कर्मभूमिज प. ग. मनुष्य 30 अकर्मभूमिज मनुष्य (प. ग.) 5 गर्भज पंचे. तिर्यंच प.
51 -	10 भवनपति + 15 परमाधामी + 8 व्यंतर + 8 वाणव्यंतर + 10 तिर्यग्जृम्भक (पर्याप्ता)
102 -	10 भवनपति + 15 परमाधामी + 8 व्यंतर + 8 वाणव्यंतर + 10 तिर्यग्जृम्भक देवों के पर्या. / अप.
111 -	101 गर्भज पर्या. मनुष्य + 10 पर्या. पंचे. तिर्यंच (5 गर्भज + 5 संमू.)
126 -	102 पातालवासी देव + 20 ज्योतिष्क + 2 प्रथम किल्बिषिक पर्या. अप. + 2 सौधर्म देवलोक के पर्या. / अपर्या.
128 -	126 + 2 ईशान देव पर्या. / अपर्या.
171 -	30 कर्मभूमिज मनुष्य + 101 संमू. मनुष्य + प. अपर्या. वायुकाय व अग्निकाय रहित 40 तिर्यंच भेद
179 -	30 कर्मभूमिज मनुष्य + 101 संमू. मनुष्य + 48 तिर्यंच
243 -	179 + 51 पर्याप्त पातालवासी देव + 10 पर्या. ज्योतिष + 2 पर्या. सौधर्म ईशानदेव + 1 पर्याप्त प्रथम किल्बिषिक
267 -	30 कर्मभूमिज मनुष्य + 101 संमू. मनुष्य + 48 तिर्यंच + 81 सहस्रार देवलोक तक के देव पर्याप्त (9-10-11-12 ग्रैवेयक, 5 अनुत्तर रहित) + 7 पर्याप्त नारक
276 -	30 कर्मभूमिज मनु. + 101 संमू. मनु. + 40 तिर्यंच (4 अग्निकाय + 4 वायुकाय रहित) + 99 पर्या. देव + तमः प्रभा तक 6 पर्या. नरक

395 -	30 कर्मभूमिज गर्भज मनु. + 101 संमू. मनु. + 48 तिर्यंच, 112 अंतर्द्वीपज मनु. + 102 पातालवासी देव + 2 प्रथम नरक (प. / अ.)
517 -	303 मनुष्य + 4 नरक (प्रथम द्वितीय नरक पर्या. / अप.) + 48 तिर्यंच + 162 अष्टम कल्प पर्यंत देव (प. / अ.)
519 -	517 + 2 तृतीय नरक (प. / अप.)
521 -	519 + 2 चतुर्थ नरक (प. / अप.)
523 -	521 + 2 पंचम नरक (प. / अप.)
527 -	303 मनुष्य + 14 नरक + 48 तिर्यंच + 162 अष्टम कल्प पर्यंत देव (प. / अप.)
563 -	सर्वजीव

जीव के 563 भेदों में गति एवं आगति की रूपरेखा

आगति	तिर्यंच के 48 भेद	गति - भेद
243 → 1	बादर पृथ्वी. पर्या.	→ 179
243 → 1	बादर अप्काय पर्या.	→ 179
243 → 1	प्रत्येक बादर वन. पर्या.	→ 179
179 → 1	बादर अग्नि पर्या.	→ 48
179 → 1	बादर वायु पर्या.	→ 48
179 → 11	पृथ्वी आदि शेष में	→ 179
48 → 6	अग्नि + वायु के शेष में	→ 48
179 → 6	विकलेन्द्रिय	→ 179
179 → 5	अपर्या. सं. पं. तिर्यंच	→ 179
179 → 5	पर्या. सं. पं. तिर्यंच	→ 395
267 → 1	पर्या. ग. जलचर	→ 527
267 → 1	पर्या. ग. स्थलचर	→ 521
267 → 1	पर्या. ग. खेचर	→ 519

267 → 1	पर्या. ग. उरःपरिसर्प	→ 523
267 → 1	पर्या. ग. भुजपरिसर्प	→ 517
179 → 5	अप. ग. ति. पंचे.	→ 179

आगति	**मनुष्य के 303 भेद**	**गति**
276 →	15 पर्या. कर्मभूमिज मनु.	→ 563
171 →	15 अपर्या. कर्मभूमिज मनु.	→ 179
20 →	5 पर्या. हिमवंतज मनु.	→ 126
20 →	5 पर्या. हिरण्यवंतज मनु.	→ 126
20 →	5 पर्या. हरिवर्षज मनु.	→ 128
20 →	5 पर्या. रम्यकज मनु.	→ 128
20 →	5 पर्या. उत्तरकुरुज मनु.	→ 128
20 →	5 पर्या. देवकुरुज मनु.	→ 128
25 →	अप. सर्व युगलिक मनु.	→ 102
171 →	101 संमू. मनु.	→ 179

तत्क्षेत्र युग.-मनु.-वत् → युगलिक चतुष्पद → तत्क्षेत्र युग मनुष्यवत्

25 → युगलिक खेचर → 102

आगति	**नरक (पर्या.)**	**गति**
25 →	रत्नप्रभा (पर्या.)	→ 20
20 →	शर्कराप्रभा (पर्या.)	→ 20
19 →	वालुकाप्रभा (पर्या.)	→ 20
18 →	पंकप्रभा (पर्या.)	→ 20
17 →	धूमप्रभा (पर्या.)	→ 20
16 →	तमःप्रभा (पर्या.)	→ 20
16 →	तमस्तमःप्रभा (पर्या.)	→ 5
पर्याप्तवत् →	सात नरक अपर्या.	→ 0

(अपर्याप्तावस्था में मरण नहीं होने से अपर्याप्त नारकी की गति नहीं है ।)

आगति	देवों के 198 भेद	गति
111 →	10 भवनपति देव	→ 23
111 →	15 परमाधामी	→ 23
111 →	16 व्यंतर देव	→ 23
111 →	10 तिर्यग्जृंभक देव	→ 23
50 →	10 ज्योतिष देव	→ 23
50 →	1 सौधर्म देव	→ 23
50 →	1 सौधर्म किल्बिषिक	→ 23
40 →	1 ईशान देव	→ 23
20 →	6 सनत् से सहस्रार	→ 20
20 →	9 लोकान्तिक	→ 20
20 →	2 सनत् किल्बिषिक	→ 20
15 →	18 आनत से सर्वार्थसिद्ध	→ 15
पर्याप्तवत् →	अपर्याप्त सर्व देव	→ 0

(अपर्याप्त अवस्था में मरण नहीं होने से अपर्याप्त देवों की गति नहीं है।)

अन्तिम वेद द्वार का प्रस्तुतीकरण

गाथा

वेय-तिय-तिरि-नरेसु, इत्थी पुरिसो य चउविह सुरेसु ।
थिर-विगल-नारएसु, नपुंसवेओ हवइ एगो ॥40॥

संस्कृत छाया

वेदत्रिकं तिर्यग्नरयोः, स्त्रीपुरुषश्च चतुर्विधसुरेषु ।
स्थिर-विकल-नारकेषु, नपुंसकवेदो भवत्येकः ॥40॥

शब्दार्थ

वेय - वेद	**तिय** - तीन, त्रिक
तिरि - तिर्यंच में	**नरेसु** - मनुष्यों में
इत्थी - स्त्री वेद	**पुरिसो** - पुरुष वेद
य - और	**चउविह** - चार प्रकार के
सुरेसु - देवों में	**थिर** - स्थावर पंचक
विगल - विकलेन्द्रिय में	**नारएसु** - नारकी में
नपुंस - नपुंसक	**वेओ** - वेद
हवइ - होता है	**एगो** - एक

भावार्थ

गर्भज मनुष्य तथा गर्भज तिर्यंच में तीन वेद पाये जाते हैं - 1 पुरुष वेद 2 स्त्री वेद 3 नपुंसक वेद ।

भवनपति, व्यंतर, ज्योतिष्क तथा वैमानिक, इन चार प्रकार के देव निकायों में दो वेद पाये जाते हैं - 1 पुरुष वेद 2 स्त्री वेद ।

पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय एवं नारकी जीवों में एक मात्र नपुंसक वेद पाया जाता है ।।40।।

विशेष विवेचन

प्रस्तुत गाथा में प्रस्तुत दण्डक प्रकरण में वर्णित चौबीस द्वारों में से अन्तिम वेद द्वार का विवेचन किया गया है ।

वेद से अभिप्राय - काम-भोग की इच्छा को वेद कहते है ।

'वेद्यते इति वेदः ।'

जिसके द्वारा वेदन किया जाये, उसे वेद कहते है ।

वेद मोहनीय कर्म के उदय से मैथुन-सेवन की इच्छा को वेद कहते है ।

तीन प्रकार के वेद
पुरुष वेद
स्त्री वेद
नपुंसक वेद

वेद के प्रकार - (1) द्रव्य वेद (2) भाव वेद ।

(i) **द्रव्य वेद** - जीव की लिंगाकृति को द्रव्य वेद कहते है ।

द्रव्य वेद के निम्नोक्त तीन भेद होते हैं -

(1) **द्रव्य पुरुष वेद**-पुरुष की लिंगाकृति को द्रव्य पुरुष वेद कहते है ।

(2) **द्रव्य स्त्री वेद**-स्त्री की लिंगाकृति को द्रव्य स्त्री वेद कहते है ।

(3) **द्रव्य नपुंसक वेद** - नपुंसक की लिंगाकृति को द्रव्य नपुंसक वेद कहते है ।

(ii) **भाव वेद**-काम-भोग की कामना को भाव वेद कहते हैं ।

भाव वेद के तीन भेद होते हैं -

(1) **भाव पुरुष वेद** - स्त्री के प्रति काम-भोग की इच्छा को भाव पुरुष वेद कहते है ।

(2) **भाव स्त्री वेद** - पुरुष के प्रति काम-भोग की इच्छा को भाव स्त्री वेद कहते है ।

(3) **भाव नपुंसक वेद** - पुरुष तथा स्त्री, दोनों के प्रति काम-भोग की इच्छा को भाव नपुंसक वेद कहते है ।

चौबीस दण्डकों में वेद द्वार -

(1-2) गर्भज तिर्यंच एवं गर्भज मनुष्य में तीनों वेद पाये जाते हैं ।

(3) भवनपति-व्यंतर-ज्योतिष्क तथा वैमानिक देवों में पुरुष तथा स्त्री दो वेद पाये जाते हैं ।

(4) पृथ्वीकायादि पांच स्थावर, विकलेन्द्रिय त्रिक तथा नारकी जीवों में एक मात्र नपुंसक वेद पाया जाता है ।

कौनसा वेद कितने दण्डकों में ? -

(1) पुरुष वेद पन्द्रह (13 देव, गर्भज मनुष्य-तिर्यंच) दण्डकों में पाया जाता है ।

(2) स्त्री वेद पूर्वोक्त पन्द्रह दण्डकों में पाया जाता है ।

(3) नपुंसक वेद ग्यारह (स्थावर पंचक, विकलेन्द्रिय त्रिक, गर्भज तिर्यंच-मनुष्य, नारकी) दण्डकों में पाया जाता है ।

कितने दण्डकों में कितने वेद ? -

1 दो दण्डकों में तीन वेद पाये जाते हैं।

2 तेरह दण्डकों में दो वेद पाये जाते हैं।

3 नौ दण्डकों में एक वेद पाया जाता है।

चार गतियों में वेद द्वार -

1-2 मनुष्य तथा तिर्यंच गति में तीनों वेद पाये जाते हैं।

3 देव गति में दो वेद पाये जाते हैं।

4 नरक गति में एक वेद पाया जाता है।

जाति पंचक में वेद द्वार -

1 एकेन्द्रिय में एक मात्र नपुंसक वेद पाया जाता है।

2-4 विकलेन्द्रिय त्रिक में एक मात्र नपुंसक वेद पाया जाता है।

5 पंचेन्द्रिय में तीनों वेद पाये जाते हैं।

षट्कायिक जीवों में वेद द्वार -

1-5 पृथ्वीकाय-अप्काय-तेउकाय-वायुकाय एवं वनस्पतिकाय में एक नपुंसक वेद पाया जाता है।

6 त्रसकाय में तीनों वेद पाये जाते हैं।

यहाँ वेद द्वार का विवेचन परिपूर्ण होता है।

चौबीस द्वारों का चौबीस दण्डकों के संदर्भ में विश्लेषण यहाँ समाप्त होता है।

अल्पबहुत्व का कथन

गाथा

पज्जमणु बायरग्गी, वेमाणिय भवण निरय वंतरिया।
जोइस चउ पण तिरिया, बेइंदि तेइंदि भू आऊ ॥41॥

वाऊ वणस्सइ च्चिय, अहिया अहिया कमेणिमे हुंति ।
सव्वेवि इमे भावा, जिणा ! मए णंतसो पत्ता ।।42।।

संस्कृत छाया

पर्याप्तमनुजबादराग्निवैमानिकभवनपतिनैरयिकव्यन्तरका: ।
ज्योतिश्चतु:पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चौ, द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियभ्वाप: ।।41।।

वायुर्वनस्पतिश्चैवाधिकाधिका क्रमेणेमे भवन्ति ।
सर्वेऽपीमे भावा हे जिना ! मयाऽनन्तश: प्राप्ता: ।।42।।

शब्दार्थ

पज्ज - पर्याप्त	मणु - मनुष्य
बायर - बादर	अग्गी - अग्नि
वैमाणिय - वैमानिक	भवण - भवनपति
निरय - नारकी	वंतरिया - व्यंतर
जोइस - ज्योतिष्क	चउ - चतुरिन्द्रिय
पण - पंचेन्द्रिय	तिरिया - तिर्यंच
बेइंदि - द्वीन्द्रिय	तेइंदि - त्रीन्द्रिय
भू - पृथ्वीकाय	आऊ - अप्काय
वाऊ - वायुकाय	वणस्सइ - वनस्पति
च्चिय - निश्चित ही	अहिया - अधिक
अहिया - अधिक	कमेणिमे - क्रमश:
हुंति - होते हैं	सव्वेवि - सभी
इमे - ये 24 दण्डक	भावा - भाव (भव)
जिणा - हे जिनेश्वर	मए - मेरे द्वारा
णंतसो - अनन्त बार	पत्ता - प्राप्त किये गये हैं

भावार्थ

सबसे अल्प पर्याप्त मनुष्य है । बादर अग्निकाय, वैमानिक देव, भवनपति देव, नारकी, व्यंतर देव, ज्योतिष्क देव, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय तिर्यंच, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, पृथ्वीकाय, अप्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, इन सभी दण्डकों के जीव क्रमशः अधिक-अधिक होते हैं ।

हे जिनेश्वर परमात्मा ! इन सभी दण्डकों (भवों) में मैंने अनन्त बार परिभ्रमण किया है ।

विशेष विवेचन

प्रस्तुत गाथा द्वार में अल्प बहुत्व की विवेचना की गयी है । चौबीस दण्डकों में से किस दण्डकवर्ती जीव अधिक हैं, किस दण्डक के जीव अल्प हैं, इस प्रकार की विचारणा को अल्पबहुत्व कहते है ।

अल्प-बहुत्व द्वार से स्पष्ट है कि सबसे कम मनुष्य हैं, इसलिये इसे चिन्तामणि रत्न के समान अत्यन्त दुर्लभ कहा गया है । पंचेन्द्रिय से एकेन्द्रिय जीव अधिक है क्योंकि विकसित जीवों की अपेक्षा अविकसित जीव अधिक हैं ।

प्रकरणकार हृदय की व्यथा अभिव्यक्त करते हुए कहते हैं - हे जिनेन्द्र देव ! मैंने इन दण्डकों में अनन्त बार जन्म-मरण प्राप्त कर अनन्त दुःखों को प्राप्त किया है । अब मैं भटकते-भटकते थक चुका हूँ । मुझे संसार से संयम की ओर ले चलो । राग से वैराग, वैराग से वीतराग की ओर ले चलो । अब उस अनुत्तर दिव्य पंचम गति रुप सिद्ध गति को प्राप्त करना चाहता हूँ जहाँ जाने के बाद न जन्म है, न मरण है । जहाँ अनन्त ज्योतिर्मय प्रकाश है । अनन्त ज्ञान-दर्शनमय शाश्वत सुख है ।

उपसंहार

गाथा

संपइ तुम्ह भत्तस्स, दंडग-पय-भमण-भग्ग-हियस्स ।
दंडतिय विरय सुलहं, लहु मम दिंतु मुक्खपयं ।।43।।

संस्कृत छाया

संप्रति तव भक्तस्य, दण्डकपदभ्रमणभग्नहृदयस्य ।
दंडकत्रिकविरत सुलभं, लघु मम ददतु मौक्षपदम् ।।43।।

शब्दार्थ

संपइ - वर्तमान में	**तुम्ह** - तुम्हारे, आपके
भत्तस्स - भक्त को	**दंडग** - दंडक
पय - पदों में	**भमण** - परिभ्रमण
भग्ग - भग्न, खिन्न	**हियस्स** - हृदय वाला
दंड - दंडक	**तिय** - त्रिक
विरय - विरत, मुक्त	**सुलहं** - सुलभं
लहु - शीघ्र	**मम** - मुझको
दिंतु - दो	**मुक्ख** - मौक्ष
पयं - पद को	

भावार्थ

अनन्त काल से चौबीस दण्डकों में परिभ्रमण करने से जिसका चित्त खिन्न हो चुका है और हृदय टूट चुका है, ऐसे आपके भक्त को तीन दण्डकों से निवृत्त कर एवं त्रिगुप्ति में

प्रवृत्त-गतिशील कर सहज रूप से सुलभ मोक्षपद को शीघ्र प्रदान करो ।।43।।

विशेष विवेचन

दण्डक - दण्डित करने वाले दण्डक कहलाते हैं ।

दण्ड - जिसमें आत्मा दण्डित होती है, उसे दण्ड कहते है ।

दण्ड तीन प्रकार के कहे गये हैं -

(1) मनोदण्ड - मन की अशुभ प्रवृत्ति को मनोदण्ड कहते है ।

(2) वचनदण्ड - वचन की अशुभ प्रवृत्ति को वचनदण्ड कहते है ।

(3) कायदण्ड - काया की अशुभ प्रवृत्ति को कायदण्ड कहते है ।

प्रस्तुत गाथा में प्रभु-भक्त प्रकरणकार गणि श्री गजसार मुनि परमात्मा से प्रार्थना करते हुए कहते हैं कि - हे प्रभु ! पृथ्वीकायादि चौबीस दण्डकों में भटकते हुए अब मैं थक चुका हूँ । अतः इन दण्डकों में भटकाने वाले तीन दण्डों से निवृत्त कर सदा-सर्वदा-सर्वत्र सुलभ मोक्ष का लाभ शीघ्र प्रदान कीजिये ।

प्रशस्ति - विज्ञप्ति

गाथा

सिरि जिणहंस-मुणीसर, रज्जे सिरि धवलचंद-सीसेण ।
गजसारेण लिहिया, एसा विन्नत्ति अप्पहिया ।।44।।

संस्कृत छाया

श्रीजिनहंसमुनीश्वर राज्ये, श्री धवलचंद्रशिष्येण ।
गजसारेण लिखिता, एषा विज्ञप्तिरात्महिता ।।44।।

शब्दार्थ

सिरि - श्री (ज्ञान लक्ष्मी युक्त)	**जिणहंस** - जिनहंस नामक
मुणीसर - आचार्य (के)	**रज्जे** - शासनकाल में
सिरि - श्री (गुणसंपन्न)	**धवलचंद** - धवलचंद्र मुनि के
सीसेण - शिष्य के द्वारा	**गजसारेण** - गजसार मुनि ने
लिहिया - लिखा है	**एसा** - यह
विन्नत्ति - विनंती (विज्ञप्ति)	**अप्पहिया** - आत्म हितकारी

भावार्थ

आत्म हितकारी यह विनंती (विज्ञप्ति) रुप दण्डक प्रकरण श्री जिनहंससूरि नामक आचार्य के शासनकाल में श्री धवचन्द्र मुनि के शिष्य गजसार मुनि के द्वारा लिखा गया है ।।44।।

विशेष विवेचन

प्रस्तुत गाथा में प्रकरणकार का परिचय प्राप्त होता है ।

खरतरगच्छाचार्य श्री जिनहंससूरीश्वरजी म.सा. के शासनकाल में होने वाले श्री धवलचंद्र गणिवर के विद्वान् शिष्य गणिवर्य श्री गजसार मुनि ने प्रस्तुत दण्डक प्रकरण की रचना पाटण नगर में संवत् 1581 में की थी ।

गणि श्री गजसार मुनि के गुरु गणि श्री धवलचंद्रजी म. थे, पर वे अध्ययन आदि कारणों से लम्बे समय तक संविग्न आचारज्ञ श्री अभयोदय गणि के सान्निध्य में रहे थे ।

उन्होंने प्रस्तुत प्रकरण पर वृत्ति रची तथा श्री समयसुंदरोपाध्याय ने सं. 1696 में वृत्ति की रचना की । प्रस्तुत प्रकरण पर स्तबक आदि भी रचे गये हैं ।

उन्होंने दण्डक प्रकरण के माध्यम से 24 जिनेश्वर देवों की स्तवना

की है। इनका अध्ययन पूर्वक आत्म मनन-मंथन जीव को स्व स्वरुप से जोडता है एवं परद्रव्य, आसक्ति एवं मूर्च्छा से मुक्त कर परमधाम को उपलब्ध कराता है।

पूज्य गणिवर्य श्री गजसार मुनि के द्वारा लिखित प्रस्तुत दण्डक प्रकरण का स्वाध्याय निश्चित रुप से समस्त जीवों के लिये कल्याणकारी एव आत्महितकारी है।

- इति दण्डक प्रकरणम् -

अथ दण्डक प्रकरण प्रश्नोत्तरी

ग्रंथ एवं ग्रंथकार का परिचय

(1) दण्डक प्रकरण की रचना किसने की ?

उत्तर : श्री गजसार गणि ने ।

(2) श्री गजसार गणि के गुरु महाराज का क्या नाम था ?

उत्तर : श्री धवलचंद्र गणि ।

(3) दण्डक प्रकरणकार किस गच्छ में हुए ?

उत्तर : खरतरगच्छ में ।

(4) श्री गजसार गणि के काल में खरतरगच्छाचार्य कौन थे ?

उत्तर : आचार्य प्रवर श्री जिनहंससूरीश्वरजी म. सा. ।

(5) श्री गजसार गणि का शिक्षण-प्रशिक्षण किनकी सानिध्यता में हुआ था ?

उत्तर : श्री अभयोदयगणि की ।

(6) दण्डक प्रकरण की रचना किस नगर में हुई ?

उत्तर : पाटण में ।

(7) दण्डक प्रकरण की रचना किस संवत् में हुई ?

उत्तर : संवत् 1581 में ।

(8) दण्डक प्रकरण किस भाषा में निर्मित है ?

उत्तर : प्राकृत में ।

(9) दण्डक प्रकरण पर किन्होंने टीका का निर्माण किया ?

उत्तर :
1. स्वयं दण्डक प्रकरणकार श्री गजसार गणि ने संवत् 1581 में पाटण में टीका का निर्माण किया है । अतः यह स्वोपज्ञ टीका सह प्रकरण है ।
2. वाचनाचार्य परम विद्वान् श्री समयसुंदरोपाध्याय ने अहमदाबाद में संवत् 1696 में प्रस्तुत प्रकरण पर वृत्ति का निर्माण किया ।

(10) दण्डक प्रकरण पर किन्होंने बालावबोध की रचना की ?

उत्तर : 1. श्री आनंदवल्लभगणि ने राजस्थानी भाषा में संवत् 1880 में अजीमगंज में बालावबोध की रचना की ।

2. प्रौढ द्रव्यानुयोगी श्रीमद् देवचन्द्र ने राजस्थानी भाषा में संवत् 1883 नवानगर में बालावबोध की रचना की ।

3. श्री विमलकीर्तिगणि ने 17वीं शताब्दी में बालावबोध की रचना की ।

(11) दण्डक प्रकरण पर किन्होंने स्तबक की रचना की ?

उत्तर : श्री भुवनकीर्ति उपाध्याय ने ।

(12) दण्डक प्रकरण पर अन्य किन-किन ग्रंथों का निर्माण हुआ है ?

उत्तर : 1. दण्डक प्रकरण पर विचार-षट्त्रिंशिका अर्थ का निर्माण श्री ज्ञानसागरोपाध्याय ने 19वीं शताब्दी में किया ।

2. श्री सुमतिवर्द्धन गणि ने 19वीं शताब्दी में विचार-षट्त्रिंशिका यंत्र की रचना की ।

3. आचार्य श्री जिनचंद्रसूरि (बेगड शाखा) के शिष्य आचार्य श्री जिनसमुद्रसूरि ने संवत् 1724 में विचार-षट्त्रिंशिका प्रश्नोत्तर नामक ग्रंथ की रचना की ।

4. श्री हीरकलशोपाध्याय ने प्राकृत-राजस्थानी मिश्रित भाषा में 17वीं शताब्दी में विचार-षट्त्रिंशिका की स्वोपज्ञ अर्थ सह रचना की ।

(13) श्री गजसार गणि ने किन किन ग्रंथों की रचना की ?

उत्तर : श्री गजसार गणि कृत निम्नोक्त प्रमुख ग्रंथ उपलब्ध होते हैं -

1. विचार-षट्त्रिंशिका (दण्डक प्रकरण) स्वोपज्ञ टीका सह ।

2. नेमिचंद्र भण्डारी कृत षष्टि शतक प्रकरण पर टीका ।

3. श्री विजयतिलकोपाध्याय कृत आदिनाथ स्तोत्र विज्ञप्ति पर अवचूरि ।

4. सम्यक्त्व स्तोत्र अवचूरि ।

(14) दण्डक प्रकरण को तीसरे स्थान पर क्यों रखा गया ?

उत्तर : 1. प्रथम जीव विचार प्रकरण में जीव तत्त्व का विवेचन दिया गया ताकि स्वाध्यायी जीव-स्वरूप समझकर हिंसा से निवृत्त और अहिंसा में प्रवृत्त हो सके ।

2. दूसरे नवतत्त्व प्रकरण में नवतत्त्वों का विशद् विवेचन करके विश्व का स्वरूप समझाया गया । नवतत्त्वों का स्वरूप समझाकर जीव में निर्वेद, वैराग्य एवं संवेग प्रकट करने के लिये दण्डक प्रकरण का अध्ययन-मनन रखा गया ।

3. दण्डक प्रकरण के माध्यम से जीव जब शरीर, गति-आगति, अवगाहना आदि को समझ लेता है, तब आत्मा में सहज ही अनासक्ति के फूल खिल उठते हैं । अपार-अनंत भवभ्रमणा को जान कर जीव मुक्ति की ओर प्रयाण करें, अतः तीसरे स्थान पर दण्डक प्रकरण रखा गया ।

(15) दण्डक से क्या अभिप्राय है ?

उत्तर : 1. अनंत गुण युक्त आत्मा जिन कारणों से संसार में परिभ्रमण करती हुई जन्म-मरण का दुःख सहती है, उसे दण्डक कहते है । 'दण्डयन्ते जीवाः यस्मिन्, सः दण्डकः' जिसमें प्राणी परिभ्रमण करते हुए दुःख उठाते हैं, उसे दण्डक कहते है ।

2. बार-बार उपयोग में आने वाले आगम-सूत्रों के पाठ दण्डक पद कहलाते हैं ।

(16) सामायिक व्रत ग्रहण में उच्चारित 'सामायिक दण्डक उच्चरावोजी' में 'दण्डक' का क्या अभिप्राय है ?

उत्तर : सामायिक व्रत ग्रहण में उच्चारित 'दण्डक' शब्द का अर्थ 'प्रतिज्ञा' है । 'दण्डक' शब्द का एक अर्थ प्रतिज्ञा भी होता है, अतः 'करेमि भंते' को प्रतिज्ञा सूत्र भी कहा जाता है ।

(17) दण्ड और दण्डक में क्या अन्तर है ?

उत्तर : दण्ड अर्थात् सजा ।

दण्डक अर्थात् सजा देने वाला ।

आत्मा की जिस प्रवृत्ति विशेष से ज्ञानादि गुणों में हानि होती है, उसे दण्ड कहते है । दण्डित करने वाले को दण्डक कहा जाता है ।

(18) दण्ड कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

उत्तर : दो प्रकार के - (1) द्रव्य दण्ड (2) भाव दण्ड ।

(19) द्रव्य दण्ड किसे कहते है ?

उत्तर : किसी शस्त्र (तलवार, धनुष-बाण आदि) अथवा लाठी-बेंत आदि के द्वारा हिंसा करना, किसी जीव का हनन करना द्रव्य दण्ड कहलाता है ।

(20) भाव दण्ड किसे कहते है ?

उत्तर : आत्मा में तरंगित अक्षमा, कषाय, राग-द्वेष एवं विकारों से परिपूर्ण अध्यवसायों को भाव दण्ड कहते है ।

(21) स्थानांग सूत्र में कितने प्रकार के दण्ड बताये गये हैं ?

उत्तर : पांच प्रकार के -

(1) **अर्थदण्ड** - प्रयोजनवश किसी जीव का घात करना ।

(2) **अनर्थदण्ड** - बिना प्रयोजन किसी जीव का घात करना ।

(3) **हिंसादण्ड** - इसने मुझे मारा था, मार रहा है अथवा मारेगा, इसलिये हिंसा करना ।

(4) **अकस्मात्दण्ड** - अचानक जीव-घात हो जाना ।

(5) **दृष्टिविपर्यासदण्ड** -मित्र को शत्रु समझकर दण्ड देना ।

(22) प्रकरण से क्या अभिप्राय है ?

उत्तर : किसी विशिष्ट विषय में प्रवेश करने के लिये जो ग्रंथ रचा जाता है, उसे प्रकरण कहा जाता है ।

जीव तत्त्व में प्रवेश करने के लिये जीव विचार प्रकरण की रचना की गयी है ।

नवतत्त्वों के ज्ञानार्जन हेतु नवतत्त्व प्रकरण की रचना की गई है । उसी प्रकार अनंत बार भटकने एवं दण्डित होने के स्थानों का ज्ञान पाने के लिये दण्डक प्रकरण की रचना की गयी है । प्रस्तुत प्रकरण में चौबीस द्वारों के द्वारा चौबीस दण्डक पदों की व्याख्या की गई है ।

(23) दण्डक प्रकरण अन्य किन-किन नामों से जाना जाता है ?

उत्तर : दण्डक प्रकरण का मूल नाम विचार-षट्त्रिंशिका है । इसे विज्ञप्तिषट्त्रिंशिका, विचार स्तव एवं लघु संग्रहणी आदि नामों से भी जाना जाता है ।

(24) प्रस्तुत प्रकरण का नाम दण्डक प्रकरण क्यों है ?

उत्तर : प्रस्तुत प्रकरण में भवभ्रमणा के मूल चौबीस दण्डकों को चौबीस द्वारों में विश्लेषित करने से इसका नाम दण्डक प्रकरण है ।

(25) दण्डक प्रकरण को विचार-षट्त्रिंशिका क्यों कहा जाता है ?

उत्तर : जिस प्रकार आगमों में दण्डक पदों का विभिन्न द्वारों से विचार-

सुविचार किया गया है, उसी प्रकार छत्तीस गाथाओं में उन दण्डक पदों की विवेचना करने से यह प्रकरण विचार-षट्त्रिंशिका के नाम से भी जाना जाता है ।

(26) दण्डक प्रकरण को विज्ञप्तिषट्त्रिंशिका किस कारण कहा जाता है ?

उत्तर : प्रकरणकार ने प्रखर मेधा से प्रकरण की रचना इस विधि-रीति से की है कि जिनवाणी रूप आगमों में वर्णित दण्डकों का सार छत्तीस गाथाओं में समाविष्ट हो जाये, अतः इसको विज्ञप्तिषट्त्रिंशिका भी कहा जाता है ।

(27) यदि दण्डक प्रकरण में 36 गाथाएँ हैं तो प्रस्तुत प्रकरण में 44 गाथाएँ किस कारण हैं ?

उत्तर : मूल ग्रंथ में तो 36 गाथाएँ ही हैं, 8 गाथाएँ बाद में डाली जाने से वे प्रक्षिप्त हैं ।

(28) दण्डक प्रकरण का नाम विचार स्तव क्यों है ?

उत्तर : चौबीस दण्डक के विचार के साथ उनसे मुक्ति की स्तवना होने से इसका नाम विचार स्तव है ।

(29) दण्डक प्रकरण को लघु संग्रहणी के नाम से क्यों पुकारा जाता है ?

उत्तर : प्रज्ञापना, जीवाभिगम आदि सूत्रागमों में चौबीस दण्डक पदों पर जिनवाणी के सार रूप अनेकानेक पदों का विवेचन उपलब्ध है, जबकि प्रस्तुत प्रकरण में अतिमहत्त्वपूर्ण एवं मर्यादित चौबीस दण्डकों का संकलन तथा आलेखन है, अतः इसे लघु संग्रहणी भी कहा जाता है ।

मंगलाचरण का विवरण

(30) मंगलाचरण से क्या अभिप्राय है ?

उत्तर : वह प्रवृत्ति जो मंगल-कुशल करती है, उसे मंगलाचरण कहते है। ग्रंथ के आरंभ में जो-जो मांगलिक क्रियाएँ महापुरुष करते हैं, उसे मंगलाचरण कहते है।

(31) मंगलाचरण कितने प्रकार का कहा गया है ?

उत्तर : शास्त्रों में मंगलाचरण के अनेक भेद बताये गये हैं -

दो प्रकार - (1) लौकिक मंगलाचरण
(2) लोकोत्तर मंगलाचरण

दो प्रकार - (1) द्रव्य मंगलाचरण
(2) भाव मंगलाचरण

तीन प्रकार - (1) आदि मंगलाचरण
(2) मध्य मंगलाचरण
(3) अन्त मंगलाचरण

तीन प्रकार - (1) मानसिक मंगलाचरण
(2) वाचिक मंगलाचरण
(3) कायिक मंगलाचरण

(32) लौकिक मंगलाचरण किसे कहते है ?

उत्तर : वह मंगलाचरण, जो सांसारिक-लौकिक क्रियाओं के प्रारंभ में किया जाता है, उसे लौकिक मंगलाचरण कहते है।

(33) लौकिक मंगलाचरण का उदाहरण प्रस्तुत कीजिये।

उत्तर : नूतन गृह-प्रवेश पर दूध का उफनाना, विवाह आदि अवसरों पर सर्वप्रथम गुड़धाने का भोजन करना, अन्य ग्राम प्रस्थान पर गाय आदि रूप शुभ संकेत प्राप्त करना, लौकिक मंगलाचरण हैं।

(34) लोकोत्तर मंगलाचरण किसे कहते है ?

उत्तर : जिस मंगलाचरण से आत्मा लोक (संसार) से मुक्त होकर मुक्ति के मुक्ता प्राप्त करती है, उसे लोकोत्तर मंगलाचरण कहते है ।

(35) लोकोत्तर मंगलाचरण के उदाहरण दीजिये ।

उत्तर : कार्य के प्रारंभ में जिनेश्वर देव एवं गुरु महाराज को वंदन करना, उनका स्मरण करना, शील-दया-दान आदि धर्म रूप शुभ प्रवृत्तियाँ लोकोत्तर मंगलाचरण कहलाती हैं ।

(36) द्रव्य मंगलाचरण किसे कहते है ?

उत्तर : कार्य के प्रारंभ में वस्तु/पदार्थ को लेकर जो प्रक्रिया की जाती है उसे द्रव्य मंगलाचरण कहते हैं ।

(37) द्रव्य मंगलाचरण के उदाहरण प्रस्तुत कीजिये ।

उत्तर : विविध क्रियाओं में प्रभु, गुरु, दिवंगत माता-पिता को नैवेद्य, फलादि अर्पण करना, श्रीफल चढाना, धूप-दीप प्रकट करना आदि द्रव्य मंगलाचरण हैं ।

(38) द्रव्य मंगलाचरण के तीन भेद कौनसे हैं ?

उत्तर : तीन भेद - (1) सचित्त, (2) अचित्त, (3) मिश्र ।

(39) भाव मंगलाचरण किसे कहते है ?

उत्तर : किसी भी क्रिया-प्रक्रिया के प्रारंभ में की जाने वाली भाव स्तवना-वंदना-पूजना भाव मंगलाचरण कहलाती है ।

(40) भाव मंगलाचरण के आठ भेद कौनसे हैं ?

उत्तर : आठ भेद - (1) दर्पण, (2) भद्रासन, (3) वर्धमान, (4) श्रीवत्स, (5) मीन युगल, (6) कलश, (7) स्वस्तिक, (8) नंद्यावर्त । इसे अष्ट मंगल कहा जाता है ।

(41) भाव मंगलाचरण को उदाहरण से स्पष्ट कीजिये ।

उत्तर : क्रिया के प्रारंभ में तीर्थंकर, गुरु आदि को भाव वंदना करना, उनकी स्तुति-स्तवना करना, घर से बाहर निकलते हुए नवकार मंत्र का जाप करना, सोते समय मांगलिक सूत्र रूप चत्तारिमंगलम् आदि का स्मरण करना, भाव मंगलाचरण कहलाता है ।

(42) आदि मंगलाचरण किसे कहते है ?

उत्तर : ग्रंथ के आरंभ में किया जाने वाला मंगलाचरण, आदि मंगलाचरण कहलाता है ।

(43) मध्य मंगलाचरण किसे कहते है ?

उत्तर : ग्रंथ के मध्य में किया जाने वाला मंगलाचरण, मध्य मंगलाचरण कहलाता है ।

(44) अन्त मंगलाचरण किसे कहते है ?

उत्तर : ग्रंथ के अन्त में किया जाने वाला मंगलाचरण, अन्त मंगलाचरण कहलाता है ।

(45) मानसिक मंगलाचरण किसे कहते है ?

उत्तर : मन-हृदय में शुभ-शुद्ध विचार-पूर्वक जो प्रार्थना-स्तवना की जाती है, उसे मानसिक मंगलाचरण कहते है । जैसे मन में जिनराज, गुरु महाराज की आज्ञा के प्रति श्रद्धा और अहोभाव लाना ।

(46) वाचिक मंगलाचरण किसे कहते है ?

उत्तर : शब्दोच्चारणपूर्वक प्रभु-गुरु की अर्चना-वंदना करना वाचिक मंगलाचरण कहलाता है । जैसे उच्चारणपूर्वक लोगस्स, नमुत्थुणं आदि सूत्र कहना ।

(47) कायिक मंगलाचरण किसे कहते है ?

उत्तर : काया की प्रवृत्ति से जो मंगलाचरण होता है, उसे कायिक मंगलाचरण कहते है । जैसे ग्रामान्तर प्रस्थान से पूर्व जिनदेव, गुरुदेव, माता-पिता आदि को प्रणाम करना ।

(48) मंगलाचरण करने से क्या-क्या लाभ होते हैं ?

उत्तर : 1. मंगलाचरण करने से सर्वत्र शांति और समाधि का विस्तार होता है ।

2. मंगलाचरण करने से पुण्यानुबंधी पुण्य का बंध होता है ।

3. मंगलाचरण करने से अशुभ कर्मों की निर्जरा होती है ।

4. मंगलाचरण करने से चेतना शुद्ध-विशुद्ध एवं स्थिर बनती है ।

5. मंगलाचरण करने से परमधाम रुप मोक्ष फल की प्राप्ति होती है ।

6. मंगलाचरण करने से कार्य सिद्ध होता है ।

(49) ग्रंथकार ने मंगलाचरण किस चरण में किया है ?

उत्तर : प्रथम गाथा के प्रथम चरण में उल्लिखित 'नमिउं चउवीस जिणे' पद के द्वारा ग्रंथकार ने मंगलाचरण किया है ।

(50) ग्रंथकार ने मंगलाचरण किस प्रकार किया है ?

उत्तर : चौबीस जिनेश्वर परमात्मा को नमन करके ।

(51) जिन किसे कहते है ?

उत्तर : जिन्होंने राग-द्वेष रुप कर्म शत्रुओं को जीत लिया हैं, उन्हें जिन कहते हैं ।

वीतराग, अरिहंत, तीर्थंकर, जिनेन्द्र, जिनराज आदि जिन के पर्यायवाची हैं ।

(52) जिनेश्वर देव को नमन करने से क्या लाभ होता हैं ?

उत्तर : 1. उच्चगोत्र का बंध होता है ।

2. नीचगौत्र का क्षय होता है।

3. अहंकार/कषाय कम होता है।

4. शांति एवं सिद्धि की प्राप्ति होती है।

(53) चौबीस तीर्थंकरों को नमन करके प्रकरणकार ने मंगलाचरण क्यों किया है ?

उत्तर : 1. तीर्थंकर परमात्मा हमारे सबसे बडे उपकारी एवं आदर्श हैं।

2. तीर्थंकर ने तीर्थ की स्थापना करके भव्य जीवों को प्रतिबोध दिया है।

3. तीर्थंकर ने जिस तत्त्व की प्ररूपणा की, उसी में से कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्य-रहस्य प्रस्तुत करने के कारण प्रकरणकार ने कृतज्ञता अभिव्यक्त करते हुए आदिनाथ से वर्धमान स्वामी तक चौबीस तीर्थंकरों को वंदना करके मंगलाचरण किया है।

(54) मंगलाचरण प्रारंभ में क्यों किया गया है ?

उत्तर : 1. पूर्वाचार्यों ने प्रत्येक ग्रंथ के प्रारंभ में मंगलाचरण किया है, उसी महत्त्वपूर्ण परम्परा का परिपालन करने के लिये प्रकरणकार ने प्रारंभ में मंगलाचरण किया है।

2. मंगलाचरण करने से ग्रंथ के सर्जन-अध्ययन-अध्यापन में आने वाले कष्ट नष्ट हो जाते हैं।

3. मंगलाचरण करने से प्रकरणकार जिनोक्त तत्त्वों को सरल भाषा में भव्य आत्माओं को समझा सकते हैं।

4. मंगलाचरण करने से ग्रंथकार किस धर्म-दर्शन के अनुयायी है, यह प्रश्न भी समाहित हो जाता है।

5. मंगलाचरण करने से कार्य निर्विघ्न परिपूर्ण बनता है।

अनुबंध चतुष्टय का कथन

(55) अनुबंध चतुष्टय से क्या अभिप्राय है ?

उत्तर : किसी भी ग्रंथ-प्रकरण के प्रारंभ में जिन चार बातों का अवश्यमेव कथन किया जाता है, उसे अनुबंध चतुष्टय कहते है ।

(56) अनुबंध चतुष्टय में कौनसी चार बातों का उल्लेख होता है ?

उत्तर : अनुबंध चतुष्टय अर्थात् - (1) विषय (2) अधिकारी (3) संबंध (4) प्रयोजन {प्रज्ञापना सूत्र-मलयवृत्ति पत्रांक (1-2)}

(57) विषय से क्या अभिप्राय है ?

उत्तर : ग्रंथ में उल्लिखित प्रमुख विवेचन को विषय कहा जाता है ।

(58) विषय का स्पष्टीकरण क्यों आवश्यक है ?

उत्तर : ग्रंथ के प्रारंभ में विषय-सामग्री का उल्लेख कर देने से पाठक सहज ही जान लेता है कि अमुक ग्रंथ मेरे अध्ययन योग्य है या नहीं, अमुक विषय में मेरी रुचि है या नहीं । रुचि के साथ तदनुरुप बौद्धिक-ग्रहण क्षमता का सद्भाव होने पर वह अत्यन्त उत्सुकतापूर्वक पारायण करता हुआ शीघ्र ग्रंथ में वर्णित तत्त्व-ज्ञान को आत्मसात् कर लेता है ।

(59) विषय का स्पष्टीकरण नहीं किया जाये तो क्या हानि हो सकती है ?

उत्तर : यदि ग्रंथ के आरंभ में विवेच्य विषय का स्पष्टीकरण न किया जाये तो विषय से अनभिज्ञ अध्ययनार्थी उसका अध्ययन प्रारंभ कर देगा परंतु बाद में समझ में न आने पर मध्य में उसका पठन छोडना पड सकता है ।

इस कारण समय के दुरुपयोग की संभावना है । ज्ञानार्जन के प्रति अरुचि भी उत्पन्न हो सकती है ।

(60) विषय का अपर नाम क्या है ?

उत्तर : अभिधेय ।

(61) प्रस्तुत प्रकरण किस विषय से संबंधित है ?

उत्तर : दण्डक पद ।

(62) प्रकरणकार ने विवेच्य वस्तु को किस प्रकार अभिव्यक्त किया है ?

उत्तर : प्रथम गाथा के तीसरे चरण में 'दंडग पएहिं' पद के द्वारा प्रकरण में विवेच्य वस्तु को प्रकरणकार ने स्पष्ट किया है ।

(63) अधिकारी किसे कहते है ?

उत्तर : ग्रंथ का पठन-पाठन, अध्ययन-अध्यापन करने तथा करवाने योग्य जीव को अधिकारी कहा जाता है ।

(64) प्रकरणकार ने किसे प्रस्तुत प्रकरण के योग्य-अधिकारी माना है ?

उत्तर : भव्य जीवों को ।

(65) क्या हर भव्य जीव प्रस्तुत प्रकरण का योग्य-अधिकारी है ?

उत्तर : भव्य जीवो में भी वे ही जीव प्रस्तुत प्रकरण का अध्ययन कर सकते हैं जिनकी सिद्धांत के प्रति श्रद्धा है, जो अज्ञानी हैं पर आत्मकल्याणार्थ दण्डक पदों को जानने की रुचि रखते हैं ।

(66) भव्य जीव किसे कहते है ?

उत्तर : वे जीव जो कभी न कभी सम्पूर्ण कर्मों का क्षय करके अनुत्तर-परम सिद्ध पद को प्राप्त करेंगे, संसार से मुक्त होंगे, वे जीव भव्य कहलाते हैं ।

(67) प्रकरणकार श्री गजसार गणि ने भव्य जीवों को ही प्रस्तुत प्रकरण का अधिकारी क्यों माना है ?

उत्तर : भव्य जीव ही प्रस्तुत प्रकरण को पढ़कर-समझकर जीवन एवं

आचरण का परिमार्जन-परिशोधन करके आत्मा की अमर-अविनश्वर सत्ता को उपलब्ध कर सकते हैं, अतः प्रकरणकार ने भव्य जीवों को ही प्रस्तुत प्रकरण का अधिकारी माना है ।

(68) अभव्य जीवों को प्रस्तुत प्रकरण के अध्ययन-अध्यापन के लिये अनाधिकारी एवं अयोग्य क्यों माना है ?

उत्तर : 1. अभव्य जीव अनादि काल से मिथ्यात्व अवस्था में होता है और अन्तकाल तक मिथ्यात्व में ही रहता है और जब जीव में सम्यक्त्व प्राप्ति की कोई संभावना नहीं है, तो उसके संयम एवं मोक्षगमन की कल्पना भी कैसे की जा सकती है ! अतः ऐसे जीव में सम्यक्त्व पोषण, संयम-मार्गारोहण एवं मुक्ति-वरण की योग्यता नहीं होने से जिनाज्ञारुप प्रस्तुत प्रकरण के पठन-अध्ययन के लिये वह अपात्र-अयोग्य एवं अनाधिकारी माना गया है ।

2. अभव्य जीव को पढ़ाने से समय एवं श्रम का दुरुपयोग होता है ।

3. अभव्य मिथ्यात्वी होने से ऐसे द्रव्य सम्यक् सूत्र का पारायण भी मिथ्यात्व का ही पोषण करता है ।

4. अभव्य जीव सम्यक् सूत्र को पढ़कर भी तर्क-कुतर्क सहित एवं श्रद्धा रहित होते हैं ।

उपरोक्त कारणों से यह सुस्पष्ट है कि अभव्य जीव को प्रस्तुत प्रकरण का अध्ययन करने की आज्ञा देना सर्प को दुग्धपान करवाने के समान है ।

(69) प्रकरणकार ने अधिकारी जनों का निर्देश किस प्रकार किया है ?

उत्तर : गाथा के चतुर्थ चरण में 'सुणेह भो ! भव्वा !' पद के द्वारा प्रकरणकार ने अधिकारी जनों का निर्देश किया है ।

(70) संबंध से क्या अभिप्राय है ?

उत्तर : प्रकरणकार कहते हैं - मैं यह ग्रंथ कल्पना से नहीं लिख रहा और न ही निज-बुद्धि के अनुसार लिख रहा हूँ । यह कोई काल्पनिक ग्रंथ नहीं है । इसमें चेतना के उतार-चढाव की विवेचना है । इस ग्रंथ की रचना में जिनेश्वर देवों की देशना समायी हुई है । जिस तत्त्व की प्ररूपणा तीर्थंकर परमात्मा ने की, उसी के अनुरूप तत्त्व का स्वरूप मैं लिखूंगा । इस प्रकार प्रस्तुत प्रकरण में लेखनी गजसार गणिवर की चली है पर दिशा-निर्देश एवं प्रज्ञापना जिनेश्वर देवों एवं पूर्वाचार्यों की है ।

(71) प्रकरणकार ने संबंध किस प्रकार दर्शाया है ?

उत्तर : 'तस्सुत्त वियार लेसदेसणओ' के द्वारा ।

(72) प्रस्तुत प्रकरण का संबंध किससे है ?

उत्तर : प्रकरणकार गजसार गणिवर प्रथम गाथा के दूसरे एवं तीसरे चरण में कहते हैं कि तीर्थंकरों द्वारा प्ररूपित दण्डक सूत्र-विचार का संक्षिप्त-सार प्रस्तुत कर रहा हूँ, अतः प्रस्तुत प्रकरण का संबंध तीर्थंकरों से है ।

(73) प्रयोजन से क्या अभिप्राय है ?

उत्तर : किसी भी ग्रंथ के आलेखन में निहित कारण को प्रयोजन कहते है ।

(74) प्रयोजन कितने प्रकार का कहा गया है ?

उत्तर : दो प्रकार का - (1) अनंतर प्रयोजन (2) परंपर प्रयोजन ।

(75) अनंतर प्रयोजन किसे कहते है ?

उत्तर : अन् - नहीं (निषेधसूचक उपसर्ग)

अंतर - दूरी ।

न अंतर इति अनंतर

जिस प्रयोजन में निकट का निर्देश किया जाता है, उसे अनंतर प्रयोजन कहते है । तात्कालिक प्रयोजन को अनंतर प्रयोजन कहते है ।

(76) अनंतर प्रयोजन कितने प्रकार का कहा गया है ?

उत्तर : दो प्रकार का - (1) कर्ता का अनंतर प्रयोजन (2) श्रोता का अनंतर प्रयोजन ।

(77) कर्ता का अनंतर प्रयोजन क्या है ?

उत्तर : वे जीव, जो चतुर्विंशति दण्डकों के ज्ञान से अनभिज्ञ हैं और उसका ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं, उन जीवों को ज्ञान-प्रदान करना तथा तत्त्वज्ञान-स्वाध्याय के द्वारा सम्यग् दर्शन को शुद्ध बनाना कर्ता का अनंतर प्रयोजन हैं ।

(78) श्रोता का अनंतर प्रयोजन क्या है ?

उत्तर : दण्डक संबंधी ज्ञान प्राप्त करना, अज्ञान-तिमिर को हटाना एवं तत्त्वज्ञानार्जन के द्वारा जीवन तथा आचरण को शुद्ध बनाना, श्रोता का अनंतर प्रयोजन है ।

(79) परंपर प्रयोजन किसे कहते है ?

उत्तर : ग्रंथ लेखन-पठन-पाठन आदि में दूरगामी/दीर्घकालिक उद्देश्य को परंपर प्रयोजन कहते है ।

(80) परंपर प्रयोजन कितने प्रकार का कहा गया है ?

उत्तर : दो प्रकार का - (1) कर्ता का परंपर प्रयोजन (2) श्रोता का परंपर प्रयोजन ।

(81) श्रोता का परंपर प्रयोजन क्या है ?

उत्तर : श्रोता का परंपर प्रयोजन मात्र ज्ञानार्जन नहीं है, बल्कि उस ज्ञान को स्वयं के जीवन का अंग बनाना एवं सम्यग्ज्ञान से सम्यग्दर्शन को पुष्ट करते हुए निरतिचार-निर्मल सम्यक्चारित्र को प्राप्त कर अनुत्तर केवलज्ञान प्राप्त करना तथा निर्वाण रुप अव्याबाध सुख को प्राप्त करना है ।

(82) कर्ता का परंपर प्रयोजन क्या है ?

उत्तर : कर्ता का परंपर प्रयोजन स्वाध्याय द्वारा निजात्मा की शुद्धि करते हुए परम पद को प्राप्त करना है ।

(83) प्रस्तुत प्रकरण में प्रकरणकर्ता ने किस प्रयोजन को अभिव्यक्त किया है ?

उत्तर : यद्यपि प्रकरणकर्ता ने स्पष्ट रुप से प्रयोजन का कथन नहीं किया है फिर भी इतना तो स्पष्ट ही है कि यह प्रकरण निम्नोक्त कारणों से आलेखित किया गया है :

1. अज्ञानी को ज्ञान देना ।
2. ज्ञान के प्रति रुचि को उत्पन्न करना ।
3. स्वाध्याय करना एवं करवाना ।
4. सम्यग्दर्शन को पुष्ट बनाना ।
5. मोक्ष को प्राप्त करना ।

(84) प्रस्तुत प्रकरण में कितने दण्डकों का विवेचन है ?

उत्तर : चौबीस ।

(85) दण्डक चौबीस ही क्यों कहे गये ?

उत्तर : 1. जिनेश्वर परमात्मा ने चौबीस दण्डकों का कथन किया है ।
2. आगमों में भी चौबीस दण्डकों का उल्लेख प्राप्त होता है ।
3. पूर्ववर्ती आचार्यों ने भी चौबीस दण्डकों का ही निर्देश किया है ।

(86) चौबीस दण्डक कौन-कौन से हैं ?

उत्तर : **चौबीस दण्डक** - 1. नारकी, 2. असुरकुमार, 3. नागकुमार, 4. विद्युत्कुमार, 5. सुवर्ण (सुपर्ण) कुमार, 6. अग्निकुमार, 7. वायु (वात) कुमार, 8. मेघ (स्तनित) कुमार , 9. द्वीपकुमार, 10. दिशि (दिक्) कुमार, 11. उदधिकुमार, 12. पृथ्वीकाय, 13. अप्काय, 14. तेउकाय, 15. वायुकाय, 16. वनस्पतिकाय, 17. द्वीन्द्रिय, 18. त्रीन्द्रिय, 19. चतुरिन्द्रिय, 20. गर्भज तिर्यंच, 21. गर्भज मनुष्य, 22. व्यंतर देव, 23. ज्योतिष्क देव, 24. वैमानिक देव ।

चौबीस दण्डकों का विवरण

(87) नारकी किसे कहते है ?

उत्तर : पूर्व भवों में किये गये पाप कर्मों का अनिष्ट फल भोगने के लिये जो जीव नरक में उत्पन्न होते हैं और भयंकर वेदना सहते हैं, उन्हें नारकी कहते हैं।

(88) नरक पृथ्वियाँ कितनी हैं ?

उत्तर : सात - (1) रत्नप्रभा (2) शर्कराप्रभा (3) वालुकाप्रभा (4) पंकप्रभा (5) धूमप्रभा (6) तमःप्रभा (7) तमस्तमःप्रभा।

(89) सातों नरकों की गोत्र कौनसी हैं ?

उत्तर : क्रमशः - (1) धम्मा (2) वंशा (3) सेला (4) अंजना (5) रिष्टा (6) मघा (7) माघवती।

(90) नरक में कितने प्रकार की वेदना होती हैं ?

उत्तर : (1) परमाधामी देव कृत वेदना (2) क्षेत्रजन्य शीत, उष्ण आदि वेदना (3) नारकी जीवों की परस्पर कृत वेदना।

(91) असुरकुमार आदि दस प्रकार के देव क्या कहलाते हैं ?

उत्तर : भवनपति देव।

(92) भवनपति देव किसे कहते है ?

उत्तर : प्रथम रत्नप्रभा नरक पृथ्वी के उपर की एक लाख अस्सी हजार की जो मोटाई है, उसके उपर-नीचे के एक-एक हजार योजन को छोड़कर शेष 1,78,000 योजन में बने हुऐ भवनों एवं आवासों में निवास करने वाले देव, भवनपति देव कहलाते हैं। भवनपति देव स्वरुपवान्, सुकुमार एवं मनोहर होते हैं। इनकी चाल एवं गति मृदु, मधुर एवं दिव्य होती है।

(93) असुरकुमार देवों के दण्डक में अन्य किन-किन देवों को अध्याहार से जानना चाहिये ?

उत्तर : पन्द्रह परमाधामी देवों को।

(94) व्यंतर देव किसे कहते है ?

उत्तर : भवनपति देवों के भवनों के उपर छोड़े गये हजार योजन में से उपर एवं नीचे के सौ-सौ योजन छोडकर मध्यवर्ती आठ सौ योजन में रहने वाले देव, व्यंतर देव कहलाते हैं। पहाडों, गुफाओं एवं वनों के अन्तरों में रहने के कारण ये देव व्यंतर कहलाते हैं।

(95) व्यंतर देव कितने प्रकार के होते हैं ?

उत्तर : **आठ** - (1) किन्नर (2) किंपुरुष (3) महोरग (4) गांर्धव (5) यक्ष (6) राक्षस (7) भूत (8) पिशाच।

(96) व्यंतर देवों के दण्डक में अन्य किन देवों को अध्याहार से जानना चाहिये ?

उत्तर : वाणव्यंतर एवं तिर्यग्जृंभक देवों को।

(97) वाणव्यंतर देव किसे कहते है ?

उत्तर : व्यंतर देवों के उपर के छोड़े गये सौ योजन के मध्यवर्ती अस्सी योजन में रहने वाले, वाणव्यतंर देव कहलाते हैं।

(98) वाणव्यंतर देव कितने प्रकार के होते हैं ?

उत्तर : **आठ** - (1) अणपन्नी (2) पणपन्नी (3) इसीवादी (4) भूतवादी (5) कंदित (6) महाकंदित (7) कोहंड (8) पतंग।

(99) तिर्यग्जृंभक देव किसे कहते है ?

उत्तर : अपनी इच्छानुसार स्वतन्त्र प्रवृत्ति करने वाले तथा निरन्तर क्रीडा में आसक्त रहने वाले तिर्यग्जृंभक देव कहलाते हैं। ये देव जिस पर प्रसन्न होते हैं, उसे मालामाल कर देते हैं और जिस पर रुष्ट हो जाते हैं, उसे कंगाल कर देते हैं।

(100) तिर्यग्जृंभक देव कितने कहे गये हैं ?

उत्तर : **दस** - (1) अन्नजृंभक (2) पानजृंभक (3) वस्त्रजृंभक (4) लेणजृंभक (5) पुष्पजृंभक (6) फलजृंभक (7) पुष्पफलजृंभक (8) शयनजृंभक (9) विद्याजृंभक (10) अवियतजृंभक।

(101) ज्यौतिष्क देव किसे कहते है ?

उत्तर : वे देव, जो ज्योति से भूतलादि को प्रकाशित करते हैं, उन्हें ज्यौतिष्क देव कहते है ।

(102) ज्यौतिष्क देवों के कितने भेद हैं ?

उत्तर : पांच - (1) सूर्य (2) चंद्र (3) ग्रह (4) नक्षत्र (5) तारा ।

(103) वैमानिक देव किसे कहते हैं ?

उत्तर : वे देव, जिनके विमान भिन्न-भिन्न प्रमाण वाले होते हैं तथा विशिष्ट प्रकार के सुखों को भोगते हैं, वे वैमानिक देव कहलाते हैं ।

(104) वैमानिक देवों के कितने भेद होते हैं ?

उत्तर : दो - (1) कल्पोपपन्न देव (2) कल्पातीत देव ।

(105) कल्पोपपन्न देव किसे कहते हैं ?

उत्तर : वे देव, जिनमें स्वामी-सेवक का व्यवहार होता है, उन्हें कल्पोपपन्न कहते हैं ।

(106) कल्पोपपन्न देव कौनसे हैं ?

उत्तर : (1) बारह वैमानिक देव (2) नव लोकान्तिक देव (3) तीन किल्बिषिक देव । अधोलोकवर्ती तथा मध्यलोकवर्ती समस्त देव कल्पोपन्न ही होते हैं ।

(107) बारह वैमानिक देवलोक कौन - कौन से हैं ?

उत्तर : (1) सौधर्म (2) ईशान (3) सनत्कुमार (4) माहेन्द्र (5) ब्रह्मलोक (6) लांतक (7) महाशुक्र (8) सहस्रार (9) आनत (10) प्राणत (11) आरण (12) अच्युत ।

(108) नवलोकान्तिक देव कौनसे हैं ?

उत्तर : (1) सारस्वत (2) आदित्य (3) वह्नि (4) अरुण (5) गर्दतोय (6) तुषित (7) अव्याबाध (8) मरुत (9) अरिष्ट ।

(109) तीन किल्बिषिक देव कौनसे हैं ?

उत्तर : (1) त्रिपल्योपमिक (2) त्रिसागारिक (3) त्रयोदश सागारिक ।

(110) कल्पातीत देव किसे कहते है ?

उत्तर : वे देव, जिनमें स्वामी और सेवक का व्यवहार नहीं होता है, प्रत्येक देव अहमिंद्र की भाँति होता है, उन्हें कल्पातीत देव कहते है ।

(111) कल्पातीत देव कौनसे हैं ?

उत्तर : (1) नव ग्रैवेयक देव (2) पांच अनुत्तर वैमानिक देव ।

(112) नव ग्रैवेयक देव कौनसे हैं ?

उत्तर : (1) भद्र (2) सुभद्र (3) सुजात (4) सुमनस (5) सुदर्शन (6) प्रियदर्शन (7) अमोघ (8) सुप्रतिबद्ध (9) यशोधर ।

(113) पांच अनुत्तर वैमानिक देव कौन से हैं ?

उत्तर : (1) विजय (2) वैजयन्त (3) जयंत (4) अपराजित (5) सर्वार्थसिद्ध ।

(114) दस भवनपति देवों के दस दण्डक कहे गये, जबकि अनेकानेक भेद वाले व्यंतर, ज्योतिष्क एवं वैमानिक देवों का एक-एक दण्डक ही कहा गया, ऐसा भेद किस कारण है ?

उत्तर : परमात्मा महावीर ने दण्डकों की इसी प्रकार से व्याख्या की है तथा पूर्ववर्ती आचार्यों ने सिद्धांत में इसी प्रकार दण्डकों की संख्या बतायी है, उसी विधि का अनुसरण करते हुए यहाँ भी भवनपति देवों के दस दण्डक कहे गये, जबकि व्यंतर, ज्योतिष्क एवं वैमानिक देवों का एक-एक दण्डक ही कहा गया ।

(115) पृथ्वीकाय किसे कहते है ?

उत्तर : वे जीव, जिनकी काया पृथ्वी रूप है, उन्हें पृथ्वीकाय कहते है । जैसे पाषाण, स्वर्ण-रजत आदि धातुएँ, मिट्टी, लवणादि ।

(116) अप्काय किसे कहते है ?

उत्तर : वे जीव, जिनकी काया जल रूप है, उन्हें अप्काय कहते है । जैसे बरसात-तालाब-समुद्रादि का पानी, घनोदधि आदि ।

(117) तेउकाय किसे कहते है ?

उत्तर : वे जीव, जिनकी काया अग्नि रूप है, उसे तेउकाय कहते है । जैसे अंगारें, ज्वाला, दावानल, वडवानल आदि ।

(118) वायुकाय किसे कहते है ?

उत्तर : वे जीव, जिनकी काया वायु रूप है, उसे वायुकाय कहते है । जैसे घनवात, तनवात, गूंजवायु, मंदवायु आदि ।

(119) वनस्पतिकाय किसे कहते है ?

उत्तर : वे जीव, जिनकी काया वनस्पति रूप है, उसे वनस्पतिकाय कहते है । जैसे फल (आम, सेब आदि), फूल (गुलाब आदि), छाल, काष्ठ आदि ।

(120) पृथ्वीकाय आदि पाँचों को सामूहिक रूप में क्या कहते है ?

उत्तर : स्थावर और एकेन्द्रिय ।

(121) स्थावर किसे कहते है ?

उत्तर : वे जीव, जो इच्छानुसार एक स्थान से दूसरे स्थान पर गमनागमन नहीं कर सकते हैं, उन्हें स्थावर कहते है ।

(122) द्वीन्द्रिय किसे कहते है ?

उत्तर : जिन जीवों में स्पर्शनेन्द्रिय एवं रसनेन्द्रिय रूप दो इन्द्रियाँ पायी जाती हैं, उन्हें द्वीन्द्रिय कहते है । जैसे शंख, कौडी, गंडुल आदि ।

(123) त्रीन्द्रिय किसे कहते है ?

उत्तर : जिन जीवों में स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और घ्राणेन्द्रिय रूप तीन इन्द्रियाँ पायी जाती हैं, उन्हें त्रीन्द्रिय कहते है । जैसे चींटी, मकोडा, उदेहि आदि ।

(124) चतुरिन्द्रिय किसे कहते है ?

उत्तर : जिन जीवों में स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय और चक्षुरिन्द्रिय रूप चार इन्द्रियाँ पायी जाती हैं, उन्हें चतुरिन्द्रिय कहते है । जैसे मक्खी, मधुमक्खी, मच्छर आदि ।

(125) द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय को सामूहिक रुप से व्यक्त करने वाला संबोधन कौनसा है ?

उत्तर : विकलेन्द्रिय त्रिक ।

(126) द्वीन्द्रियादि को विकलेन्द्रिय क्यों कहा जाता है ?

उत्तर : एक से अधिक तथा पांच से कम इन्द्रियाँ होने के कारण इनको विकलेन्द्रिय कहा जाता है ।

(127) पांच स्थावरों एवं विकलेन्द्रिय त्रिक का जन्म स्वमल, मृत कलेवर आदि में होने के कारण कौनसा जन्म कहा जाता है ?

उत्तर : संमूर्च्छिम ।

(128) गर्भज मनुष्य से क्या अभिप्राय है ?

उत्तर : जिन जीवों का जन्म नर-नारी के संयोग से होता है, उन्हें गर्भज कहा जाता है । स्त्री-पुरुष के संयोग से उत्पन्न हुए मनुष्यों को गर्भज मनुष्य कहा जाता है ।

(129) गर्भज मनुष्य मुख्य रुप से कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

उत्तर : **तीन प्रकार के** - (1) कर्मभूमिज मनुष्य (2) अकर्मभूमिज मनुष्य (3) अन्तर्द्वीपज मनुष्य ।

(130) गर्भज तिर्यंच किसे कहते है ?

उत्तर : तिर्यंच रुप स्त्री और पुरुष के संयोग से उत्पन्न होने वाले गर्भज तिर्यंच कहलाते हैं ।

(131) गर्भज तिर्यंच के मुख्य रुप से कितने भेद होते हैं ?

उत्तर : **तीन भेद** - (1) स्थलचर (2) जलचर (3) खेचर ।

(132) स्थलचर तिर्यंच किसे कहते है ?

उत्तर : भूमि पर रहने वाले जीवों को स्थलचर तिर्यंच कहते है ।

(133) स्थलचर तिर्यंच के कितने भेद होते हैं ?

उत्तर : **तीन भेद** - (1) भुजपरिसर्प (2) उरपरिसर्प (3) चतुष्पद ।

(134) भुजपरिसर्प किसे कहते है ?

उत्तर : भुजाओं के बल पर चलने वाले जीवों को भुजपरिसर्प कहते है। जैसे बंदर, चूहा आदि।

(135) उरपरिसर्प किसे कहते है ?

उत्तर : उदर (पेट) के बल पर चलने वाले जीवों को उरपरिसर्प कहते है। जैसे सर्प, अजगर आदि।

(136) चतुष्पद किसे कहते है ?

उत्तर : चार पाँव वाले जीवों को चतुष्पद कहते है। जैसे गाय, बैल, घोडा, हाथी आदि।

(137) जलचर किसे कहते है ?

उत्तर : जल में रहने वाले जीवों को जलचर कहते है। जैसे मगरमच्छ, मछली आदि।

(138) खेचर किसे कहते है ?

उत्तर : आकाश में उडने वाले जीवों को खेचर कहते है। जैसे चिडिया, कोयल, कबूतर आदि।

(139) पंचेन्द्रिय मनुष्यों एवं तिर्यंचों के भेदों में संमूर्च्छिम भी होते हैं, तो फिर उन्हें चौबीस दण्डकों में सम्मिलित क्यों नहीं किया गया है ?

उत्तर : पूर्वाचार्यों, ग्रंथकारों एवं आगमकारों की विवक्षा ही प्रमाण है। उन्होंने इसी प्रकार प्ररूपणा की है। सिद्धान्त में चौबीस दण्डकों में संमूर्च्छिम मनुष्यों एवं तिर्यंचों की गणना नहीं की है और प्रस्तुत प्रकरण भी उसी आधार पर लिखा गया है, अतः संमूर्च्छिम मनुष्य एवं संमूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यंच की चतुर्विंशति दण्डकों में विवक्षा नहीं की गयी है।

चौबीस दण्डकों का विशेष विवेचन

(140) चौबीस दण्डकों में से कितने दण्डकों में भव्य तथा अभव्य जीव पाये जाते हैं ?

उत्तर : समस्त चौबीस दण्डकों में भव्य तथा अभव्य, दोनों प्रकार के जीव पाये जाते हैं ।

(141) चौबीस दण्डकों में से जीव के कितने दण्डक हैं ?

उत्तर : समस्त चौबीस दण्डक जीव के हैं ।

(142) चौबीस दण्डकों में से अजीव के कितने दण्डक हैं ?

उत्तर : अजीव का एक भी दण्डक नहीं है ।

(143) चौबीस दण्डकों में से सूक्ष्म एवं बादर जीवों के कितने दण्डक हैं ?

उत्तर : **पांच दण्डक** – (1) पृथ्वीकाय (2) अप्काय (3) तेउकाय (4) वायुकाय (5) वनस्पतिकाय ।

(144) चौबीस दण्डकों में से मात्र बादर जीवों के कितने दण्डक हैं ?

उत्तर : पृथ्वीकायादि पाँच स्थावरों को छोड़कर शेष उन्नीस दण्डक मात्र बादर जीवों के हैं ।

(145) चौबीस दण्डकों में से मात्र सूक्ष्म जीवों के कितने दण्डक हैं ?

उत्तर : एक भी नहीं है ।

(146) चौबीस दण्डकों में से मात्र प्रत्येक जीवों के कितने दण्डक हैं ?

उत्तर : तैवीस (वनस्पतिकाय के सिवाय) ।

(147) चौबीस दण्डकों में से मात्र साधारण जीवों के कितने दण्डक हैं ?

उत्तर : एक भी नहीं है ।

(148) चौबीस दण्डकों में से साधारण तथा प्रत्येक जीवों के कितने दण्डक हैं ?

उत्तर : एक दण्डक - वनस्पतिकाय ।

(149) चौबीस दण्डकों में से गर्भज जन्म वाले जीवों के कितने दण्डक हैं ?

उत्तर : दो दण्डक - (1) गर्भज मनुष्य (2) गर्भज तिर्यंच ।

(150) चौबीस दण्डकों में से संमूर्च्छिम जन्म वाले जीवों के कितने दण्डक हैं ?

उत्तर : आठ दण्डक - (1) पृथ्वीकाय, (2) अप्काय, (3) तेउकाय, (4) वायुकाय, (5) वनस्पतिकाय, (6) द्वीन्द्रिय, (7) त्रीन्द्रिय, (8) चतुरिन्द्रिय ।

(151) चौबीस दण्डकों में से औपपातिक जन्म वाले जीवों के कितने दण्डक हैं ?

उत्तर : चौदह दण्डक - (1) नारकी (2-11) असुरकुमार आदि दस भवनपति देव (12) व्यंतर देव (13) ज्योतिष्क देव (14) वैमानिक देव ।

(152) चौबीस दण्डकों में से संज्ञी जीवों के कितने दण्डक हैं ?

उत्तर : सोलह दण्डक - (1) गर्भज मनुष्य (2) गर्भज तिर्यंच (3) नारकी (4-13) असुरकुमार आदि दस भवनपति देव (14) व्यतंर देव (15) ज्योतिष्क देव (16) वैमानिक देव ।

(153) चौबीस दण्डकों में से कितने दण्डक नियमतः असंज्ञी ही होते हैं ?

उत्तर : आठ दण्डक - (1-5) पृथ्वीकाय आदि पांच स्थावर (6-8) द्वीन्द्रियादि तीन विकलेन्द्रिय ।

(154) चौबीस दण्डकों में से मनुष्य गति के कितने दण्डक हैं ?

उत्तर : **एक दण्डक** - गर्भज मनुष्य ।

(155) चौबीस दण्डकों में से देव गति के कितने दण्डक हैं ?

उत्तर : **तेरह दण्डक** - (1-10) असुरकुमार आदि दस भवनपति देव (11) व्यंतर देव (12) ज्योतिष्क देव (13) वैमानिक देव ।

(156) चौबीस दण्डकों में से तिर्यंच गति के कितने दण्डक हैं ?

उत्तर : **नौ दण्डक** - (1-5) पृथ्वीकाय, अप्काय आदि पांच स्थावर (6-8) द्वीन्द्रिय आदि तीन विकलेन्द्रिय (9) गर्भज तिर्यंच ।

(157) चौबीस दण्डकों में से नरक गति के कितने दण्डक हैं ?

उत्तर : **एक दण्डक** - नारकी ।

(158) चौबीस दण्डकों में से पृथ्वीकाय के कितने दण्डक हैं ?

उत्तर : **एक दण्डक** - पृथ्वीकाय ।

(159) चौबीस दण्डकों में से अप्काय के कितने दण्डक हैं ?

उत्तर : **एक दण्डक** - अप्काय ।

(160) चौबीस दण्डकों में से तेउकाय के कितने दण्डक हैं ?

उत्तर : **एक दण्डक** - तेउकाय ।

(161) चौबीस दण्डकों में से वायुकाय के कितने दण्डक हैं ?

उत्तर : **एक दण्डक** - वायुकाय ।

(162) चौबीस दण्डकों में से वनस्पतिकाय के कितने दण्डक हैं ?

उत्तर : **एक दण्डक** - वनस्पतिकाय ।

(163) चौबीस दण्डकों में से त्रसकाय के कितने दण्डक हैं ?

उत्तर : **उन्नीस दण्डक** - (1) नारकी (2-4) विकलेन्द्रिय त्रिक (5-14) दस भवनपति देव (15) व्यंतर देव (16) ज्योतिष्क देव (17) वैमानिक देव (18) गर्भज मनुष्य (19) गर्भज तिर्यंच ।

(164) चौबीस दण्डकों में से स्थावर के कितने दण्डक हैं ?

उत्तर : **पांच दण्डक** - 1. पृथ्वीकाय, 2. अप्काय, 3. तेउकाय, 4. वायुकाय, 5. वनस्पतिकाय ।

(165) चौबीस दण्डकों में से कितने दण्डकों में मिथ्यात्व पाया जाता है ?

उत्तर : समस्त चौबीस दण्डकों में ।

(166) चौबीस दण्डकों में से कितने दण्डकों में सास्वादन सम्यक्त्व हो सकता है ?

उत्तर : **कर्मग्रंथानुसार बावीस दण्डकों में** - (1) नारकी (2-11) दस भवनपति देव (12) व्यंतर देव (13) ज्योतिष्क देव (14) वैमानिक देव (15) पृथ्वीकाय (16) अप्काय (17) वनस्पतिकाय (18-20) विकलेन्द्रिय (21) गर्भज तिर्यंच (22) गर्भज मनुष्य । **सिद्धान्तानुसार** - उपरोक्त 22 दण्डकों में से पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय, इन तीन दण्डकों को छोड़कर शेष उन्नीस दण्डकों में सास्वादन सम्यक्त्व पाया जाता है ।

(167) चौबीस दण्डकों में से कितने दण्डकों में क्षायिक सम्यक्त्व हो सकता है ?

उत्तर : **सोलह दण्डकों में** - (1) गर्भज तिर्यंच (2) गर्भज मनुष्य (3-12) दस भवनपति देव (13) व्यंतर देव (14) ज्योतिष्क देव (15) वैमानिक देव (16) नारकी ।

(168) चौबीस दण्डकों में से कितने दण्डकों में औपशमिक एवं क्षायोपशमिक सम्यक्त्व पाया जाता है ?

उत्तर : उपरोक्त सोलह दण्डकों में ।

(169) चौबीस दण्डकों में से कितने दण्डक उर्ध्वलोक में पाये जाते हैं ?

उत्तर : **दस दण्डक** - (1) पृथ्वीकाय (2) अप्काय (3) तेउकाय (4) वायुकाय (5) वनस्पतिकाय (6) द्वीन्द्रिय (7) त्रीन्द्रिय (8) चतुरिन्द्रिय (9) गर्भज तिर्यंच (10) वैमानिक देव ।

(170) चौबीस दण्डकों में से कितने दण्डक मध्यलोक में पाये जाते हैं ?

उत्तर : **बारह दण्डक** - (1) पृथ्वीकाय (2) अप्काय (3) तेउकाय (4) वायुकाय (5) वनस्पतिकाय (6) द्वीन्द्रिय (7) त्रीन्द्रिय (8) चतुरिन्द्रिय (9) गर्भज तिर्यंच (10) गर्भज मनुष्य (11) व्यंतर देव (12) ज्योतिष्क देव ।

(171) चौबीस दण्डकों में से कितने दण्डक अधोलोक में पाये जाते हैं ?

उत्तर : **इक्कीस दण्डक** - (1) पृथ्वीकाय (2) अप्काय (3) तेउकाय (4) वायुकाय (5) वनस्पतिकाय (6) द्वीन्द्रिय (7) त्रीन्द्रिय (8) चतुरिन्द्रिय (9) गर्भज मनुष्य (10) गर्भज तिर्यंच (11-20) असुरकुमार आदि दस भवनपति देव (21) नारकी ।

(172) भरत-ऐरावत-महाविदेह क्षेत्र में कितने दण्डक पाये जाते हैं ?

उत्तर : **दस दण्डक** - (1) पृथ्वीकाय (2) अप्काय (3) तेउकाय (4) वायुकाय (5) वनस्पतिकाय (6) द्वीन्द्रिय (7) त्रीन्द्रिय (8) चतुरिन्द्रिय (9) गर्भज तिर्यंच (10) गर्भज मनुष्य ।

(173) लवण समुद्र में कितने दण्डक पाये जाते हैं ?

उत्तर : भरत क्षेत्र की भाँति लवण समुद्र में भी दस दण्डक पाये जाते हैं ।

(174) धातकी खण्ड में कितने दण्डक पाये जाते हैं ?

उत्तर : भरत क्षेत्र की भाँति धातकी खण्ड में भी दस दण्डक पाये जाते हैं।

(175) कालोदधि समुद्र में कितने दण्डक पाये जाते हैं ?

उत्तर : **नौ दण्डक** - (1) पृथ्वीकाय (2) अप्काय (3) तेउकाय (4) वायुकाय (5) वनस्पतिकाय (6) द्वीन्द्रिय (7) त्रीन्द्रिय (8) चतुरिन्द्रिय (9) गर्भज तिर्यंच ।

(176) अर्द्धपुष्करावर्त द्वीप में कितने दण्डक पाये जाते हैं ?

उत्तर : भरत क्षेत्र की भाँति अर्द्धपुष्करावर्त द्वीप में भी दस दण्डक पाये जाते हैं ।

(177) ढाई द्वीप में कितने दण्डक पाये जाते हैं ?

उत्तर : भरत क्षेत्र की भाँति ढाई द्वीप में भी दस दण्डक पाये जाते हैं ।

(178) लोकान्त में, सातवीं नरक से नीचे एवं मुट्ठी में कितने दण्डक पाये जाते हैं ?

उत्तर : **पांच दण्डक** - (1) पृथ्वीकाय (2) अप्काय (3) तेउकाय (4) वायुकाय (5) वनस्पतिकाय ।

(179) नंदीश्वर द्वीप, नंदीश्वर समुद्र, मेरुपर्वत आदि में कितने दण्डक पाये जाते हैं ?

उत्तर : **नौ दण्डक** - (1-5) पृथ्वीकाय आदि पांच स्थावर (6-8) विकलेन्द्रिय त्रिक (9) गर्भज तिर्यंच ।

(180) प्रथम गुणस्थानक कितने दण्डकों में पाया जाता है ?

उत्तर : समस्त चौबीस दण्डकों में ।

(181) दूसरा गुणस्थानक कितने दण्डकों में पाया जाता है ?

उत्तर : **कर्मग्रंथानुसार बावीस दण्डकों में** - (1) पृथ्वीकाय (2) अप्काय (3) वनस्पतिकाय (4-6) विकलेन्द्रिय त्रिक (7) गर्भज तिर्यंच

(8) गर्भज मनुष्य (9-18) दस असुरकुमार आदि भवनपति देव (19) व्यंतर देव (20) ज्योतिष्क देव (21) वैमानिक देव (22) नारकी ।

सिद्धान्तानुसार - उपरोक्त बावीस दण्डकों में से पृथ्वी-अप्-वनस्पतिकाय के सिवाय 19 दण्डकों में दूसरा गुणस्थानक पाया जाता है ।

(182) तीसरा गुणस्थानक कितने दण्डकों में पाया जाता है ?

उत्तर : **सोलह दण्डकों में** - (1) गर्भज तिर्यंच (2) गर्भज मनुष्य (3-12) असुरकुमारादि दस भवनपति देव (13) व्यंतर देव (14) ज्योतिष्क देव (15) वैमानिक देव (16) नारकी ।

(183) चौथा गुणस्थानक कितने दण्डकों में पाया जाता है ?

उत्तर : तीसरे गुणस्थानक की भाँति सोलह दण्डकों में ।

(184) पाँचवां गुणस्थानक कितने दण्डकों में पाया जाता है ?

उत्तर : **दो दण्डकों में** - (1) गर्भज मनुष्य (2) गर्भज तिर्यंच ।

(185) छट्ठे से चौदहवां गुणस्थानक कितने दण्डकों में पाया जाता है ?

उत्तर : **एक दण्डक में** - गर्भज मनुष्य ।

(186) पृथ्वीकाय आदि पांच स्थावर कितने गुणस्थानकों में पाये जाते हैं ?

उत्तर : **कर्मग्रंथानुसार** - पृथ्वी-अप्-वनस्पतिकाय प्रथम दो गुणस्थानकों में एवं सिद्धान्तानुसार प्रथम गुणस्थानक में पाये जाते हैं । तेउ-वायुकाय प्रथम गुणस्थानक में ही पाये जाते हैं ।

(187) विकलेन्द्रिय त्रिक कितने गुणस्थानकों में पाये जाते हैं ?

उत्तर : प्रथम दो गुणस्थानकों में ।

(188) गर्भज तिर्यंच कितने गुणस्थानकों में पाये जाते हैं ?

उत्तर : प्रथम पांच गुणस्थानकों में ।

(189) नारकी तथा देव कितने गुणस्थानकों में पाये जाते हैं ?

उत्तर : प्रथम चार गुणस्थानकों में ।

(190) गर्भज मनुष्य कितने गुणस्थानकों में पाये जाते हैं ?

उत्तर : चौदह गुणस्थानकों में ।

(191) देशविरति चारित्र कितने दण्डकों में पाया जाता है ?

उत्तर : दो दण्डकों में - (1) गर्भज मनुष्य (2) गर्भज तिर्यंच ।

(192) सर्वविरति चारित्र कितने दण्डकों में पाया जाता है ?

उत्तर : एक दण्डक में - गर्भज मनुष्य ।

(193) सामायिक चारित्र कितने दण्डकों में पाया जाता है ?

उत्तर : दो दण्डकों में - (1) गर्भज मनुष्य (2) गर्भज तिर्यंच ।

(194) परिहार विशुद्धि चारित्र, छेदोपस्थापनीय चारित्र, सूक्ष्म संपराय चारित्र और यथाख्यात चारित्र कितने दण्डकों में पाये जाते हैं ?

उत्तर : एक दण्डक में - गर्भज मनुष्य ।

(195) एकेन्द्रिय जीव कितने दण्डकों में पाये जाते हैं ?

उत्तर : पांच दण्डकों में - (1) पृथ्वीकाय (2) अप्काय (3) तेउकाय (4) वायुकाय (5) वनस्पतिकाय ।

(196) द्वीन्द्रिय जीव कितने दण्डकों में पाये जाते हैं ?

उत्तर : एक दण्डक में - द्वीन्द्रिय ।

(197) त्रीन्द्रिय जीव कितने दण्डकों में पाये जाते हैं ?

उत्तर : एक दण्डक में - त्रीन्द्रिय ।

(198) चतुरिन्द्रिय जीव कितने दण्डकों में पाये जाते हैं ?

उत्तर : एक दण्डक में - चतुरिन्द्रिय ।

(199) पंचेन्द्रिय जीव कितने दण्डकों में पाये जाते हैं ?

उत्तर : सोलह दण्डकों में - (1) गर्भज मनुष्य (2) गर्भज तिर्यंच (3-12) असुरकुमारादि दस भवनपति देव (13) व्यंतर देव (14) ज्योतिष्क देव (15) वैमानिक देव (16) नारकी ।

(200) तीर्थंकर, केवलज्ञानी, गणधर, चरम शरीरी, चक्रवर्ती, वासुदेव, बलदेव, प्रतिवासुदेव आदि कितने दण्डकों में पाये जाते हैं ?

उत्तर : एक दण्डक में - गर्भज मनुष्य ।

(201) त्रसनाल में कितने दण्डक पाये जाते हैं ?

उत्तर : त्रसनाल में समस्त चौबीस दण्डक पाये जाते हैं ।

(202) त्रसनाल के बाहर कितने दण्डक पाये जाते हैं ?

उत्तर : पृथ्वीकायादि पांच स्थावरों के पांच दण्डक पाये जाते हैं ।

(203) सिद्धशिला पर कितने दण्डक पाये जाते हैं ?

उत्तर : पृथ्वीकायादि पांच स्थावरों के पांच दण्डक पाये जाते हैं ।

(204) चौबीस दण्डकों में से व्रतधारी कितने दण्डकों मे पाये जाते हैं ?

उत्तर : दो दण्डकों में - (1) गर्भज मनुष्य (2) गर्भज तिर्यंच ।

(205) चौबीस दण्डकों में से अव्रती के कितने दण्डक होते हैं ?

उत्तर : समस्त चौबीस दण्डक ।

(206) कितने दण्डकों के जीव नियमतः अव्रती ही होते हैं ?

उत्तर : बावीस दण्डकों के - गर्भज मनुष्य-तिर्यंच को छोड़कर ।

(207) कितने दण्डकों में व्रती भी होते हैं और अव्रती भी होते है ?

उत्तर : दो दण्डकों में - गर्भज मनुष्य-तिर्यंच ।

(208) कितने दण्डकों के जीव व्रती ही होते हैं ?

उत्तर : एक भी नहीं ।

(209) अणुव्रती (श्रावक) के कितने दण्डक कहे गये हैं ?

उत्तर : दो दण्डक - (1) गर्भज मनुष्य (2) गर्भज तिर्यंच ।

(210) महाव्रती (श्रमण) के कितने दण्डक कहे गये हैं ?

उत्तर : एक दण्डक - गर्भज मनुष्य ।

(211) अरिहंत, आचार्य, उपाध्याय, गणि, प्रवर्तक आदि के कितने दण्डक कहे गये हैं ?

उत्तर : एक दण्डक - गर्भज मनुष्य ।

(212) सिद्ध के कितने दण्डक कहे गये हैं ?

उत्तर : एक भी नहीं ।

(213) कितने दण्डकों के जीव आगामी भव में मुक्त हो सकते हैं ?

उत्तर : बावीस दण्डकों के - तेउकाय एवं वायुकाय को छोड़कर ।

(214) कितने दण्डकों में दसों प्राण पाये जाते हैं ?

उत्तर : सोलह दण्डकों में - (1) गर्भज मनुष्य (2) गर्भज तिर्यंच (3-12) असुरकुमार दस भवनपति देव (13) व्यंतर देव (14) ज्योतिष्क देव (15) वैमानिक देव (16) नारकी ।

(215) कितने दण्डकों में आठ प्राण पाये जाते हैं ?

उत्तर : एक दण्डक में - चतुरिन्द्रिय ।

(216) कितने दण्डकों में सात प्राण पाये जाते हैं ?

उत्तर : एक दण्डक में - त्रीन्द्रिय ।

(217) कितने दण्डकों में छह प्राण पाये जाते हैं ?

उत्तर : एक दण्डक में - द्वीन्द्रिय ।

(218) कितने दण्डकों में चार प्राण पाये जाते हैं ?

उत्तर : पांच दण्डकों में - (1) पृथ्वीकाय (2) अप्काय (3) तेउकाय (4) वायुकाय (5) वनस्पतिकाय ।

(219) कितने दण्डक कर्म मुक्त कहे गये हैं ?

उत्तर : एक भी नहीं ।

(220) कितने दण्डक के जीव आठ कर्मों से युक्त है ?

उत्तर : चौबीस दण्डकों के ।

(221) कितने दण्डकों में संसारी पाये जाते हैं ?

उत्तर : चौबीस दण्डकों में ।

(222) सबसे ज्यादा भेदों वाला कौनसा दण्डक है ?

उत्तर : **गर्भज मनुष्य** - 202 भेद होते हैं ।

(223) सबसे कम भेदों वाले कौनसे दण्डक हैं ?

उत्तर : **तीन दण्डक** - 1 द्वीन्द्रिय, 2 त्रीन्द्रिय, 3 चतुरिन्द्रिय । इन तीनों के तुल्य रूपेण दो-दो भेद होते हैं ।

(224) जीव का कितने दण्डकों में जन्म-मरण हो चुका है ?

उत्तर : समस्त दण्डकों में ।

(225) आहार करने वाले कितने दण्डक हैं ?

उत्तर : चौबीस दण्डक ।

(226) निहार करने वाले कितने दण्डक हैं ?

उत्तर : **पांच दण्डक** - (1-3) विकलेन्द्रिय त्रिक (4-5) गर्भज मनुष्य-तिर्यंच ।

(227) लोक एवं अलोक में कितने दण्डक पाये जाते हैं ?

उत्तर : (१) लोक में चौबीस दण्डक पाये जाते हैं ।

(२) अलोक में एक भी दण्डक नहीं पाया जाता है ।

(228) तीनों लोकों में कितनी गति के जीव पाये जाते हैं ?

उत्तर : (1) उर्ध्वलोक में देव तथा तिर्यंच गति के जीव ।

(2) मध्यलोक में नरक सिवाय तीन गति के जीव ।

(3) अधोलोक में चारों गति के जीव ।

(229) चारों गतियों में कितने ध्यान पाये जाते हैं ?

उत्तर : (1) मनुष्य गति में चारों ध्यान होते हैं ।

(2) शेष तीन गतियों में शुक्ल सिवाय तीन ध्यान होते हैं ।

चौबीस द्वारों का विवेचन

(230) प्रस्तुत दण्डक प्रकरण में कितने द्वारों की विवक्षा की गयी है ?

उत्तर : चौबीस द्वारों की ।

(231) द्वार से क्या अभिप्राय है ?

उत्तर : द्वार का अर्थ दरवाजा/प्रवेश द्वार होता है । तत्त्वज्ञान के महल में प्रविष्ट होने के स्थान को द्वार कहा जाता है ।

(232) चौबीस द्वार कौन-कौन से हैं ?

उत्तर : **चौबीस द्वार** - (1) शरीर द्वार (2) अवगाहना द्वार (3) संघयण द्वार (4) संज्ञा द्वार (5) संस्थान द्वार (6) कषाय द्वार (7) लेश्या द्वार (8) इन्द्रिय द्वार (9) समुद्घात द्वार (10) दृष्टि द्वार (11) दर्शन द्वार (12) ज्ञान द्वार (13) अज्ञान द्वार (14) योग द्वार (15) उपयोग द्वार (16) उपपात द्वार (17) च्यवन द्वार (18) स्थिति द्वार (19) पर्याप्ति द्वार (20) किमाहार द्वार (21) संज्ञी द्वार (22) गति द्वार (23) आगति द्वार (24) वेद द्वार ।

(233) जीवाभिगम, प्रज्ञापना आदि आगमों में चतुर्विंशति से अधिक द्वारों की विवेचना उपलब्ध है तो फिर प्रस्तुत प्रकरण में चौबीस द्वार ही क्यों कहे गये हैं ?

उत्तर :
1. चौबीस तीर्थंकरों की स्तुति पूर्वक प्रस्तुत प्रकरण लिखने के कारण चौबीस द्वारों का उल्लेख ही किया गया है ।
2. प्रस्तुत प्रकरण में मुख्य द्वारों का ही विवेचन किया गया हैं ।
3. अधिक द्वार संख्या होने पर सामान्य जिज्ञासु समझ नहीं पाता है, अतः संक्षिप्त रूप से विशिष्ट द्वारों का विवरण इस प्रकरण में दिया गया है ।

(234) शरीर द्वार से क्या अभिप्राय है ?

उत्तर : जिस द्वार में चौबीस दण्डकवर्ती जीवों में पाये जाने वाले शरीरों की प्ररुपणा की गयी है, उसे शरीर द्वार कहते है ।

(235) अवगाहना द्वार किसे कहते है ?

उत्तर : चौबीस दण्डकवर्ती जीवों की जघन्य तथा उत्कृष्ट अवगाहना बताने वाले द्वार को अवगाहना द्वार कहते है ।

(236) संघयण द्वार किसे कहते है ?

उत्तर : जिस द्वार में चौबीस दण्डकवर्ती जीवों में पाये जाने वाले संघयणों की विवेचना की गयी है, उसे संघयण द्वार कहते है ।

(237) संज्ञा द्वार किसे कहते है ?

उत्तर : जिस द्वार में चौबीस दण्डकवर्ती जीवों में पायी जाने वाली संज्ञाओं का कथन किया गया है, उसे संज्ञा द्वार कहते है ।

(238) संस्थान द्वार किसे कहते है ?

उत्तर : जिस द्वार में चौबीस दण्डकवर्ती जीवों में पाये जाने वाले संस्थानों का कथन किया गया है, उसे संस्थान द्वार कहते है ।

(239) कषाय द्वार किसे कहते है ?

उत्तर : जिस द्वार में चौबीस दण्डकवर्ती जीवों में पाये जाने वाले कषायों का विवेचन किया गया है, उसे कषाय द्वार कहते है ।

(240) लेश्या द्वार किसे कहते है ?

उत्तर : जिस द्वार में चौबीस दण्डकवर्ती जीवों में पायी जाने वाली लेश्याओं का वर्णन किया गया है, उसे लेश्या द्वार कहते है ।

(241) इन्द्रिय द्वार किसे कहते है ?

उत्तर : जिस द्वार में चौबीस दण्डकवर्ती जीवों में स्थित इन्द्रियों का कथन किया गया है, उसे इन्द्रिय द्वार कहते है ।

(242) समुद्घात द्वार किसे कहते है ?

उत्तर : जिस द्वार में चौबीस दण्डकवर्ती जीवों में अवस्थित समुद्घात बताये गये हैं, उसे समुद्घात द्वार कहते है ।

(243) दृष्टि द्वार किसे कहते है ?

उत्तर : जिस द्वार में चौबीस दण्डकवर्ती जीवों में पायी जाने वाली दृष्टियों का उल्लेख किया गया है, उसे दृष्टि द्वार कहते है ।

(244) दर्शन द्वार किसे कहते है ?

उत्तर : जिस द्वार में चौबीस दण्डकवर्ती जीवों में पाये जाने वाले दर्शन का विवेचन प्राप्त होता है, उसे दर्शन द्वार कहते है ।

(245) ज्ञान द्वार किसे कहते है ?

उत्तर : जिस द्वार में चौबीस दण्डकवर्ती जीवों में पाये जाने वाले ज्ञान का वर्णन किया गया है, उसे ज्ञान द्वार कहते है ।

(246) अज्ञान द्वार किसे कहते है ?

उत्तर : जिस द्वार में चौबीस दण्डकवर्ती जीवों में पाये जाने वाले अज्ञान उल्लिखित है, उसे अज्ञान द्वार कहते है ।

(247) योग द्वार किसे कहते है ?

उत्तर : जिस द्वार में चौबीस दण्डकवर्ती जीवों में स्थित योगों का कथन किया गया है, उसे योग द्वार कहते है ।

(248) उपयोग द्वार किसे कहते है ?

उत्तर : जिस द्वार में चौबीस दण्डकवर्ती जीवों में स्थित उपयोग का प्रस्तुतीकरण किया गया है, उसे उपयोग द्वार कहते है ।

(249) उपपात द्वार किसे कहते है ?

उत्तर : जिस द्वार में चौबीस दण्डकवर्ती जीवों के उपपात (जन्म) का वर्णन किया गया है, उसे उपपात द्वार कहते है ।

(250) च्यवन द्वार किसे कहते है ?

उत्तर : जिस द्वार में चौबीस दण्डकवर्ती जीवों के च्यवन (मरण) का कथन किया गया है, उसे च्यवन द्वार कहते है ।

(251) स्थिति द्वार किसे कहते है ?

उत्तर : जिस द्वार में चौबीस दण्डकवर्ती जीवों का जघन्य तथा उत्कृष्ट आयुष्य बताया गया है, उसे स्थिति द्वार कहते है ।

(252) पर्याप्ति द्वार किसे कहते है ?

उत्तर : जिस द्वार में चौबीस दण्डकवर्ती जीवों में पायी जाने वाली पर्याप्तियों का विवेचन किया गया है, उसे पर्याप्ति द्वार कहते है ।

(253) किमाहार द्वार किसे कहते है ?

उत्तर : जिस द्वार में चौबीस दण्डकवर्ती जीवों के द्वारा दिशाओं से लिये जाने वाले आहार का विवेचन है, उसे किमाहार द्वार कहते है ।

(254) संज्ञी द्वार किसे कहते है ?

उत्तर : जिस द्वार में चौबीस दण्डकवर्ती जीवों में काल, मन एवं आत्मा संबंधी संज्ञाओं की विवेचना की गयी है, उसे संज्ञी द्वार कहते है ।

(255) गति द्वार किसे कहते है ?

उत्तर : मरणोपरान्त चौबीस दण्डकवर्ती जीव मरण प्राप्त कर जिस गति/ पर्याय में जाते हैं, उस तत्त्व को स्पष्ट करने वाला द्वार गति द्वार कहलाता है । जैसे पृथ्वीकाय का जीव मरकर दस दण्डकों में उत्पन्न होता है, उसे पृथ्वीकाय की गति कहते है ।

(256) आगति द्वार किसे कहते है ?

उत्तर : प्रत्येक दण्डक में जिस-जिस दण्डक के जीव आकर उत्पन्न होते हैं, इस जिज्ञासा को समाहित करने वाला आगति द्वार कहलाता है ।

जैसे पृथ्वीकाय के दण्डक में तेवीस दण्डकों के जीव आकर उत्पन्न होते हैं, वह पृथ्वीकाय की आगति कहलाती है ।

(257) वेद द्वार किसे कहते है ?

उत्तर : जिस द्वार में चौबीस दण्डकवर्ती जीवों में पाये जाने वाले वेदों का कथन किया गया है, उसे वेद द्वार कहते है ।

प्रथम शरीर द्वार का विवेचन

(258) शरीर किसे कहते है ?

उत्तर : 'यत् शीर्यते, तत् शरीरम्' जो क्षय/हानि को प्राप्त करता है, जो नाशवंत है, उसे शरीर कहते है ।

(259) शरीर कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

उत्तर : पांच - 1. औदारिक 2. वैक्रिय 3. आहारक 4. तैजस 5. कार्मण ।

(260) औदारिक शरीर किसे कहते है ?

उत्तर : सात प्रकार की धातुओं से निर्मित शरीर को औदारिक शरीर कहते है ।

(261) औदारिक शरीर में कौनसी सात धातुएँ पायी जाती हैं ?

उत्तर : (1) रस (2) रक्त (3) मांस (4) अस्थि (5) वसा (6) मज्जा (7) वीर्य (शुक्र) ।

(262) उदार शब्द से क्या अभिप्राय है ?

उत्तर : उदार शब्द अनेकार्थी है - (1) विशाल (2) दानेश्वरी (3) उत्तम (4) गुणेश्वरी (5) तेजस्वी (6) ज्ञानी ।

(263) विशाल से क्या अभिप्राय है ?

उत्तर : औदारिक शरीर के अतिरिक्त चार शरीरों में पांच सौ धनुष्य प्रमाण सबसे ज्यादा अवगाहना होती है, जो सातवीं नरक में उत्कृष्ट रूप से होती है, जबकि औदारिक शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना हजार योजन से भी अधिक होती हैं, जो प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीवों की होती है ।

औदारिक शरीर की यह भी महत्ता है कि इस शरीर वाले अर्थात् गर्भज मनुष्य जब उत्तर वैक्रिय शरीर बनाते है, तब उसकी सर्वाधिक अवगाहना होती है । इस प्रकार पाँचों शरीरों में सर्वाधिक अवगाहना औदारिक शरीर की होने से इसे विशाल कहा जाता है ।

(264) औदारिक शरीर दानेश्वरी किस प्रकार है ?

उत्तर : वैक्रिय शरीर सांसारिक संपत्ति देता है, इससे जन्म एवं मरण की बेड़ियाँ नष्ट नहीं हो सकती, जबकि औदारिक शरीर इतना उदार और दानी है कि जन्म-मरण की शृंखलाओं को तोड़कर मोक्ष रुपी दिव्य लक्ष्मी का दान करता है अर्थात् औदारिक शरीर वाला जीव ही केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष में जाता है, अतः औदारिक शरीर दानेश्वरी है ।

(265) पांच शरीरों में औदारिक शरीर उत्तम क्यों कहा गया है ?

उत्तर : समस्त पांचों शरीरों में सर्वाधिक एवं सर्वोत्कृष्ट कान्ति, सौंदर्य एवं शारीरिक सौष्ठव औदारिक शरीर में होने के कारण यह सर्वोत्तम कहा जाता हैं ।

यह सुंदरता, सुघड़ता और उत्तमता तीर्थंकर परमात्मा में पायी जाती है ।

(266) औदारिक शरीर गुणेश्वरी किस प्रकार हैं ?

उत्तर : पांचो शरीर में से गुणधारी महात्मा औदारिक शरीर वाले ही हो सकते हैं । तीर्थंकर, केवलज्ञानी, गणधर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, प्रतिवासुदेव, रुद्र, उपरुद्र, नारद आदि इसी शरीर वाले होने से औदारिक शरीर गुणधारी-गुणेश्वरी कहा गया ।

भव प्रत्ययिक वैक्रिय शरीर वाले में सम्यक्त्व एवं गुण प्रत्ययिक वैक्रिय शरीर वाले में देशविरति एवं सर्वविरति धर्म रुप गुण पाये जाते हैं । आहारक शरीर वाले में सर्वविरति रुप गुण हो सकता है पर यथाख्यात चारित्र एवं वीतरागता औदारिक शरीर वाले जीव में ही होती है ।

(267) औदारिक शरीर सर्वाधिक ओजस्वी तथा तेजस्वी किस प्रकार है ?

उत्तर : समस्त जीवों में तीर्थंकरों का ओज एवं तेज सर्वाधिक होता है, उनका तेज सौधर्मेन्द्र आदि के तेज से असंख्य गुणा अधिक होता है। उनके मुखमंडल की तेजस्विता सामान्य व्यक्ति के लिये ग्राह्य न होने के कारण देशना के समय उनके पृष्ठभाग में भामंडल की रचना की जाती है, जिससे तेजस्विता भामंडल में संक्रमित होकर अल्प होती है और दर्शनार्थी उनका मुखमंडल निहार पाता है।

(268) औदारिक शरीर ज्ञानी कैसे कहा गया है ?

उत्तर : वैक्रिय शरीर वाले में मति, श्रुतादिज्ञान हो सकते हैं पर केवलज्ञान नहीं होता है। आहारक शरीरधारी जीव में भी मतिज्ञानादि का सद्भाव होता है पर केवलज्ञान का अभाव होता है। कार्मण शरीर केवलज्ञान को आवृत्त करता है।

एक औदारिक शरीर ही ऐसा महान् शरीर है, जिससे जीव ज्ञानावरणीय आदि चार घाती कर्मों का समूल-सर्वथा क्षय कर अनुत्तर-अनुपम केवलज्ञान का अक्षय धन प्राप्त करता है।

(269) औदारिक शरीर की विशेषताएँ बताओ।

उत्तर : (1) औदारिक शरीर का छेदन-भेदन हो सकता है।

(2) औदारिक शरीर आग से जल सकता है।

(3) औदारिक शरीर व्याघात सहित है।

(4) औदारिक शरीर जीर्ण-शीर्ण होता है।

(5) सड़ना, गलना, विध्वंस होना, इस शरीर का स्वभाव है।

(270) वैक्रिय शरीर किसे कहते है ?

उत्तर : जो शरीर विक्रिया करने में सक्षम होता है, उसे वैक्रिय शरीर कहते है।

(271) विक्रिया से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर : छोटा-बड़ा, स्थूल-सूक्ष्म, मोटा-पतला, सुंदर-भयावह, दृश्य-अदृश्य, एक-अनेक आदि होने रूप गुणों को विक्रिया कहते है।

(272) वैक्रिय शरीर कितने प्रकार का कहा गया है ?

उत्तर : दो प्रकार का - (1) भवप्रत्ययिक वैक्रिय शरीर (2) लब्धिप्रत्ययिक वैक्रिय शरीर ।

(273) भवप्रत्ययिक वैक्रिय शरीर किसे कहते है ?

उत्तर : जिस शरीर की प्राप्ति में भव मुख्य कारण होता है, उसे भवप्रत्ययिक वैक्रिय शरीर कहते है ।

(274) लब्धिप्रत्ययिक वैक्रिय शरीर किसे कहते है ?

उत्तर : जिस शरीर की प्राप्ति तप, त्याग, संयम आदि के द्वारा होती है, उसे लब्धिप्रत्ययिक वैक्रिय शरीर कहते है ।

(275) चौबीस दण्डकों में से कितने दण्डकों में भवप्रत्ययिक वैक्रिय शरीर होता है ?

उत्तर : **चौदह दण्डकों में** - (1-10) असुरकुमारादि दस भवनपति देव (11) व्यंतर देव (12) ज्योतिष्क देव (13) वैमानिक देव (14) नारकी ।

(276) चौबीस दण्डकों में से कितने दण्डकों में लब्धिप्रत्ययिक वैक्रिय शरीर होता है ?

उत्तर : **दो दण्डकों में** - (1) गर्भज मनुष्य (2) गर्भज तिर्यंच ।

(277) पर्याप्त बादर वायुकाय में वैक्रिय शरीर होने पर भी दोनों में से किसी में भी उसका कथन क्यों नहीं किया गया ?

उत्तर : (1) पर्याप्त बादर वायुकाय में जब तक वैक्रिय सप्तक की उद्वलना (संक्रमण) नहीं हुई हो, तब तक ही वैक्रिय शरीर होता है, अतः इसे भवप्रत्ययिक वैक्रिय शरीर नहीं कहा जा सकता है ।

(2) पर्याप्त बादर वायुकाय में जप, तप आदि का अभाव होने से उसमें लब्धिप्रत्ययिक वैक्रिय शरीर भी नहीं कहा जा सकता है ।

(278) वैक्रिय शरीर की विशेषताएँ बताओ ।

उत्तर : (1) यह शरीर इच्छानुसार विविध रूप बना सकता है ।

(2) यह शरीर व्याघात-बाधा रहित होता है ।

(3) इस शरीर में औदारिक शरीर की तरह खून, मांस, अस्थि आदि सात धातु नहीं होते हैं ।

(4) यह शरीर न जीर्ण-शीर्ण होता है, न सडता या गलता है । नित्य नवीन सौंदर्य युक्त ही रहता है ।

(279) उत्तर वैक्रिय शरीर किसे कहते है ?

उत्तर : देव, नारकी, मनुष्य तथा तिर्यंच द्वारा बनाये गये नये वैक्रिय शरीर को उत्तर वैक्रिय शरीर कहते है ।

(280) उत्तर वैक्रिय शरीर कितने दण्डकों में पाया जाता है ?

उत्तर : **सतरह दण्डकों में** - (1-13) देव (14) नारकी (15) गर्भज तिर्यंच (16) गर्भज मनुष्य (17) वायुकाय ।

(281) वायुकाय का वैक्रिय शरीर किस आकार का होता है ?

उत्तर : पताका के आकार का ।

(282) कितने दण्डकों में उत्तर वैक्रिय शरीर नहीं पाया जाता है ?

उत्तर : **सात दण्डकों में** - (1) पृथ्वीकाय (2) अप्काय (3) तेउकाय (4) वनस्पतिकाय (5) द्वीन्द्रिय (6) त्रीन्द्रिय (7) चतुरिन्द्रिय ।

(283) आहारक शरीर किसे कहते है ?

उत्तर : आहारक लब्धि सम्पन्न चौदह पूर्वधर साधु महात्मा जिज्ञासा निराकरण आदि कारणों से महाविदेह आदि क्षेत्रों में विचरणशील परमात्मा के पास जाने के लिये जिस शरीर का निर्माण करते हैं, उसे आहारक शरीर कहते है ।

(284) आहारक शरीर की विशेषता क्या है ?

उत्तर : (1) आहारक शरीर स्फटिक की भाँति पारदर्शी होता है ।

(2) यह शरीर अति उज्ज्वल धवल एवं कान्तिमान् होता है ।

(3) इसकी गति व्याघात-बाधा रहित होती है अर्थात् कोई भी बाधा इसे बाधित नहीं कर सकती है ।

(4) महाविदेह क्षेत्र में जाकर पुनः लौटने में इस शरीर को मात्र अन्तर्मुहूर्त्त लगता है ।

(5) इसका निर्माण आहारक लब्धिधर चौदह पूर्वधर महात्मा ही कर सकते हैं ।

(6) आहारक शरीर हल्का, शुभ्र तथा अत्यन्त विशुद्ध होता है ।

(7) आहारक शरीर किसी को भी बाधा नहीं पहुँचाता है ।

(8) इस शरीर का संस्थान समचतुरस्र ही होता है ।

(9) आहारक शरीर भवचक्र में चार बार बनाया जा सकता है ।

(10) आहारक शरीर का विरहकाल जघन्यतः एक समय और उत्कृष्टतः छह माह का होता है ।

(11) आहारक शरीरी जघन्यतः एक-दो-तीन एवं उत्कृष्टतः दो हजार से नौ हजार हो सकते हैं ।

(12) चार बार आहारक शरीर बनाने वाला चरम शरीरी ही होता है ।

(285) आहारक शरीर का निर्माण किन-किन कारणों से किया जाता है ?

उत्तर : (1) तीर्थंकर परमात्मा के समवसरण आदि ऋद्धि-समृद्धि देखने के लिये ।

(2) आगम आदि में उपस्थित संशय का निराकरण करने के लिये ।

(3) तीर्थंकर परमात्मा से प्रश्न पूछने के लिये ।

(286) तैजस शरीर किसे कहते है ?

उत्तर : जिस शरीर के द्वारा ग्रहित आहार का पाचन होता है, उसे तैजस शरीर कहते है ।

(287) तैजस शरीर कितने प्रकार के कहे गये है ?

उत्तर : दो प्रकार के - (1) प्राकृतिक तैजस शरीर (2) कृत्रिम (लब्धिप्रत्ययिक) तैजस शरीर ।

(288) प्राकृतिक तैजस शरीर किसे कहते है ?

उत्तर : आहार-पाचन में सहज रुप से सहायक बनने वाले शरीर को प्राकृतिक तैजस शरीर कहते है ।

(289) प्राकृतिक तैजस शरीर कितने दण्डकों में पाया जाता है ?

उत्तर : समस्त चौबीस दण्डकों में पाया जाता है ।

(290) लब्धिप्रत्ययिक तैजस शरीर किसे कहते है ?

उत्तर : तप, त्याग, संयमादि कारणों से प्रकट होने वाली तैजस लब्धि, लब्धिप्रत्ययिक तैजस शरीर कहलाता है ।

(291) लब्धिप्रत्ययिक तैजस शरीर कितने प्रकार का कहा गया है ?

उत्तर : दो प्रकार का - (1) शीतलेश्या रुप (2) तेजोलेश्या रुप ।

(292) लब्धिप्रत्ययिक तैजस शरीर कितने दण्डकों में पाया जाता है ?

उत्तर : लब्धिप्रत्ययिक तैजस शरीर 16 दण्डकों में पाया जाता है - (1) गर्भज तिर्यंच (2) गर्भज मनुष्य (3-12) असुरकुमारादि दस भवनपति देव (13) व्यंतर देव (14) ज्योतिष्क देव (15) वैमानिक देव (16) नारकी ।

(293) तैजस शरीर की क्या उपयोगिता है ?

उत्तर : जिस प्रकार अग्नि मिट्टी के घड़े को पकाकर उपभोग योग्य बनाती है, उसी प्रकार तैजस शरीर जीव द्वारा भुक्त आहार को पचाकर सात धातुओं में परिणत करता है ।

(294) तैजस और कार्मण शरीर अगोचर क्यों है ?

उत्तर : तैजस और कार्मण शरीर में स्थित तैजस तथा कार्मण वर्गणा के पुद्‌गल अधिक सूक्ष्म परिणामी होने के कारण चक्षु से दिखायी नहीं देते हैं ।

(295) तैजस शरीर की विशेषताएँ बताओ ।

उत्तर : (1) शरीर में जो जठराग्नि है, वही तैजस शरीर है ।

(2) जिस प्रकार मिट्टी का घडा आग में तपने / पकने के बाद ही जलपूरण आदि में काम आता है, वैसे ही ग्रहित आहार को यह शरीर पचाता है, तभी वह सप्त धातुओं में परिवर्तित होता है ।

(3) यह शरीर अनादिकाल से आत्मा के साथ है, विग्रह गति में भी इसका वियोग नहीं होता है । जब जीव का निर्वाण होता है तभी इसका वियोग होता है ।

(4) मृत व्यक्ति के शरीर में से तैजस शरीर निकल जाने से शरीर शीतल हो जाता है ।

(5) सूक्ष्म होने से तैजस शरीर अप्रतिघाती है ।

(296) कार्मण शरीर किसे कहते है ?

उत्तर : कार्मण वर्गणा से निर्मित शरीर, कार्मण शरीर कहलाता है । आत्मा के साथ क्षीर-नीरवत् एकाकार बने कर्म पुद्‌गलों को कार्मण शरीर कहते है ।

(297) कार्मण शरीर की विशेषता क्या है ?

उत्तर : (1) यह शरीर अनादिकाल से आत्मा के साथ है ।

(2) कार्मण शरीर ही आठ कर्म रूप है । इसका अन्त हुए बिना सिद्ध गति नहीं मिलती है ।

(3) इस शरीर का कभी भी वियोग नहीं होता है, विग्रह गति में भी साथ रहता है। जीव जब निर्वाण को प्राप्त करता है, तभी इसका आत्मा से वियोग होता है।

(4) जीव द्वारा अनुभूत/प्राप्त सुख एवं दुःख का मूल कारण यही शरीर है।

(5) तैजस शरीर की भाँति कार्मण शरीर भी प्रतिघात रहित है। वज्र जैसी कठोर वस्तु भी इसको प्रतिबंधित नहीं कर सकती है।

(298) औदारिक शरीर का काल कितना होता है ?

उत्तर : अधिकतम 3 पल्योपम होता है। यह आयुष्य गर्भज मनुष्य एवं गर्भज चतुष्पद की अपेक्षा से कहा गया है।

(299) वैक्रिय शरीर का काल कितना होता है ?

उत्तर : अधिकतम 33 सागरोपम होता है। यह काल देवों एवं नारकी की अपेक्षा से कहा गया है।

(300) आहारक शरीर का काल कितना होता है ?

उत्तर : अन्तर्मुहूर्त।

(301) तैजस एवं कार्मण शरीर का काल कितना होता है ?

उत्तर : ये दोनों शरीर अनादिकाल से आत्मा के साथ हैं और जब तक आत्मा कर्म से सर्वथा मुक्त नहीं होगी, तब तक इनका संयोग रहेगा। अभव्य की अपेक्षा से इनका काल अनादि अनन्त है और भव्य की अपेक्षा से इनका काल अनादि सांत है।

(302) औदारिक शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना कितनी हो सकती है ?

उत्तर : हजार योजन से अधिक (प्रत्येक वनस्पतिकाय आश्रित)।

(303) वैक्रिय शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना कितनी होती है ?

उत्तर : 500 धनुष्य (मूल शरीर संबंधी)।

(304) आहारक शरीर की अवगाहना कितनी होती है ?

उत्तर : उत्कृष्ट - संपूर्ण एक हाथ ।
जघन्य - देशोण एक हाथ ।

(305) तैजस एवं कार्मण शरीर की अवगाहना कितनी होती है ?

उत्तर : तैजस तथा कार्मण शरीर की स्वतंत्र अवगाहना नहीं होती है । औदारिक आदि शरीर आधारित इनकी जघन्यतः अवगाहना अंगुल का असंख्यातवां भाग प्रमाण होती है । उत्तर वैक्रिय आधारित इनकी उत्कृष्टतः अवगाहना साधिक एक लाख योजन प्रमाण कही गयी है । केवली समुद्घात की अपेक्षा से तैजस तथा कार्मण शरीर की अवगाहना संपूर्ण लोकाकाश प्रमाण है ।

(306) संपूर्ण भव चक्र में अनन्त बार कौन से शरीरों की प्राप्ति संभव है ?

उत्तर : औदारिक, वैक्रिय, तैजस और कार्मण ।

(307) आहारक शरीर की प्राप्ति कितनी बार हो सकती है ?

उत्तर : संपूर्ण संसार चक्र में चार बार और एक भव में दो बार ।

(308) ऐसे कौन से शरीर हैं, जो अनादिकाल से आत्मा के साथ हैं और मृत्यु के उपरान्त भी साथ रहते हैं ?

उत्तर : तैजस और कार्मण ।

(309) पांच शरीरों में से कितने शरीर केवल जन्मसिद्ध है ?

उत्तर : पांच शरीरों में से एक औदारिक शरीर जन्मसिद्ध है । वह आहारक शरीर की भाँति कृत्रिम रूप से नहीं बनाया जा सकता है ।

(310) पांच शरीरों में से कितने शरीर केवल कृत्रिम है ?

उत्तर : पांच शरीरों में से एक मात्र आहारक शरीर कृत्रिम है क्योंकि वह औदारिक शरीर की भाँति जन्म से प्राप्त नहीं होता है । उसकी प्राप्ति तो सर्वविरतिधर मुनीश्वर को चौदह पूर्वों का अध्ययन करने के उपरान्त तद्योग्य लब्धि की प्राप्ति होने पर होती है ।

(311) पांच शरीरों में से कितने शरीर जन्मसिद्ध एवं कृत्रिम, दोनों हैं ?

उत्तर : पांच शरीरों में से वैक्रिय शरीर जन्मसिद्ध भी है और कृत्रिम भी है ।

नारकी एवं सुरगणों को जन्म से वैक्रिय शरीर प्राप्त होता है, तथा उत्तर वैक्रिय शरीर की लब्धि होने से उनमें कृत्रिम वैक्रिय शरीर भी पाया जाता है ।

मनुष्यों एवं तिर्यंचों में जप-तप आदि से प्राप्त लब्धि प्रत्ययिक होने से कृत्रिम वैक्रिय शरीर पाया जाता है ।

(312) पांच शरीरों में से कितने शरीर न जन्मसिद्ध है न कृत्रिम हैं ?

उत्तर : पांच शरीरों में से तैजस एवं कार्मण, दोनों न जन्मसिद्ध हैं, न कृत्रिम । क्योंकि ये दोनों शरीर अनादि-अनन्त काल से आत्मा के साथ है तथा जब तक जीव निर्वाण पद को प्राप्त नहीं होता है, तब तक साथ ही रहते हैं ।

(313) पांच शरीरों में कितने शरीर कार्य रूप हैं और कितने शरीर कारण रूप हैं ?

उत्तर : कार्मण शरीर कर्म रूप होने से शेष चारों शरीरों के निर्माण में कारण रूप है और शेष चार शरीर कार्य रूप हैं ।

(314) किस शरीर के कारण आत्मा भव-भव में भटकता है ?

उत्तर : कार्मण शरीर ।

(315) ऐसा कौनसा शरीर है, जो सर्वविरतिधर में ही संभवित है ?

उत्तर : आहारक शरीर ।

(316) ऐसे कौनसे शरीर हैं, जो देशविरतिधर, सर्वविरतिधर एवं केवलज्ञानी में पाये जाते हैं ?

उत्तर : **तीन शरीर** - (1) औदारिक (2) तैजस (3) कार्मण ।

(317) ऐसे कौनसे शरीर हैं, जो मिथ्यात्वी एवं सम्यक्त्वी, दोनों में पाये जाते हैं ?

उत्तर : चार शरीर - (1) औदारिक (2) वैक्रिय (3) तैजस (4) कार्मण ।

(318) ऐसा कौनसा शरीर है जो अविरतिधर में नहीं पाया जाता है ?

उत्तर : आहारक शरीर ।

(319) औदारिक शरीर कितने दण्डकों में पाया जाता है ?

उत्तर : दस दण्डकों में - (1) पृथ्वीकाय (2) अप्काय (3) तेउकाय (4) वायुकाय (5) वनस्पतिकाय (6) द्वीन्द्रिय (7) त्रीन्द्रिय (8) चतुरिन्द्रिय (9) गर्भज तिर्यंच (10) गर्भज मनुष्य ।

(320) वैक्रिय शरीर कितने दण्डकों में पाया जाता है ?

उत्तर : 17 दण्डकों में - (1) वायुकाय (2) गर्भज तिर्यंच (3) गर्भज मनुष्य (4) नारकी (5-14) असुरकुमार आदि दस भवनपति देव (15) व्यंतर देव (16) वैमानिक देव (17) ज्योतिष्क देव ।

(321) आहारक शरीर कितने दण्डकों में पाया जाता है ?

उत्तर : एक दण्डक में - (1) गर्भज मनुष्य ।

(322) गर्भज मनुष्य के अतिरिक्त शेष तेवीस दण्डकों में आहारक शरीर क्यों नहीं होता है ?

उत्तर : आहारक लब्धिधर ही आहारक शरीर का निर्माण कर सकता है और आहारक लब्धि अप्रमत्त, ऋद्धि संपन्न, चतुर्दश पूर्वधर साधु को ही प्राप्त होती है । यह अवस्था छट्ठे गुणस्थानक में ही संभव है एवं छट्ठा गुणस्थानक गर्भज मनुष्य ही प्राप्त कर सकता है । शेष दण्डकों में सर्वविरति, अप्रमत्त अवस्था, आहारक लब्धि संपन्नता एवं चतुर्दश पूर्वी ज्ञान का अभाव होने से उनमें आहारक शरीर का अभाव होता है ।

(323) आहारक शरीर का निर्माण जब प्रमत्त अवस्था में होता है तब आहारक लब्धि प्रयोगकाल में अप्रमत्त अवस्था क्यों कही गयी ?

उत्तर : आहारक लब्धि संपन्न चौदह पूर्वधर जब उस ऋद्धि का निष्पादन तथा उस शरीर का संहरण करते हैं, तब उत्सुकता एवं लब्ध्युपयोग के कारण प्रमत्त होते हैं।

वास्तव में तो वे लब्ध्युपजीविता के कारण प्रमत्त होते हैं पर आहारक शरीर के अन्तर्मुहूर्त के मध्यकाल में भाव-विशुद्धि होने के कारण उन्हें अप्रमत्त कहा गया है।

(324) तैजस एवं कार्मण शरीर कितने दण्डकों में पाये जाते हैं ?

उत्तर : चौबीस दण्डकों में।

(325) पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय और वनस्पतिकाय, इन पांच स्थावरों में कितने शरीर पाये जाते हैं ?

उत्तर : वायुकाय को छोड़कर शेष चार स्थावर दण्डकों में औदारिक, तैजस और कार्मण रूप तीन शरीर पाये जाते हैं।

वायुकाय में औदारिक, वैक्रिय, तैजस, कार्मण रूप चार शरीर पाये जाये हैं।

(326) विकलेन्द्रिय त्रिक में कितने शरीर पाये जाते हैं ?

उत्तर : **तीन शरीर** - (1) औदारिक (2) वैक्रिय (3) कार्मण।

(327) गर्भज तिर्यंच में कितने शरीर पाये जाते हैं ?

उत्तर : **चार शरीर** - (1) औदारिक (2) वैक्रिय (3) तैजस (4) कार्मण।

(328) गर्भज मनुष्य में कितने शरीर पाये जाते हैं ?

उत्तर : **पांच शरीर** - (1) औदारिक (2) वैक्रिय (3) आहारक (4) तैजस (5) कार्मण।

(329) नारकी जीवों में कितने शरीर पाये जाते हैं ?

उत्तर : **तीन शरीर** - (1) वैक्रिय (2) तैजस (3) कार्मण।

(330) असुरकुमार आदि दस भवनपति देवों में, व्यंतर, ज्योतिष्क एवं वैमानिक देवों में कितने शरीर पाये जाते हैं ?

उत्तर : **तीन शरीर** - (1) वैक्रिय (2) तैजस (3) कार्मण ।

(331) तीन शरीर कितने दण्डकों में पाये जाते हैं ?

उत्तर : **इक्कीस दण्डकों में** - (1-4) वायुकाय को छोड़कर शेष चार स्थावर (5-7) विकलेन्द्रिय त्रिक (8) नारकी (9-18) दस भवनपति देव (19) व्यंतर देव (20) ज्योतिष्क देव (21) वैमानिक देवों में ।

(332) चार शरीर कितने दण्डकों में पाये जाते हैं ?

उत्तर : **दो दण्डकों में** - (1) गर्भज तिर्यंच में (2) वायुकाय में ।

(333) पांच शरीर कितने दण्डकों में पाये जाते हैं ?

उत्तर : **एक दण्डक में** - गर्भज मनुष्य ।

(334) देव गति में कितने शरीर पाये जाते हैं ?

उत्तर : **तीन शरीर** - (1) वैक्रिय (2) तैजस (3) कार्मण ।

(335) मनुष्य गति में कितने शरीर पाये जाते हैं ?

उत्तर : **पांच शरीर** - (1) औदारिक (2) वैक्रिय (3) आहारक (4) तैजस (5) कार्मण ।

(336) नरक गति में कितने शरीर पाये जाते हैं ?

उत्तर : **तीन शरीर** - (1) वैक्रिय (2) तैजस (3) कार्मण ।

(337) तिर्यंच गति में कितने शरीर पाये जाते हैं ?

उत्तर : **चार शरीर** - (1) औदारिक (2) वैक्रिय (3) तैजस (4) कार्मण ।

(338) त्रस में कितने शरीर पाये जाते हैं ?

उत्तर : **पांच शरीर** - (1) औदारिक (2) वैक्रिय (3) आहारक (4) तैजस (5) कार्मण ।

(339) स्थावर में कितने शरीर पाये जाते हैं ?

उत्तर : **चार शरीर** - (1) औदारिक (2) वैक्रिय (3) तैजस (4) कार्मण ।

(340) एकेन्द्रिय में कितने शरीर पाये जाते हैं ?

उत्तर : **चार शरीर** - (1) औदारिक (2) वैक्रिय (3) तैजस (4) कार्मण ।

(341) पंचेन्द्रिय में कितने शरीर पाये जाते हैं ?

उत्तर : **पांच शरीर** - (1) औदारिक (2) वैक्रिय (3) आहारक (4) तैजस (5) कार्मण ।

(342) औपपातिक जन्म वाले जीवों में कितने शरीर पाये जाते हैं ?

उत्तर : **तीन शरीर** - (1) वैक्रिय शरीर (2) तैजस शरीर (3) कार्मण शरीर ।

(343) गर्भज जीवों में कितने शरीर पाये जाते हैं ?

उत्तर : औदारिक आदि पांचों शरीर पाये जाते हैं ।

(344) संमूर्च्छिम जीवों में कितने शरीर पाये जाते हैं ?

उत्तर : आहारक शरीर को छोड़कर शेष चार शरीर पाये जाते हैं ।

(345) सूक्ष्म जीवों में कितने शरीर पाये जाते हैं ?

उत्तर : **तीन शरीर** - (1) औदारिक (2) तैजस (3) कार्मण ।

(346) बादर जीवों में कितने शरीर पाये जाते हैं ?

उत्तर : औदारिकादि पांचों शरीर पाये जाते हैं ।

(347) उर्ध्वलोक में कितने शरीर पाये जाते हैं ?

उत्तर : **चार शरीर** - (1) औदारिक (2) वैक्रिय (3) तैजस (4) कार्मण ।

(348) मध्य तथा अधोलोक में कितने शरीर पाये जाते हैं ?

उत्तर : पांचों शरीर पाये जाते हैं ।

(349) संज्ञी जीवों में कितने शरीर पाये जाते हैं ?

उत्तर : पांचों शरीर पाये जाते हैं ।

(350) असंज्ञी जीवों में कितने शरीर पाये जाते हैं ?

उत्तर : आहारक सिवाय चार शरीर पाये जाते हैं ।

(351) एक साथ कितने शरीर होते हैं ?

उत्तर : एक शरीर कभी नहीं होता है ।

दो शरीर - (1) तैजस (2) कार्मण (विग्रह गति में) ।

तीन शरीर - (1) औदारिक (2) तैजस (3) कार्मण ।

(1) वैक्रिय (2) तैजस (3) कार्मण ।

चार शरीर - (1) औदारिक (2) वैक्रिय (3) तैजस (4) कार्मण ।

(1) औदारिक (2) आहारक (3) तैजस (4) कार्मण ।

पांच शरीर - पांचों शरीर एक साथ कभी भी नहीं होते हैं ।

(352) पांच शरीर एक साथ क्यों नहीं हो सकते हैं ?

उत्तर : कदाच् एक चतुर्दशपूर्वधर में आहारक लब्धि के साथ वैक्रिय लब्धि भी हो, फिर भी दोनों लब्धियों का प्रयोग एक समय में नहीं किया जा सकता है ।

जब दोनों लब्धियों से संयुत् आत्मा वैक्रिय लब्धि का प्रयोग करता है, तब आहारक लब्धि का प्रयोग नहीं हो सकता है ।

जिस समय आहारक लब्धि के द्वारा आहारक शरीर का निर्माण करता है, तब वैक्रिय लब्धि के द्वारा वैक्रिय शरीर का निर्माण नहीं होता है । इस कारण पांचों शरीर एक साथ नहीं होते हैं ।

(353) किस शरीर वाले दण्डक सबसे ज्यादा हैं ?

उत्तर : तैजस एवं कार्मण शरीर वाले जीवों के दण्डक सबसे ज्यादा हैं । अर्थात् समस्त दण्डकों में तैजस व कार्मण शरीर पाये जाते हैं ।

(354) किस शरीर वाले दण्डक सबसे कम हैं ?

उत्तर : आहारक शरीर वाले दण्डक सबसे कम हैं । केवल एक दण्डक है ।

(355) औदारिक शरीर कितने गुणस्थानकों में पाया जाता है ?

उत्तर : औदारिक शरीर कार्य है और औदारिक शरीर नाम कर्म कारण है ।

कारण रूप औदारिक शरीर नाम कर्म का उदय एक से तेरह गुणस्थानक तक होता है परन्तु औदारिक शरीर चौदह गुणस्थानकों में पाया जाता है। क्योंकि कारण नष्ट होने पर कार्य नष्ट नहीं होता है जैसे बिजली के चले जाने से प्रकाश नहीं होता है। पर बल्ब आदि इलेक्ट्रिक उपकरण विद्यमान रहते हैं।

(356) वैक्रिय शरीर कितने गुणस्थानकों में पाया जाता है ?

उत्तर : भवप्रत्ययिक वैक्रिय शरीर एक से चार तक गुणस्थानकों में, लब्धि प्रत्ययिक वैक्रिय शरीर एक से छह गुणस्थानकों में पाया जाता है।

(357) आहारक शरीर कितने गुणस्थानकों में पाया जाता है ?

उत्तर : केवल छट्ठे गुणस्थानक में।

(358) तैजस तथा कार्मण शरीर कितने गुणस्थानकों में पाये जाते हैं ?

उत्तर : एक से तेरह तक गुणस्थानकों में कारण रूप तैजस एवं कार्मण शरीर नाम कर्म का उदय होता है। पर कार्य रूप तैजस तथा कार्मण शरीर चौदहवें गुणस्थानक में भी होते हैं।

(359) भव्य जीवों में कितने शरीर पाये जाते हैं ?

उत्तर : पांचों शरीर।

(360) अभव्य जीवों में कितने शरीर पाये जाते हैं ?

उत्तर : आहारक सिवाय चार शरीर पाये जाते हैं।

(361) प्रत्येककायिक जीवों में कितने शरीर पाये जाते हैं ?

उत्तर : पांचों शरीर।

(362) साधारण जीवों में कितने शरीर पाये जाते हैं ?

उत्तर : तीन शरीर - (1) औदारिक (2) तैजस (3) कार्मण।

(363) पुरुष एवं नपुंसक में कितने शरीर पाये जाते हैं ?

उत्तर : पांचों शरीर पाये जाते हैं ।

(364) नपुंसक में आहारक शरीर किस प्रकार हो सकता है ?

उत्तर : कृत्रिम नपुंसक में आहारक शरीर हो सकता है परन्तु जन्मजात नपुंसक में आहारक शरीर संभव नहीं है क्योंकि वह चौदह पूर्वधर नहीं हो सकता है ।

(365) स्त्री में कितने शरीर पाये जाते हैं ?

उत्तर : आहारक शरीर सिवाय चार शरीर पाये जाते हैं ।

(366) गुणस्थानकों में कितने शरीर पाये जाते हैं ?

उत्तर : प्रथम से चतुर्थ गुणस्थानक तक आहारक रहित चार शरीर पाये जाते हैं । पंचम गुणस्थानक में औदारिक, वैक्रिय, तैजस तथा कार्मण शरीर पाये जाते हैं । षष्ठम गुणस्थानक में पांचों शरीर पाये जाते हैं । सातवें से तेरहवें गुणस्थानक तक कर्मोदय रूप औदारिक, तैजस और कार्मण शरीर पाये जाते हैं । कार्य रूप औदारिक-तैजस-कार्मण शरीर चौदहवें गुणस्थानक में भी पाये जाते हैं ।

(367) औदारिक शरीर के साथ कितने शरीर हो सकते हैं ?

उत्तर : औदारिक शरीर के साथ वैक्रिय, आहारक, तैजस एवं कार्मण चारों शरीर हो सकते हैं ।

(368) वैक्रिय शरीर या आहारक शरीर के साथ कितने शरीर हो सकते हैं ?

उत्तर : तीन शरीर - औदारिक, तैजस और कार्मण शरीर ।

(369) आहारक और वैक्रिय शरीर एक साथ क्यों नहीं हो सकते हैं ?

उत्तर : 1 तिर्यंच, देव और नारकी में वैक्रिय शरीर होता है परन्तु आहारक लब्धि का अभाव होने से वे वैक्रिय शरीर नहीं बना सकते हैं ।

2 यद्यपि मनुष्य में वैक्रिय और आहारक, दोनों लब्धियाँ पायी जाती हैं तथापि दोनों लब्धियों का एक समय में एक साथ प्रयोग-उपयोग असंभव होने के कारण आहारक और वैक्रिय शरीर एक साथ नहीं होते हैं।

(370) तैजस शरीर के साथ कितने शरीर हो सकते हैं ?

उत्तर : चार शरीर - औदारिक, वैक्रिय, आहारक और कार्मण शरीर।

(371) कार्मण शरीर के साथ कितने शरीर हो सकते हैं ?

उत्तर : चार शरीर - औदारिक, वैक्रिय, आहारक और तैजस शरीर।

(372) औदारिक शरीर को प्रथम स्थान पर क्यों रखा गया ?

उत्तर : निम्न कारणों से प्रथम स्थान पर औदारिक शरीर रखा गया -

(1) औदारिक शरीर वाले जीव इस संसार में सर्वाधिक हैं।

(2) औदारिक शरीरधारी ही क्षपक श्रेणी एवं उपशम श्रेणी में आरोहण कर सकते हैं।

(3) औदारिक शरीरधारी ही श्रमण एवं श्रावक बन सकते हैं।

(4) औदारिक शरीरधारी ही चतुर्विध संघ में सम्मिलित हो सकते हैं।

(5) औदारिक शरीरधारी ही केवलज्ञान प्राप्त कर, सर्व कर्म क्षयकर मोक्ष में जा सकते है।

(6) सर्वाधिक अवगाहना, ज्ञान, तेजस्विता एवं गुण औदारिक शरीरी में ही होते हैं।

(373) औदारिक से वैक्रिय शरीर की अधिक सुंदरता एवं शक्ति होने पर भी वैक्रिय शरीर को प्रथम स्थान पर क्यों नहीं रखा गया ?

उत्तर : औदारिक शरीर की अपेक्षा वैक्रिय शरीर की सुंदरता एवं दिव्यता

अधिक होने पर भी वह मोक्षमार्ग में सहायभूत नहीं हो सकता है। जैसे हाथी उष्ट्र की अपेक्षा अधिक मूल्यवान् और स्थूल होने पर भी मरुधरा को पार करने में उष्ट्र ही सक्षम होता है, वैसे ही संसार-उदधि से पार होने में औदारिक शरीर ही समर्थ होने से वह प्रथम स्थान पर दिया गया।

(374) आहारक शरीर में ज्यादा गुण होने पर भी वैक्रिय पहले क्यों कहा गया ?

उत्तर : यद्यपि महाव्रत, चारित्र, संवर आदि गुणों की अपेक्षा से वैक्रिय शरीर की अपेक्षा आहारक शरीर श्रेष्ठ है, तथापि वैक्रिय शरीरधारी कुछ तथ्यों की अपेक्षा महत्तम है -

(1) आहारक शरीर केवल मनुष्य गति में ही पाया जाता है, जबकि वैक्रिय शरीर चारों गतियों में पाया जाता है।

(2) आहारक शरीर एक दण्डक में ही होता है, जबकि वैक्रिय शरीर सतरह दण्डकों में पाया जाता है।

(3) आहारक शरीरधारी की अपेक्षा वैक्रिय शरीर वाले जीव बहुत अधिक होते हैं।

(4) आहारक शरीर लब्धि से पाया जाता है जबकि वैक्रिय शरीर जन्म व लब्धि, दोनों से पाया जाता है।

(375) तैजस एवं कार्मण शरीर, सबसे अन्त में क्यों रखे गये ?

उत्तर : (1) तैजस-कार्मण शरीर शेष तीन कर्मों की अपेक्षा अतिसूक्ष्म हैं।

(2) कार्मण शरीर के कारण ही जीव संसार में परिभ्रमण करता है। अतः यही शरीर सर्वाधिक भयानक है।

चतुर्विध गति रुप संसार में परिभ्रमण का कारण होने से कार्मण शरीर अन्त में रखा गया।

(376) तैजस और कार्मण शरीर निकट क्यों रखे गये ?

उत्तर : (1) दोनों शरीर चौबीस दण्डकों में पाये जाते हैं।

(2) दोनों शरीर विग्रह गति में भी साथ रहते हैं।

(3) दोनों शरीर एक साथ विच्छेद को प्राप्त होते हैं।

(377) सर्वाधिक स्थूल शरीर कौनसा है ?

उत्तर : औदारिक शरीर सर्वाधिक स्थूल है, उत्तरोत्तर अल्प स्थूल वैक्रिय और आहारक है।

(378) सर्वाधिक सूक्ष्म शरीर कौनसा है ?

उत्तर : कार्मण शरीर।

(379) किस कर्म के कारण शरीर की प्राप्ति होती है ?

उत्तर : नाम कर्म के कारण।

(380) शरीर देने वाले पांच नाम कर्म कौन से हैं ?

उत्तर : (1) औदारिक शरीर नाम कर्म (2) वैक्रिय शरीर नाम कर्म (3) आहारक शरीर नाम कर्म (4) तैजस शरीर नाम कर्म (5) कार्मण शरीर नाम कर्म।

(381) कोई जीव कितने समय तक औदारिक शरीरी पर्याय में रहता है ?

उत्तर : जघन्यतः - दो समय न्यून क्षुल्लक भव।

उत्कृष्टतः - असंख्य काल।

(382) कोई जीव कितने समय तक वैक्रिय शरीर में रहता है ?

उत्तर : जघन्यतः - एक समय।

उत्कृष्टतः - साधिक तैंतीस सागरोपम।

(383) कोई जीव कितने समय तक आहारक शरीर में रहता है ?

उत्तर : जघन्यतः एवं उत्कृष्टतः - अन्तर्मुहूर्त।

द्वितीय अवगाहना द्वार का विवेचन

(384) अवगाहना किसे कहते है ?

उत्तर : जीव की शारीरिक ऊँचाई को अवगाहना कहते है ।

(385) प्रस्तुत द्वार में कितने प्रकार से अवगाहना बतायी गयी है ?

उत्तर : दो प्रकार से - (1) जघन्य अवगाहना (2) उत्कृष्ट अवगाहना ।

(386) जघन्य अवगाहना किसे कहते हैं ?

उत्तर : जीव के शरीर की अल्पतम ऊँचाई को जघन्य अवगाहना कहते है ।

(387) उत्कृष्ट अवगाहना किसे कहते है ?

उत्तर : जीव के शरीर की अधिकतम ऊँचाई को उत्कृष्ट अवगाहना कहते है ।

(388) समस्त दण्डकों की जघन्य अवगाहना कितनी कही गयी है ?

उत्तर : अंगुल का असंख्यातवां भाग ।

(389) नारकी जीवों की अधिकतम अवगाहना कितने धनुष्य प्रमाण कही गयी है ?

उत्तर : पांच सौ धनुष्य ।

(390) सात नरकों में उत्कृष्ट अवगाहना कितनी कही गयी है ?

उत्तर :

प्रथम नरक में	-	7 धनुष्य	78 अंगुल ।	
द्वितीय नरक में	-	15 धनुष्य	60 अंगुल ।	
तृतीय नरक में	-	31 धनुष्य	24 अंगुल ।	
चतुर्थ नरक में	-	62 धनुष्य	48 अंगुल ।	
पंचम नरक में	-	125 धनुष्य ।		
षष्ठम नरक में	-	250 धनुष्य ।		
सप्तम नरक में	-	500 धनुष्य ।		

(391) सात नरकों में पर्याप्ता नारकी जीवों की जघन्य अवगाहना कितनी होती है ?

उत्तर : पर्याप्ता नारकी जीवों की जघन्य अवगाहना इस प्रकार है -

प्रथम नरक में	-	3 हाथ ।	
द्वितीय नरक में	-	7 धनुष्य	78 अंगुल ।
तृतीय नरक में	-	15 धनुष्य	60 अंगुल ।
चतुर्थ नरक में	-	31 धनुष्य	24 अंगुल ।
पंचम नरक में	-	62 धनुष्य	48 अंगुल ।
षष्टम नरक में	-	125 धनुष्य ।	
सप्तम नरक में	-	250 धनुष्य ।	

(392) सात नरक में अपर्याप्ता नारकी जीवों की अवगाहना कितनी होती है ?

उत्तर : मूल शरीर की अवगाहना निर्माण के आरंभ में अर्थात् अपर्याप्ता अवस्था में अंगुल का असंख्यातवां भाग कही गयी है ।

(393) नारकी जीवों के उत्तर वैक्रिय शरीर की जघन्य अवगाहना कितनी होती है ?

उत्तर : अंगुल का संख्यातवां भाग (प्रारंभ में) ।

(394) नारकी जीवों की उत्तर वैक्रिय शरीर संबंधी उत्कृष्ट अवगाहना कितनी होती है ?

उत्तर : प्रत्येक नारकी की मूल वैक्रिय शरीर की अपेक्षा उत्तर वैक्रिय शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना दुगुनी होती है ।

प्रथम नरक में	-	15 धनुष्य	60 अंगुल ।
द्वितीय नरक में	-	31 धनुष्य	24 अंगुल ।
तृतीय नरक में	-	62 धनुष्य	48 अंगुल ।

चतुर्थ नरक में - 125 धनुष्य ।
पंचम नरक में - 250 धनुष्य ।
षष्टम नरक में - 500 धनुष्य ।
सप्तम नरक में - 1000 धनुष्य ।

(395) नारकी जीवों के उत्तर वैक्रिय शरीर का कालमान कितना होता है ?

उत्तर : अन्तर्मुहूर्त प्रमाण ।

(396) अधोलोकवर्ती देवों की उत्कृष्ट अवगाहना कितनी होती है ?

उत्तर : भवनपति, परमाधामी देवों की उत्कृष्ट अवगाहना सात हाथ की होती है ।

(397) मध्यलोकवर्ती देवों की उत्कृष्ट अवगाहना कितनी होती है ?

उत्तर : मध्यलोकवर्ती ज्योतिष्क, व्यंतर, वाणव्यंतर एवं तिर्यग्जृंभक देवों की उत्कृष्ट अवगाहना सात हाथ की होती है ।

(398) उर्ध्वलोकवर्ती देवों की उत्कृष्ट अवगाहना कितनी होती है ?

उत्तर : (1) पहले-दूसरे देवलोक के देवों की तथा पहले किल्बिषिक देवों की उत्कृष्ट अवगाहना सात हाथ की होती है ।

(2) तीसरे-चौथे देवलोक के देवों की तथा दूसरे किल्बिषिक देवों की उत्कृष्ट अवगाहना छह हाथ की होती है ।

(3) पांचवें एवं छट्ठे देवलोक के देवों की, नवलोकान्तिक देवों की तथा तीसरे किल्बिषिक देवों की उत्कृष्ट अवगाहना पांच हाथ की होती है ।

(4) सातवें तथा आठवें देवलोक के देवों की उत्कृष्ट अवगाहना चार हाथ की होती है ।

(5) नौवें से बारहवें देवलोक के देवों की उत्कृष्ट अवगाहना तीन हाथ की होती है ।

(6) नवग्रैवेयक देवों की उत्कृष्ट अवगाहना दो हाथ की होती है ।

(7) पांच अनुत्तर वैमानिक देवों की उत्कृष्ट अवगाहना एक हाथ की होती है ।

(399) देवों के उत्तर वैक्रिय शरीर की जघन्य अवगाहना कितनी होती है ?

उत्तर : अंगुल का संख्यातवां भाग ।

(400) देवों के उत्तर वैक्रिय शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना कितनी होती है ?

उत्तर : एक लाख योजन ।

(401) देवों के उत्तर वैक्रिय शरीर का कालमान कितना होता है ?

उत्तर : पन्द्रह दिवस का ।

(402) नवग्रैवेयक एवं पांच अनुत्तर वैमानिक देव उत्तर वैक्रिय शरीर का निर्माण नहीं करते हैं ?

उत्तर : नवग्रैवेयक तथा अनुत्तर विमान के देवों में परिचारणा, गमनागमन आदि का अभाव होने से वे उत्तर वैक्रिय शरीर का निर्माण नहीं करते हैं ।

(403) मनुष्य की जघन्य अवगाहना कितनी कही गयी है ?

उत्तर : अंगुल का असंख्यातवां भाग ।

(404) पांच भरत एवं पांच ऐरावत क्षेत्र के मनुष्यों की अवसर्पिणी-काल में उत्कृष्ट अवगाहना कितनी होती है ?

उत्तर : पहले आरे में - 3 कोस ।

दूसरे आरे में - 2 कोस ।

तीसरे आरे में - 1 कोस ।

चौथे आरे में - 500 धनुष्य ।

पांचवें आरे में - 7 हाथ ।

छट्ठे आरे में - 2 हाथ ।

(405) पांच भरत एवं पांच ऐरावत क्षेत्र के मनुष्यों की उत्सर्पिणी-काल में उत्कृष्ट अवगाहना कितनी होती है ?

उत्तर : पहले आरे में - 2 हाथ ।

दूसरे आरे में - 7 हाथ ।

तीसरे आरे में - 500 धनुष्य ।

चौथे आरे में - 1 कोस ।

पांचवें आरे में - 2 कोस ।

छट्ठे आरे में - 3 कोस ।

(406) पांच महाविदेह क्षेत्र के मनुष्यों की उत्कृष्ट अवगाहना कितनी होती है ?

उत्तर : पांच सौ धनुष्य ।

(407) पांच देवकुरु तथा पांच उत्तरकुरु क्षेत्र के मनुष्यों की उत्कृष्ट अवगाहना कितनी होती है ?

उत्तर : तीन कोस की ।

(408) पांच रम्यक् तथा पांच हरिवर्ष क्षेत्र के मनुष्यों की उत्कृष्ट अवगाहना कितनी होती है ?

उत्तर : दो कोस की ।

(409) पांच हिमवंत तथा पांच हिरण्यवंत क्षेत्र के मनुष्यों की उत्कृष्ट अवगाहना कितनी होती है ?

उत्तर : एक कोस की ।

(410) छप्पन अन्तर्द्वीपज मनुष्यों की उत्कृष्ट अवगाहना कितनी होती है ?

उत्तर : आठ सौ धनुष्य की ।

(411) मनुष्य के उत्तर वैक्रिय शरीर की जघन्य अवगाहना कितनी होती है ?

उत्तर : अंगुल का संख्यातवां भाग ।

(412) मनुष्य के उत्तर वैक्रिय शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना कितनी होती है ?

उत्तर : एक लाख योजन एवं चार अंगुल ।

(413) मनुष्य और देव के उत्तर वैक्रिय शरीर में चार अंगुल का अन्तर क्यों है ?

उत्तर : मनुष्य और देव के उत्तर वैक्रिय शरीर की समान रूप से एक लाख योजन की अवगाहना सिद्धांत में कही गयी है, परन्तु दण्डक वृत्ति में देव और मनुष्य के उत्तर वैक्रिय शरीर की अवगाहना साधिक एक लाख योजन की कही गयी है ।

देव और मनुष्य के उत्तर वैक्रिय शरीर का शीर्ष भाग तो समान होता है लेकिन मनुष्य भूमि का स्पर्श करते हैं और देव जमीन से चार अंगुल उपर रहते हैं, अतः मनुष्य की चार अंगुल अधिक अवगाहना कही गयी ।

(414) मनुष्य के उत्तर वैक्रिय शरीर का कालमान कितना कहा गया है ?

उत्तर : चार मुहूर्त ।

(415) एकेन्द्रिय जीवों की जघन्य अवगाहना कितनी होती है ?

उत्तर : पृथ्वीकाय से यावत् वनस्पतिकाय के जीवों की जघन्य अवगाहना अंगुल का असंख्यातवां भाग प्रमाण होती है ।

(416) एकेन्द्रिय जीवों की उत्कृष्ट अवगाहना कितनी होती है ?

उत्तर : पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेउकायिक, वायुकायिक तथा साधारण वनस्पतिकाय जीवों की उत्कृष्ट अवगाहना अंगुल का असंख्यातवां भाग प्रमाण होती हैं ।

(417) एकेन्द्रिय जीवों की जो उत्कृष्ट तथा जघन्य अवगाहना अंगुल का असंख्यातवां भाग कही गयी है, वह सब समान है अथवा उनमें कोई विशेष अन्तर है ?

उत्तर : पांच स्थावरों की उत्कृष्ट तथा जघन्य अवगाहना जो अंगुल का असंख्यातवां भाग कही गयी है, उसमें भी विशेष अन्तर होता है क्योंकि असंख्य के भी असंख्य भेद होते हैं ।

(1) सूक्ष्म साधारण वनस्पतिकाय की सबसे अल्प अवगाहना होती है ।

(2) सूक्ष्म वायुकाय की उससे असंख्यगुणा ज्यादा अवगाहना होती है ।

(3) सूक्ष्म तेउकाय की उससे असंख्यगुणा ज्यादा अवगाहना होती है ।

(4) सूक्ष्म अप्काय की उससे असंख्यगुणा ज्यादा अवगाहना होती है ।

(5) सूक्ष्म पृथ्वीकाय की उससे असंख्यगुणा ज्यादा अवगाहना होती है ।

(6) बादर वायुकाय की उससे असंख्यगुणा ज्यादा अवगाहना होती है ।

(7) बादर तेउकाय की उससे असंख्यगुणा ज्यादा अवगाहना होती है ।

(8) बादर अप्काय की उससे असंख्यगुणा ज्यादा अवगाहना होती है ।

(9) बादर पृथ्वीकाय की उससे असंख्यगुणा ज्यादा अवगाहना होती है ।

(10) बादर साधारण वनस्पतिकाय की उससे असंख्यगुणा ज्यादा अवगाहना होती है ।

(418) प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीवों की जघन्य तथा उत्कृष्ट अवगाहना कितनी होती है ?

उत्तर : जघन्य अवगाहना - अंगुल का असंख्यातवां भाग ।
उत्कृष्ट अवगाहना - एक हजार योजन से थोडी अधिक ।

(419) वायुकायिक जीवों के वैक्रिय शरीर की अवगाहना कितनी होती है ?

उत्तर : जघन्य तथा उत्कृष्ट रूप से अंगुल का असंख्यातवां भाग ।

(420) द्वीन्द्रिय जीवों की जघन्य तथा उत्कृष्ट अवगाहना कितनी होती है ?

उत्तर : जघन्य अवगाहना - अंगुल का असंख्यातवां भाग ।
उत्कृष्ट अवगाहना - बारह योजन ।

(421) त्रीन्द्रिय जीवों की जघन्य तथा उत्कृष्ट अवगाहना कितनी होती है ?

उत्तर : जघन्य अवगाहना - अंगुल का असंख्यातवां भाग ।
उत्कृष्ट अवगाहना - तीन कोस ।

(422) चतुरिन्द्रिय जीवों की जघन्य तथा उत्कृष्ट अवगाहना कितनी होती है ?

उत्तर : जघन्य अवगाहना - अंगुल का असंख्यातवां भाग ।
उत्कृष्ट अवगाहना - एक योजन ।

(423) गर्भज जलचर जीवों की जघन्य तथा उत्कृष्ट अवगाहना कितनी होती है ?

उत्तर : जघन्य अवगाहना - अंगुल का असंख्यातवां भाग ।
उत्कृष्ट अवगाहना - एक हजार योजन ।

(424) गर्भज चतुष्पद जीवों की जघन्य तथा उत्कृष्ट अवगाहना कितनी होती है ?

उत्तर : जघन्य अवगाहना - अंगुल का असंख्यातवां भाग ।
उत्कृष्ट अवगाहना - छह कोस (गाउ) ।

(425) गर्भज उरपरिसर्प की जघन्य तथा उत्कृष्ट अवगाहना कितनी होती है ?

उत्तर : जघन्य अवगाहना - अंगुल का असंख्यातवां भाग ।
उत्कृष्ट अवगाहना - एक हजार योजन ।

(426) गर्भज भुजपरिसर्प की जघन्य तथा उत्कृष्ट अवगाहना कितनी होती है ?

उत्तर : जघन्य अवगाहना - अंगुल का असंख्यातवां भाग ।
उत्कृष्ट अवगाहना - दो कोस से नौ कोस (कोस पृथक्त्व) ।

(427) गर्भज खेचर की जघन्य तथा उत्कृष्ट अवगाहना कितनी होती है ?

उत्तर : जघन्य अवगाहना - अंगुल का असंख्यातवां भाग ।
उत्कृष्ट अवगाहना - दो धनुष्य से नौ धनुष्य (धनुष्य पृथक्त्व) ।

(428) गर्भज तिर्यंच के उत्तर वैक्रिय शरीर की जघन्य तथा उत्कृष्ट अवगाहना कितनी होती है ?

उत्तर : जघन्य अवगाहना - अंगुल का संख्यातवां भाग ।
उत्कृष्ट अवगाहना - दो सौ से नौ सौ योजन (योजन शत पृथक्त्व) ।

(429) गर्भज तिर्यंच के उत्तर वैक्रिय शरीर का कालमान कितना होता है ?

उत्तर : चार मुहूर्त ।

(430) चौबीस दण्डकों में से सबसे अधिक अवगाहना किस दण्डक में पायी जाती है ?

उत्तर : प्रत्येक वनस्पतिकाय की (साधिक एक हजार योजन) ।

(431) प्रत्येक वनस्पतिकाय की साधिक एक हजार योजन की उत्कृष्ट अवगाहना किस अपेक्षा से कही गयी है ?

उत्तर : समुद्र, नंदीश्वर द्वीप में स्थित बावडियों आदि जलाशयों में जहाँ एक हजार योजन की गहराई उत्सेधांगुल प्रमाण है, वहाँ हजार योजन ऊँचाई वाले कमलादि वनस्पतियाँ पायी जाती हैं ।

वहाँ वनस्पति हजार योजन तक पानी में पायी जाती है, उससे उपर का जो भाग है, वह अधिक जानना चाहिये ।

(432) चौबीस दण्डकों में से सबसे अल्प अवगाहना किस दण्डक में पायी जाती है ?

उत्तर : सूक्ष्म साधारण वनस्पतिकाय की (अंगुल का असंख्यातवां भाग) ।

(433) अधो लोक में उत्कृष्ट अवगाहना कितनी होती है ?

उत्तर : साधिक हजार योजन (प्रत्येक वनस्पतिकाय की) ।

(434) मध्य लोक में उत्कृष्ट अवगाहना कितनी होती है ?

उत्तर : साधिक हजार योजन (प्रत्येक वनस्पतिकाय की) ।

(435) उर्ध्व लोक में उत्कृष्ट अवगाहना कितनी होती है ?

उत्तर : साधिक हजार योजन (प्रत्येक वनस्पतिकाय की) ।

(436) तीनों लोक में जघन्य अवगाहना कितनी होती है ?

उत्तर : अंगुल का असंख्यातवां भाग (सूक्ष्म साधारण वनस्पतिकाय की) ।

(437) सूक्ष्म जीवों की जघन्य तथा उत्कृष्ट अवगाहना कितनी होती है ?

उत्तर : जघन्य अवगाहना - अंगुल का असंख्यातवां भाग (सूक्ष्म साधारण वनस्पतिकाय की) ।

उत्कृष्ट अवगाहना - अंगुल का असंख्यातवां भाग (सूक्ष्म पृथ्वीकाय की) ।

(438) चौबीस दण्डकों में से बादर जीवों की जघन्य तथा उत्कृष्ट अवगाहना कितनी होती है ?

उत्तर : जघन्य अवगाहना - अंगुल का असंख्यातवां भाग (बादर वायु-काय की) ।

उत्कृष्ट अवगाहना - साधिक एक हजार योजन (प्रत्येक वनस्पति-काय की) ।

(439) चौबीस दण्डकों में से संमूर्च्छिम जीवों की जघन्य तथा उत्कृष्ट अवगाहना कितनी होती है ?

उत्तर : जघन्य अवगाहना - अंगुल का असंख्यातवां भाग (साधारण वनस्पतिकाय की) ।

उत्कृष्ट अवगाहना - साधिक एक हजार योजन (प्रत्येक वनस्पति-काय की) ।

(440) चौबीस दण्डकों में से गर्भज जीवों की जघन्य तथा उत्कृष्ट अवगाहना कितनी होती है ?

उत्तर : जघन्य अवगाहना - अंगुल का असंख्यातवां भाग ।

उत्कृष्ट अवगाहना - एक हजार योजन (गर्भज जलचर तथा उरपरिसर्प) ।

(441) औपपातिक जीवों की जघन्य तथा उत्कृष्ट अवगाहना कितनी होती है ?

उत्तर : जघन्य अवगाहना - अंगुल का असंख्यातवां भाग ।

उत्कृष्ट अवगाहना - पांच सौ धनुष्य (सातवीं नरक के नारकी की) ।

(442) स्थावर जीवों की जघन्य तथा उत्कृष्ट अवगाहना कितनी होती है ?

उत्तर : जघन्य अवगाहना - अंगुल का असंख्यातवां भाग (सूक्ष्म साधारण वनस्पतिकाय की) ।

उत्कृष्ट अवगाहना - एक हजार योजन से अधिक (प्रत्येक वनस्पति-काय की) ।

(443) त्रस जीवों की जघन्य तथा उत्कृष्ट अवगाहना कितनी होती है ?

उत्तर : जघन्य अवगाहना - अंगुल का असंख्यातवां भाग ।

उत्कृष्ट अवगाहना - एक हजार योजन (गर्भज जलचर एवं उरपरिसर्प) ।

(444) संज्ञी जीवों की जघन्य तथा उत्कृष्ट अवगाहना कितनी होती है ?

उत्तर : जघन्य अवगाहना - अंगुल का असंख्यातवां भाग ।

उत्कृष्ट अवगाहना - एक हजार योजन (गर्भज जलचर एवं उरपरिसर्प) ।

(445) असंज्ञी जीवों की जघन्य तथा उत्कृष्ट अवगाहना कितनी होती है ?

उत्तर : जघन्य अवगाहना - अंगुल का असंख्यातवां भाग ।

उत्कृष्ट अवगाहना - साधिक एक हजार योजन (प्रत्येक वनस्पति-काय) ।

(446) चार गतियों में से सबसे कम तथा सबसे अधिक अवगाहना किन दण्डकों में पायी जाती है ?

उत्तर : जघन्य अवगाहना - अंगुल का असंख्यातवां भाग ।

उत्कृष्ट अवगाहना - साधिक हजार योजन (तिर्यंचगति) ।

(447) जीव को अवगाहना किस कर्म कारण मिलती है ?

उत्तर : नाम कर्म के कारण ।

तृतीय संघयण द्वार का विवेचन

(448) संघयण किसे कहते है ?

उत्तर : अस्थि-रचना को संघयण कहते है।
अस्थियों की मजबूत अथवा कमजोर संरचना को संघयण कहते है।

(449) संघयण कितने प्रकार के कहे गये है ?

उत्तर : छह प्रकार के - (1) वज्रऋषभनाराच संघयण (2) ऋषभनाराच संघयण (3) नाराच संघयण (4) अर्द्धनाराच संघयण (5) कीलिका संघयण (6) छेवट्ठ (सेवार्त्त) संघयण।

(450) वज्रऋषभनाराच संघयण किसे कहते है ?

उत्तर : वज्र अर्थात् कील।
ऋषभ अर्थात् पट्टा (पाटा)।
नाराच अर्थात् मर्कटबंध।
जिस संघयण में मर्कटबंध से बंधी हुई दो हड्डियों के उपर पट्टा हो और उसे मजबूत बनाने वाली आर-पार निकलती हुई कील हो, उसे वज्रऋषभनाराच संघयण कहते है।

(451) ऋषभनाराच संघयण किसे कहते है ?

उत्तर : जिस संघयण में दोनों तरफ मर्कटबंध से बंधी हुई हड्डियों के उपर पट्टा हो, पर उन्हें मजबूत बनाने वाली कील नहीं हो, उसे ऋषभनाराच संघयण कहते है।

(452) नाराच संघयण किसे कहते है ?

उत्तर : जिस संघयण में दो हड्डियाँ मर्कटबंध से बंधी हुई हो परंतु उस पर पट्टा एवं कील न हो, उसे नाराच संघयण कहते है।

(453) अर्द्धनाराच संघयण किसे कहते है ?

उत्तर : जिस संघयण में दोनों तरफ से मर्कटबंध न होकर एक तरफ ही मर्कटबंध हो तथा मजबूत बनाने वाली कील हो, उसे अर्द्धनाराच संघयण कहते है।

(454) कीलिका संघयण किसे कहते है ?

उत्तर : जिस संघयण में हड्डियाँ दोनों तरफ से मर्कटबंध से बंधी हुई न हो, पर उस पर कील हो, उसे कीलिका संघयण कहते है ।

(455) छेवट्ठ संघयण किसे कहते है ?

उत्तर : जिस संघयण में दोनों हड्डियाँ आपस में केवल स्पर्श की हुई हो, पर मर्कटबंध, पट्टा और कील, तीनों न हो, उसे छेवट्ठ संघयण कहते है ।

इस संघयण के संधि स्थल मालिश करने पर ही सुदृढ रहते हैं, अतः इसे सेवार्त्त संघयण भी कहा जाता है ।

(456) मर्कटबंध से क्या अभिप्राय है ?

उत्तर : जिस प्रकार बंदरी से उसकी सन्तान चिपक कर रहती है, ठीक उसी प्रकार जुडी हुई हड्डियों के आवेष्टन को मर्कटबंध कहा जाता है ।

(457) पृथ्वीकाय आदि पांच दण्डकों में कितने संघयण पाये जाते हैं ?

उत्तर : स्थावर संघयण रहित होते हैं ।

(458) द्वीन्द्रिय आदि तीन विकलेन्द्रिय के दण्डकों में कितने संघयण पाये जाते हैं ?

उत्तर : एक सेवार्त्त संघयण ही पाया जाता है ।

(459) गर्भज मनुष्य एवं गर्भज तिर्यंच में कितने संघयण पाये जाते हैं ?

उत्तर : वज्रऋषभनाराच आदि छहों संघयण पाये जाते हैं ।

(460) भवनपति, व्यंतर, ज्योतिष्क तथा वैमानिक, इनके तेरह दण्डकों में एवं नारकी जीवों में कितने संघयण पाये जाते हैं ?

उत्तर : देव तथा नारकी संघयण रहित होते हैं ।

(461) वज्रऋषभनाराच संघयण कितने दण्डकों में पाया जाता है ?

उत्तर : **दो दण्डकों में** - (1) गर्भज मनुष्य (2) गर्भज तिर्यंच ।

(462) ऋषभनाराच, नाराच, अर्द्धनाराच और कीलिका, ये चारों संघयण कितने दण्डकों में पाये जाते हैं ?

उत्तर : दो दण्डकों में - (1) गर्भज मनुष्य (2) गर्भज तिर्यंच ।

(463) सेवार्त्त संघयण कितने दण्डकों में पाया जाता है ?

उत्तर : पांच दण्डकों में - (1) द्वीन्द्रिय (2) त्रीन्द्रिय (3) चतुरिन्द्रिय (4) गर्भज तिर्यंच (5) गर्भज मनुष्य ।

(464) कितने दण्डकों में एक संघयण पाया जाता है ?

उत्तर : तीन दण्डकों में - (1) द्वीन्द्रिय (2) त्रीन्द्रिय (3) चतुरिन्द्रिय ।

(465) कितने दण्डकों में छहों संघयण पाये जाते हैं ?

उत्तर : दो दण्डकों में - (1) गर्भज मनुष्य (2) गर्भज तिर्यंच ।

(466) कितने दण्डक संघयण रहित होते हैं ?

उत्तर : उन्नीस दण्डक - (1) पृथ्वीकाय (2) अप्काय (3) तेउकाय (4) वायुकाय (5) वनस्पतिकाय (6) नारकी (7-16) असुर-कुमारादि दस भवनपति देव (17) व्यंतर (18) ज्योतिष्क (19) वैमानिक ।

(467) सूत्रों में देवों में वज्रऋषभनाराच संघयण कहा गया है और नारकी, पृथ्वीकाय आदि पांच स्थावरों में सेवार्त्त संघयण कहा गया है, तो फिर यहाँ उन्हें संघयण रहित क्यों कहा गया है ?

उत्तर : विविध शास्त्रों में देवों को वज्रऋषभनाराच संघयण अस्थि संरचना की अपेक्षा से नहीं, बल की अपेक्षा से कहा गया है । उनका बल वज्रऋषभनाराच संघयण वाले प्राणी के समान होता है, अतः संघयण रहित होने पर भी वे संघयण वाले कहे गये हैं । इसी प्रकार नारकी तथा पाँच प्रकार के स्थावर में भी सेवार्त्त संघयण वाले जीव के समान अत्यल्प शक्ति होने के कारण उनमें सेवार्त्त संघयण कहा गया है ।

(468) त्रस जीवों में कितने संघयण पाये जाते हैं ?
उत्तर : छहों संघयण पाये जाते हैं ।
(469) स्थावर जीवों में कितने संघयण पाये जाते हैं ?
उत्तर : स्थावर संघयण रहित होते हैं ।
(470) एकेन्द्रिय जीवों में कितने संघयण पाये जाते हैं ?
उत्तर : एकेन्द्रिय जीव संघयण रहित होते हैं ।
(471) पंचेन्द्रिय जीवों में कितने संघयण पाये जाते हैं ?
उत्तर : छहों संघयण ।
(472) मनुष्य एवं तिर्यंच गति में कितने संघयण पाये जाते हैं ?
उत्तर : छहों संघयण ।
(473) देव तथा नरक गति में कितने संघयण पाये जाते हैं ?
उत्तर : एक भी संघयण नहीं होता है ।
(474) बादर जीवों में कितने संघयण पाये जाते हैं ?
उत्तर : छहों संघयण ।
(475) सूक्ष्म जीवों में कितने संघयण पाये जाते हैं ?
उत्तर : सूक्ष्म जीव संघयण रहित होते हैं ।
(476) गर्भज जीवों में कितने संघयण पाये जाते हैं ?
उत्तर : छहों संघयण ।
(477) औपपातिक जीवों में कितने संघयण पाये जाते हैं ?
उत्तर : औपपातिक जीव संघयण रहित होते हैं ।
(478) संमूर्च्छिम जीवों में कितने संघयण पाये जाते हैं ?
उत्तर : एक - सेवार्त्त संघयण ।
(479) उर्ध्व-मध्य-अधोलोक में कितने संघयण पाये जाते हैं ?
उत्तर : छहों संघयण ।
(480) उर्ध्व तथा अधोलोक में किस प्रकार छह संघयण हो सकते हैं जबकि देव तथा नारकी संघयण रहित होते हैं ?
उत्तर : यहाँ तिर्यंचों की अपेक्षा से छह संघयण कहे गये हैं ।

(481) संज्ञी जीवों में कितने संघयण पाये जाते हैं ?

उत्तर : छहों संघयण ।

(482) असंज्ञी जीवों में कितने संघयण पाये जाते हैं ?

उत्तर : एक सेवार्त्त संघयण पाया जाता है ।

(483) भव्य तथा अभव्य जीवों में कितने संघयण पाये जाते हैं ?

उत्तर : दोनो में छहों संघयण पाये जाते हैं ।

(484) प्रत्येक जीवों में कितने संघयण पाये जाते हैं ?

उत्तर : छहों संघयण ।

(485) साधारण जीवों में कितने संघयण पाये जाते हैं ?

उत्तर : संघयण रहित होते हैं ।

(486) पुरुष, स्त्री तथा नपुंसक, इन तीनों में कितने संघयण पाये जाते हैं ?

उत्तर : छहों संघयण पाये जाते हैं ।

(487) चौदह गुणस्थानकों में कितने संघयण होते हैं ?

उत्तर : (1) पहले से सातवें गुणस्थानक तक छहों संघयण पाये जाते हैं ।

(2) आठवें से ग्यारहवें गुणस्थानक तक प्रथम तीन संघयण पाये जाते हैं ।

(3) बारहवें तथा तेरहवें गुणस्थानक में एक वज्रऋषभनाराच संघयण पाया जाता है ।

यह कथन संघयण नाम कर्म के उदय की अपेक्षा से किया गया है ।

(488) वज्रऋषभनाराच संघयण कितने गुणस्थानकों में पाया जाता है ?

उत्तर : उदय की अपेक्षा से तेरह गुणस्थानकों में - पहले से तेरहवें गुणस्थानक तक । चौदहवें गुणस्थानक में अस्थि-संरचना का सद्भाव होता है पर संघयण नाम कर्म का उदय नहीं होता है ।

(489) ऋषभनाराच और नाराच संघयण कितने गुणस्थानकों में पाये जाते हैं ?

उत्तर : ग्यारह गुणस्थानकों में - पहले से ग्यारहवें गुणस्थानक तक ।

(490) अर्द्धनाराच, कीलिका तथा सेवार्त्त संघयण कितने गुणस्थानकों में पाये जाते हैं ?

उत्तर : सात गुणस्थानकों में - पहले से सातवें गुणस्थानक तक ।

(491) सर्वाधिक दण्डकों में पाया जाने वाला कौनसा संघयण है ?

उत्तर : सेवार्त्त (पांच दण्डकों में पाया जाता है) ।

(492) सबसे अल्प दण्डकों वाला कौनसा संघयण है ?

उत्तर : सेवार्त्त सिवाय पाँचों संघयण (दो दण्डकों में पाये जाते हैं) ।

(493) संघयण किस कर्मानुसार मिलते हैं ?

उत्तर : संघयण नाम कर्म अनुसार ।

(494) कौनसे नाम कर्म से कौनसा संघयण मिलता है ?

उत्तर : **छह प्रकार के**-(1) वज्रऋषभनाराच संघयण नाम कर्म (2) ऋषभनाराच संघयण नाम कर्म (3) नाराच संघयण नाम कर्म (4) अर्द्धनाराच संघयण नाम कर्म (5) कीलिका संघयण नाम कर्म (6) सेवार्त्त (छेवट्ठ) संघयण नाम कर्म ।

(495) कितने शरीरों में संघयण पाये जाते हैं ?

उत्तर : **एक** - औदारिक शरीर में ।

(496) कितने शरीर संघयण रहित कहे गये हैं ?

उत्तर : **चार शरीर** - (1) वैक्रिय शरीर (2) आहारक शरीर (3) तैजस शरीर (4) कार्मण शरीर ।

(497) महाविदेह क्षेत्र में कितने संघयण पाये जाते हैं ?

उत्तर : छहों संघयण ।

(498) अवसर्पिणी काल में पांच भरत तथा पांच ऐरावत क्षेत्र में कितने संघयण पाये जाते हैं ?

उत्तर : पांच भरत एवं पांच ऐरावत क्षेत्र में इस प्रकार संघयण पाये जाते हैं -

(1) पहले तथा दूसरे आरे में प्रथम संघयण ही होता है ।

(2) तीसरे एवं चौथे आरे में छहों संघयण पाये जाते हैं ।

(3) पांचवें आरे में जम्बूस्वामी तक छह संघयण थे, बाद में पहले संस्थान का विच्छेद हो गया । शेष पांच संघयणों में से न्यग्रोध परिमंडल-सादि-वामन-कुब्ज, इन चार संघयणों का वज्रस्वामी के साथ विच्छेद हो गया । वर्तमान में केवल षष्टम हुण्डक संस्थान ही विद्यमान है ।

(4) छट्ठे आरे में केवल षष्टम संघयण ही पाया जाता है ।

(499) उत्सर्पिणी काल में पांच भरत तथा पांच ऐरावत क्षेत्र में कितने संघयण पाये जाते हैं ?

उत्तर : पांच भरत एवं पांच ऐरावत क्षेत्र में उत्सर्पिणी काल में इस प्रकार संघयण पाये जाते हैं -

(1) पहले एवं दूसरे आरे में एक सेवार्त संघयण ही पाया जाता है ।

(2) तीसरे एवं चौथे आरे में छहों संघयण पाये जाते हैं ।

(3) पांचवें तथा छट्ठे आरे में एक मात्र प्रथम वज्रऋषभनाराच संघयण ही पाया जाता है ।

(500) छप्पन अन्तर्द्वीपज तथा तीस अकर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों एवं तिर्यंचों में कितने संघयण पाये जाते हैं ?

उत्तर : एक - वज्रऋषभनाराच संघयण ।

(501) मिथ्यात्वी तथा सम्यक्त्वी जीवों में कितने संघयण पाये जाते हैं ?

उत्तर : छह संघयण ।

(502) पर्याप्त एवं अपर्याप्त जीवों में कितने संघयण पाये जाते हैं ?

उत्तर : छह संघयण ।

चतुर्थ संज्ञा द्वार का विवेचन

(503) संज्ञा किसे कहते है ?

उत्तर : जीव की इच्छा-अभिलाषा जिसके द्वारा जानी जाती है, उसे संज्ञा कहते है ।

(504) 'संज्ञा' का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ बताओ ।

उत्तर : जिस निमित्त से जीव को जाना-पहचाना जाता है, उसे संज्ञा कहते है ।

(505) 'संज्ञा' का शास्त्रीय अर्थ बताओ ।

उत्तर : वेदनीय एवं मोहनीय कर्म के उदय से अथवा ज्ञानावरणीय-दर्शनावरणीय कर्म के क्षयोपशम से जीव में आहारादि की जो इच्छा/मनोवृत्ति होती है, उसे संज्ञा कहते है ।

(506) संज्ञा कितने प्रकार की होती हैं ?

उत्तर : दो प्रकार की - (1) ज्ञान संज्ञा (2) अनुभव संज्ञा ।

(507) ज्ञान संज्ञा किसे कहते है ?

उत्तर : जीव के मूल गुण रूप मतिज्ञान, श्रुतज्ञान आदि ज्ञान गुण को ज्ञान संज्ञा कहते है ।

(508) अनुभव संज्ञा किसे कहते है ?

उत्तर : ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय और मोहनीय आदि कर्मों के उदय, क्षय अथवा क्षयोपशम से प्रकट होने वाली संज्ञा अनुभव संज्ञा कहलाती है ।

(509) प्रस्तुत संज्ञा द्वार में किस संज्ञा की विवेचना की गयी है ?

उत्तर : अनुभव संज्ञा की ।

(510) अनुभव संज्ञा कितने प्रकार की कही गयी हैं ?

उत्तर : विवक्षा भेद से संज्ञा अनेक प्रकार से वर्णित हैं -

(1) चार प्रकार की संज्ञा (2) छह प्रकार की संज्ञा

(3) दस प्रकार की संज्ञा (4) सोलह प्रकार की संज्ञा ।

(511) चार प्रकार की संज्ञा कौनसी है ?

उत्तर : (1) आहार संज्ञा (2) भय संज्ञा (3) मैथुन संज्ञा (4) परिग्रह संज्ञा ।

(512) छह प्रकार की संज्ञा कौनसी है ?

उत्तर : उपरोक्त चार संज्ञा में लोक संज्ञा और ओघ संज्ञा समाविष्ट करने से छह प्रकार की संज्ञा होती हैं ।

(513) दस प्रकार की संज्ञा कौनसी है ?

उत्तर : उपरोक्त छह प्रकार की संज्ञा में क्रोध संज्ञा, मान संज्ञा, माया संज्ञा एवं लोभ संज्ञा जोडने से दस प्रकार की संज्ञा होती हैं ।

(514) सोलह प्रकार की संज्ञा कौनसी है ?

उत्तर : उपरोक्त दस संज्ञाओं में मोह संज्ञा, धर्म संज्ञा, सुख संज्ञा, दुःख संज्ञा, जुगुप्सा संज्ञा एवं शोक संज्ञा का समावेश होने से सोलह प्रकार की संज्ञा होती हैं ।

(515) आहार संज्ञा से क्या अभिप्राय है ?

उत्तर : जीव में उत्पन्न आहार की अभिलाषा को आहार संज्ञा कहते है ।

(516) आहार संज्ञा का उदय किस कर्म के कारण होता है ?

उत्तर : क्षुधा वेदनीय कर्म ।

(517) भय संज्ञा किसे कहते है ?

उत्तर : भय रूप जीव-भाव को भय संज्ञा कहते है ।

(518) भय कितने प्रकार के कहे गये है ?

उत्तर : **सात प्रकार के** - (1) इहलोक भय (2) परलोक भय (3) आदान भय (4) अकस्मात् भय (5) आजीविका भय (6) मरण भय (7) अपयश भय ।

(519) भय संज्ञा का उदय किस कर्म के कारण होता है ?

उत्तर : भय मोहनीय कर्म ।

(520) मैथुन संज्ञा किसे कहते है ?

उत्तर : जीव में उत्पन्न कामभोग की अभिलाषा को मैथुन संज्ञा कहते है ।

(521) मैथुन संज्ञा का उदय किस कर्म के कारण होता है ?

उत्तर : वेद मोहनीय कर्म ।

(522) वेद मोहनीय कर्म कितने प्रकार का होता हैं ?

उत्तर : तीन प्रकार का - (1) पुरुष वेद मोहनीय कर्म (2) स्त्री वेद मोहनीय कर्म (3) नपुंसक वेद मोहनीय कर्म ।

(523) परिग्रह संज्ञा किसे कहते है ?

उत्तर : वस्तु आदि के संग्रह को एवं जीवात्मा में उत्पन्न उसके प्रति मूर्च्छा को परिग्रह संज्ञा कहते है ।

(524) परिग्रह कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

उत्तर : नौ प्रकार के - (1) धन (2) धान्य (3) क्षेत्र (दुकान-मकान आदि) (4) वस्तु (पदार्थ) (5) रूपा (6) सुवर्ण (7) कुप्य (8) द्विपद-दास-दासी (9) चतुष्पद - गाय, अश्व आदि ।

(525) परिग्रह संज्ञा का उदय किस कर्म के कारण होता है ?

उत्तर : लोभ कषाय मोहनीय कर्म ।

(526) क्रोध संज्ञा किसे कहते है ?

उत्तर : जीव की जीव एवं अजीव के प्रति आवेश रूप मनःस्थिति को क्रोध संज्ञा कहते है ।

(527) क्रोध संज्ञा का उदय किस कर्म के कारण होता है ?

उत्तर : क्रोध कषाय मोहनीय कर्म ।

(528) मान संज्ञा किसे कहते है ?

उत्तर : जीवात्मा में जीव अथवा अजीव (धन, सम्पत्ति) आदि के कारण अहंकार पूर्ण मनःस्थिति को मान संज्ञा कहते है ।

(529) मान संज्ञा का उदय किस कर्म के कारण होता है ?

उत्तर : मान कषाय मोहनीय कर्म ।

(530) मान (मद) कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

उत्तर : **आठ प्रकार के** - (1) जाति मद (2) कुल मद (3) बल मद (4) रूप मद (5) तप मद (6) लाभ मद (7) सूत्र (श्रुत) मद (8) ऐश्वर्य मद ।

(531) माया संज्ञा किसे कहते है ?

उत्तर : जीव की कपट/ठग/ढोंग पूर्ण मनःस्थिति को माया संज्ञा कहते है ।

(532) माया संज्ञा का उदय किस कर्म के कारण होता है ?

उत्तर : माया कषाय मोहनीय कर्म ।

(533) लोभ संज्ञा किसे कहते है ?

उत्तर : जीवात्मा की पदार्थ आदि के प्रति लालच की स्थिति को लोभ संज्ञा कहते है ।

(534) लोभ संज्ञा का उदय किस कर्म के कारण होता है ?

उत्तर : लोभ कषाय मोहनीय कर्म ।

(535) तरतमता के आधार पर क्रोध-मान-माया-लोभ संज्ञा कितने प्रकार की कही गयी है ?

उत्तर : **चार प्रकार की** - (1) अनन्तानुबंधी (2) अप्रत्याख्यानी (3) प्रत्याख्यानी (4) संज्वलन ।

(536) ओघ संज्ञा किसे कहते है ?

उत्तर : (i) पूर्व जन्मों के संस्कारों के कारण जीव में जो गुण प्रकट होते हैं, उसे ओघ संज्ञा कहते है, जैसे बालक के द्वारा जन्म लेते ही स्तनपान की जो प्रवृत्ति होती है, वह सिखाई नहीं जाती बल्कि पूर्वकालीन संस्कारों के कारण स्वतः प्रकट होती है ।

(ii) बिना उपयोग के धुन ही धुन में कार्य करने की प्रवृत्ति को ओघ संज्ञा कहते है, जैसे बैठे-बैठे पाँव हिलाना, होंठ चबाना, निष्प्रयोजन वृक्ष पर चढ जाना, कंकर फेंकना, गुनगुनाना इत्यादि ।

(iii) मतिज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम के फलस्वरूप संसार के रुचिकर पदार्थों को अथवा लोक-प्रचलित शब्दों के अर्थ को जानने की अभिलाषा को ओघ संज्ञा कहते है ।

(537) ओघ संज्ञा का उदय किस कर्म के कारण होता है ?

उत्तर : मतिज्ञानावरणीय एवं दर्शनावरणीय कर्म के क्षयोपशम से ।

(538) लोक संज्ञा किसे कहते है ?

उत्तर : (i) लौकिक जीवन में विशेष मान्यता या प्रवृत्ति को लोक संज्ञा कहते है । जैसे अगस्त्य ऋषि समुद्र को पी गये थे, कर्ण का जन्म कर्ण से हुआ था, इत्यादि ।

(ii) हेय होने पर भी लौकिक रुढि, अंधविश्वास आदि का अनुसरण करने की बलवती वृत्ति लोक संज्ञा कहलाती है ।

(539) लोक संज्ञा का उदय किस कर्म के कारण होता है ?

उत्तर : मतिज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय कर्म के क्षयोपशम से ।

(540) मोह संज्ञा किसे कहते है ?

उत्तर : पदार्थ, पुद्गल, व्यक्ति आदि के प्रति ममता-आसक्ति रूप जीव-भाव को मोह संज्ञा कहते है ।

(541) मोह संज्ञा का उदय किस कर्म के कारण होता है ?

उत्तर : रति मोहनीय कर्म ।

(542) धर्म संज्ञा किसे कहते है ?

उत्तर : जीवात्मा की स्वाभाविक धर्ममय अहिंसा, करुणा, मैत्री आदि मन:स्थिति को धर्म संज्ञा कहते है ।

(543) धर्म संज्ञा का उदय किस कर्म के कारण होता है ?

उत्तर : मोहनीय कर्म के क्षयोपशम से ।

(544) सुख संज्ञा किसे कहते है ?

उत्तर : जीवात्मा की अनुकूलता में सुख एवं आनंदपूर्ण मनःस्थिति को सुख संज्ञा कहते है ।

(545) सुख संज्ञा का उदय किस कर्म के कारण होता है ?

उत्तर : रति मोहनीय कर्म ।

(546) दुःख संज्ञा किसे कहते है ?

उत्तर : प्रतिकूलता में जीव की दुःखपूर्ण मनःस्थिति को दुःख संज्ञा कहते है ।

(547) दुःख संज्ञा का उदय किस कर्म के कारण होता है ?

उत्तर : अरति मोहनीय कर्म ।

(548) जुगुप्सा संज्ञा किसे कहते है ?

उत्तर : जीव अथवा अजीव के प्रति घृणा/अरुचि को जुगुप्सा संज्ञा कहते है ।

(549) जुगुप्सा संज्ञा का उदय किस कर्म के कारण होता है ?

उत्तर : जुगुप्सा मोहनीय कर्म ।

(550) शोक संज्ञा किसे कहते है ?

उत्तर : इष्ट वस्तु के वियोग में अथवा अनिष्ट वस्तु के संयोग में खेद-चिन्ता की स्थिति को शोक संज्ञा कहते है ।

(551) शोक संज्ञा का उदय किस कर्म के कारण होता है ?

उत्तर : शोक मोहनीय कर्म ।

(552) कितनी संज्ञाओं के उदय में कर्म का क्षयोपशम निमित्त बनता है ?

उत्तर : दो संज्ञाओं के ।

(553) कितनी संज्ञाओं का उदय कर्मोदय से होता है ?

उत्तर : चौदह संज्ञाओं का ।

(554) ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से कितनी संज्ञाओं का उदय होता है ?

उत्तर : दो संज्ञाओं का ।

(555) दर्शनावरणीय कर्म के क्षयोपशम से कितनी संज्ञाओं का उदय होता है ?

उत्तर : दो संज्ञाओं का ।

(556) मोहनीय कर्म के क्षयोपशम से कितनी संज्ञाओं का उदय होता है ?

उत्तर : एक संज्ञा का ।

(557) वेदनीय कर्म के उदय से कितनी संज्ञाओं का उदय होता है ?

उत्तर : एक संज्ञा का ।

(558) मोहनीय कर्म के उदय से कितनी संज्ञाओं का उदय होता है ?

उत्तर : तेरह संज्ञाओं का ।

(559) कषाय चारित्र मोहनीय कर्म के उदय से कितनी संज्ञाओं का उदय होता है ?

उत्तर : पांच संज्ञाओं का ।

(560) नोकषाय चारित्र मोहनीय कर्म के उदय से कितनी संज्ञाओं का उदय होता है ?

उत्तर : आठ संज्ञाओं का ।

(561) नारकी में किस संज्ञा की अधिकता होती है ?

उत्तर : भय एवं क्रोध संज्ञा की ।

(562) देवों में किस संज्ञा की अधिकता होती है ?

उत्तर : परिग्रह एवं लोभ संज्ञा की ।

(563) मनुष्यों में किस संज्ञा की अधिकता होती है ?

उत्तर : मैथुन एवं मान संज्ञा की ।

(564) तिर्यंचों में किस संज्ञा की अधिकता होती है ?

उत्तर : आहार एवं माया संज्ञा की ।

(565) अनुभव संज्ञा कितने दण्डकों में पायी जाती है ?

उत्तर : समस्त चौबीस दण्डकों में ।

(566) एकेन्द्रिय जीवों में आहार संज्ञा किस प्रकार होती है ?

उत्तर : पानी, खाद आदि से वनस्पति वृद्धि को प्राप्त होती है, उसके अभाव में नष्ट हो जाती है, अतः एकेन्द्रिय में आहार संज्ञा पायी जाती है ।

कुछ वनस्पतियाँ द्वीन्द्रियादि जीवों का भक्षण करती हैं । सनड्यू तथा वीनस फ्लाईट्रेप आदि वनस्पतियाँ संपातिम (उड़ने वाले) जीवों का भक्षण करती हैं ।

(567) एकेन्द्रिय जीवों में भय संज्ञा किस प्रकार पायी जाती है ?

उत्तर : छुईमुई आदि अनेक वनस्पतियाँ स्पर्श पाकर लाज/भय के कारण संकुचित हो जाती है, अतः स्पष्ट है कि एकेन्द्रिय जीवों में भय संज्ञा का सद्भाव होता है ।

(568) एकेन्द्रिय जीवों में परिग्रह संज्ञा किस प्रकार पायी जाती है ?

उत्तर : लता वृक्ष से सटकर रहती है, श्वेत खाखरा का वृक्ष निधान पर ही मूल फैलाकर रहता है, अतः एकेन्द्रिय जीवों में परिग्रह संज्ञा होती है ।

(569) एकेन्द्रिय जीवों में मैथुन संज्ञा किस प्रकार पायी जाती है ?

उत्तर : अनेक वनस्पतियाँ आलिंगन, चुम्बन, कामुक हाव-भाव एवं कटाक्ष से जल्दी फलीभूत होती हैं । कुरुबक नामक वृक्ष स्त्री के आलिंगन से फलता-फूलता है ।

(570) एकेन्द्रिय जीवों में ओघ संज्ञा किस प्रकार पायी जाती है ?

उत्तर : लता समस्त मार्गों का त्याग करके दीवार, वृक्षादि पर चढती-बढती है, यह ओघ संज्ञा का (पूर्वकालीन संस्कारों का) प्रतीक है ।

(571) एकेन्द्रिय जीवों में लोक संज्ञा किस प्रकार पायी जाती है ?

उत्तर : जिस प्रकार रात्रि में लोक (जीव) विश्राम को प्राप्त करते हैं उसी प्रकार सूर्यमुखी, कमलादि पुष्प रात्रि में संकोच को प्राप्त करते हैं, अतः उनमें लोक संज्ञा पायी जाती है ।

(572) एकेन्द्रिय जीवों में क्रोध संज्ञा किस प्रकार पायी जाती है ?

उत्तर : कोकनद का वृक्ष क्रोध में हुंकार करता है ।

(573) एकेन्द्रिय जीवों में मान संज्ञा किस प्रकार पायी जाती है ?

उत्तर : वृक्षों में अभिमान का भाव भी पाया जाता है । जैसे रुदन्ती वेल अभिमान में रुदन करती है क्योंकि वह सोचती है कि मेरे होने पर भी लोक/विश्व में निर्धनता है । (इस वेल के रस से स्वर्णसिद्धि होती है ।)

(574) एकेन्द्रिय जीवों में माया संज्ञा किस प्रकार पायी जाती है ?

उत्तर : अनेक प्रकार की लताएँ अपने फलों को पत्तों के द्वारा छिपाकर रखती हैं और फल रहित होने का ढोंग रचती हैं, अतः माया संज्ञा स्पष्ट है ।

(575) एकेन्द्रिय जीवों में लोभ संज्ञा किस प्रकार पायी जाती है ?

उत्तर : सफेद आक, बिली वृक्ष, पलाश आदि की जडें भूमि में रहे हुए निधान पर फैलकर रहती हैं, अतः उनमें लोभ संज्ञा पायी जाती है ।

(576) एकेन्द्रिय जीवों में मोह संज्ञा किस प्रकार पायी जाती है ?

उत्तर : एकेन्द्रिय जीवों का जीवन के प्रति मोह-ममत्व होता है । मृत्यु से वे डरते हैं, अतः मोह संज्ञा पायी जाती है ।

(577) एकेन्द्रिय जीवों में सुख संज्ञा किस प्रकार पायी जाती है ?

उत्तर : आहार आदि की अनुकूलता में वे सुख की अनुभूति करते हैं, जैसे संगीत आदि से शीघ्र फलीभूत होती हैं क्योंकि सुखानुभूति में शीघ्र पल्लवित-पुष्पित होती है। वर्षाकाल में पानी रूप आहार एवं शीतल वातावरण को पाकर पेड-पौधे हरे-भरे होकर जैसे हंसते-मुस्कुराते नजर आते हैं।

(578) एकेन्द्रिय जीवों में दुःख संज्ञा किस प्रकार पायी जाती है ?

उत्तर : हथियार, कुल्हाडी की आवाज सुनकर ही वे मुरझा जाती हैं क्योंकि दुःख में जीव फलीभूत नहीं होता है। कुछ वनस्पतियाँ रूदन भी करती हैं।

(579) सोलह संज्ञा किन किन जीवों में पायी जाती है ?

उत्तर :
1. चारों गतियों में स्थित जीवों में सोलह संज्ञा पायी जाती हैं।
2. एकेन्द्रिय से यावत् पंचेन्द्रिय जीवों में सोलह संज्ञा पायी जाती हैं।
3. तीनों लोकों में स्थित जीवों में सोलह संज्ञा पायी जाती हैं।
4. पृथ्वीकाय से यावत् त्रसकाय जीवों में सोलह संज्ञा पायी जाती हैं।
5. बादर-सूक्ष्म, गर्भज-संमूर्च्छिम-औपपातिक, स्थावर-त्रस, सभी जीवों में सोलह संज्ञा पायी जाती हैं।
6. पुरुष वेदी, स्त्री वेदी, नपुंसक वेदी, समस्त जीवों में सोलह संज्ञा पायी जाती हैं।

(580) आहार संज्ञा कितने गुणस्थानक तक पायी जाती है ?

उत्तर : तेरहवें गुणस्थानक तक।

(581) भय संज्ञा कितने गुणस्थानक तक पायी जाती है ?

उत्तर : आठवें गुणस्थानक तक।

(582) मैथुन संज्ञा कितने गुणस्थानक तक पायी जाती है ?

उत्तर : नवमें गुणस्थानक तक ।

(583) परिग्रह एवं लोभ संज्ञा कितने गुणस्थानक तक पायी जाती हैं ?

उत्तर : दसवें गुणस्थानक तक ।

(584) क्रोध-मान-माया संज्ञा कितने गुणस्थानक तक पायी जाती हैं ?

उत्तर : नौवें गुणस्थानक तक ।

(585) मोह संज्ञा कितने गुणस्थानक तक पायी जाती है ?

उत्तर : दसवें गुणस्थानक तक ।

(586) सुख एवं दुःख संज्ञा कितने गुणस्थानक तक पायी जाती हैं ?

उत्तर : तेरहवें गुणस्थानक तक ।

(587) जुगुप्सा एवं शोक संज्ञा कितने गुणस्थानक तक पायी है ?

उत्तर : आठवें गुणस्थानक तक ।

(588) उर्ध्वलोक में किस संज्ञा की प्रधानता होती है ?

उत्तर : परिग्रह एवं आहार संज्ञा की ।

(589) मध्यलोक में किस संज्ञा की प्रधानता होती है ?

उत्तर : आहार एवं मैथुन संज्ञा की ।

(590) अधोलोक में किस संज्ञा की प्रधानता होती है ?

उत्तर : भय एवं आहार संज्ञा की ।

(591) आहार संज्ञा का सेवन किसने किया ?

उत्तर : मंगु आचार्य ने ।

(592) मैथुन संज्ञा का सेवन किसने किया ?

उत्तर : नंदीषेण मुनि ने ।

(593) परिग्रह संज्ञा का सेवन किसने किया ?

उत्तर : मम्मण सेठ ने ।

(594) आहार संज्ञा का त्याग किसने किया ?

उत्तर : ढंढण मुनि एवं श्रीयक ने ।

(595) भय संज्ञा का त्याग किसने किया ?

उत्तर : संयति राजा एवं सुदर्शन श्रावक ने ।

(596) मैथुन संज्ञा का त्याग किसने किया ?

उत्तर : रथनेमि ने ।

(597) परिग्रह संज्ञा का त्याग किसने किया ?

उत्तर : शालिभद्र ने ।

(598) नरक में संज्ञाओं के अल्प बहुत्व का कारण बताओ ।

उत्तर : सबसे कम मैथुन संज्ञोपयुक्त नारकी हैं क्योंकि प्रतिपल दुःखाग्नि में संतप्त रहने से क्षण मात्र भी सुख नहीं मिलता है, अतः दिन-रात दुःख में रहने वाले नारकी जीवों को मैथुन-अब्रह्म की इच्छा नहींवत् होती है ।

मैथुन संज्ञोपयुक्त नारकी जीवों से संख्यातगुणे आहार संज्ञोपयुक्त नारकी हैं क्योंकि दीर्घकाल तक उनमें आहाराभिलाषा बनी रहती है ।

आहार संज्ञा से सिर्फ कायिक-पोषण होता है परन्तु जीवन रक्षार्थ शस्त्र आदि का परिग्रह होने से परिग्रह संज्ञोपयुक्त नारकी उससे संख्यातगुणे हैं ।

नारकी जीवों को अहर्निश मृत्युपर्यंत परमाधामी असुरों द्वारा विकुर्वनी कृत शूल, असि, भाला आदि भयोत्पादक शस्त्रों एवं तद् जन्य वेदना का भय बना रहता है, अतः भय संज्ञोपयुक्त नारकी सर्वाधिक है ।

(599) तिर्यंचों में संज्ञाओं के अल्प बहुत्व का कारण बताओ ।

उत्तर : एकेन्द्रियों की परिग्रह संज्ञा अत्यन्त अव्यक्त होती है, शेष तिर्यंचों में भी परिग्रह संज्ञा अल्पकालिक होती है, अतः परिग्रह संज्ञा सबसे कम है ।

मैथुन संज्ञा प्रचुरकाल तक रहने से उससे अधिक मैथुन संज्ञा पायी जाती है ।

तिर्यंचों में सजातीय एवं विजातीय प्राणियों का भय होने से भय संज्ञा मैथुन संज्ञा से अधिक है ।

सर्वाधिक आहार संज्ञा होती है क्योंकि उनमें सतत आहार संज्ञा का सद्भाव बना रहता है ।

(600) मनुष्यों में संज्ञाओं के अल्प बहुत्व का कारण बताओ ।

उत्तर : अल्पकालिक होने से मनुष्य में भय संज्ञा सबसे कम है । आहार संज्ञा अधिक समय तक रहने से उनमें आहार संज्ञा अधिक होती है । आहार की अपेक्षा परिग्रह की कामना-चिन्ता अधिक होने से परिग्रह संज्ञा वाले मनुष्य अधिक होते हैं । प्रभूतकाल तक मैथुन संज्ञा का सद्भाव होने से मैथुन संज्ञी मनुष्य सर्वाधिक होते हैं ।

(601) देवों में संज्ञाओं के अल्प बहुत्व का कारण बताओ ।

उत्तर : देवों में आहारेच्छा का विरह काल लम्बा और उपयोग काल कम होने से उनमें आहार संज्ञा सबसे कम होती है ।

साम्राज्य की चिन्ता रहने से भय संज्ञी देव उनसे अधिक होते हैं ।

सुख-साधनों का बाहुल्य होने से मैथुन संज्ञा से वे अधिक पीड़ित रहते हैं, अतः भय से मैथुन संज्ञा की अधिकता होती है ।

साम्राज्य, सत्ता, संपत्ति, सिंहासन आदि के प्रति लालसा की प्रबलता होने के कारण उनमें परिग्रह संज्ञा का सर्वाधिक बाहुल्य होता है ।

पंचम संस्थान द्वार का विवेचन

(602) संस्थान किसे कहते है ?

उत्तर : शरीर की आकृति-संरचना को संस्थान कहते है ।

(603) संस्थान कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

उत्तर : दो प्रकार के - 1. शुभ संस्थान 2. अशुभ संस्थान ।

(604) शुभ संस्थान किसे कहते है ?

उत्तर : सामुद्रिक शास्त्र में उल्लिखित परिमाणों के अनुसार शरीर के आकार को शुभ संस्थान कहते है ।

(605) अशुभ संस्थान किसे कहते है ?

उत्तर : सामुद्रिक शास्त्र में उल्लिखित परिमाणों से रहित शरीर के आकार को अशुभ संस्थान कहते है ।

(606) संस्थान कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

उत्तर : छह प्रकार के - 1. समचतुरस्र संस्थान, 2. न्यग्रोध परिमंडल संस्थान 3. सादि संस्थान, 4. वामन संस्थान, 5. कुब्ज संस्थान, 6. हुंडक संस्थान ।

(607) समचतुरस्र संस्थान किसे कहते है ?

उत्तर : जिस शरीर के सभी अंग-उपांग सामुद्रिक शास्त्र में कथित प्रमाणानुसार हो, उसे समचतुरस्र संस्थान कहा जाता है । पद्मासन में स्थित मनुष्य का दायें घुटने से बायें स्कंध तक का, बायें घुटने से दायें स्कंध तक का, बांये घुटने से दायें घुटने तक का, पर्यंकासन के मध्य से नासिका के अग्र भाग तक का, ये चारों माप समान हो, उसे समचतुरस्र संस्थान कहते है ।

(608) न्यग्रोध परिमंडल संस्थान किसे कहते है ?

उत्तर : जिस प्रकार वट वृक्ष के उपर का भाग सुंदर-मंडलाकार होता है, पर नीचे का भाग सुंदर नहीं होता है, ठीक उसी प्रकार जिस शरीर-आकृति में नाभि से उपर के अंग-अवयव प्रमाण युक्त हो और नाभि से नीचे के अवयव प्रमाण रहित हो, उसे न्यग्रोध परिमंडल संस्थान कहते है ।

(609) सादि संस्थान किसे कहते है ?

उत्तर : जिस प्रकार शाल्मली वृक्ष का उपरी भाग बेडौल तथा नीचे का भाग सुंदर होता है, उसी प्रकार जिस शरीर में नाभि से उपर के अंग-अवयव प्रमाण रहित एवं बेडौल होते हैं और नीचे के अंग-अवयव प्रमाण सहित तथा सुंदर होते हैं, उसे सादि संस्थान कहते है ।

(610) वामन संस्थान किसे कहते है ?

उत्तर : जिस शरीर में हाथ, पाँव, मस्तक तथा ग्रीवा, ये चारों अंग प्रमाणोपेत हो, शेष-अंग प्रमाण रहित हो, उसे वामन संस्थान कहते है ।

(611) कुब्ज संस्थान किसे कहते है ?

उत्तर : वामन संस्थान से विपरीत लक्षणों वाला संस्थान कुब्ज संस्थान कहलाता है ।

जिस शरीर-संरचना में हाथ, पाँव, मस्तक तथा ग्रीवा के अतिरिक्त शेष अंगोपांग सुंदर एवं प्रमाणोपेत हो, उसे कुब्ज संस्थान कहते है ।

(612) हुंडक संस्थान किसे कहते है ?

उत्तर : जिस शरीर-संरचना में प्रायः सभी अंगोपांग प्रमाण रहित हो, उसे हुंडक संस्थान कहते है ।

(613) पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय और वनस्पतिकाय में कौनसा संस्थान पाया जाता है ?

उत्तर : हुण्डक संस्थान ।

(614) पृथ्वीकायिक जीवों की शरीराकृति कैसी होती है ?

उत्तर : मसूर की दाल अथवा अर्द्धचंद्राकार की ।

(615) अप्कायिक जीवों की शरीराकृति कैसी होती है ?

उत्तर : बुदबुदे के आकार की ।

(616) तेउकायिक जीवों की शरीराकृति कैसी होती है ?

उत्तर : सुई के आकार की ।

(617) वायुकायिक जीवों की शरीराकृति कैसी होती है ?

उत्तर : ध्वजा के आकार की ।

(618) वनस्पतिकायिक जीवों की शरीराकृति कैसी होती है ?

उत्तर : अनेक प्रकार की (नानाविध) ।

(619) विकलेन्द्रिय त्रिक में कौनसा संस्थान पाया जाता है ?

उत्तर : हुण्डक संस्थान ।

(620) गर्भज मनुष्य तथा गर्भज तिर्यंच में कौनसे संस्थान पाये जाते हैं ?

उत्तर : छहों संस्थान ।

(621) नारकी जीवों में कौनसा संस्थान पाया जाता है ?

उत्तर : हुण्डक संस्थान ।

(622) दस भवनपति, व्यंतर, ज्योतिष्क एवं वैमानिक देवों में कितने संस्थान पाये जाते हैं ?

उत्तर : एक - समचतुरस्र संस्थान ।

(623) समचतुरस्र संस्थान कितने दण्डकों में पाया जाता है ?

उत्तर : पन्द्रह दण्डकों में - (1-10) असुरकुमारादि दस भवनपति देव (11) व्यंतर देव (12) ज्योतिष्क देव (13) वैमानिक देव (14) गर्भज तिर्यंच (15) गर्भज मनुष्य ।

(624) न्यग्रोध परिमंडल आदि मध्यवर्ती चार संस्थान कितने दण्डकों में पाये जाते हैं ?

उत्तर : दो दण्डकों में - (1) गर्भज तिर्यंच (2) गर्भज मनुष्य ।

(625) हुण्डक संस्थान कितने दण्डकों में पाया जाता है ?

उत्तर : ग्यारह दण्डकों में - (1-5) पृथ्वीकायादि पांच स्थावर (6-8) विकलेन्द्रिय त्रिक (9-10) गर्भज तिर्यंच एवं गर्भज मनुष्य (11) नारकी ।

(626) एक संस्थान कितने दण्डकों में पाया जाता है ?

उत्तर : बावीस दण्डकों में - (1-13) समस्त देव (14-18) पांच स्थावर (19-21) विकलेन्द्रिय त्रिक (22) नारकी ।

(627) केवल एक समचतुरस्र संस्थान कितने दण्डकों में पाया जाता है ?

उत्तर : देव के तेरह दण्डकों में ।

(628) केवल एक हुण्डक संस्थान कितने दण्डकों में पाया जाता है ?

उत्तर : नौ दण्डकों में - (1-5) स्थावर पंचक (6-8) विकलेन्द्रिय त्रिक (9) नारकी ।

(629) छह संस्थान कितने दण्डकों में पाये जाते हैं ?

उत्तर : दो दण्डकों में - गर्भज तिर्यंच एवं गर्भज मनुष्य ।

(630) एकेन्द्रिय जीवों में कितने संस्थान पाये जाते हैं ?

उत्तर : एक - हुण्डक संस्थान ।

(631) पंचेन्द्रिय जीवों में कितने संस्थान पाये जाते हैं ?

उत्तर : छहों संस्थान ।

(632) मनुष्य एवं तिर्यंच गति में कितने संस्थान पाये जाते हैं ?

उत्तर : छहों संस्थान ।

(633) नरक गति में कितने संस्थान पाये जाते हैं ?

उत्तर : एक - हुण्डक संस्थान ।

(634) देव गति में कितने संस्थान पाये जाते हैं ?

उत्तर : एक - समचतुरस्र संस्थान ।

(635) त्रस जीवों में कितने संस्थान पाये जाते हैं ?

उत्तर : छह संस्थान ।

(636) स्थावर जीवों में कितने संस्थान पाये जाते हैं ?

उत्तर : एक - हुण्डक संस्थान ।

(637) गर्भज जीवों में कितने संस्थान पाये जाते हैं ?

उत्तर : छह संस्थान ।

(638) संमूर्च्छिम जीवों में कितने संस्थान पाये जाते हैं ?

उत्तर : एक - हुण्डक संस्थान ।

(639) औपपातिक जीवों में कितने संस्थान पाये जाते हैं ?

उत्तर : दो - समचतुरस्र एवं हुण्डक ।

(640) सूक्ष्म जीवों में कितने संस्थान पाये जाते हैं ?

उत्तर : एक - हुण्डक संस्थान ।

(641) बादर जीवों में कितने संस्थान पाये जाते हैं ?

उत्तर : छह संस्थान ।

(642) साधारण जीवों में कितने संस्थान पाये जाते हैं ?

उत्तर : एक - हुण्डक संस्थान ।

(643) प्रत्येक जीवों में कितने संस्थान पाये जाते हैं ?

उत्तर : छहों संस्थान ।

(644) संज्ञी जीवों में कितने संस्थान पाये जाते हैं ?

उत्तर : छह संस्थान ।

(645) असंज्ञी जीवों में कितने संस्थान पाये जाते हैं ?

उत्तर : एक - हुण्डक संस्थान ।

(646) भव्य एवं अभव्य जीवों में कितने संस्थान पाये जाते हैं ?

उत्तर : छहों संस्थान ।

(647) सम्यक्त्वी तथा मिथ्यात्वी जीवों में कितने संस्थान पाये जाते हैं ?

उत्तर : छहों संस्थान ।

(648) उर्ध्व आदि तीनों लोकों में कितने संस्थान पाये जाते हैं ?

उत्तर : छह संस्थान ।

(649) पर्याप्त और अपर्याप्त जीवों में कितने संस्थान पाये जाते हैं ?

उत्तर : छहों संस्थान ।

(650) किस संस्थान वाले दण्डक सबसे ज्यादा हैं ?

उत्तर : समचतुरस्र संस्थान ।

(651) किस संस्थान वाले दण्डक सबसे कम हैं ?

उत्तर : चार - (1) न्यग्रोध परिमंडल (2) सादि (3) वामन (4) कुब्ज ।

(652) कौनसा संस्थान कितने गुणस्थानकों तक पाया जाता है ?

उत्तर : संस्थान नाम कर्म के उदय की अपेक्षा से छहों संस्थान तेरहवें सयोगी केवली गुणस्थानक तक पाये जाते हैं । शरीर की

विद्यमानता की अपेक्षा से चौदहवें गुणस्थानक में भी छहों संस्थान होत है ।

(653) किन-किन जीवों का नियमतः समचतुरस्र संस्थान ही होता है ?

उत्तर : 1. त्रिषष्ठिशलाका पुरुषों (चौबीस तीर्थंकर, बारह चक्रवर्ती, नव वासुदेव, नव प्रतिवासुदेव और नव बलदेव) का नियमतः समचतुरस्र संस्थान ही होता है ।

2. देवों का नियमतः समचतुरस्र संस्थान ही होता है ।

3. गणधर भगवंतों का समचतुरस्र संस्थान ही होता है ।

4. अवसर्पिणी के पहले, दूसरे एवं उत्सर्पिणी के पांचवें तथा छट्ठे आरे में मात्र समचतुरस्र संस्थान ही पाया जाता है ।

5. तीस अकर्मभूमिज एवं छप्पन अन्तर्द्वीपज मनुष्यों/तिर्यंचों में नियमतः समचतुरस्र संस्थान ही पाया जाता है ।

6. युगलिकों में मात्र प्रथम समचतुरस्र संस्थान ही पाया जाता है ।

(654) देव वैक्रिय लब्धिधर होने से बिभत्स, डरावना, रौद्र रूप भी धारण करते हैं, विविध छोटे-मोटे, लम्बे-बौने आदि शरीर बनाते हैं, फिर उनमें केवल समचतुरस्र संस्थान कैसे कहा जा सकता है ?

उत्तर : उत्तर वैक्रिय शरीर की अपेक्षा से उनमें छहों संस्थान पाये जाते हैं परन्तु यहाँ जो समचतुरस्र संस्थान कहा गया है, वह भवधारणीय शरीर की अपेक्षा से कहा गया है ।

(655) किन जीवों में नियमतः हुण्डक संस्थान ही पाया जाता है ?

उत्तर : (1) नारकी जीवों में हुण्डक संस्थान ही पाया जाता है ।

(2) पृथ्वीकाय आदि स्थावर पंचक तथा द्वीन्द्रियादि विकलेन्द्रिय त्रिक में हुण्डक संस्थान ही पाया जाता है ।

(3) अवसर्पिणी के पांचवें-छट्ठे तथा उत्सर्पिणी के पहले-दूसरे आरे के मनुष्यों और तिर्यंचों में मात्र हुण्डक संस्थान ही पाया जाता है।

(656) वेद त्रिक में कितने संस्थान पाये जाते हैं ?

उत्तर : छहों संस्थान।

(657) किस कर्म के कारण जीव को शरीराकृति प्राप्त होती है ?

उत्तर : संस्थान नाम कर्म।

(658) संस्थान प्रदान करने वाले कर्म कौनसे हैं ?

उत्तर : **छह कर्म** – 1. समचतुरस्र संस्थान नाम कर्म, 2. न्यग्रोध परिमंडल संस्थान नाम कर्म 3. सादि संस्थान नाम कर्म, 4. वामन संस्थान नाम कर्म, 5. कुब्ज संस्थान नाम कर्म, 6. हुंडक संस्थान नाम कर्म।

(659) महाविदेह क्षेत्र में कितने संस्थान पाये जाते हैं ?

उत्तर : छहों संस्थान।

(660) अवसर्पिणी काल में भरत तथा ऐरावत क्षेत्र में कितने संस्थान पाये जाते हैं ?

उत्तर : अवसर्पिणी के प्रथम, दूसरे तथा तीसरे आरे के युगलिक मनुष्यों में प्रथम एक समचतुरस्र संस्थान पाया जाता है। चौथे आरे में छहों संस्थान तथा पांचवें एवं छट्ठे आरे में एक हुण्डक संस्थान ही पाया जाता है।

(661) उत्सर्पिणी काल में भरत तथा ऐरावत क्षेत्र में कितने संस्थान पाये जाते हैं ?

उत्तर : उत्सर्पिणी काल में पहले तथा दूसरे आरे में हुण्डक नामक एक संस्थान ही पाया जाता है। तीसरे तथा चौथे आरे में छहों, एवं पांचवें एवं छट्ठे आरे में एक मात्र समचतुरस्र संस्थान ही पाया जाता है।

षष्ठम कषाय द्वार का विवेचन

(662) कषाय किसे कहते है ?

उत्तर : जो जीव को कर्म-पाश में कसता है, उसे कषाय कहते है । जो पुनर्भव के मूल को सींचता है, उसे कषाय कहते है । चारित्र के परिणामों का एवं आत्म स्वरूप का कषण (हनन) करने के कारण क्रोधादि चतुष्टय को कषाय कहा जाता है ।

(663) 'कषाय' शब्द का व्युत्पत्तिपरक अर्थ बताओ ।

उत्तर : 'कषाय' शब्द के व्युत्पत्तिपरक तीन अर्थ शास्त्रों में दृष्टिगत होते हैं -

(1) **कष अर्थात् संसार, जन्म-मरण ।**
आय अर्थात् लाभ, वृद्धि ।
जिससे संसार का लाभ होता है, जन्म-मरण में वृद्धि होती है, उसे कषाय कहा जाता है ।

(2) विलेखन (कृषि) अर्थ में 'कृष' धातु को कष् आदेश होकर आय प्रत्यय लगने से 'कषाय' बनता है जिसका अर्थ इस प्रकार है -
जो कर्म रूपी क्षेत्र (खेत) मे सुख-दुःख रूपी धान्योत्पत्ति के लिये कर्षण (कृषि) करते हैं, उन्हें कषाय कहते है । जिस कारण आत्मा में कर्म की फसल लहलहाती है, उसे कषाय कहते है ।

(3) 'कलुष' धातु को 'कष' आदेश होकर 'कषाय' शब्द का अर्थ होता है -
जो स्वभावतः शुद्धोपयोग युक्त जीवात्मा को कलुषित/मलिन करते हैं, वे कषाय कहलाते हैं ।

(664) कषाय शब्द का पारिभाषिक अर्थ बताओ ।

उत्तर : (i) कषाय शब्द का एक अर्थ कषैला होता है । जिस प्रकार कषैली वस्तु-उपयोग से व्यक्ति भोजन के प्रति अरुचि हो जाती है, उसी प्रकार कषाय युक्त आत्मा की मोक्ष के प्रति अरुचि हो जाती है ।

(ii) जिस प्रकार बड आदि वृक्षों का काषाय रस श्लेष्म (चिपकने) करण है, उसी प्रकार क्रोधादि कषाय भी कर्म-श्लेष्म के कारण हैं ।

(665) कषाय कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

उत्तर : **चार प्रकार के** - (1) क्रोध कषाय (2) मान कषाय (3) माया कषाय (4) लोभ कषाय ।

(666) क्रोध कषाय किसे कहते है ?

उत्तर : जीवाजीव पर आवेश-उत्तेजना की स्थिति को क्रोध कषाय कहते है ।

(667) क्रोध के पर्यायवाची शब्द कौन से है ?

उत्तर : **व्याख्या प्रज्ञप्ति सूत्रानुसार** - आवेश, गुस्सा, आवेग, कोप, रोष, अक्षमा, कलह, चांडिक्य, अक्षमा, विवाद आदि ।

(668) मान कषाय किसे कहते है ?

उत्तर : जीवाजीव के कारण जीवात्मा में उत्पन्न मान-अभिमान की स्थिति को मान कषाय कहते है ।

(669) मान के पर्यायवाची शब्द कौन से हैं ?

उत्तर : **व्याख्या प्रज्ञप्ति सूत्रानुसार** - अभिमान, गर्व, अहंकार, घमण्ड, मद, दर्प, स्तंभ, अत्युत्क्रोश, अपकर्ष, उन्नाम, दुर्नाम आदि ।

(670) माया कषाय किसे कहते है ?

उत्तर : जीव के कपटपूर्ण आत्म-परिणामों को माया कषाय कहते है ।

(671) माया के पर्यायवाची शब्द कौन से हैं ?

उत्तर : **व्याख्या प्रज्ञप्ति सूत्रानुसार** - कपट, प्रपंच, ढोंग, दिखावा, छल,उपाधि, निकृति, गहन, किल्बिष, गूहनता, वंचनता आदि ।

(672) लोभ कषाय किसे कहते है ?

उत्तर : जीव की जीव/अजीव के संग्रह-परिग्रह की प्रवृत्ति को एवं उस पर मोह-ममता के परिणामों को लोभ कषाय कहते हैं।

(673) लोभ के पर्यायवाची शब्द कौन से हैं ?

उत्तर : **व्याख्या प्रज्ञप्ति (भगवती) सूत्रानुसार** - लालच, संग्रह, परिग्रह, लालसा, कामना, कांक्षा, गृद्धि, तृष्णा, कामाशा, भोगाशा, जीविताशा, मरणाशा, आशंसनता, प्रार्थनता, लालपनकता आदि।

(674) तरतमता के आधार पर कषाय कितने प्रकार के कहे जा सकते हैं ?

उत्तर : **सोलह :** (1-4) अनन्तानुबंधी क्रोध-मान-माया-लोभ।
(5-8) अप्रत्याख्यानीय क्रोध-मान-माया-लोभ।
(9-12) प्रत्याख्यानीय क्रोध-मान-माया-लोभ।
(13-16) संज्वलन क्रोध-मान-माया-लोभ।

(675) अनन्तानुबंधीय कषाय किसे कहते है ?

उत्तर : जो अनन्त संसार का बंध-अनुबंध करवाता है, वह अनन्तानुबंधी कषाय कहलाता है।

जो जीव के विशिष्ट गुणों का घात करता हुआ अत्यधिक कर्म-बंधन करवाता है, वह अनन्तानुबंधी कषाय कहलाता है।

(676) अप्रत्याख्यानीय कषाय किसे कहते हैं ?

उत्तर : जो जीव को आंशिक रूप से भी प्रत्याख्यान/व्रत धारण नहीं करने देता है, जो जीव के देशविरति धर्म का घात करता है, उसे अप्रत्याख्यानीय कषाय कहते है।

(677) प्रत्याख्यानीय कषाय किसे कहते हैं ?

उत्तर : जो कषाय जीव को साधु धर्म स्वीकार नहीं करने देता है, एवं सर्वविरति धर्म का घात करता है, उसे प्रत्याख्यानीय कषाय कहते है।

(678) संज्वलन कषाय किसे कहते है ?

उत्तर : जो वीतरागता एवं यथाख्यात चारित्र का घात करता है, उसे संज्वलन कषाय कहते है ।

(679) अनन्तानुबंधी क्रोध-मान-माया-लोभ कितने गुणस्थानकों में पाये जाते हैं ?

उत्तर : **दो गुणस्थानकों में** - (1) प्रथम मिथ्यादृष्टि गुणस्थानक, (2) द्वितीय सास्वादन गुणस्थानक ।

(680) अप्रत्याख्यानीय क्रोध-मान-माया-लोभ कितने गुणस्थानकों में पाये जाते हैं ?

उत्तर : **चार गुणस्थानकों में** - (1) प्रथम मिथ्यादृष्टि गुणस्थानक (2) सास्वादन गुणस्थानक (3) मिश्रदृष्टि गुणस्थानक (4) अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानक ।

(681) प्रत्याख्यानीय क्रोध-मान-माया-लोभ कितने गुणस्थानकों में पाये जाते हैं ?

उत्तर : उपरोक्त चार गुणस्थानकों सहित पांचवें देशविरति गुणस्थानक में पाये जाते हैं ।

(682) संज्वलन क्रोध-मान-माया-लोभ कितने गुणस्थानकों में पाये जाते हैं ?

उत्तर : संज्वलन क्रोध-मान-माया नौवें गुणस्थानक तक तथा संज्वलन लोभ दसवें गुणस्थानक तक पाया जाता है ।

(683) क्रोधादि कषायों की उत्पत्ति के कितने कारण कहे गये हैं ?

उत्तर : **प्रज्ञापना सूत्रानुसार चार कारणों से कषाय होता है** - (1) क्षेत्र (जमीन) के कारण (2) वास्तु (मकान आदि) के कारण (3) शरीर के कारण (4) उपधि (साधन-उपकरण) के कारण ।

(684) कषाय किस-किस आधार पर कहे गये हैं ?

उत्तर : **प्रज्ञापनासूत्रानुसार चार आधार पर** - (1) आत्म प्रतिष्ठित कषाय (2) परप्रतिष्ठित कषाय (3) उभय प्रतिष्ठित कषाय (4) अप्रतिष्ठित कषाय ।

(685) आत्म प्रतिष्ठित कषाय किसे कहते है ?

उत्तर : स्वयं के आचार के कारण जब जीव नुकसान उठाता है या लाभ पाता है तब अपने आप पर क्रोध करना या मान आदि करना आत्म प्रतिष्ठित कषाय कहलाता है ।

(686) परप्रतिष्ठित कषाय किसे कहते है ?

उत्तर : जब जीव स्वकार्य में किसी अन्य को निमित्त मानकर क्रोधादि कषाय करता है, उसे परप्रतिष्ठित कषाय कहते है ।

(687) उभय प्रतिष्ठित कषाय किसे कहते है ?

उत्तर : जीव के द्वारा कषाय के प्रसंग पर स्वयं पर तथा अन्य पर क्रोधादि कषाय करना उभय प्रतिष्ठित कषाय कहलाता है ।

(688) अप्रतिष्ठित कषाय किसे कहते है ?

उत्तर : स्वयं और अन्य, दोनों के निमित्त के बिना मोहनीय कर्मोदय से जो कषाय होता है, उसे अप्रतिष्ठित कषाय कहते है ।

(689) प्रज्ञापना सूत्र में कषाय के कौनसे चार प्रकार वर्णित हैं ?

उत्तर : **चार प्रकार** - (1) आभोग निवर्तित कषाय (2) अनाभोग निवर्तित कषाय (3) उपशांत कषाय (4) अनुपशांत कषाय ।

(690) आभोग निवर्तित कषाय किसे कहते है ?

उत्तर : अन्य के दोष को जानकर, क्रोध के पुष्ट अवलम्बन लेकर तथा प्रकारान्तर से शिक्षा नहीं मिल सकती, ऐसा विचार करके (उपयोगपूर्वक) क्रोधादि करना आभोगनिवर्तित कषाय कहलाता है ।

(691) अनाभोग निवर्तित कषाय किसे कहते है ?

उत्तर : मोहनीय कर्मवशात् गुण-दोष, लाभ-हानि की विचारणा किये बिना ही जीव द्वारा किया जाने वाला क्रोधादि कषाय अनाभोग निवर्तित कषाय कहलाता है ।

(692) उपशांत कषाय किसे कहते है ?

उत्तर : जो कषाय मोहनीय कर्म के उपशम से शांत हो, अनुदय में हो, वह उपशांत कषाय कहलाता है ।

(693) अनुपशांत कषाय किसे कहते है ?

उत्तर : कषाय मोहनीय कर्म के उदय से क्रोधादि कषाय जब उदयावस्था को प्राप्त हो, वह अनुपशांत कषाय कहलाता है ।

(694) मनुष्य गति में किस कषाय की प्रधानता होती है ?

उत्तर : मान कषाय की ।

(695) मनुष्य गति में मान कषाय की अधिकता किस कारण होती है ?

उत्तर : समस्त मनुष्यों में अल्प मनुष्य ही धनवान, रूपवान, विद्यावान, यशस्वी होते हैं, अतः उनमें अहंकार शीघ्र और अधिक आ जाता है । तप-त्याग-चारित्र एवं श्रुतज्ञान भी चारों गतियों में से मनुष्य गति में ही विशेष रूप से पाये जाते हैं, अतः मनुष्य गति में अभिमान की प्रधानता होती है ।

(696) देव गति में किस कषाय की प्रधानता होती है ?

उत्तर : लोभ कषाय की ।

(697) देव गति में लोभ कषाय की अधिकता किस कारण होती है ?

उत्तर : देव में परिग्रह-संग्रह संज्ञा का प्राबल्य होता है । वे क्षेत्र, साधन आदि के अधिकाधिक विस्तार में आसक्त-रत रहते हैं, अतः उनमें लोभ संज्ञा की अधिकता-प्रधानता होती है ।

(698) तिर्यंच गति में किस कषाय की प्रधानता होती है ?

उत्तर : माया कषाय की ।

(699) तिर्यंच गति में माया कषाय की अधिकता क्यों होती है ?

उत्तर : तिर्यंच गति में आहार संज्ञा की प्रधानता होती है, अतः तिर्यंच जीव स्वजातीय-परजातीयजीवों से आहार की प्राप्ति, ग्रहण एवं रक्षण के लिये छल/प्रपंच करने के कारण उनमें माया कषाय की अधिकता कही गयी है ।

(700) नरक गति में किस कषाय की प्रधानता होती है ?

उत्तर : क्रोध कषाय की ।

(701) नरक गति में क्रोध कषाय की अधिकता क्यों होती है ?

उत्तर : तीसरी नरक तक नैरयिकों को प्रतिपल परमाधामी देवों द्वारा भयंकर दुःख और दारुण वेदना दी जाती है, शेष चार नरकों में परस्परकृत वेदना का प्राबल्य होता है, अतः असह्य दुःख-वेदना से ग्रस्त होकर नारकी क्रोध-आवेश की अग्नि में दिन-रात जलते रहते हैं, अतः उनमें क्रोध कषाय विशेष रूप से पाया जाता है ।

(702) क्रोध के कारण किसकी दुर्गति हुई ?

उत्तर : चण्डकौशिक की (पूर्वभवों में) ।

(703) मान कषाय के कारण किसकी दुर्गति हुई ?

उत्तर : रावण की ।

(704) माया कषाय के कारण किसकी दुर्गति हुई ?

उत्तर : साध्वी लक्ष्मणा की ।

(705) लोभ कषाय के कारण किसकी दुर्गति हुई ?

उत्तर : मम्मण सेठ की ।

(706) क्रोध कषाय की आलोचना किसने की ?

उत्तर : चण्डकौशिक सर्प ने।

(707) मान कषाय की आलोचना किसने की ?

उत्तर : दशार्णभद्र एवं बाहुबली ने।

(708) माया कषाय की आलोचना किसने की ?

उत्तर : भगवान मल्लिनाथ ने।

(709) लोभ कषाय की आलोचना किसने की ?

उत्तर : कपिल केवली ने।

(710) गति आदि के आधार पर कषायों की व्याख्या कीजिये।

उत्तर : (1) चारों गतियों में चारों कषाय पाये जाते हैं।

(2) पांचो जातियों में चारों कषाय पाये जाते हैं।

(3) काय षट्क में चारों कषाय पाये जाते हैं।

(4) तीन लोक में चारों कषाय पाये जाते हैं।

(5) भव्य-अभव्य, दोनों में चारों कषाय पाये जाते हैं।

(7) तीनों वेदो में चारों कषाय पाये जाते हैं।

(8) संज्ञी एवं असंज्ञी में चारों कषाय पाये जाते हैं।

(9) त्रस एवं स्थावर में चारों कषाय पाये जाते हैं।

(10) संमूर्च्छिम, गर्भज एवं औपपातिक जीवों में चारों कषाय पाये जाते हैं।

(11) बादर एवं सूक्ष्म जीवों में चारों कषाय पाये जाते हैं।

(12) साधारण और प्रत्येक जीवों में चारों कषाय पाये जाते हैं।

(13) एकेन्द्रिय यावत पंचेन्द्रिय में चारों कषाय पाये जाते हैं।

(711) उर्ध्वलोक में किस कषाय की प्रधानता होती है ?

उत्तर : लोभ कषाय की।

(712) मध्यलोक में किस कषाय की प्रधानता होती है ?

उत्तर : मान और माया कषाय की।

(713) अधोलोक में किस कषाय की प्रधानता होती है ?

उत्तर : क्रोध कषाय की ।

(714) विशेषतः किस कषाय वाला जीव स्त्री वेदी बनता है ?

उत्तर : माया कषाय ।

(715) कषाय का उदय किस कर्म के कारण होता है ?

उत्तर : मोहनीय कर्म ।

(716) कषाय आत्मा के किस गुण को रोकता है ?

उत्तर : चारित्र गुण को ।

(717) क्रोध, मान और माया, तीनों कषायों का जघन्य तथा उत्कृष्ट काल कितना कहा गया है ?

उत्तर : जघन्य तथा उत्कृष्ट - अन्तर्मुहूर्त ।

(718) लोभ कषाय का जघन्य तथा उत्कृष्ट काल कितना कहा गया है ?

उत्तर : जघन्यतः - एक समय ।
उत्कृष्टतः - अन्तर्मुहूर्त ।

(719) क्रोध-मान माया तथा लोभ कषाय का उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण ही क्यों कहा गया ?

उत्तर :- क्रोधादि कषायों से युक्त आत्मा क्रोधी-मानी-मायावी एवं लोभी के रूप में उत्कृष्टतः अन्तर्मुहूर्त तक ही रहता है । जीव का स्वभाव ही ऐसा है कि उसके बाद अवश्यमेव क्रोधादि कषाय का उदय रुक जाता है और अन्य किसी भी कषाय का उदय हो जाता है ।

(720) क्रोधादि तीन कषायों का जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण कहा गया जबकि लोभ कषाय का जघन्य काल एक समय कहा गया, इस प्रकार का भेद किस कारण दृष्टिगत होता है ?

उत्तर : कोई उपशमक जीव उपशम श्रेणी का अन्त होने पर उस श्रेणी से पतित हो और लोभ कषाय के वेदन के प्रथम समय में च्यवकर सुरलोक में उत्पन्न होता है और क्रोधादि अन्य कषाय की उत्पत्ति होती है, अतः एक समय तक लोभ कषाय की स्थिति जघन्यरूपेण कही गयी ।

(721) सकषायी जीव की स्थिति कितनी कही गयी है ?

उत्तर : सकषायी तीन प्रकार के होते हैं -

(1) **अनादि-अनन्त** - अभव्य जीव के कषाय कभी भी उच्छेद-विच्छेद नही होने से कषाय की स्थिति अनादि-अनन्त कही गयी ।

(2) **अनादि सान्त** - जो जीव कभी न कभी उपशम श्रेणी/क्षपक श्रेणी को प्राप्त करेंगे । उनके कषायत्व की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टतः असंख्य उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी (अनन्त काल) कही गयी है ।

(3) **सादि सान्त** - जिस आत्मा ने एक बार भी उपशम श्रेणी में आरोहण कर लिया है, वे सादि सान्त कषायी है क्योंकि ग्यारहवें गुणस्थानक में कषाय का अनुदय है तथा भविष्य में उनके कषायोदय का अन्त होना ही है । इसकी स्थिति भी अनादि सान्त की भाँति होती है ।

(722) अकषायी का काल कितना कहा गया है ?

उत्तर : (1) **सादि अनन्त** - क्षपक श्रेणी आश्रित सादि अनन्त काल है क्योंकि मोहनीय का सर्वथा क्षय हो जाने के उपरान्त पुनः कषाय की उत्पत्ति नहीं है ।

(2) **सादि सान्त** - उपशम श्रेणी की अपेक्षा से जघन्यतः एक समय का और उत्कृष्टतः अन्तर्मुहूर्त का काल कहा गया है ।

सप्तम लेश्या द्वार का विवेचन

(723) लेश्या किसे कहते है ?

उत्तर : जीवात्मा को कर्म पुद्गलों से लिप्त करने वाले आत्मिक परिणामों को लेश्या कहते है।

जीवात्मा के आत्मिक परिणामों के परिणाम स्वरुप उसके चारों तरफ जो वलय निर्मित होता हैं, उसे लेश्या कहते है।

जिससे जीव पुण्य तथा पाप से लिप्त होता है, उसे लेश्या कहते है।

(724) लेश्या का अपर नाम क्या है ?

उत्तर : आभामंडल।

(725) लेश्या मुख्यरुपेण कितने प्रकार की कही गयी है ?

उत्तर : दो प्रकार की - (1) द्रव्य लेश्या (2) भाव लेश्या।

(726) द्रव्य लेश्या किसे कहते है ?

उत्तर : जीवात्मा के अध्यवसायों के अनुरुप ग्रहित कर्म पुद्गलों को द्रव्य लेश्या कहते है।

(727) द्रव्य लेश्या कितने प्रकार की कही गयी है ?

उत्तर : दो प्रकार की - (1) शुभ द्रव्य लेश्या (2) अशुभ द्रव्य लेश्या।

(728) शुभ-द्रव्य लेश्या किसे कहते है ?

उत्तर : शुभ अध्यवसायों के कारण जीवात्मा के द्वारा ग्रहित शुभ-शुद्ध कर्म पुद्गलों को शुभ द्रव्य लेश्या कहते है।

(729) अशुभ द्रव्य लेश्या किसे कहते है ?

उत्तर : अशुभ अध्यवसायों के कारण जीवात्मा के द्वारा ग्रहित अशुभ-संक्लिष्ट कर्म पुद्गलों को अशुभ द्रव्य लेश्या कहते है।

(730) भाव लेश्या किसे कहते है ?

उत्तर : जीवात्मा के आत्मिक परिणामों को भाव लेश्या कहते है।

(731) भाव लेश्या कितने प्रकार की कही गयी है ?

उत्तर : **दो प्रकार की** - (1) शुभ भाव लेश्या (2) अशुभ भाव लेश्या ।

(732) शुभ भाव लेश्या किसे कहते है ?

उत्तर : जीवात्मा के दया, करुणा, परदुःखकारतता, समता, वीतरागता आदि शुभ-शुभ्र आत्मिक परिणामों को शुभ भाव लेश्या कहते है ।

(733) अशुभ भाव लेश्या किसे कहते है ?

उत्तर : जीवात्मा के हिंसा, असंयम, कषाय आदि अशुभ-मलिन आत्मिक परिणामों को अशुभ भाव लेश्या कहते है ।

(734) लेश्या के कितने भेद कहे गये हैं ?

उत्तर : **छह भेद** - (1) कृष्ण लेश्या (2) नील लेश्या (3) कापोत लेश्या (4) तेजो लेश्या (5) पद्म लेश्या (6) शुक्ल लेश्या ।

(735) उपरोक्त छह लेश्या में से कितनी शुद्ध लेश्या हैं ?

उत्तर : **तीन** - (1) तेजो लेश्या (2) पद्म लेश्या (3) शुक्ल लेश्या ।

(736) उपरोक्त छह लेश्या में से कितनी अशुद्ध लेश्या हैं ?

उत्तर : **तीन** - (1) कृष्ण लेश्या (2) नील लेश्या (3) कापोत लेश्या ।

(737) द्रव्य कृष्ण लेश्या किसे कहते है ?

उत्तर : जिन कर्म पुद्गलों का अंजन के समान कृष्ण वर्ण एवं नीम से अनन्तगुणा कडवा स्वाद होता है, उसे द्रव्य कृष्ण लेश्या कहते है ।

(738) भाव कृष्ण लेश्या किसे कहते है ?

उत्तर : द्रव्य कृष्ण लेश्या के परिणाम स्वरूप जीवात्मा में उत्पन्न रौद्रता, आरंभ-समारंभ, अतीव हिंसा, तीव्र कषाय आदि अशुद्ध जीव-परिणामों को भाव कृष्ण लेश्या कहते है ।

(739) द्रव्य नील लेश्या किसे कहते है ?

उत्तर : जीव द्वारा ग्रहित जिन कर्म पुद्गलों का नीलम जैसा नील वर्ण और सोंठ से अनन्त गुणा तीक्ष्ण स्वाद होता है, उसे द्रव्य नील लेश्या कहते है ।

(740) भाव नील लेश्या किसे कहते है ?

उत्तर : द्रव्य नील लेश्या के परिणाम स्वरूप जीवात्मा में उत्पन्न कपट, स्वाद लोलुपता, निर्लज्जता आदि अशुद्ध आत्मिक परिणामों को भाव नील लेश्या कहते है ।

(741) द्रव्य कापोत लेश्या किसे कहते है ?

उत्तर : जीवात्मा के द्वारा ग्रहित जिन कर्म पुद्गलों का कबूतर के गले के समान कापोत वर्ण तथा कच्चे आम से अनन्त गुणा खट्टा/आम्ल स्वाद होता है, उसे द्रव्य कापोत लेश्या कहते है ।

(742) भाव कापोत लेश्या किसे कहते है ?

उत्तर : द्रव्य कापोत लेश्या के परिणाम स्वरूप जीवात्मा में उत्पन्न जड़ता, वक्रता एवं कर्कशता के अशुभ आत्मिक परिणामों को भाव कापोत लेश्या कहते है ।

(743) द्रव्य तेजो लेश्या किसे कहते है ?

उत्तर : जीवात्मा द्वारा ग्रहित जिन कर्म पुद्गलों का हिंगुल के समान रक्त वर्ण तथा आम्रफल से अनन्त गुणा मधुर स्वाद होता है, उसे द्रव्य तेजो लेश्या कहते है ।

(744) भाव तेजो लेश्या किसे कहते है ?

उत्तर : द्रव्य तेजो लेश्या के परिणाम स्वरूप जीवात्मा में उत्पन्न पापभीरुता, धर्म-प्रियता एवं परदुःखकातरता के निर्मल आत्मिक परिणामों को भाव तेजो लेश्या कहते है ।

(745) द्रव्य पद्म लेश्या किसे कहते है ?

उत्तर : जीवात्मा के द्वारा ग्रहित जिन कर्म पुद्गलों का हल्दी के समान पीत वर्ण तथा मधु से अनन्त गुणा मधुर स्वाद होता है, उसे द्रव्य पद्म लेश्या कहते है ।

(746) भाव पद्म लेश्या किसे कहते है ?

उत्तर : द्रव्य पद्म लेश्या के परिणाम स्वरुप जीवात्मा में उत्पन्न समता सरलता, सहिष्णुता के शुद्ध आत्मिक परिणामों को भाव पद्म लेश्या कहते है ।

(747) द्रव्य शुक्ल लेश्या किसे कहते है ?

उत्तर : जीवात्मा के द्वारा ग्रहित जिन पुद्गलों का शंख के समान श्वेत वर्ण तथा मिश्री से अनन्त गुणा मधुर स्वाद होता है, उसे द्रव्य शुक्ल लेश्या कहते है ।

(748) भाव शुक्ल लेश्या किसे कहते है ?

उत्तर : द्रव्य शुक्ल लेश्या के परिणाम स्वरुप जीवात्मा में उत्पन्न निर्मोहता, वीतरागता, आत्म-रमणता के अमल आत्मिक परिणामों को भाव शुक्ल लेश्या कहते है ।

(749) कृष्ण लेश्या का काल कितना कहा गया है ?

उत्तर : जघन्यतः - अन्तर्मुहूर्त ।

उत्कृष्टतः - साधिक अन्तर्मुहूर्त तैंतीस सागरोपम (सप्तम नरक की अपेक्षा से) ।

(750) नील लेश्या का काल कितना कहा गया है ?

उत्तर : जघन्यतः - अन्तर्मुहूर्त ।

उत्कृष्टतः - साधिक पल्योपम का असंख्यातवां भाग दस सागरोपम (धूमप्रभा नरक की अपेक्षा से) ।

(751) कापोत लेश्या का काल कितना कहा गया है ?

उत्तर : जघन्यतः - अन्तर्मुहूर्त ।

उत्कृष्टतः - साधिक पल्योपम का असंख्यातवां भाग तीन सागरोपम (वालुकाप्रभा नरक की अपेक्षा से) ।

(752) तेजो लेश्या का काल कितना कहा गया है ?

उत्तर : जघन्यतः - अन्तर्मुहूर्त ।

उत्कृष्टतः - साधिक पल्योपम का असंख्यातवां भाग दो सागरोपम (ईशान देवलोक की अपेक्षा से)।

(753) पद्म लेश्या का काल कितना कहा गया है ?

उत्तर : जघन्यतः - अन्तर्मुहूर्त्त।
उत्कृष्टतः - साधिक अन्तर्मुहूर्त्त दस सागरोपम (ब्रह्मलोक कल्प की अपेक्षा से)।

(754) शुक्ल लेश्या का काल कितना कहा गया है ?

उत्तर : जघन्यतः - अन्तर्मुहूर्त्त।
उत्कृष्टतः - साधिक अन्तर्मुहूर्त्त तैतीस सागरोपम (अनुत्तर विमान की अपेक्षा से)।

(755) अलेशी जीव का काल कितना कहा गया है ?

उत्तर : अलेशी सिद्ध परमात्मा होते हैं और उनकी स्थिति सादि अनन्त काल होने से अलेशी अवस्था का काल सादि अनन्त कहा गया है।

(756) पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय के जीवों में कौनसी लेश्या पायी जाती है ?

उत्तर : चार - कृष्ण, नील, कापोत और तेजो लेश्या।

(757) तेउकाय और वायुकाय के जीवों में कौनसी लेश्या पायी जाती है ?

उत्तर : तीन - कृष्ण, नील और कापोत लेश्या।

(758) विकलेन्द्रिय त्रिक में कौनसी लेश्या पायी जाती है ?

उत्तर : तीन - कृष्ण, नील और कापोत लेश्या।

(759) गर्भज तिर्यंच में कितनी लेश्या पायी जाती है ?

उत्तर : छहों लेश्या।

(760) रत्नप्रभा और शर्कराप्रभा नरक में कौनसी लेश्या पायी जाती है ?

उत्तर : कापोत लेश्या।

(761) वालुकाप्रभा नरक में कौनसी लेश्या पायी जाती है ?

उत्तर : तीन सागरोपम तक के आयुष्य वाले नारकी जीवों में कापोत लेश्या और उससे अधिक आयुष्य वाले में नील लेश्या पायी जाती है ।

(762) पंकप्रभा नरक में कौनसी लेश्या पायी जाती है ?

उत्तर : नील लेश्या ।

(763) धूमप्रभा नरक में कौनसी लेश्या पायी जाती है ?

उत्तर : धूमप्रभा नरक में दस सागरोपम तक के आयुष्य वाले नारकी जीवों में नील लेश्या और उससे अधिक आयुष्य वाले नारकी जीवों में कृष्ण लेश्या होती है ।

(764) तमःप्रभा तथा तमस्तमःप्रभा नारकी के जीवों में कौन सी लेश्या पायी जाती है ?

उत्तर : दोनों नरकों में कृष्ण लेश्या पायी जाती है पर तमःप्रभा की अपेक्षा तमस्तमःप्रभा नरक में कृष्ण लेश्या अधिक मलिन होती है ।

(765) नारकी जीवों में यदि तीनों अशुभ लेश्या पायी जाती हैं तो फिर उनमें सम्यक्त्व किस प्रकार संभव है ?

उत्तर : नारकी जीवों में कृष्णादि तीन अशुभ लेश्या जो बतायी गयी हैं, वे द्रव्य की अपेक्षा से कही गयी हैं । भाव की अपेक्षा से छहों लेश्या होने से तीन शुभ लेश्या भी पायी जाती हैं, अंतः सम्यक्त्व की प्राप्ति नारकी जीवों में सहज संभव है ।

(766) भवनपति, व्यंतर, वाणव्यंतर, तिर्यग्जृंभक देवों में कौनसी लेश्या पायी जाती है ?

उत्तर : **चार** - कृष्ण, नील, कापोत और तेजो लेश्या ।

(767) परमाधामी देवों में कितनी लेश्या पायी जाती है ?

उत्तर : **एक** - कृष्ण लेश्या ।

(768) भवनपति, परमाधामी, व्यंतर आदि देवों में जो सम्यक्त्वी देव होते हैं, उनमें पद्म-शुक्ल लेश्या होती हैं या नहीं ?

उत्तर : भवनपति आदि देवों में कृष्णादि चार लेश्या द्रव्य की अपेक्षा कही गयी हैं परन्तु भाव की अपेक्षा से तो छहों लेश्या होने से सम्यक्त्वी में पद्म-शुक्ल, दोनों लेश्या पायी जाती हैं ।

(769) ज्योतिष्क देवों में कितनी लेश्या पायी जाती है ?

उत्तर : **एक** - तेजो लेश्या ।

(770) वैमानिक देवों में कितनी लेश्या पायी जाती हैं ?

उत्तर : **तीन** - तेजो, पद्म और शुक्ल लेश्या ।

(771) प्रथम दो देवलोकों में कौनसी लेश्या पायी जाती है ?

उत्तर : **एक** - तेजो लेश्या ।

(772) तीसरे, चौथे और पांचवें देवलोक में कौनसी लेश्या पायी जाती है ?

उत्तर : पद्म लेश्या ।

(773) 6-7-8-9-10-11-12 वें देवलोक, नवलोकान्तिक, नवग्रैवेयक एवं अनुत्तर विमान के देवों में कौनसी लेश्या पायी जाती है ?

उत्तर : शुक्ल लेश्या ।

(774) तीन किल्बिषिक देवों में कौनसी लेश्या पायी जाती है ?

उत्तर : प्रथम किल्बिषिक देवों में तेजो लेश्या ।
द्वितीय किल्बिषिक देवों में पद्म लेश्या ।
तृतीय किल्बिषिक देवों में शुक्ल लेश्या ।

(775) किन देवों में केवल तेजो लेश्या ही होती है ?

उत्तर : ज्योतिष्क देवों में, पहले-दूसरे देवलोक के देवों में एवं प्रथम किल्बिषिक देवों में केवल तेजो लेश्या ही पायी जाती है ।

(776) भवनपति, व्यंतर, वाणव्यंतर, तिर्यग्जृंभक, परमाधामी एवं ज्योतिष्क विमान की देवियों में कौन सी लेश्या पायी जाती है ?

उत्तर : चार लेश्या - कृष्ण, नील, कापोत और तेजो लेश्या ।

(777) वैमानिक देवियों में कौनसी लेश्या पायी जाती है ?

उत्तर : तेजो लेश्या ।

(778) गर्भज मनुष्यों में कितनी लेश्या पायी जाती है ?

उत्तर : छहों लेश्या ।

(779) कर्मभूमिज मनुष्यों में कितनी लेश्या पायी जाती है ?

उत्तर : छहों लेश्या ।

(780) अकर्मभूमिज तथा अन्तर्द्वीपज मनुष्यों में कितनी लेश्या पायी जाती है ?

उत्तर : प्रथम चार लेश्या ।

(781) कृष्ण लेश्या कितने दण्डकों में पायी जाती है ?

उत्तर : **बावीस दण्डकों में** - (1-5) पांच स्थावर (6-8) विकलेन्द्रिय त्रिक (9) गर्भज तिर्यंच (10) गर्भज मनुष्य (11-20) दस भवनपति देव (21) व्यंतर देव (22) नरक ।

(782) नील लेश्या कितने दण्डकों में पायी जाती है ?

उत्तर : बावीस दण्डकों में (कृष्ण लेश्या की भाँति) ।

(783) कापोत लेश्या कितने दण्डकों में पायी जाती है ?

उत्तर : बावीस दण्डकों में (कृष्ण लेश्या की भाँति) ।

(784) तेजो लेश्या कितने दण्डकों में पायी जाती है ?

उत्तर : **अठारह दण्डकों में** - (1-3) पृथ्वी - अप् - वनस्पतिकाय (4-13) दस भवनपति देव (14-16) व्यंतर - ज्योतिष्क - वैमानिक देव (17) गर्भज तिर्यंच (18) गर्भज मनुष्य ।

(785) पद्म लेश्या कितने दण्डकों में पायी जाती है ?

उत्तर : **तीन दण्डकों में** - (1) गर्भज मनुष्य (2) गर्भज तिर्यंच (3) वैमानिक देव ।

(786) शुक्ल लेश्या कितने दण्डकों में पायी जाती है ?

उत्तर : तीन दण्डकों में (पद्म लेश्या की भाँति) ।

(787) केवल शुभ लेश्या कितने दण्डकों में पायी जाती है ?

उत्तर : दो दण्डकों में - (1) ज्योतिष्क (2) वैमानिक ।

(788) केवल अशुभ लेश्या कितने दण्डकों में पायी जाती है ?

उत्तर : छह दण्डकों में - (1) तेउकाय (2) वायुकाय (3-5) विकलेन्द्रिय त्रिक (6) नारकी ।

(789) शुभ और अशुभ, दोनों लेश्या कितने दण्डकों में पायी जाती है ?

उत्तर : सोलह दण्डकों में - (1-3) पृथ्वी - अप् - वनस्पतिकाय (4) गर्भज तिर्यंच (5) गर्भज मनुष्य (6-15) दस भवनपति देव (16) व्यंतर देव ।

(790) मात्र एक लेश्या कितने दण्डकों में पायी जाती है ?

उत्तर : एक दण्डक में - ज्योतिष्क देव ।

(791) तीन लेश्या कितने दण्डकों में पायी जाती है ?

उत्तर : आठ दण्डकों में - (1) तेउकाय (2) वायुकाय (3-5) विकलेन्द्रिय त्रिक (6) नारकी (7) ज्योतिष्क देव (8) वैमानिक देव ।

(792) चार लेश्या कितने दण्डकों में पायी जाती है ?

उत्तर : चौदह दण्डकों में - (1-3) पृथ्वी - अप् - वनस्पतिकाय (4-13) दस भवनपति देव (14) व्यंतर देव ।

(793) छह लेश्या कितने दण्डकों में पायी जाती है ?

उत्तर : दो दण्डकों में - (1) गर्भज तिर्यंच (2) गर्भज मनुष्य ।

(794) पृथ्वीकायिक, अप्कायिक और वनस्पतिकायिक जीवों में चार लेश्या कही गयी, जबकि तेउकायिक और वायुकायिक जीवों में तीन लेश्या कही गयी, ऐसा भेद किस कारण है जबकि पाँचों ही एकेन्द्रिय एवं स्थावर है ?

उत्तर : भवनपति, व्यंतर, वाणव्यंतर, ज्योतिष्क और प्रथम-दूसरे देवलोकवर्ती तेजोलेश्या वाले देव बादर-लब्धि पर्याप्त पृथ्वीकाय,

अप्काय और प्रत्येक वनस्पतिकाय, इन तीन दण्डकों में उत्पन्न होते हैं, तब अपर्याप्त अवस्था में अन्तर्मुहूर्त तक तेजो लेश्या होती है। तेउकाय और वायुकाय में उपरोक्त देवों की गति नहीं होने से उनमें तेजो लेश्या का अभाव होता है।

(795) मनुष्य गति में कितनी लेश्या पायी जाती हैं ?

उत्तर : छह लेश्या (कृष्ण से यावत् शुक्ल लेश्या)।

(796) देव गति में कितनी लेश्या पायी जाती हैं ?

उत्तर : छहों लेश्या (कृष्ण, नील, कापोत, तेजो, पद्म और शुक्ल लेश्या)।

(797) नरक गति में कितनी लेश्या पायी जाती हैं ?

उत्तर : तीन लेश्या (कृष्ण, नील और कापोत लेश्या)।

(798) तिर्यंच गति में कितनी लेश्या पायी जाती हैं ?

उत्तर : छहों लेश्या (कृष्ण से यावत् शुक्ल लेश्या)।

(799) एकेन्द्रिय जीवों में कितनी लेश्या पायी जाती हैं ?

उत्तर : प्रथम चार लेश्या।

(800) पंचेन्द्रिय जीवों में कितनी लेश्या पायी जाती हैं ?

उत्तर : छह लेश्या।

(801) साधारण जीवों में कितनी लेश्या पायी जाती हैं ?

उत्तर : प्रथम तीन लेश्या।

(802) प्रत्येक जीवों में कितनी लेश्या पायी जाती हैं ?

उत्तर : छहों लेश्या।

(803) त्रस जीवों में कितनी लेश्या पायी जाती हैं ?

उत्तर : छह लेश्या।

(804) स्थावर जीवों में कितनी लेश्या पायी जाती हैं ?

उत्तर : प्रथम चार लेश्या।

(805) सूक्ष्म जीवों में कितनी लेश्या पायी जाती हैं ?

उत्तर : प्रथम तीन लेश्या।

(806) बादर जीवों में कितनी लेश्या पायी जाती है ?

उत्तर : छह लेश्या।

(807) संमूर्च्छिम जीवों में कितनी लेश्या पायी जाती है ?

उत्तर : प्रथम चार लेश्या।

(808) गर्भज जीवों में कितनी लेश्या पायी जाती है ?

उत्तर : छह लेश्या।

(809) औपपातिक जीवों में कितनी लेश्या पायी जाती है ?

उत्तर : छह लेश्या।

(810) भव्य तथा अभव्य जीवों में कितनी लेश्या पायी जाती है ?

उत्तर : छह लेश्या।

(811) संज्ञी जीवों में कितनी लेश्यॉ पायी जाती है ?

उत्तर : छह लेश्या।

(812) असंज्ञी जीवों में कितनी लेश्या पायी जाती है ?

उत्तर : प्रथम चार लेश्या।

(813) पुरुषादिक वेद त्रिक में कितनी लेश्या पायी जाती है ?

उत्तर : छह लेश्या।

(814) तीनों लोक में कितनी लेश्या पायी जाती है ?

उत्तर : छह लेश्या।

(815) पर्याप्त तथा अपर्याप्त जीवों में कितनी लेश्या पायी जाती है ?

उत्तर : छह लेश्या।

(816) सम्यक्त्वी तथा मिथ्यात्वी जीवों में कितनी संज्ञा पायी जाती है ?

उत्तर : छह लेश्या।

(817) किस लेश्या वाले दण्डक सबसे ज्यादा है ?

उत्तर : कृष्ण - नील - कापोत लेश्या वाले दण्डक सबसे ज्यादा है - 22 दण्डक।

(818) किस लेश्या वाले दण्डक सबसे अल्प हैं ?

उत्तर : पद्म और शुक्ल लेश्या वाले दण्डक सबसे अल्प हैं - तीन दण्डक।

(819) कृष्ण आदि लेश्या षट्क समझाने के लिये उदाहरण प्रस्तुत कीजिये।

उत्तर : 1 जामुन के लिये वृक्ष को जड़-मूल से उखाड़ दो (कृष्ण लेश्या)।

2 जामुन के लिये बड़ी-बड़ी शाखाएँ काट दो (नील लेश्या)।

3 जामुन के लिये छोटी-छोटी शाखाएँ काट दो (कापोत लेश्या)।

4 जामुन का गुच्छा ही तोड़ो (तेजो लेश्या)।

5 जामुन के फल ही तोड़कर ले लो (पद्म लेश्या)।

6 भूमि पर गिरे हुए जामुन खाकर पेट भर लो (शुक्ल लेश्या)।

(820) प्रथम तीन लेश्या कितने गुणस्थानकों में पायी जाती हैं ?

उत्तर : छह गुणस्थानकों में (1 से 6)।

(821) तेजो एवं पद्म लेश्या कितने गुणस्थानकों में पायी जाती हैं ?

उत्तर : सात गुणस्थानकों में (1 से 7)।

(822) शुक्ल लेश्या कितने गुणस्थानकों में पायी जाती हैं ?

उत्तर : तेरह गुणस्थानकों में (1 से 13)।

(823) प्रथम छह गुणस्थानकों में कितनी लेश्या पायी जाती हैं ?

उत्तर : छह लेश्या।

(824) सातवें गुणस्थानक में कितनी लेश्या पायी जाती हैं ?

उत्तर : **तीन लेश्या** - 1 तेजो 2 पद्म 3 शुक्ल।

(825) आठवें से तेरहवें गुणस्थानक में कितनी लेश्या पायी जाती हैं ?

उत्तर : **एक** - शुक्ल लेश्या।

अष्टम इन्द्रिय द्वार का विवेचन

(826) इन्द्रिय किसे कहते है ?

उत्तर : व्युत्पत्तिपरक अर्थ -

'इन्द्र' अर्थात् आत्मा ।

'इय' प्रत्यय अर्थात् चिह्न ।

जिससे आत्मा को जाना-पहचाना जाता है, उसे इन्द्रिय कहते है।

पारिभाषिक अर्थ -

जिसके द्वारा विषयों का ज्ञान होता है, उसे इन्द्रिय कहते है ।

(827) आत्मा को इन्द्र क्यों कहा गया है ?

उत्तर : आत्मा अनन्त ज्ञान-दर्शन-चारित्र-वीर्य आदि अनन्त गुण रूप ऐश्वर्य का धारक/भोक्ता होने के कारण उसे इन्द्र कहा गया है ।

(828) इन्द्रियाँ मुख्य रूप से कितने प्रकार की कही गयी हैं ?

उत्तर : दो प्रकार की - (1) द्रव्य इन्द्रिय (2) भाव इन्द्रिय ।

(829) द्रव्य इन्द्रिय कितने प्रकार की कही गयी हैं ?

उत्तर : दो प्रकार की - (1) उपकरण द्रव्य इन्द्रिय (2) निवृत्ति द्रव्य इन्द्रिय ।

(830) उपकरण द्रव्य इन्द्रिय किसे कहते हैं ?

उत्तर : तलवार की धार में रही हुई काटने की शक्ति की भाँति जिस इन्द्रिय में विषय को पकड़ने की शक्ति है, उसे उपकरण द्रव्य इन्द्रिय कहते हैं ।

(831) निवृत्ति द्रव्य इन्द्रिय कितने प्रकार की कही गयी है ?

उत्तर : दो प्रकार की - (1) बाह्य निवृत्ति द्रव्य इन्द्रिय (2) आभ्यंतर निवृत्ति द्रव्य इन्द्रिय ।

(832) बाह्य निवृत्ति द्रव्य इन्द्रिय किसे कहते है ?

उत्तर : इन्द्रियों के बाहर के अवयव को बाह्य निवृत्ति द्रव्य इन्द्रिय कहते है ।

जिह्वा, कर्णादि दिखायी देने वाले अंग बाह्य निवृत्ति द्रव्य इन्द्रिय कहलाते हैं।

(833) आभ्यन्तर निवृत्ति द्रव्य इन्द्रिय किसे कहते है ?

उत्तर : इन्द्रियों के भीतर के अवयव को आभ्यन्तर निवृत्ति द्रव्य इन्द्रिय कहते है। जिह्वा के भीतर के खुरपी आदि जैसे अवयव आभ्यन्तर निवृत्ति द्रव्य इन्द्रिय कहलाते हैं।

(834) भाव इन्द्रिय किसे कहते है ?

उत्तर : आत्मा में स्थित विषयों को जानने की ज्ञान-शक्ति तथा उपयोग को भाव इन्द्रिय कहते है।

(835) भाव इन्द्रिय कितने प्रकार की कही गयी है ?

उत्तर : **दो प्रकार की** - (1) लब्धि भाव इन्द्रिय (2) उपयोग भाव इन्द्रिय।

(836) लब्धि भाव इन्द्रिय किसे कहते हैं ?

उत्तर : विषयों को जानने की शक्ति को लब्धि-भाव इन्द्रिय कहते है। जिह्वेन्द्रिय आदि में स्थित स्व-स्व विषयों को जानने की शक्ति को लब्धि भाव इन्द्रिय कहते है।

(837) उपयोग भाव इन्द्रिय किसे कहते है ?

उत्तर : विषयों को जानने की शक्ति के उपयोग को उपयोग भाव इन्द्रिय कहते है। जिह्वेन्द्रियादि के स्व-स्व विषयों में व्यापार को उपयोग भाव इन्द्रिय कहते है।

(838) लब्धि और उपयोग भावेन्द्रिय को उदाहरणपूर्वक समझाईये।

उत्तर : रसनेन्द्रिय मतिज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम के अनुरूप रस/स्वाद को जानने की शक्ति को लब्धि कहा जाता है।

जिह्वा पर कण रखने पर उसके स्वाद को जानने की प्रक्रिया को उपयोग कहा जाता है।

लब्धि का आशय शक्ति से है और उपयोग का आशय लब्धि प्रयोग से है।

(839) इन्द्रियों के अवान्तर भेदों को किसी दृष्टान्त के द्वारा स्पष्ट कीजिये ।

उत्तर : इन्द्रियों के अवान्तर भेदों को तलवार के उदाहरण से सरलतापूर्वक समझा जा सकता है -

1. बाह्य निवृत्ति द्रव्येन्द्रिय - तलवार ।
2. आभ्यंतर निवृत्ति द्रव्येन्द्रिय - तलवार की धार ।
3. उपकरण द्रव्येन्द्रिय - धार में रही हुई काटने की शक्ति ।
4. लब्धि भावेन्द्रिय - तलवार चलाने की कला ।
5. उपयोग भावेन्द्रिय - कला का उपयोग-प्रयोग ।

(840) स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और घ्राणेन्द्रिय की उत्कृष्ट रूप से पदार्थ ग्रहण क्षमता कितनी है ?

उत्तर : स्पर्शनेन्द्रिय उत्कृष्टतः नौ योजन तक की दूरी के स्पर्श को ग्रहण करती है ।

रसनेन्द्रिय उत्कृष्टतः नौ योजन तक की दूरी के रस (स्वाद) को ग्रहण करती है ।

घ्राणेन्द्रिय उत्कृष्टतः नौ योजन तक की दूरी की सुगंध तथा दुर्गंध को ग्रहण करती है ।

(841) चक्षुरिन्द्रिय की उत्कृष्ट रूप से पदार्थ ग्रहण क्षमता कितनी है ?

उत्तर : चक्षुरिन्द्रिय उत्कृष्टतः एक लाख योजन से कुछ अधिक दूर रही हुई वस्तु को ग्रहण करती है ।

(842) श्रोत्रेन्द्रिय की उत्कृष्ट रूप से पदार्थ ग्रहण क्षमता कितनी है ?

उत्तर : श्रोत्रेन्द्रिय उत्कृष्टतः बारह योजन दूर स्थित शब्द को ग्रहण कर सकती है ।

(843) पांचों इन्द्रियों की जघन्य विषय-ग्रहण क्षमता कितनी है ?

उत्तर : चक्षुरिन्द्रिय की जघन्यतः विषय-ग्रहण क्षमता अंगुल का संख्यातवां

भाग कही गयी है । शेष स्पर्शनेन्द्रिय आदि चार इन्द्रियों की जघन्यतः विषय-ग्रहण क्षमता अंगुल का असंख्यातवां भाग कही गयी है ।

(844) स्पर्शनेन्द्रिय आदि पांचों इन्द्रियों का बाहल्य (मोटाई-जाडाई) कितना कहा गया है ?

उत्तर : अंगुल का असंख्यातवां भाग प्रमाण ।

(845) स्पर्शनेन्द्रिय का विस्तार कितना कहा गया है ?

उत्तर : स्वदेह प्रमाण ।

(846) रसनेन्द्रिय कितने विस्तार वाली कही गयी है ?

उत्तर : अंगुल पृथक्त्व प्रमाण (दो अंगुल से नौ अंगुल) ।

(847) घ्राणेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय एवं श्रोत्रेन्द्रिय का विस्तार कितना कहा गया है ?

उत्तर : अंगुल का असंख्यातवां भाग प्रमाण ।

(848) अवगाहना की अपेक्षा से पांचों इन्द्रियों में अल्प-बहुत्व बताओ ।

उत्तर : सबसे कम अवगाहना चक्षुरिन्द्रिय की कही गयी है । चक्षुरिन्द्रिय, श्रोत्रेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय एवं स्पर्शनेन्द्रिय की अवगाहना क्रमशः एक-दूसरे से संख्यातगुणा होती है ।

(849) इन्द्रियाँ कितनी कही गयी हैं ?

उत्तर : **पांच प्रकार की** - (1) स्पर्शनेन्द्रिय (2) रसनेन्द्रिय (3) घ्राणेन्द्रिय (4) चक्षुरिन्द्रिय (5) श्रोत्रेन्द्रिय ।

(850) पांचों इन्द्रियों व्यवहार में किन शब्दों में पुकारा जाता है ?

उत्तर : शास्त्रों में स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय एवं श्रोत्रेन्द्रिय को क्रमशः त्वगिन्द्रिय, जिह्वेन्द्रिय एवं श्रवणेन्द्रिय भी कहा गया है ।

(i) स्पर्शनेन्द्रिय - त्वचा, चमडी आदि ।

(ii) रसनेन्द्रिय - जिह्वा, रसना, जीभ आदि ।

(iii) घ्राणेन्द्रिय - नासिका, नाक आदि ।

(iv) चक्षुरिन्द्रिय - आँख, नयन, नेत्र, लोचन आदि ।

(v) श्रोत्रेन्द्रिय - कान, कर्ण आदि ।

(851) स्पर्शनेन्द्रिय का आभ्यन्तर आकार कैसा कहा गया है ?

उत्तर : विविध प्रकार का ।

(852) रसनेन्द्रिय का आभ्यन्तर आकार कैसा कहा गया है ?

उत्तर : क्षुरप्र (खुरपी) के आकार का ।

(853) घ्राणेन्द्रिय का आभ्यन्तर आकार कैसा कहा गया है ?

उत्तर : पडघम (वाद्य) जैसा ।

(854) चक्षुरिन्द्रिय का आभ्यन्तर आकार कैसा कहा गया है ?

उत्तर : आँख की कीकी जैसा ।

(855) श्रोत्रेन्द्रिय का आभ्यन्तर आकार कैसा कहा गया है ?

उत्तर : कदम्ब के पुष्प जैसा ।

(856) स्पर्शनेन्द्रिय किसे कहते है ?

उत्तर : जिस इन्द्रिय के द्वारा स्पर्श-विषयक ज्ञान होता है, उसे स्पर्शनेन्द्रिय कहा जाता है ।

(857) रसनेन्द्रिय किसे कहते है ?

उत्तर : जिस इन्द्रिय के द्वारा रस-विषयक ज्ञान होता है, उसे रसनेन्द्रिय कहते है ।

(858) घ्राणेन्द्रिय किसे कहते है ?

उत्तर : जिस इन्द्रिय के द्वारा गंध-विषयक ज्ञान होता है, उसे घ्राणेन्द्रिय कहते है ।

(859) चक्षुरिन्द्रिय किसे कहते है ?

उत्तर : जिस इन्द्रिय के द्वारा वर्ण-विषयक ज्ञान होता है, उसे चक्षुरिन्द्रिय कहते है ।

(860) श्रोत्रेन्द्रिय किसे कहते है ?

उत्तर : जिस इन्द्रिय के द्वारा शब्द-विषयक ज्ञान होता है, उसे श्रोत्रेन्द्रिय कहते है ।

(861) पांच इन्द्रियों के कुल कितने विषय होते हैं ?

उत्तर :

स्पर्शनेन्द्रिय के विषय	-	8
रसनेन्द्रिय के विषय	-	5
घ्राणेन्द्रिय के विषय	-	2
चक्षुरिन्द्रिय के विषय	-	5
श्रोत्रेन्द्रिय के विषय	-	3
कुल	-	**23**

(862) स्पर्शनेन्द्रिय के आठ विषय कौन से हैं ?

उत्तर : (1) गुरु (2) लघु (3) मृदु (4) कर्कश (5) शीत (6) उष्ण (7) स्निग्ध (8) रुक्ष ।

(863) गुरु स्पर्श किसे कहते है ?

उत्तर : लोहे जैसी भारी वस्तुओं के समान स्पर्श को गुरु स्पर्श कहते है ।

(864) लघु स्पर्श किसे कहते है ?

उत्तर : अर्कतूलादि (रुई) के जैसी हल्की वस्तुओं के समान स्पर्श को लघु स्पर्श कहते है ।

(865) मृदु स्पर्श किसे कहते है ?

उत्तर : मखमल के समान कोमल-मुलायम स्पर्श को मृदु स्पर्श कहते है ।

(866) कर्कश स्पर्श किसे कहते है ?

उत्तर : पत्थर के समान कठोर स्पर्श को कर्कश स्पर्श कहते है ।

(867) शीत स्पर्श किसे कहते है ?

उत्तर : जल, बर्फ आदि के समान ठण्डे स्पर्श को शीत स्पर्श कहते है ।

(868) उष्ण स्पर्श किसे कहते है ?

उत्तर : अग्नि के समान गर्म स्पर्श को उष्ण स्पर्श कहते है ।

(869) स्निग्ध स्पर्श किसे कहते है ?

उत्तर : घृत के समान चिकने स्पर्श को स्निग्ध स्पर्श कहते है ।

(870) रुक्ष स्पर्श किसे कहते है ?

उत्तर : राख के समान रुखे स्पर्श को रुक्ष स्पर्श कहते है ।

(871) रसनेन्द्रिय के पांच विषय कौन से कहे गये हैं ?

उत्तर : **पांच विषय** - (1) तिक्त (2) कटु (3) कषाय (4) आम्ल (5) मधुर ।

(872) तिक्त रस किसे कहते है ?

उत्तर : नीम आदि के समान कड़वे स्वाद को तिक्त रस कहते है ।

(873) कटु रस किसे कहते है ?

उत्तर : सौंठ आदि के समान तीखे स्वाद को कटु रस कहते है ।

(874) कषाय रस किसे कहते है ?

उत्तर : त्रिफलादि के समान कसैले स्वाद को कषाय रस कहते है ।

(875) आम्ल रस किसे कहते है ?

उत्तर : इमली के समान खट्टे स्वाद को आम्ल रस कहते है ।

(876) मधुर रस किसे कहते है ?

उत्तर : मिश्री के समान मीठे स्वाद को मधुर रस कहते है ।

(877) घ्राणेन्द्रिय के कितने विषय कहे गये हैं ?

उत्तर : **दो विषय** - (1) सुगंध (2) दुर्गंध ।

(878) सुगंध किसे कहते हैं ?

उत्तर : चंदन, गुलाब जैसी अच्छी, मनमोहक गंध को सुगंध कहते है ।

(879) दुर्गंध किसे कहते हैं ?

उत्तर : कीचड जैसी बुरी, घृणित गंध को दुर्गंध कहते है ।

(880) चक्षुरिन्द्रिय के कितने विषय कहे गये हैं ?

उत्तर : **पांच विषय** - (1) कृष्ण (2) नील (3) रक्त (4) पीत (5) श्वेत ।

(881) कृष्ण वर्ण किसे कहते है ?

उत्तर : कोयल के समान काले रंग को कृष्ण वर्ण कहते है ।

(882) नील वर्ण किसे कहते है ?

उत्तर : नीलम आदि के समान नीले रंग को नील वर्ण कहते है ।

(883) रक्त वर्ण किसे कहते है ?

उत्तर : रक्त, गुलाब-पुष्प जैसे लाल रंग को रक्त वर्ण कहते है ।

(884) पीत वर्ण किसे कहते है ?

उत्तर : हल्दी के समान पीले रंग को पीत वर्ण कहते है ।

(885) श्वेत वर्ण किसे कहते है ?

उत्तर : शंख के समान सफेद रंग को श्वेत वर्ण कहते है ।

(886) श्रोत्रेन्द्रिय के कितने विषय कहे गये हैं ?

उत्तर : तीन विषय - (1) सचित्त (जीव) शब्द (2) अचित्त (अजीव) शब्द (3) सचित्ताचित्त शब्द ।

(887) सचित्त शब्द किसे कहते है ?

उत्तर : जीव की ध्वनि/आवाज को सचित्त शब्द कहते है ।

(888) अचित्त शब्द किसे कहते है ?

उत्तर : पत्थर आदि के गिरने से होने वाली ध्वनि को अचित्त शब्द कहते है ।

(889) सचित्ताचित्त (मिश्र) शब्द किसे कहते हैं ?

उत्तर : जीव और अजीव के संयोग से होने वाली ध्वनि को सचित्ताचित्त शब्द कहते है । जैसे व्यक्ति और वीणा के संयोग से उत्पन्न होने वाली ध्वनि ।

(890) इन्द्रियों के आधार पर जीव कितने प्रकार के होते है ?

उत्तर : पांच प्रकार के -

(1) जिन जीवों में एक स्पर्शनेन्द्रिय पायी जाती है, उन्हें एकेन्द्रिय कहते है । पृथ्वीकायादि पांच स्थावरों में एक इन्द्रिय ही होती है ।

(2) जिन जीवों में दो इन्द्रियाँ पायी जाती हैं, उन्हें द्वीन्द्रिय कहते है ।

(3) जिन जीवों में तीन इन्द्रियाँ पायी जाती हैं, उन्हें त्रीन्द्रिय कहते है।

(4) जिन जीवों में चार इन्द्रियाँ पायी जाती हैं, उन्हें चतुरिन्द्रिय कहते है।

(5) जिन जीवों में पांचों इन्द्रियाँ पायी जाती हैं, उन्हें पंचेन्द्रिय कहते है।

(891) किसी पंचेन्द्रिय प्राणी को आँखो से दिखायी न दे अथवा कानों से सुनायी न दे तो वह पंचेन्द्रिय कहा जायेगा अथवा चतुरिन्द्रिय ?

उत्तर : पंचेन्द्रिय ही कहा जायेगा क्योंकि उसमें द्रव्य इन्द्रियाँ विद्यमान होती हैं, परन्तु भावेन्द्रिय का अभाव होने पर जीव वैसे ही न्यून इन्द्रिय नहीं कहलाता है, जैसे वृद्धावस्था में किसी की श्रवण शक्ति नष्ट हो जाने पर चतुरिन्द्रिय नहीं कहलाता है।

(892) पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय और वनस्पतिकाय में कितनी इन्द्रियाँ पायी जाती हैं ?

उत्तर : **एक** – स्पर्शनेन्द्रिय।

(893) द्वीन्द्रिय जीवों में कितनी इन्द्रियाँ पायी जाती हैं ?

उत्तर : **दो इन्द्रियाँ** – 1 स्पर्शनेन्द्रिय 2 रसनेन्द्रिय।

(894) त्रीन्द्रिय जीवों में कितनी इन्द्रियाँ पायी जाती हैं ?

उत्तर : **तीन इन्द्रियाँ** – 1 स्पर्शनेन्द्रिय 2 रसनेन्द्रिय 3 घ्राणेन्द्रिय।

(895) चतुरिन्द्रिय जीवों में कितनी इन्द्रियाँ पायी जाती हैं ?

उत्तर : **चार इन्द्रियाँ** – 1 स्पर्शनेन्द्रिय 2 रसनेन्द्रिय 3 घ्राणेन्द्रिय 4 चक्षुरिन्द्रिय।

(896) गर्भज तिर्यंच और गर्भज मनुष्य में कितनी इन्द्रियाँ पायी जाती हैं ?

उत्तर : पांच इन्द्रियाँ - 1 स्पर्शनेन्द्रिय 2 रसनेन्द्रिय 3 घ्राणेन्द्रिय 4 चक्षुरिन्द्रिय 5 श्रोत्रेन्द्रिय ।

(897) समस्त देवों और नारकी जीवों में कितनी इन्द्रियाँ पायी जाती हैं ?

उत्तर : उपरोक्त पांचों इन्द्रियाँ पायी जाती हैं ।

(898) स्थावर जीवों में कितनी इन्द्रियाँ पायी जाती हैं ?

उत्तर : एक - स्पर्शनेन्द्रिय पायी जाती है ।

(899) त्रस जीवों में कितनी इन्द्रियाँ पायी जाती हैं ?

उत्तर : पांचों इन्द्रियाँ पायी जाती हैं ।

(900) सूक्ष्म जीवों में कितनी इन्द्रियाँ पायी जाती हैं ?

उत्तर : एक - स्पर्शनेन्द्रिय पायी जाती है ।

(901) बादर जीवों में कितनी इन्द्रियाँ पायी जाती हैं ?

उत्तर : पांचों इन्द्रियाँ पायी जाती हैं ।

(902) संमूर्च्छिम जीवों में कितनी इन्द्रियाँ पायी जाती हैं ?

उत्तर : पांचों इन्द्रियाँ पायी जाती हैं ।

(903) गर्भज जीवों में कितनी इन्द्रियाँ पायी जाती हैं ?

उत्तर : पांचों इन्द्रियाँ पायी जाती हैं ।

(904) औपपातिक जीवों में कितनी इन्द्रियाँ पायी जाती हैं ?

उत्तर : पांचों इन्द्रियाँ पायी जाती हैं ।

(905) भव्य और अभव्य जीवों में कितनी इन्द्रियाँ पायी जाती हैं ?

उत्तर : पांच इन्द्रियाँ पायी जाती हैं ।

(906) तीनों लोकों में कितनी इन्द्रियाँ पायी जाती हैं ?

उत्तर : पांचों इन्द्रियाँ पायी जाती हैं ।

(907) पुरुष वेदी, स्त्री वेदी एवं नपुंसक वेदी जीवों में कितनी इन्द्रियाँ पायी जाती हैं ?

उत्तर : पांचों इन्द्रियाँ पायी जाती हैं ।

(908) स्पर्शनेन्द्रिय कितने दण्डकों में पायी जाती है ?

उत्तर : समस्त चौबीस दण्डकों में पायी जाती हैं ।

(909) रसनेन्द्रिय कितने दण्डकों में पायी जाती है ?

उत्तर : पांच स्थावर के अतिरिक्त उन्नीस दण्डकों में रसनेन्द्रिय पायी जाती है ।

(910) घ्राणेन्द्रिय कितने दण्डकों में पायी जाती है ?

उत्तर : पांच स्थावर और द्वीन्द्रिय के अतिरिक्त अठारह दण्डकों में घ्राणेन्द्रिय पायी जाती है ।

(911) चक्षुरिन्द्रिय कितने दण्डकों में पायी जाती है ?

उत्तर : **सतरह दण्डकों में** - (1-13) देव दण्डक (14-15) गर्भज तिर्यंच - मनुष्य (16) नारकी (17) चतुरिन्द्रिय ।

(912) श्रोत्रेन्द्रिय कितने दण्डकों में पायी जाती है ?

उत्तर : **सोलह दण्डकों में** - पांच स्थावर और विकलेन्द्रिय त्रिक को छोड़कर ।

(913) पांचों इन्द्रियाँ कितने गुणस्थानकों में पायी जाती हैं ?

उत्तर : इन्द्रियाँ भाव तथा द्रव्य रूप दो प्रकार की कही गयी हैं ।

(1) केवलज्ञान होने पर भाव इन्द्रिय का कोई कार्य नहीं रह जाता है, अतः उसका उदय बारहवें गुणस्थानक तक होता है ।

(2) पंचेन्द्रिय नाम कर्म का उदय चौदहवें गुणस्थानक तक होने से द्रव्य इन्द्रिय अन्तिम गुणस्थानक तक होती है । परन्तु उस अयोगी गुणस्थानक में काय योग का निरोध होने से उसका कोई कार्य नहीं होता है ।

(914) एकेन्द्रिय जीव कितने गुणस्थानकों में पाये जाते हैं ?

उत्तर : कर्मग्रंथानुसार पहले एवं दूसरे गुणस्थानक में एवं सिद्धान्तानुसार केवल पहले गुणस्थानक में ही पाये जाते हैं ।

(915) विकलेन्द्रिय कितने गुणस्थानकों में पाये जाते हैं ?

उत्तर : प्रथम दो गुणस्थानकों में ।

(916) पंचेन्द्रिय जीव कितने गुणस्थानकों में पाये जाते हैं ?

उत्तर : एक से चौदह समस्त गुणस्थानकों में ।

(917) केवल पंचेन्द्रिय जीव कितने गुणस्थानकों में पाये जाते हैं ?

उत्तर : तीसरे से चौदहवें, इन बारह गुणस्थानकों में केवल पंचेन्द्रिय जीव ही पाये जाते हैं ।

(918) संज्ञी एवं असंज्ञी जीवों में कितनी इन्द्रियाँ पायी जाती हैं ?

उत्तर : पांचों इन्द्रियाँ ।

(919) चारों गतियों में कितनी इन्द्रियाँ पायी जाती हैं ?

उत्तर : पांचों इन्द्रियाँ पायी जाती हैं ।

(920) साधारण जीवों में कितनी इन्द्रियाँ पायी जाती हैं ?

उत्तर : एक - स्पर्शनेन्द्रिय ।

(921) प्रत्येक जीवों में कितनी इन्द्रियाँ पायी जाती हैं ?

उत्तर : पांचों इन्द्रियाँ पायी जाती हैं ।

(922) कितने दण्डकों में केवल एक इन्द्रिय ही पायी जाती हैं ?

उत्तर : **पांच दण्डकों में** - पृथ्वीकायादि पांच स्थावर ।

(923) कितने दण्डकों में दो इन्द्रियाँ पायी जाती हैं ?

उत्तर : **एक दण्डक में** - द्वीन्द्रिय ।

(924) कितने दण्डकों में तीन इन्द्रियाँ पायी जाती हैं ?

उत्तर : **एक दण्डक में** - त्रीन्द्रिय ।

(925) कितने दण्डकों में चार इन्द्रियाँ पायी जाती हैं ?

उत्तर : **एक दण्डक में** - चतुरिन्द्रिय ।

(926) कितने दण्डकों में पांचों इन्द्रियाँ पायी जाती हैं ?

उत्तर : **सोलह दण्डकों में** - (1-13) समस्त देव (14-15) गर्भज तिर्यंच - मनुष्य (16) नारकी ।

(927) पांचों इन्द्रियों के कारण कौन दुःखी हुए ?

उत्तर : (1) स्पर्शनेन्द्रिय-आसक्ति के कारण **कंडरिक मुनि** दुःखी हुए ।

(2) रसनेन्द्रिय-आसक्ति के कारण **मंगु आचार्य** दुःखी हुए ।

(3) घ्राणेन्द्रिय-आसक्ति के कारण **शैलक राजर्षि** दुःखी हुए ।

(4) चक्षुरिन्द्रिय-आसक्ति के कारण **इलायची कुमार** दुःखी हुए ।

(5) श्रोत्रेन्द्रिय-आसक्ति के कारण **प्रसन्नचंद्र मुनि** दुःखी हुए ।

(928) पांचों इन्द्रियों को किसने वश में किया ?

उत्तर : (1) स्पर्शनेन्द्रिय **खंधक मुनि** ने वश में की ।

(2) रसनेन्द्रिय **धन्ना अणगार** ने वश में की ।

(3) घ्राणेन्द्रिय **सुबुद्धिप्रधान** ने वश में की ।

(4) चक्षुरिन्द्रिय **स्थूलिभद्र मुनि** ने वश में की ।

(5) श्रोत्रेन्द्रिय **मैतारज मुनि** ने वश में की ।

(929) इन्द्रियों की प्राप्ति किस कर्म के कारण होती है ?

उत्तर : द्रव्येन्द्रिय की प्राप्ति नाम कर्म के कारण होती है और भावेन्द्रिय की प्राप्ति ज्ञानावरणीय एवं दर्शनावरणीय कर्म के क्षयोपशम से होती है ।

(930) जीव एकेन्द्रिय आदि किस कर्म के कारण कहलाते हैं ?

उत्तर : जाति नाम कर्म के कारण ।

(931) जाति नाम कर्म कितने प्रकार का कहा गया है ?

उत्तर : **पांच प्रकार का** - (1) एकेन्द्रिय जाति नाम कर्म (2) द्वीन्द्रिय जाति नाम कर्म (3) त्रीन्द्रिय जाति नाम कर्म (4) चतुरिन्द्रिय जाति नाम कर्म (5) पंचेन्द्रिय जाति नाम कर्म ।

(932) पांच इन्द्रियों में से भोगी इन्द्रियाँ कितनी हैं ?

उत्तर : **तीन इन्द्रियाँ** - (1) स्पर्शनेन्द्रिय (2) रसनेन्द्रिय (3) घ्राणेन्द्रिय ।

(933) पांच इन्द्रियों में से कामी इन्द्रियाँ कितनी हैं ?

उत्तर : **दो इन्द्रियाँ** - (1) चक्षुरिन्द्रिय (2) श्रोत्रेन्द्रिय ।

(934) स्पर्शनेन्द्रिय आदि पांचों इन्द्रियों को इस क्रम में क्यों रखा गया ?

उत्तर : स्पर्शनेन्द्रिय समस्त दण्डकों में पायी जाती है जबकि रसनेन्द्रिय आदि चार इन्द्रियाँ क्रमशः 19, 18, 17 और 16 दण्डकों में पायी जाती हैं ।

इस प्रकार स्पर्शनेन्द्रिय आदि पांचों इन्द्रियों के जीव क्रमशः अल्प-अल्प होने के कारण इन्द्रिय पंचक का यह क्रम रखा गया ।

(935) सम्यक्त्वी एवं मिथ्यात्वी जीवों में कितनी इन्द्रियाँ पायी जाती हैं ?

उत्तर : पांच इन्द्रियाँ ।

(936) पर्याप्त एवं अपर्याप्त अवस्था में कितनी इन्द्रियाँ पायी जाती हैं ?

उत्तर : पांच इन्द्रियाँ ।

(937) जीव कितने समय तक एकेन्द्रिय पर्याय में रहता है ?

उत्तर : जघन्यतः - अन्तर्मुहूर्त ।

उत्कृष्टतः - अनन्तकाल ।

(938) जीव कितने समय तक विकलेन्द्रिय पर्याय में रहता है ?

उत्तर : जघन्यतः - अन्तर्मुहूर्त ।

उत्कृष्टतः - संख्यात काल ।

(939) जीव कितने समय तक पंचेन्द्रिय पर्याय में रहता है ?

उत्तर : जघन्यतः - अन्तर्मुहूर्त ।

उत्कृष्टतः - साधिक हजार सागरोपम ।

नवम समुद्घात द्वार का विवेचन

(940) समुद्घात किसे कहते है ?

उत्तर : सम् अर्थात् एक साथ ।

उत् अर्थात् प्रबलता से ।

घात अर्थात् कर्म-क्षय ।

आत्म प्रदेशों को प्रबलतापूर्वक बाहर निकालकर उदीरणापूर्वक एक साथ कर्मों का क्षय करना, समुद्घात कहलाता है ।

(941) समुद्घात मुख्यरुपेण कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

उत्तर : दो प्रकार के - (1) अजीव समुद्घात (2) जीव समुद्घात ।

(942) अजीव समुद्घात किसे कहते है ?

उत्तर : अनंत परमाणुओं से बना हुआ अनन्त प्रदेशी स्कंध विश्रसा परिणाम स्वरुप (स्वाभाविक रूप से) चार समय में संपूर्ण लोकाकाश में व्याप्त हो जाता है और आगामी चार समयों में संहृत होकर मूल अवस्था में स्थित हो जाता है, उस प्रक्रिया को अजीव समुद्घात कहते है ।

(943) जीव समुद्घात कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

उत्तर : सात प्रकार के - (1) वेदना समुद्घात (2) कषाय समुद्घात (3) मरण समुद्घात (4) वैक्रिय समुद्घात (5) तैजस समुद्घात (6) आहारक समुद्घात (7) केवली समुद्घात ।

(944) वेदना समुद्घात किसे कहते है ?

उत्तर : वेदना (अशाता वेदनीय) से आकुल-व्याकुल आत्मा प्रबलतापूर्वक वेदनीय कर्म के पुद्गलों की उदीरणा करके उन्हें उदय आवलिका में लाकर एक साथ बहुत से कर्मों को खपाता है, उसे वेदना समुद्घात कहते है ।

(945) वेदना समुद्घात किस कर्म के कारण होता है ?

उत्तर : वेदनीय कर्म ।

(946) कषाय समुद्घात किसे कहते है ?

उत्तर : कषाय से आकुल-व्याकुल आत्मा प्रबलतापूर्वक कषाय चारित्र मोहनीय के पुद्गलों की उदीरणा करके उन्हें उदय आवलिका में लाकर एक साथ बहुत से कर्मों का क्षय करता है तथा नवीन कर्मों का बंध करता है, उसे कषाय समुद्घात कहते है ।

(947) कषाय समुद्घात किस कर्म के कारण होता है ?

उत्तर : मोहनीय कर्म ।

(948) कषाय समुद्घात कितने प्रकार का कहा गया है ?

उत्तर : चार प्रकार का -

(1) क्रोध समुद्घात (2) मान समुद्घात

(3) माया समुद्घात (4) लोभ समुद्घात

(949) मरण समुद्घात किसे कहते है ?

उत्तर : मरण के समय आकुल-व्याकुल आत्मा अपने आत्म-प्रदेशों को बाहर निकालकर आगामी उत्पत्ति स्थान तक स्वदेह प्रमाण स्थूल दण्डाकार में निर्मित करके प्रबलतापूर्वक आयुष्य कर्म के पुद्गलों की उदीरणा करके, उन्हें उदय आवलिका में लाकर एक साथ आयुष्य कर्म के बहुत से पुद्गलों का क्षय करता है, उस प्रक्रिया को मरण समुद्घात कहते है ।

(950) मरण समुद्घात किस कर्म के आश्रय से होता है ?

उत्तर : आयुष्य कर्म के अन्तिम अन्तर्मुहूर्त में ।

(951) वैक्रिय समुद्घात किसे कहते है ?

उत्तर : वैक्रिय लब्धिवंत आत्मा वैक्रिय शरीर निर्माण के समय प्रबलतापूर्वक

वैक्रिय शरीर नाम कर्म के पुद्गलों की उदीरणा करके, उन्हें उदय आवलिका में लाकर एक साथ खपाता है, उसे वैक्रिय समुद्घात कहते है ।

(952) वैक्रिय समुद्घात किस कर्म के आश्रय से होता है ?

उत्तर : वैक्रिय शरीर नाम कर्म ।

(953) आहारक समुद्घात किसे कहते है ?

उत्तर : आहारक लब्धिवंत आत्मा आहारक शरीर निर्माण के समय प्रबलतापूर्वक आहारक शरीर नाम कर्म के पुद्गलों की उदीरणा करके उन्हें उदय आवलिका में लाकर एक साथ खपाता है, उसे आहारक समुद्घात कहते है ।

(954) आहारक समुद्घात किस कर्म के आश्रय से होता है ?

उत्तर : आहारक शरीर नाम कर्म ।

(955) तैजस समुद्घात किसे कहते है ?

उत्तर : तेजोलेश्या लब्धिधर आत्मा तैजस शरीर निर्माण के समय प्रबलता पूर्वक तैजस शरीर नाम कर्म के पुद्गलों की उदीरणा करके उन्हें उदय आवलिका में लाकर एक साथ खपाता है, उसे तैजस समुद्घात कहते है ।

(956) तैजस समुद्घात किस कर्म के आश्रय से होता है ?

उत्तर : तैजस शरीर नाम कर्म ।

(957) केवली समुद्घात किसे कहते है ?

उत्तर : केवली भगवंत के नाम, गोत्र और वेदनीय, इन तीन कर्मों की स्थिति आयुष्य कर्म की अपेक्षा अधिक हो, तब उन्हें समान बनाने के लिये केवली भगवंत अपने आत्म-प्रदेशों को चौदह लोक में व्याप्त करते हैं तथा संहरण करते हैं, उस समय नाम, गोत्र तथा वेदनीय

कर्म के पुद्गलों की विशेष रूप से निर्जरा होती है, उनकी स्थिति आयुष्य कर्म के समान हो जाती है, उसे केवली समुद्घात कहते है।

(958) केवली समुद्घात किन कर्मों के आश्रय से होता है ?

उत्तर : वेदनीय, नाम और गौत्र नाम कर्म।

(959) केवली समुद्घात कितने नामों से पुकारा जाता है ?

उत्तर : (1) आवर्जीकरण (2) आवर्जितकरण (3) आवश्यककरण।

(960) आवर्जीकरण से क्या अभिप्राय है ?

उत्तर : जिस प्रक्रिया के अन्तर्गत उदयावलिका में कर्मदलिकों का निक्षेप होता है, उसे आवर्जीकरण कहते है।

(961) आवर्जितकरण किसे कहते है ?

उत्तर : केवली समुद्घात में आत्मा मोक्षाभिमुख होने के कारण इसे आवर्जितकरण कहते है।

(962) आवश्यककरण किसे कहते है ?

उत्तर : वेदनीय, नाम एवं गौत्र कर्म की स्थिति आयुष्य कर्म की अपेक्षा अधिक होने पर केवलज्ञानी के द्वारा अवश्य करने के कारण केवली समुद्घात को आवश्यककरण भी कहते है।

(963) केवली समुद्घात में केवली भगवंत कौन से कार्य करते हैं ?

उत्तर : 1 प्रथम समय में केवली भगवंत अपने आत्म-प्रदेशों को शरीर से बाहर निकालकर लोक प्रमाण ऊँचा तथा देह प्रमाण चौडा दण्ड निर्मित करते हैं।

2 दूसरे समय में उत्तर से दक्षिण लोकान्त तक कपाट निर्मित करते हैं।

3 तीसरे समय में पूर्व से पश्चिम लोकान्त तक कपाट निर्मित करते हैं।

4 चौथे समय में आत्म-प्रदेश संपूर्ण लोक में व्याप्त हो जाते हैं ।

5 पांचवें समय में आन्तरे (अन्तर) में से आत्म प्रदेशों को संकुचित करते हैं । अर्थात् आन्तरे का संहरण होता है ।

6 छट्ठे समय में मंथान में से आत्म प्रदेशों को संकुचित करते हैं । अर्थात् मंथान का संहरण होता है ।

7 सातवें समय में कपाट में से आत्म प्रदेशों को संकुचित करते हैं । अर्थात् कपाट का संहरण होता है ।

8 आठवें समय में दण्ड में से आत्म प्रदेशों को संकुचित करते हुए शरीरस्थ होते हैं ।

(964) किस समुद्घात में कर्मबंधन तथा कर्म निर्जरा, दोनों कार्य होते हैं ?

उत्तर : कषाय समुद्घात में ।

(965) किन समुद्घातों में पूर्वोपार्जित कर्मों का क्षय होता है, परन्तु कर्मबंधन नहीं होता है ?

उत्तर : 1 वेदना, 2 मरण, 3 वैक्रिय, 4 आहारक, 5 तैजस, 6 केवली समुद्घात में पूर्वकृत कर्मों का क्षय होता है तथा नवीन कर्मों का बंध नहीं होता है ।

(966) किन समुद्घातों में शरीर रचना के लिये आवश्यक पुद्गल ग्रहण किये जाते हैं ?

उत्तर : 1 वैक्रिय 2 आहारक 3 तैजस ।

(967) कितने समुद्घात इच्छापूर्वक ही होते हैं ?

उत्तर : चार **समुद्घात** - 1 वैक्रिय 2 आहारक 3 तैजस 4 केवली ।

(968) कितने समुद्घात इच्छापूर्वक नहीं हो सकते हैं ?

उत्तर : तीन **समुद्घात** - 1 वेदना 2 कषाय 3 मरण ।

(969) शरीर निर्माण के प्रत्येक प्रसंग पर कौन से समुद्घात अवश्यमेव होते हैं ?

उत्तर : तीन **समुद्घात** - 1 वैक्रिय 2 आहारक 3 तैजस ।

(970) पूर्वभवों में चौबीस दण्डकवर्ती जीवों ने स्व-पर्याय में कौनसा समुद्घात कितनी बार किया है ?

उत्तर : (1) पृथ्वीकाय के जीव ने पूर्व में पृथ्वीकाय में रहते हुए अनन्त बार वेदना-कषाय-मरण, तीनों समुद्घात अनन्तर बार किये हैं । शेष समुद्घात कभी नहीं किये हैं ।

(2-3-4) अप्काय-तेउकाय-वनस्पतिकाय के संदर्भ में पृथ्वीकायवत् समझना चाहिये ।

(5) वायुकाय के जीव ने पूर्व वायुकाय में रहते हुए वेदना-कषाय-मरण एवं वैक्रिय समुद्घात अनन्त बार किये हैं । शेष नहीं होने से कभी नहीं किये हैं ।

(6-8) विकलेन्द्रिय के जीवों स्व-स्व पर्याय में रहते हुए अनन्त बार प्रथम तीन समुद्घात किये हैं ।

(9) गर्भज तिर्यंच ने पूर्वभवों में गर्भज तिर्यंच के पर्याय में अनन्त बार प्रथम पांच समुद्घात किये हैं । शेष उनमें नहीं हुए हैं ।

(10) नारकी ने पूर्व में नारकी भवों में अनन्त बार प्रथम चार समुद्घात किये हैं । शेष नहीं किये हैं ।

(11-23) समस्त देवों ने पूर्व में उस-उस देव भव में अनन्त बार प्रथम पांच समुद्घात किये हैं, शेष नहीं किये हैं ।

(24) गर्भज मनुष्य ने पूर्व में गर्भज मनुष्य के पर्याय में प्रथम पांच समुद्घात अनन्त बार किये हैं ।
आहारक समुद्घात किसी ने नहीं भी किया हैं । किसी ने जघन्यतः एक बार और उत्कृष्टतः तीन बार किया है । केवली समुद्घात गर्भज मनुष्य ने पूर्व भवों में कभी नहीं किया है क्योंकि वह चरम भव में ही होता है ।

(971) छद्मस्थ तथा केवलज्ञानी में कितने समुद्घात पाये जाते हैं ?

उत्तर : (i) छद्मस्थ जीवों में केवली समुद्घात के अतिरिक्त छह समुद्घात पाये जाते हैं ।

(ii) केवलज्ञानी में एक मात्र केवली समुद्घात पाया जाता है ।

(972) एक समय में कितने जीव केवली समुद्घात करते हैं ?

उत्तर : एक समय में उत्कृष्टतः शत पृथक्त्व (दो सौ से नौ सौ) जीव केवली समुद्घात करते हैं ।

(973) एक समय में कितने जीव आहारक समुद्घात करते हैं ?

उत्तर : उत्कृष्टतः सहस्र पृथक्त्व (दो हजार से नौ हजार) ।

(974) पूर्वभवों में चौबीस दण्डकवर्ती जीवों ने समुद्घात कितनी बार किये हैं ?

उत्तर : (i) प्रथम पांच समुद्घात अनन्त बार किये हैं ।

(ii) आहारक समुद्घात किसी जीव ने नहीं भी किया है । जिन्होंने किया है, वह जघन्यतः एक बार और उत्कृष्टतः तीन बार किया है क्योंकि चतुर्थ बार करने वाला जीव चरम शरीरी ही होता है ।

(iii) केवली समुद्घात पूर्व भवों में एक बार भी नहीं किया है क्योंकि केवली समुद्घात चरम भव में ही संभवित है ।

(975) पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय और वनस्पतिकाय में कितने समुद्घात पाये जाते हैं ?

उत्तर : तीन समुद्घात - 1 वेदना 2 कषाय 3 मरण ।

(976) वायुकाय में कितने समुद्घात पाये जाते हैं ?

उत्तर : चार समुद्घात - 1 वेदना 2 कषाय 3 मरण 4 वैक्रिय ।

(977) द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवों में कितने समुद्घात पाये जाते हैं ?

उत्तर : तीन समुद्घात - 1 वेदना 2 कषाय 3 मरण ।

(978) पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वनस्पतिकाय और विकलेन्द्रिय त्रिक में वैक्रिय समुद्घात क्यों नहीं होता है ?

उत्तर : उपरोक्त जीवों में वैक्रिय लब्धि का अभाव होने के कारण वैक्रिय समुद्घात नहीं होता है ।

(979) नारकी जीवों में कितने समुद्घात पाये जाते हैं ?

उत्तर : **चार समुद्घात** - 1 वेदना 2 कषाय 3 मरण 4 वैक्रिय ।

(980) गर्भज मनुष्यों में कितने समुद्घात पाये जाते हैं ?

उत्तर : **सात समुद्घात** - 1 वेदना 2 कषाय 3 मरण 4 वैक्रिय 5 आहारक 6 तैजस 7 केवली ।

(981) किन मनुष्यों में सातों समुद्घात होते हैं ?

उत्तर : संख्य वर्षायु वाले कर्मभूमिज, लब्धि संपन्न, अयुगलिक मनुष्यों में सातों समुद्घात हो सकते हैं ।

(982) अकर्मभूमिज एवं अन्तर्द्वीपज युगलिक मनुष्यों में कितने समुद्घात पाये जाते हैं ?

उत्तर : युगलिक मनुष्यों में तैजस, आहारक, केवली और वैक्रिय लब्धियों का अभाव होने से उनमें तैजस आदि चार समुद्घात नहीं पाये जाते हैं । उनमें वेदना, कषाय तथा मरण रूप तीन समुद्घात ही पाये जाते हैं ।

(983) मनुष्यों में चार समुद्घात किस प्रकार पाये जाते हैं ?

उत्तर : वैक्रिय, आहारक एवं तैजस, इन तीन लब्धियों में से एक लब्धि से युक्त वाले मनुष्यों में चार समुद्घात पाये जाते हैं ।

(984) मनुष्यों में पांच समुद्घात किस प्रकार पाये जाते हैं ?

उत्तर : वैक्रिय, तैजस एवं आहारक, इन तीन प्रकार की लब्धियों में से किन्हीं भी दो लब्धि - धारक में वेदनादि तीन समुद्घातों के साथ उपरोक्त तीन समुद्घातों में से दो समुद्घात पाये जाते हैं, इस प्रकार कुल पांच समुद्घात पाये जाते हैं ।

(985) मनुष्यों में छह समुद्घात किस प्रकार पाये जाते हैं ?

उत्तर : वैक्रिय, आहारक और तैजस, इन लब्धियों से युक्त मनुष्यों में छहों समुद्घात पाये जाते हैं ।

(986) गर्भज तिर्यंचों में कितने समुद्घात पाये जाते हैं ?

उत्तर : **पांच समुद्घात** - 1 वेदना 2 कषाय 3 मरण 4 वैक्रिय 5 तैजस ।

(987) देवों में कितने समुद्घात पाये जाते हैं ?

उत्तर : **पांच समुद्घात** - 1 वेदना 2 कषाय 3 मरण 4 वैक्रिय 5 तैजस ।

(988) देव और गर्भज तिर्यंच में आहारक तथा केवली समुद्घात क्यों नहीं पाये जाते हैं ?

उत्तर : 1 आहारक समुद्घात चौदह पूर्वधर को ही संभव है जबकि गर्भज तिर्यंच एवं देव में सर्वविरति का अभाव होने से आहारक लब्धि नहीं होती है ।

2 केवली समुद्घात 13वें गुणस्थानक में ही संभव है जबकि गर्भज तिर्यंच में पांच एवं देव में चार गुणस्थानक ही पाये जाते हैं ।

(989) वेदना, कषाय और मरण समुद्घात कितने दण्डकों में पाये जाते हैं ?

उत्तर : समस्त दण्डकों में ।

(990) वैक्रिय समुद्घात कितने दण्डकों में पाया जाता है ?

उत्तर : **सतरह दण्डकों में** - (1-10) दस भवनपति देव (11-13) व्यंतर-ज्योतिष्क-वैमानिक देव (14) गर्भज मनुष्य (15) गर्भज तिर्यंच (16) नारकी (17) वायुकाय ।

(991) आहारक समुद्घात कितने दण्डकों में पाया जाता है ?

उत्तर : **एक दण्डक में** - गर्भज मनुष्य ।

(992) गर्भज मनुष्य के अतिरिक्त समस्त दण्डकों में आहारक समुद्घात का अभाव क्यों है ?

उत्तर : (i) आहारक समुद्घात आहारक लब्धिधर सर्वविरतिधर अप्रमत्त साधुओं में ही पाया जाता है । शेष दण्डकों में सर्वविरति और सप्तम-अष्टम गुणस्थानक का अभाव होने से आहारक लब्धि की प्राप्ति असंभव है और आहारक लब्धि के अभाव में आहारक समुद्घात असंभव है ।

(ii) आहारक लब्धि का उपयोग षष्टम् गुणस्थानक में ही होता है जबकि गर्भज मनुष्य के अतिरिक्त दण्डकों में षष्टम् गुणस्थानक का अभाव होता है ।

(993) तैजस समुद्घात कितने दण्डकों में पाया जाता है ?

उत्तर : पंद्रह दण्डकों में - (1-13) समस्त देव (14) गर्भज मनुष्य (15) गर्भज तिर्यंच ।

(994) केवली समुद्घात कितने दण्डकों में पाया जाता है ?

उत्तर : एक दण्डक में - गर्भज मनुष्य ।

(995) केवली समुद्घात गर्भज मनुष्य के एक दण्डक में ही क्यों होता है ?

उत्तर : केवली समुद्घात तेरहवें गुणस्थानक में ही संभव हैं । मनुष्य के अतिरिक्त अन्य कोई भी दण्डकवर्ती जीव सर्वविरति धर्म को धारण नहीं कर सकता है । सर्वविरति के अभाव में तेरहवें गुणस्थानक की प्राप्ति असंभव है । तेरहवें गुणस्थानक के अभाव में केवली समुद्घात असंभव है ।

(996) तीन समुद्घात कितने दण्डकों में पाये जाते हैं ?

उत्तर : सात दण्डकों में - (1-3) विकलेन्द्रिय त्रिक (4-7) पृथ्वी-अप्-तेउ-वनस्पतिकाय ।

(997) चार समुद्घात कितने दण्डकों में पाये जाते हैं ?

उत्तर : दो दण्डकों में - (1) वायुकाय (2) नारकी ।

(998) पांच समुद्घात कितने दण्डकों में पाये जाते हैं ?

उत्तर : **चौदह दण्डकों में** - (1-13) समस्त देव (14) गर्भज तिर्यंच ।

(999) सात समुद्घात कितने दण्डकों में पाये जाते हैं ?

उत्तर : **एक दण्डक में** - गर्भज मनुष्य ।

(1000) एकेन्द्रिय जीवों में कितने समुद्घात पाये जाते हैं ?

उत्तर : प्रथम चार समुद्घात ।

(1001) किन एकेन्द्रिय जीवों में दो समुद्घात ही पाये जाते हैं ?

उत्तर : लोक के अग्रभाग पर स्थित सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवों को उपघात का अभाव होने से उनमें कषाय और मरण रूप दो समुद्घात ही पाये जाते हैं ।

(1002) पंचेन्द्रिय जीवों में कितने समुद्घात पाये जाते हैं ?

उत्तर : सात समुद्घात ।

(1003) स्थावर जीवों में कितने समुद्घात पाये जाते हैं ?

उत्तर : प्रथम चार समुद्घात ।

(1004) त्रस जीवों में कितने समुद्घात पाये जाते हैं ?

उत्तर : सात समुद्घात ।

(1005) असंज्ञी जीवों में कितने समुद्घात पाये जाते हैं ?

उत्तर : प्रथम चार समुद्घात ।

(1006) संज्ञी जीवों में कितने समुद्घात पाये जाते हैं ?

उत्तर : सात समुद्घात ।

(1007) सूक्ष्म जीवों में कितने समुद्घात पाये जाते हैं ?

उत्तर : प्रथम तीन समुद्घात ।

(1008) बादर जीवों में कितने समुद्घात पाये जाते हैं ?

उत्तर : सात समुद्घात ।

(1009) गर्भज जीवों में कितने समुद्घात पाये जाते हैं ?

उत्तर : सात समुद्घात ।

(1010) संमूर्च्छिम जीवों में कितने समुद्घात पाये जाते हैं ?

उत्तर : प्रथम चार समुद्घात ।

(1011) औपपातिक जीवों में कितने समुद्घात पाये जाते हैं ?

उत्तर : प्रथम पांच समुद्घात ।

(1012) भव्य जीवों में कितने समुद्घात पाये जाते हैं ?

उत्तर : सात समुद्घात ।

(1013) अभव्य जीवों में कितने समुद्घात पाये जाते हैं ?

उत्तर : प्रथम पांच समुद्घात ।

(1014) उर्ध्व, मध्य तथा अधो लोक में कितने समुद्घात पाये जाते हैं ?

उत्तर : सात समुद्घात ।

(1015) उर्ध्व तथा अधो लोक में सात समुद्घात किस प्रकार हो सकते हैं ?

उत्तर : (1) मेरू पर्वत पर स्थित वे गुफाएँ जो उर्ध्व लोक मे अवस्थित हैं, उनमें ज्ञानी-ध्यानी महात्मा में चौदह पूर्वधर भी होते हैं और वे केवलज्ञानी मोक्ष प्राप्त करते हैं ।

(2) महाविदेह की कुबडी विजय अधोलोक में स्थित है जहाँ केवली आदि का सद्भाव है ।

इन कारणों से उर्ध्वलोक एवं अधोलोक में सात-सात समुद्घात कहे गये ।

(1016) पुरुष तथा नपुंसक वेद वाले जीवों में कितने समुद्घात पाये जाते हैं ?

उत्तर : सात समुद्घात ।

(1017) नपुंसक वेद वाले जीव में आहारक एवं केवली समुद्घात किस प्रकार संभव है ?

उत्तर : जो जीव जन्म से नपुंसक नहीं है, दुर्घटना आदि कारणों से बने उन कृत्रिम नपुंसक जीवों में आहारक एवं केवली समुद्घात संभव हैं।

(1018) स्त्री वेदी जीवों में कितने समुद्घात पाये जाते हैं ?

उत्तर : छह समुद्घात ।

(1019) स्त्री में आहारक समुद्घात का अभाव क्यों कहा गया ?

उत्तर : द्वादशम दृष्टिवाद अंग-आगम में वर्णित चतुर्दश पूर्वों का अध्ययन करने वाला ही आहारक शरीर बना सकता है ।

स्त्री वेद में उन चतुर्दश पूर्वों के अध्ययन का अभाव होने के कारण आहारक लब्धि की प्राप्ति नहीं होती है, जिससे तदाश्रित आहारक समुद्घात का भी स्त्री वेद में असद्भाव होता है ।

(1020) वेदना, कषाय और मरण समुद्घात कितने गुणस्थानकों में पाये जाते हैं ?

उत्तर : (i) **वेदना समुद्घात** - छह गुणस्थानकों में (1 से 6 तक),

(ii) **कषाय समुद्घात** - दस गुणस्थानकों में (1 से 10 तक),

(iii) **मरण समुद्घात** - दस गुणस्थानकों में (तृतीय गुणस्थानक रहित - 1 से 11 तक) ।

(1021) आहारक समुद्घात कितने गुणस्थानकों में पाया जाता है ?

उत्तर : केवल एक गुणस्थानक में (छट्ठे में) ।

(1022) वैक्रिय समुद्घात कितने गुणस्थानकों में पाया जाता है ?

उत्तर : छह गुणस्थानकों में (1 से 6 तक) ।

(1023) तैजस समुद्घात कितने गुणस्थानकों में पाया जाता है ?

उत्तर : छह गुणस्थानकों में (1 से 6 तक) ।

(1024) केवली समुद्घात कितने गुणस्थानकों में पाया जाता है ?

उत्तर : एक गुणस्थानक में (13वें में) ।

(1025) प्रत्येक जीवों में कितने समुद्घात पाये जाते हैं ?

उत्तर : सात समुद्घात ।

(1026) साधारण जीवों में कितने समुद्घात पाये जाते हैं ?

उत्तर : **तीन समुद्घात** – वेदना, कषाय तथा मरण ।

(1027) सबसे अधिक दण्डकों में कौनसा समुद्घात पाया जाता है ?

उत्तर : वेदना, कषाय एवं मरण समुद्घात समस्त 24 दण्डकों में पाये जाते हैं ।

(1028) सबसे कम दण्डकों में कौनसा समुद्घात पाया जाता है ?

उत्तर : आहारक तथा केवली समुद्घात (एक दण्डक में) ।

(1029) मनुष्य गति में कितने समुद्घात पाये जाते हैं ?

उत्तर : सात समुद्घात ।

(1030) कर्मभूमिज मनुष्यों में कितने समुद्घात पाये जाते हैं ?

उत्तर : सात समुद्घात ।

(1031) अकर्मभूमिज और अन्तर्द्वीपज मनुष्यों में कितने समुद्घात पाये जाते हैं ?

उत्तर : **तीन समुद्घात** – (1) वेदना (2) कषाय (3) मरण ।

(1032) देव तथा तिर्यंच गति में कितने समुद्घात पाये जाते हैं ?

उत्तर : पांच समुद्घात (आहारक व केवली बिना) ।

(1033) नरक गति में कितने समुद्घात पाये जाते हैं ?

उत्तर : चार समुद्घात (आहारक, केवली व तैजस बिना) ।

(1034) सातों समुद्घातों का काल बताओ ।

उत्तर : केवली समुद्घात का काल आठ समय का तथा शेष वेदनादि छह समुद्घातों का काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण कहा गया है ।

(1035) संपूर्ण भवचक्र में केवली समुद्घात कितनी बार हो सकता है ?

उत्तर : केवली समुद्घात एक बार ही होता है ।

(1036) संपूर्ण भवचक्र में आहारक समुद्घात कितनी बार हो सकता है ?

उत्तर : चार बार ।

(1037) एक भव में आहारक समुद्घात कितनी बार हो सकता है ?

उत्तर : **कर्मग्रंथमतानुसार** - दो बार ।

सिद्धान्तमतानुसार - एक बार ।

(1038) वेदना, कषाय, मरण, वैक्रिय तथा तैजस, ये पांचों समुद्घात कितनी बार हो सकते हैं ?

उत्तर : उपरोक्त समुद्घात निश्चित न होकर अनियत है, अतः संपूर्ण भव चक्र में अनेक बार हो सकते हैं ।

(1039) मिथ्यात्वी जीवों में कितने समुद्घात पाये जाते हैं ?

उत्तर : **पांच समुद्घात** - वेदना, कषाय, मरण, वैक्रिय तथा तैजस समुद्घात ।

(1040) सम्यक्त्वी जीवों में कितने समुद्घात पाये जाते हैं ?

उत्तर : सात समुद्घात ।

(1041) अपर्याप्त अवस्था में कितने समुद्घात संभव हैं ?

उत्तर : **तीन समुद्घात** - 1 वेदना 2 कषाय 3 मरण ।

(1042) पर्याप्त अवस्था में कितने समुद्घात पाये जाते हैं ?

उत्तर : सात समुद्घात ।

(1043) आहारक समुद्घात वाले जीव सबसे कम क्यों कहे गये ?

उत्तर : (1) आहारक शरीर का उत्कृष्टतः छह मास का विरहकाल कहा गया है ।

(2) आहारक समुद्घात आहारक शरीर के प्रारंभिक समयों में ही होता है, शेष समयों में नहीं ।

इन कारणों से आहारक समुद्घात वाले जीव सबसे कम कहे गये ।

दशम दृष्टि द्वार का विवेचन

(1044) दृष्टि किसे कहते है ?

उत्तर : जीव के दृष्टिकोण को दृष्टि कहा जाता है ।

(1045) दृष्टियाँ कितने प्रकार की कही गयी हैं ?

उत्तर : तीन - (1) मिथ्यादृष्टि (2) सम्यग्दृष्टि (3) मिश्रदृष्टि ।

(1046) मिथ्यादृष्टि को प्रथम स्थान क्यों दिया गया ?

उत्तर : (1) जीव का अनन्त काल मिथ्यात्व में ही व्यतीत होता है ।
(2) अनन्त जीव मिथ्यात्व में रहे हुए हैं ।

(1047) मिथ्यादृष्टि, सम्यक्दृष्टि और मिश्रदृष्टि को इस प्रकार क्रम क्यों दिया गया ?

उत्तर : अनादि मिथ्यादृष्टि जीव भवचक्र में सर्वप्रथम सम्यक्त्व ही प्राप्त करता है अतः मिथ्यादृष्टि के पश्चात सम्यक्दृष्टि को स्थान दिया गया । जिसने एक बार भी सम्यक्त्व का स्पर्श कर लिया है, वही जीव मिश्र दृष्टि को प्राप्त कर सकता है, अतः सम्यक्दृष्टि के बाद मिश्रदृष्टि को स्थान दिया गया है ।

(1048) मिथ्यादृष्टि किसे कहते है ?

उत्तर : जो जैसा नहीं है, उसे वैसा मानना, मिथ्यादृष्टि कहलाती है । जिनोक्त तत्त्व पर अश्रद्धा रखना मिथ्यादृष्टि कहलाती है । कुदेव, कुगुरु तथा कुधर्म में श्रद्धा रखना तथा सुदेव, सुगुरु और सुधर्म में अश्रद्धा रखना मिथ्यादृष्टि कहलाती है ।

(1049) मिथ्यादृष्टि को अन्य किन शब्दों में पुकारा जाता है ?

उत्तर : मिथ्यात्वी, मिथ्यादर्शनी आदि ।

(1050) मिथ्यात्व के कौनसे दो प्रकार कहे गये हैं ?

उत्तर : **मिथ्यात्व के दो प्रकार** - (1) व्यक्त मिथ्यात्व (2) अव्यक्त मिथ्यात्व ।

(1051) मिथ्यात्व के कौनसे तीन प्रकार कहे गये हैं ?

उत्तर : (1) अविनय मिथ्यात्व (2) अज्ञान मिथ्यात्व (3) आशातना मिथ्यात्व ।

(1052) मिथ्यात्व के कौनसे चार प्रकार कहे गये हैं ?

उत्तर : **मिथ्यात्व के चार प्रकार** - (1) प्ररूपणा मिथ्यात्व (2) प्रवर्तन मिथ्यात्व (3) परिणाम मिथ्यात्व (4) प्रदेश मिथ्यात्व ।

(1053) मिथ्यात्व के कौनसे पांच प्रकार कहे गये हैं ?

उत्तर : **मिथ्यात्व के पांच प्रकार** - (1) आभिग्रहिक मिथ्यात्व (2) अनाभिग्रहिक मिथ्यात्व (3) सांशयिक मिथ्यात्व (4) आभिनिवेशिक मिथ्यात्व (5) अनाभोगिक मिथ्यात्व ।

(1054) मिथ्यात्व के कौनसे छह प्रकार कहे गये हैं ?

उत्तर : **मिथ्यात्व के छह प्रकार** - (1) लौकिक देवगत मिथ्यात्व (2) लोकोत्तर देवगत मिथ्यात्व (3) लौकिक गुरुगत मिथ्यात्व (4) लोकोत्तर गुरुगत मिथ्यात्व (5) लौकिक धर्मगत मिथ्यात्व । (6) लोकोत्तर धर्मगत मिथ्यात्व ।

(1055) मिथ्यात्व के कौनसे दस प्रकार कहे गये हैं ?

उत्तर : **मिथ्यात्व के दस प्रकार** - (1) धर्म को अधर्म मानना (2) अधर्म को धर्म मानना (3) साधु को असाधु मानना (4) असाधु को साधु मानना (5) मुक्त को अमुक्त मानना (6) अमुक्त को मुक्त मानना (7) जीव को अजीव मानना (8) अजीव को जीव मानना (9) कुमार्ग को सुमार्ग मानना (10) सुमार्ग को कुमार्ग मानना ।

(1056) व्यक्त मिथ्यात्व किसे कहते है ?

उत्तर : व्यवहार राशि वाले जीवों का मिथ्यात्व, व्यक्त मिथ्यात्व कहलाता है ।

(1057) अव्यक्त मिथ्यात्व किसे कहते है ?

उत्तर : अव्यवहार राशि वाले जीवों का मिथ्यात्व, अव्यक्त मिथ्यात्व कहलाता है ।

(1058) मिथ्यात्व के तीन प्रकार कौनसे है ?

उत्तर : स्थानांग सूत्र (तृतीय स्थान-द्वितीय उद्देश, सूत्र 403) में मिथ्यात्व के तीन भेदों की विवेचना की गयी है - (1) अक्रिया (2) अविनय (3) अज्ञान। ये तीनों मिथ्यात्व विपरीत श्रद्धान रुप मिथ्यादर्शन के अर्थ में न होकर क्रियाओं की असमीचीनता के अर्थ में है।

(1059) अक्रिया मिथ्यात्व किसे कहते है ?

उत्तर : जो क्रिया मोक्ष-प्राप्ति में हेतुरुप नहीं है, उनका अनुष्ठान अक्रिया मिथ्यात्व कहलाता है।

(1060) अविनय मिथ्यात्व किसे कहते है ?

उत्तर : तत्त्वत्रयी और रत्नत्रयी का विनय नही करना अविनय मिथ्यात्व कहलाता है।

(1061) अज्ञान मिथ्यात्व किसे कहते है ?

उत्तर : मुक्ति की युक्तिरुप सम्यक्ज्ञान के अतिरिक्त समस्त लौकिक ज्ञान, अज्ञान मिथ्यात्व कहलाता है।

(1062) आभिग्रहिक मिथ्यात्व किसे कहते है ?

उत्तर : 'मैं ही सही हूँ, शेष सभी गलत हैं' ऐसा मानना आभिग्रहिक मिथ्यात्व कहलाता है।

(1063) अनाभिग्रहिक मिथ्यात्व किसे कहते है ?

उत्तर : 'सभी धर्म समान है' ऐसा मानना अनाभिग्रहिक मिथ्यात्व कहलाता है।

(1064) सांशयिक मिथ्यात्व किसे कहते है ?

उत्तर : परमात्मा के वचनों में संदेह-शंका करना, सांशयिक मिथ्यात्व कहलाता है।

(1065) आभिनिवेशिक मिथ्यात्व किसे कहते है ?

उत्तर : स्वयं के असत्य को जानते हुए भी अभिमान एवं हठपूर्वक उसे

पकडे रखना आभिनिवेशिक मिथ्यात्व कहलाता है ।

(1066) अनाभौगिक मिथ्यात्व किसे कहते है ?

उत्तर : जीवादि नव पदार्थों के अज्ञान के कारण लगने वाला मिथ्यात्व, अनाभौगिक मिथ्यात्व कहलाता है ।

(1067) प्ररूपणा मिथ्यात्व किसे कहते है ?

उत्तर : तीर्थंकर परमात्मा द्वारा प्ररुपित सूत्र-सिद्धान्त से विपरीत उपदेश देना, प्ररूपणा मिथ्यात्व कहलाता है ।

(1068) प्रवर्तन मिथ्यात्व किसे कहते है ?

उत्तर : तीर्थंकर परमात्मा द्वारा प्ररुपित सूत्र-सिद्धान्त से विपरीत आचरण करना, प्रवर्तन मिथ्यात्व कहलाता है ।

(1069) परिणाम मिथ्यात्व किसे कहते है ?

उत्तर : तीर्थंकर परमात्मा द्वारा प्ररुपित सूत्र-सिद्धान्त पर अश्रद्धा रखना, परिणाम मिथ्यात्व कहलाता है ।

(1070) प्रदेश मिथ्यात्व किसे कहते है ?

उत्तर : मिथ्यात्व मोहनीय के कर्मदलिकों को भोगना, प्रदेश मिथ्यात्व कहलाता है ।

(1071) लौकिक देवगत मिथ्यात्व किसे कहते है ?

उत्तर-: लौकिक/सांसारिक देवों को सुदेव मानना लौकिक देवगत मिथ्यात्व कहलाता है । जैसे कर्म युक्त देव को कर्म मुक्त देव मानना ।

(1072) लोकोत्तर देवगत मिथ्यात्व किसे कहते है ?

उत्तर : लोकोत्तर/मुक्त देवों की सुख, संपत्ति एवं सत्ता के लिये पूजा-अर्चना, गुणोत्कीर्तन करना लोकोत्तर देवगत मिथ्यात्व कहलाता है । जैसे रुप-सौंदर्य आदि की प्राप्ति के लिये अरिहंत देव की पूजना करना ।

(1073) लौकिक गुरुगत मिथ्यात्व किसे कहते है ?

उत्तर : महाव्रत, समिति, गुप्ति, संयमादि गुणों से रहित लौकिक संसारार्थी साधुओं को सुगुरु मानना लौकिक गुरुगत मिथ्यात्व कहलाता है।

(1074) लोकोत्तर गुरुगत मिथ्यात्व किसे कहते है ?

उत्तर : संसारवर्द्धक साधन-उपकरणादि के लिये संयमी-क्षमाशील-त्यागी साधुओं की सेवा-सुश्रुषा करना लोकोत्तर गुरुगत मिथ्यात्व कहलाता है।

(1075) लौकिक धर्मगत मिथ्यात्व किसे कहते है ?

उत्तर : हिंसा, आरंभ-समारंभ, असंयम को जन्म देने वाले, बढाने वाले धर्म को सुधर्म मानना, उसमें श्रद्धा रखना लौकिक धर्मगत मिथ्यात्व कहलाता है।

(1076) लोकोत्तर धर्मगत मिथ्यात्व किसे कहते है ?

उत्तर : संयम-साधना, आत्म-आराधना रुप श्रमण/श्रावक धर्म की उपासना धन-यश-रुप-बलादि की वृद्धि-प्राप्ति के हेतु से करना लोकोत्तर धर्मगत मिथ्यात्व कहलाता है।

(1077) सम्यग्दृष्टि किसे कहते है ?

उत्तर : जो जैसा है, उसे वैसा मानना सम्यक्दृष्टि कहलाती है। जिनोक्त तत्त्व पर श्रद्धा रखना सम्यक्दृष्टि कहलाती है। सुदेव, सुगुरु और सुधर्म में श्रद्धा रखना और कुदेव, कुगुरु, कुधर्म में श्रद्धा नहीं रखना सम्यग्दृष्टि कहलाती है।

(1078) सम्यग्दृष्टि को अन्य किन-किन नामों से पुकारा जा सकता है ?

उत्तर : सम्यक्त्वी, सम्यग्दर्शनी, समकिती आदि।

(1079) सम्यक्त्व के पांच प्रकार कौनसे कहे गये है ?

उत्तर : 1 क्षायिक सम्यक्त्व 2 क्षायोपशमिक सम्यक्त्व 3 औपशमिक

सम्यक्त्व 4 सास्वादन सम्यक्त्व 5 वेदक सम्यक्त्व ।

(1080) सम्यक्दर्शन के तीन भेद कौनसे कहे गये हैं ?

उत्तर : 1 रोचक सम्यक्त्व 2 कारक सम्यक्त्व 3 दीपक सम्यक्त्व ।

(1081) सम्यक्त्व के दो भेद कौनसे कहे गये हैं ?

उत्तर : सम्यक्त्व के दो भेद अनेकविध कहे गये हैं -

1 भाव सम्यक्त्व 2 द्रव्य सम्यक्त्व ।

1 निसर्ग सम्यक्त्व 2 अधिगम सम्यक्त्व ।

1 निश्चय सम्यक्त्व 2 व्यवहार सम्यक्त्व ।

(1082) क्षायिक सम्यक्त्व किसे कहते है ?

उत्तर : अनन्तानुबंधी क्रोध-मान-माया-लोभ, सम्यक्त्व मोहनीय, मिथ्यात्व मोहनीय और मिश्र मोहनीय, इन सात प्रकृतियों का सर्वथा क्षय होने पर प्रकट होने वाला सम्यक्त्व, क्षायिक सम्यक्त्व कहलाता है । उपरोक्त सात प्रकृतियों को दर्शन सप्तक भी कहा जाता है ।

(1083) क्षायोपशमिक सम्यक्त्व किसे कहते हैं ?

उत्तर : दर्शन सप्तक के क्षयोपशम से होने वाला सम्यक्त्व, क्षायोपशमिक सम्यक्त्व कहलाता है ।

(1084) औपशमिक सम्यक्त्व किसे कहते है ?

उत्तर : दर्शन सप्तक के उपशम से होने वाला सम्यक्त्व, औपशमिक सम्यक्त्व कहलाता है ।

(1085) सास्वादन सम्यक्त्व किसे कहते है ?

उत्तर : सम्यक्त्व से पतित जीव में मिथ्यात्व प्राप्त करने से पूर्व सम्यक्त्व का जो सामान्य परिणाम (स्वाद) आत्मा में रहता है, उसे सास्वादन सम्यक्त्व कहते है ।

(1086) वेदक सम्यक्त्व किसे कहते है ?

उत्तर : क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्ति के कुछ क्षण पूर्व का सम्यक्त्व वेदक सम्यक्त्व कहलाता है ।

(1087) द्रव्य सम्यक्त्व किसे कहते हैं ?

उत्तर : यथार्थ ज्ञान के अभाव में भी परमात्मा के वचनों पर पूर्ण आस्था रखना, द्रव्य सम्यक्त्व कहलाता है ।

(1088) भाव सम्यक्त्व किसे कहते हैं ?

उत्तर : यथार्थ ज्ञान के सद्भाव में परमात्मा के वचनों पर पूर्ण श्रद्धा रखना, भाव सम्यक्त्व कहलाता है ।

(1089) अधिगम सम्यक्त्व किसे कहते हैं ?

उत्तर : प्रतिमा, आगम, प्रवचन श्रवण इत्यादि बाह्य निमित्तों से होने वाला सम्यक्त्व, अधिगम सम्यक्त्व कहलाता है ।

(1090) निसर्ग सम्यक्त्व किसे कहते हैं ?

उत्तर : प्रतिमादि बाह्य निमित्तों के अभाव में सहज आत्म परिणामों की विशुद्धि के परिणामस्वरूप होने वाला सम्यक्त्व, निसर्ग सम्यक्त्व कहलाता है ।

(1091) रोचक सम्यक्त्व किसे कहते हैं ?

उत्तर : अनुत्तर वैमानिक देवों की भाँति परमात्मा के वचनों पर श्रद्धा हो पर तदनुरूप क्रिया न हो, उसे रोचक सम्यक्त्व कहते हैं ।

(1092) कारक सम्यक्त्व किसे कहते हैं ?

उत्तर : श्रमण-श्रमणी-श्रावक-श्राविका की भाँति जिस सम्यक्त्व में परमात्मा के वचनों पर श्रद्धा हो एवं तदनुरूप आचरण हो, उसे कारक सम्यक्त्व कहते हैं ।

(1093) दीपक सम्यक्त्व किसे कहते हैं ?

उत्तर : अंगारमर्दकाचार्य की भाँति स्वयं व्यक्ति में सम्यक्त्व नहीं हो, पर

उसके उपदेश आदि से अन्य व्यक्ति सम्यक्त्व प्राप्त कर लेते हैं, वह दीपक सम्यक्त्व कहलाता है ।

(1094) निश्चय सम्यक्त्व किसे कहते है ?

उत्तर : 'मैं निरंजन-निर्विकार आत्मा हूँ', इस प्रकार का निश्चयात्मक अवबोध, निश्चय सम्यक्त्व कहलाता है ।

(1094) व्यवहार सम्यक्त्व किसे कहते है ?

उत्तर : देव, गुरु एवं धर्म पर श्रद्धानुरूप दिखायी देने वाला व्यवहार-आचार, व्यवहार सम्यक्त्व कहलाता है ।

(1096) मिश्रदृष्टि किसे कहते है ?

उत्तर : जिस प्रकार नालिकेर द्वीपवासियों को अन्न पर न रुचि होती है, न अरुचि होती है, उसी प्रकार जिस व्यक्ति की धर्म पर न श्रद्धा होती है, न अश्रद्धा होती है, उसे मिश्रदृष्टि कहते है ।

(1097) मिश्रदृष्टि में सम्यक्दृष्टि तथा मिथ्यादृष्टि, दोनों दृष्टियों की उपस्थिति प्रतीत होती है जबकि सम्यक्त्व तथा मिथ्यात्व, दोनों की अनुपस्थिति क्यों कही गयी ?

उत्तर : जिस प्रकार अंधकार और प्रकाश साथ-साथ नहीं रह सकते, उसी प्रकार सम्यक्त्व और मिथ्यात्व, दोनों की एक साथ उपस्थिति असंभव है ।

सम्यक्त्व जिन गुणस्थानकों में है, उनमें मिथ्यात्व का अभाव है अतः मिश्रदृष्टि का अर्थ दोनों की उपस्थिति नहीं है बल्कि दोनों का अभाव है ।

(1098) पृथ्वीकायिक-अप्कायिक-वनस्पतिकायिक जीवों में कितनी दृष्टियाँ पायी जाती हैं ?

उत्तर : **सिद्धान्तानुसार** - एक मिथ्यादृष्टि ही होती है ।

कर्मग्रंथानुसार – मिथ्या और सम्यक्, दो दृष्टियाँ होती हैं।

(1099) पृथ्वीकायादि तीन में सम्यग्दृष्टि किस प्रकार संभव है ?

उत्तर : दूसरे ईशान विमान तक के देवों में से कोई सम्यक्त्वी देव, नारकी, मनुष्य अथवा पंचेन्द्रिय तिर्यंच जब बादर लब्धि पर्याप्त पृथ्वीकायादि तीन दण्डकों में उत्पन्न होता है तब अपर्याप्त अवस्था में सास्वादन सम्यक्त्व पाया जाता है।

(1100) तेउकाय और वायुकाय के जीवों में कितनी दृष्टियाँ पायी जाती हैं ?

उत्तर : एक दृष्टि – मिथ्यादृष्टि।

(1101) विकलेन्द्रिय त्रिक में कितनी दृष्टियाँ पायी जाती हैं ?

उत्तर : दो दृष्टि – 1 मिथ्यादृष्टि 2 सम्यग्दृष्टि।

(1102) विकलेन्द्रिय में सम्यक्दृष्टि किस प्रकार संभव है ?

उत्तर : जिस मनुष्य एवं तिर्यंच ने पूर्व में विकलेन्द्रिय आयुष्य बांध लिया है, तत्पश्चात् अन्तिम समय में औपशमिक सम्यक्त्व का वमन करता हुआ विकलेन्द्रिय में उत्पन्न होता है, तब अपर्याप्त अवस्था में सम्यक्त्व के आस्वादन की विद्यमानता होने से सम्यक्दृष्टि कही गयी। पर्याप्त अवस्था में वे निश्चयतः मिथ्यात्वी ही होते हैं।

(1103) गर्भज मनुष्य, गर्भज तिर्यंच, देव और नारकी में कितनी दृष्टियाँ पायी जाती हैं ?

उत्तर : तीन दृष्टि – 1 मिथ्यादृष्टि 2 सम्यग्दृष्टि 3 मिश्रदृष्टि।

(1104) अकर्मभूमिज मनुष्यों में कितनी दृष्टियाँ पायी जाती हैं ?

उत्तर : अकर्मभूमिज युगलिकों में सम्यक्दृष्टि, मिश्रदृष्टि तथा मिथ्यादृष्टि रूप तीनों दृष्टियाँ पायी जाती हैं।

(1105) अन्तर्द्वीपज मनुष्यों में कितनी दृष्टियाँ पायी जाती है ?

उत्तर : अन्तर्द्वीपज मनुष्यों में तीनों दृष्टियाँ पायी जाती हैं।

(1106) भरत, ऐरावत एवं महाविदेह क्षेत्र में कितनी दृष्टियाँ पायी जाती हैं ?

उत्तर : भरत, ऐरावत एवं महाविदेह क्षेत्र में तीनों दृष्टियाँ पायी जाती हैं।

(1107) एक दृष्टि कितने दण्डकों में पायी जाती है ?

उत्तर : **सिद्धान्तानुसार** - पांच दण्डकों में (पांच स्थावर)।

कर्मग्रंथानुसार - दो दण्डकों में (तेउ-वायुकाय)।

(1108) दो दृष्टियाँ कितने दण्डकों में पायी जाती हैं ?

उत्तर : **कर्मग्रंथानुसार** - छह दण्डकों में (पृथ्वी-अप्-वनस्पतिकाय और विकलेन्द्रिय त्रिक)।

सिद्धान्तानुसार - तीन दण्डकों में (विकलेन्द्रिय त्रिक)।

(1109) तीन दृष्टियाँ कितने दण्डकों में पायी जाती हैं ?

उत्तर : **सोलह दण्डकों में** - नारकी, गर्भज तिर्यंच, गर्भज मनुष्य, दस भवनपति देव, व्यतंर देव, ज्योतिष्क देव, वैमानिक देव।

(1110) एक जीव में तीन दृष्टियाँ किस प्रकार हो सकती हैं ?

उत्तर : एक जीव में तीनों दृष्टियाँ एक समय में एक साथ नहीं हो सकती हैं। एक समय में एक जीव में एक ही दृष्टि हो सकती है, परन्तु समयान्तराल के कारण गर्भज तिर्यंच, मनुष्य, देव तथा नारकी, - चारों में तीनों दृष्टियों का सद्भाव हो सकता है।

(1111) मिथ्यादृष्टि कितने दण्डकों में पायी जाती है ?

उत्तर : समस्त चौबीस दण्डकों में।

(1112) सम्यक्दृष्टि कितने दण्डकों में पायी जाती है ?

उत्तर : **सिद्धान्तानुसार** - पांच स्थावर के सिवाय उन्नीस दण्डकों में।

कर्मग्रंथानुसार - तेउ-वायुकाय के सिवाय बावीस दण्डकों में।

(1113) मिश्रदृष्टि कितने दण्डकों में पायी जाती हैं ?

उत्तर : पांच स्थावर एवं विकलेन्द्रिय त्रिक सिवाय शेष सोलह दण्डकों में पायी जाती है ।

(1114) मनुष्य-देव-नरक-तिर्यंच गति में कितनी दृष्टियाँ पायी जाती हैं ?

उत्तर : चारों गतियों में तीन-तीन दृष्टियाँ पायी जाती हैं ।

(1115) एकेन्द्रिय जीवों में कितनी दृष्टियाँ पायी जाती हैं ?

उत्तर : **सिद्धान्तानुसार** - एक दृष्टि (मिथ्या) ।

कर्मग्रंथानुसार - दो दृष्टियाँ (मिथ्या तथा सम्यक्) ।

(1116) पंचेन्द्रिय जीवों में कितनी दृष्टियाँ पायी जाती हैं ?

उत्तर : तीन दृष्टियाँ ।

(1117) स्थावर जीवों में कितनी दृष्टियाँ पायी जाती हैं ?

उत्तर : **सिद्धान्तानुसार** - एक मिथ्यादृष्टि ।

कर्मग्रंथानुसार - दो दृष्टियाँ (मिथ्या तथा सम्यक्) ।

(1118) त्रस जीवों में कितनी दृष्टियाँ पायी जाती हैं?

उत्तर : तीन दृष्टियाँ ।

(1119) गर्भज जीवों में कितनी दृष्टियाँ पायी जाती हैं ?

उत्तर : तीन दृष्टियाँ ।

(1120) संमूर्च्छिम जीवों में कितनी दृष्टियाँ पायी जाती हैं ?

उत्तर : **दो दृष्टि** - मिथ्यादृष्टि तथा सम्यक्दृष्टि ।

(1121) औपपातिक जीवों में कितनी दृष्टियाँ पायी जाती हैं ?

उत्तर : तीन दृष्टियाँ ।

(1122) तीनों वेदों में कितनी दृष्टियाँ पायी जाती हैं ?

उत्तर : तीन दृष्टियाँ ।

(1123) तीनों लोकों में कितनी दृष्टियाँ पायी जाती हैं ?

उत्तर : तीन दृष्टियाँ ।

(1124) सूक्ष्म जीवों में कितनी दृष्टियाँ पायी जाती हैं ?

उत्तर : एक - मिथ्यादृष्टि ।

(1125) बादर जीवों में कितनी दृष्टियाँ पायी जाती हैं ?

उत्तर : तीन दृष्टियाँ ।

(1126) संज्ञी जीवों में कितनी दृष्टियाँ पायी जाती हैं ?

उत्तर : तीन दृष्टियाँ ।

(1127) असंज्ञी जीवों में कितनी दृष्टियाँ पायी जाती हैं ?

उत्तर : **दो दृष्टि** - मिथ्या एवं सम्यग्दृष्टि ।

(1128) भव्य जीवों में कितनी दृष्टियाँ पायी जाती हैं ?

उत्तर : तीन दृष्टियाँ ।

(1129) अभव्य जीवों में कितनी दृष्टियाँ पायी जाती हैं ?

उत्तर : एक - मिथ्यादृष्टि ।

(1130) मिथ्यादृष्टि कितने गुणस्थानकों में पायी जाती है ?

उत्तर : एक - पहले मिथ्यादृष्टि गुणस्थानक में ।

(1131) मिश्र दृष्टि कितने गुणस्थानकों में पायी जाती है ?

उत्तर : एक - तीसरे मिश्रदृष्टि गुणस्थानक में ।

(1132) सम्यग्दृष्टि कितने गुणस्थानकों में पायी जाती है ?

उत्तर : बारह गुणस्थानकों (पहले/तीसरे को छोड़कर) में ।

(1133) क्षायिक आदि सम्यक्त्व किन गुणठाणों में पाये जाते हैं ?

उत्तर : (1) क्षायिक सम्यक्त्व - 4 से 14 तक

(2) क्षायोपशमिक सम्यक्त्व - 4 से 7 तक

(3) औपशमिक सम्यक्त्व - 4 से 11 तक

(4) सास्वादन सम्यक्त्व - दूसरे गुणस्थानक में ।

(1134) प्रत्येक जीवों में कितनी दृष्टियाँ पायी जाती हैं ?

उत्तर : तीन दृष्टियाँ ।

(1135) साधारण जीवों में कितनी दृष्टियाँ पायी जाती हैं ?

उत्तर : एक - मिथ्यादृष्टि ।

(1136) सबसे ज्यादा दण्डकों में पायी जाने वाली दृष्टि कौनसी है ?

उत्तर : मिथ्यादृष्टि ।

(1137) सबसे कम दण्डकों में पायी जाने वाली दृष्टि कौनसी है ?

उत्तर : मिश्रदृष्टि ।

(1138) किस कर्म के उदय से जीव मिथ्यात्वी होता है ?

उत्तर : मिथ्यात्व मोहनीय ।

(1139) किस कर्म के उदय से जीव मिश्रदृष्टि वाला होता है ?

उत्तर : मिश्र मोहनीय ।

(1140) किस कर्म के क्षय से जीव क्षायिक सम्यक्त्वी होता है ?

उत्तर : अनन्तानुबंधी क्रोध-मान-माया-लोभ, सम्यक्त्व मोहनीय, मिश्र मोहनीय और मिथ्यात्व मोहनीय, इन सातों प्रकृत्तियों के क्षय से जीव क्षायिक सम्यक्त्वी होता है ।

(1141) मिथ्यादृष्टि का काल कितना कहा गया है ?

उत्तर : सादि सान्त मिथ्यादृष्टि का काल - जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त एवं उत्कृष्टतः अनन्त उत्सर्पिणी एवं अवसर्पिणी । अभव्य जीव अनादि अनन्त काल तक मिथ्यात्व में ही रहता है ।

(1142) मिश्रदृष्टि का काल कितना कहा गया है ?

उत्तर : जघन्यतः एवं उत्कृष्टतः - अन्तर्मुहूर्त ।

(1143) क्षायिक सम्यक्दृष्टि का काल कितना कहा गया है ?

उत्तर : सादि अनन्तकाल ।

(1144) औपशमिक सम्यक्त्व का काल कितना कहा गया है ?

उत्तर : जघन्यतः तथा उत्कृष्टतः - अन्तर्मुहूर्त ।

(1145) क्षायोपशमिक सम्यक्त्व का काल कितना कहा गया है ?

उत्तर : जघन्यतः - अन्तर्मुहूर्त ।
उत्कृष्टतः - साधिक 66 सागरोपम ।

(1146) सम्यक्त्वी जीवों में कितनी दृष्टियाँ पायी जाती हैं ?

उत्तर : एक दृष्टि - सम्यक् ।

(1147) मिथ्यात्वी जीवों में कितनी दृष्टियाँ पायी जाती हैं ?

उत्तर : एक दृष्टि - मिथ्या ।

(1148) पर्याप्त तथा अपर्याप्त अवस्था में कितनी दृष्टियाँ पायी जाती हैं ?

उत्तर : तीनों दृष्टियाँ ।

एकादशम दर्शन द्वार का विवेचन

(1149) दर्शन किसे कहते है ?

उत्तर : वस्तु में स्थित सामान्य धर्म को जानने वाली आत्मिक शक्ति को दर्शन कहते है ।

(1150) दर्शन कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

उत्तर : चार प्रकार के - (1) चक्षुदर्शन (2) अचक्षुदर्शन (3) अवधिदर्शन (4) केवलदर्शन ।

(1151) चक्षुदर्शन किसे कहते है ?

उत्तर : वस्तु में स्थित सामान्य धर्म को चक्षु से जानने की आत्मिक शक्ति को चक्षुदर्शन कहते है ।

(1152) अचक्षुदर्शन किसे कहते है ?

उत्तर : वस्तु में स्थित सामान्य धर्म को चक्षुरिन्द्रिय के सिवाय स्पर्शनेन्द्रिय

आदि से जानने की आत्मिक शक्ति को अचक्षुदर्शन कहते है।

(1153) अचक्षुदर्शन कितने प्रकार से होता है ?

उत्तर : पांच प्रकार से – (1) स्पर्शनेन्द्रिय (2) रसनेन्द्रिय (3) घ्राणेन्द्रिय (4) श्रोत्रेन्द्रिय (5) मन।

(1154) अवधिदर्शन किसे कहते है ?

उत्तर : मन और इन्द्रियों की सहायता के बिना रुपी पदार्थों में स्थित सामान्य धर्म को जानने की आत्मिक शक्ति को अवधिदर्शन कहते है।

(1155) केवलदर्शन किसे कहते है ?

उत्तर : मन और इन्द्रियों की सहायता के बिना समस्त द्रव्य-क्षेत्र-काल- भाव (पर्याय) में स्थित सामान्य धर्म को जानने की आत्मिक शक्ति को केवलदर्शन कहते है।

(1156) अचक्षु आदि दर्शन चतुष्क इस क्रम से क्यों रखे गये ?

उत्तर : चक्षुदर्शन की बजाय अचक्षुदर्शन की, अचक्षुदर्शन की अपेक्षा अवधिदर्शन की और अवधिदर्शन की अपेक्षा केवलदर्शन की ग्रहण क्षमता अधिक है, अतः बढते हुए क्रम में देने से चक्षुदर्शन अल्पतम ग्रहण शक्ति वाला होने से प्रथम स्थान पर रखा गया, शेष अधिक-अधिक ग्रहण-क्षमता वाले होने से बाद में रखे गये।

(1157) चक्षु और अचक्षु, दोनों निकट क्यों रखे गये ?

उत्तर : (1) दोनों दर्शन चारों गति के जीवों में पाये जाते हैं।

(2) दोनों दर्शन इन्द्रियों के द्वारा होते हैं।

(3) दोनों दर्शन सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष एवं आत्म परोक्ष है।

(1158) अचक्षु और अवधिदर्शन, दोनों निकट क्यों रखे गये ?

उत्तर : (1) दोनों ही अपूर्ण दर्शन है।

(2) दोनों दर्शनों से वस्तु के आंशिक सामान्य धर्म का ज्ञान

होता है ।

(3) दोनों दर्शन चारों गतियों में पाये जाते हैं ।

(4) दोनों दर्शन बारहवें गुणस्थानक तक पाये जाते हैं ।

(1159) अचक्षुदर्शन को अवधिदर्शन से पहले क्यों रखा गया ?

उत्तर : (1) अवधिदर्शन केवल सोलह दण्डकों में ही हो सकता है जबकि अचक्षुदर्शन समस्त दण्डकों में पाया जाता है ।

(2) अवधिदर्शन पंचेन्द्रिय पर्याप्ता जीवों में ही संभवित है जबकि अचक्षुदर्शन एकेन्द्रिय यावत् पंचेन्द्रिय, समस्त जीवों में पाया जाता है ।

(3) अवधिदर्शन संज्ञी जीवों में ही पाया जाता है जबकि अचक्षुदर्शन संज्ञी एवं असंज्ञी, दोनों में पाया जाता है ।

(1160) अवधि और केवल, दोनों दर्शन निकट क्यों रखे गये ?

उत्तर : (1) दोनों दर्शन पर्याप्त पंचेन्द्रिय संज्ञी जीवों में पाये जाते हैं ।

(2) दोनों दर्शन इन्द्रियों एवं मन की सहायता के बिना होते हैं ।

(3) दोनों दर्शन आत्म प्रत्यक्ष हैं ।

(1161) अवधिदर्शन को केवलदर्शन से पहले क्यों रखा गया ?

उत्तर : (1) अवधिदर्शन सोलह दण्डकों में पाया जाता है जबकि केवलदर्शन एक दण्डक में ही पाया जाता है ।

(2) अवधिदर्शन चारों गतियों में पाया जाता है जबकि केवलदर्शन एक मनुष्य गति में ही पाया जाता है ।

(3) अवधिदर्शनी, केवलीदर्शनी से अधिक होते हैं ।

(4) अवधिदर्शन के बारह गुणस्थानकों में पाया जाता है जबकि केवलदर्शन दो गुणस्थानकों में पाया जाता है ।

(1162) केवलदर्शन सर्वोत्तम होने पर भी सबसे अन्त में क्यों रखा

गया ?

उत्तर : (1) सबसे कम जीवों में होने के कारण केवलदर्शन अन्तिम स्थान पर रखा गया ।

(2) केवलदर्शन अप्रतिपाती है, अर्थात् एक बार आत्मा में प्रकट होने के बाद जाता नहीं है ।

(3) भवचक्र के अन्त में केवलदर्शन की उत्पत्ति होती है ।

(4) केवलदर्शन की प्राप्ति के बाद किसी भी दर्शन की आवश्यकता नहीं रहती है ।

(5) केवलदर्शन अन्तिम दो गुणस्थानकों में ही पाया जाता है ।

(6) प्रथम तीन अपूर्ण दर्शन केवलदर्शन में समाहित हो पूर्ण बन जाते हैं ।

(1163) पृथ्वी-अप्-तेउ-वायु-वनस्पतिकाय में कितने दर्शन पाये जाते हैं ?

उत्तर : एक - अचक्षुदर्शन ।

(1164) द्वीन्द्रिय एवं त्रीन्द्रिय जीवों में कितने दर्शन पाये जाते हैं ?

उत्तर : एक - अचक्षुदर्शन ।

(1165) चतुरिन्द्रिय जीवों में कितने दर्शन पाये जाते हैं ?

उत्तर : **दो दर्शन** - चक्षुदर्शन एवं अचक्षुदर्शन ।

(1166) गर्भज तिर्यंच, नारकी, भवनपति देव, व्यंतर देव, ज्योतिष्क देव और वैमानिक देव में कितने दर्शन पाये जाते हैं ।

उत्तर : **तीन दर्शन** - 1. चक्षुदर्शन 2. अचक्षुदर्शन 3. अवधिदर्शन ।

(1167) गर्भज तिर्यंच में अवधिदर्शन किस प्रकार हो सकता है ?

उत्तर : व्रत, तपस्या आदि कारणों से गर्भज तिर्यंच में लब्धिप्रत्ययिक अवधिदर्शन हो सकता है ।

(1168) कितने दण्डकों में लब्धिप्रत्ययिक अवधिदर्शन होता है ?

उत्तर : **दो दण्डकों में** - (1) गर्भज तिर्यंच, (2) गर्भज मनुष्य ।

(1169) कितने दण्डकों में भवप्रत्ययिक अवधि दर्शन होता है ?

उत्तर : **चौदह दण्डकों में** - (1-13) देव दण्डक (14) नारकी ।

(1170) गर्भज मनुष्य में कितने दर्शन पाये जाते हैं ?

उत्तर : **चार दर्शन** - 1. चक्षु, 2. अचक्षु, 3. अवधि, 4. केवल ।

(1171) कर्मभूमिज मनुष्यों में कितने दर्शन पाये जाते हैं ?

उत्तर : चार दर्शन ।

(1172) अकर्मभूमिज एवं अन्तर्द्वीपज मनुष्यों में कितने दर्शन पाये जाते हैं ?

उत्तर : **दो दर्शन** - 1. चक्षुदर्शन, 2. अचक्षुदर्शन ।

(1173) उत्सर्पिणी एवं अवसर्पिणी में किस प्रकार दर्शन पाये जाते हैं ?

उत्तर : (i) भरत एवं ऐरावत क्षेत्र की उत्सर्पिणी तथा अवसर्पिणी के तीसरे एवं चौथे आरे में चारों दर्शन पाये जाते हैं ।

(ii) भरत एवं ऐरावत क्षेत्र की उत्सर्पिणी एवं अवसर्पिणी के शेष आरों में प्रथम दो दर्शन पाये जाते हैं ।

(iii) महाविदेह क्षेत्र में सर्वदा चतुर्थ आरा ही प्रवर्तमान होने से दर्शन चतुष्क का सदैव सद्भाव होता है ।

(1174) जम्बू स्वामी अवसर्पिणी के पांचवें आरे में मोक्ष में गये तो उपरोक्त प्रश्न के उत्तर में पांचवें आरे में अवधि-केवल दर्शनद्वय का अभाव क्यों कहा गया ?

उत्तर : अन्तिम केवली श्री जम्बू स्वामी का जन्म चतुर्थ आरे में हुआ था और वे पांचवें आरे में मोक्षगामी हुए । स्पष्ट है कि चौथे

आरे में जन्मा मनुष्य पांचवें आरे में अवधि-केवलदर्शनी हो सकता है परन्तु पांचवें आरे के मनुष्य में दोनों दर्शनों का अभाव होता है।

(1175) एक दर्शन कितने दण्डकों में पाया जाता है ?

उत्तर : सात दण्डकों में - पांच स्थावर, द्वीन्द्रिय एवं त्रीन्द्रिय।

(1176) प्रथम दो दर्शन कितने दण्डकों में पाये जाते हैं ?

उत्तर : एक दण्डक में - चतुरिन्द्रिय।

(1177) प्रथम तीन दर्शन कितने दण्डकों में पाये जाते हैं ?

उत्तर : पंद्रह दण्डकों में - तेरह देव दण्डक, गर्भज तिर्यंच, नारकी।

(1178) चार दर्शन कितने दण्डकों में पाये जाते हैं ?

उत्तर : एक दण्डक में - गर्भज मनुष्य।

(1179) अचक्षुदर्शन कितने दण्डकों में पाया जाता है ?

उत्तर : समस्त दण्डकों में।

(1180) चक्षुदर्शन कितने दण्डकों में पाया जाता है ?

उत्तर : सतरह दण्डकों में - 13 देव दण्डक, गर्भज मनुष्य, गर्भज तिर्यंच, नारकी, चतुरिन्द्रिय।

(1181) अवधिदर्शन कितने दण्डकों में पाया जाता है ?

उत्तर : सोलह दण्डकों में - उपरोक्त 17 दण्डकों में से चतुरिन्द्रिय को छोड़कर।

(1182) केवलदर्शन कितने दण्डकों में पाया जाता है ?

उत्तर : एक दण्डक में - गर्भज मनुष्य।

(1183) मनुष्य गति में कितने दर्शन पाये जाते हैं ?

उत्तर : चार दर्शन।

(1184) देव, तिर्यंच और नरक गति में कितने दर्शन पाये जाते हैं ?

उत्तर : तीन दर्शन - केवलदर्शन सिवाय ।

(1185) एकेन्द्रिय में कितने दर्शन पाये जाते हैं ?

उत्तर : **एक दर्शन** - अचक्षुदर्शन ।

(1186) पंचेन्द्रिय में कितने दर्शन पाये जाते हैं ?

उत्तर : चार दर्शन ।

(1187) स्थावर जीवों में कितने दर्शन पाये जाते हैं ?

उत्तर : **एक दर्शन** - अचक्षुदर्शन ।

(1188) त्रस जीवों में कितने दर्शन पाये जाते हैं ?

उत्तर : चार दर्शन ।

(1189) संमूर्च्छिम जीवों मे कितने दर्शन पाये जाते हैं ?

उत्तर : **दो दर्शन** - अचक्षु तथा चक्षु दर्शन ।

(1190) गर्भज जीवों मे कितने दर्शन पाये जाते हैं ?

उत्तर : चार दर्शन ।

(1191) औपपातिक जीवों में कितने दर्शन पाये जाते हैं ?

उत्तर : **तीन दर्शन** - चक्षु, अचक्षु और अवधि दर्शन ।

(1192) संज्ञी जीवों में कितने दर्शन पाये जाते हैं ?

उत्तर : चार दर्शन ।

(1193) असंज्ञी जीवों में कितने दर्शन पाये जाते हैं ?

उत्तर : **दो दर्शन** - अचक्षुदर्शन एवं चक्षुदर्शन ।

(1194) सूक्ष्म जीवों में कितने दर्शन पाये जाते हैं ?

उत्तर : **एक दर्शन** - अचक्षुदर्शन ।

(1195) बादर जीवों में कितने दर्शन पाये जाते हैं ?

उत्तर : चार दर्शन ।

(1196) भव्य जीवों में कितने दर्शन पाये जाते हैं ?

उत्तर : चार दर्शन ।

(1197) अभव्य जीवों में कितने दर्शन पाये जाते हैं ?

उत्तर : **सिद्धान्तानुसार** - तीन दर्शन (अचक्षुदर्शन, चक्षुदर्शन एवं अवधिदर्शन) ।

कर्मग्रंथानुसार - दो दर्शन (चक्षुदर्शन एवं अचक्षुदर्शन) ।

(1198) तीन वेदों में कितने दर्शन पाये जाते हैं ?

उत्तर : चार दर्शन ।

(1199) उर्ध्वलोक, मध्यलोक तथा अधोलोक में कितने दर्शन पाये जाते हैं ?

उत्तर : चार दर्शन ।

(1200) अधोलोक तथा उर्ध्वलोक में केवलदर्शन किस प्रकार संभवित है ?

उत्तर : (1) अधोलोक में स्थित कुबडी निकाय में केवली का विचरण होने से अधोलोक में केवलदर्शन होता है ।

(2) उर्ध्वलोक में सिद्धशिला पर स्थित सिद्ध परमात्मा में केवलदर्शन होने उर्ध्वलोक में केवलदर्शन होता है ।

मेरूपर्वत के उर्ध्व भाग में स्थित गुफाओं में ऋषि-महर्षि केवलज्ञान-दर्शन को प्राप्त करते हैं ।

(1201) अचक्षुदर्शन कितने गुणस्थानकों में पाया जाता है ?

उत्तर : **बारह गुणस्थानकों में** - एक से बारह ।

(1202) चक्षुदर्शन कितने गुणस्थानकों में पाया जाता है ?

उत्तर : **बारह गुणस्थानकों में** - एक से बारह ।

(1203) अवधिदर्शन कितने गुणस्थानकों में पाया जाता है ?

उत्तर : **विवक्षा भेद से** -

(i) **1 - 5 कर्मग्रंथानुसार** - 4 से 12 गुणस्थानक (चतुर्थ

कर्मग्रंथ, गाथा सं. - 21) ।

(ii) **षष्टम कर्मग्रंथानुसार** - 3 से 12 गुणस्थानक (षष्टम कर्मग्रंथ, गाथा सं. - 56 एवं श्रीजिनवल्लभीय षडशीति टीका) ।

(iii) **सिद्धान्तानुसार** - 1 से 12 गुणस्थानक (चतुर्थ कर्मग्रंथ, गाथा सं. - 21 एवं भगवतीसूत्र शतक - 8 उद्देशक 2) ।

(1204) केवलदर्शन कितने गुणस्थानकों में पाया जाता है ?

उत्तर : **दो गुणस्थानकों में** - सयोगी केवली एवं अयोगी केवली ।

(1205) प्रत्येक जीवों में कितने दर्शन पाये जाते हैं ?

उत्तर : चार दर्शन ।

(1206) साधारण जीवों में कितने दर्शन पाये जाते हैं ?

उत्तर : **एक** - अचक्षुदर्शन ।

(1207) दर्शन चतुष्क को आवृत करने वाला कर्म कौनसा है ?

उत्तर : दर्शनावरणीय कर्म ।

(1208) कितने दर्शनों के होने में दर्शनावरणीय कर्म का क्षयोपशम कारणभूत बनता है ?

उत्तर : **तीन दर्शनों के** - (1) चक्षुदर्शन (2) अचक्षुदर्शन (3) अवधिदर्शन ।

(1209) किस दर्शन के होने में दर्शनावरणीय कर्म का संपूर्ण क्षय निमित्त होता है ?

उत्तर : केवलदर्शन ।

(1210) चक्षुदर्शन का काल कितना कहा गया है ?

उत्तर : जघन्यतः - अन्तर्मुहूर्त ।

उत्कृष्टतः - साधिक हजार सागरोपम ।

(1211) अवधिदर्शन का काल कितना कहा गया है ?

उत्तर : जघन्यतः - एक समय ।
उत्कृष्टतः - साधिक 66 सागरोपम ।

(1212) केवलदर्शन का काल कितना कहा गया है ?

उत्तर : अजघन्यतः - अनुत्कृष्टतः - सादि अनन्तकाल ।

(1213) सम्यक्त्वी जीवों में कितने दर्शन पाये जाते हैं ?

उत्तर : चारों दर्शन ।

(1214) मिथ्यात्वी जीवों में कितने दर्शन पाये जाते हैं ?

उत्तर : **कर्मग्रंथानुसार** - दो दर्शन - चक्षु एवं अचक्षु दर्शन ।
सिद्धान्तानुसार - तीन दर्शन - चक्षु, अचक्षु एवं अवधि दर्शन ।

(1215) पर्याप्त अवस्था में कितने दर्शन पाये जाते हैं ?

उत्तर : चार दर्शन ।

(1216) अपर्याप्त अवस्था में कितने दर्शन पाये जाते हैं ?

उत्तर : **तीन दर्शन** - चक्षु, अचक्षु तथा अवधि दर्शन ।

द्वादशम ज्ञान द्वार का विवेचन

(1217) ज्ञान से क्या अभिप्राय है ?

उत्तर : वस्तु में स्थित विशेष धर्म को जिस आत्मिक शक्ति के द्वारा जाना जाता है, उसे ज्ञान कहते है ।

(1218) ज्ञान कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

उत्तर : **पांच प्रकार के** - (1) मतिज्ञान (2) श्रुतज्ञान (3) अवधिज्ञान (4) मनःपर्यवज्ञान (5) केवलज्ञान ।

(1219) मतिज्ञान किसे कहते है ?

उत्तर : मन और इन्द्रियों की सहायता से होने वाला ज्ञान, मतिज्ञान कहलाता है ।

(1220) श्रुतज्ञान किसे कहते है ?

उत्तर : मन और इन्द्रियों की सहायता से शास्त्र, ग्रंथादि के श्रवण अथवा वांचन द्वारा शब्द में छिपे अर्थ का जो ज्ञान होता है, उसे श्रुतज्ञान कहते है ।

(1221) अवधिज्ञान किसे कहते है ?

उत्तर : मन और इन्द्रियों की सहायता के बिना रूपी पदार्थों का ज्ञान जिससे होता है, उसे अवधिज्ञान कहते है ।

(1222) मनःपर्यवज्ञान किसे कहते है ?

उत्तर : मन और इन्द्रियों की सहायता के बिना ढाई द्वीप में स्थित संज्ञी जीवों के मन के विचारों को जिस आत्मिक शक्ति के द्वारा जाना जाता है, उसे मनःपर्यवज्ञान कहते है ।

(1223) केवलज्ञान किसे कहते है ?

उत्तर : मन और इन्द्रियों की सहायता के बिना समस्त रूपी-अरूपी द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव को एक साथ जानने वाली आत्मिक शक्ति को केवलज्ञान कहते है ।

(1224) एक साथ कितने ज्ञान हो सकते हैं ?

उत्तर : (1) **एक ज्ञान** - केवलज्ञान ।
(2) **दो ज्ञान** - मति एवं श्रुतज्ञान ।
(3) **तीन ज्ञान** - (i) मति, श्रुत तथा अवधिज्ञान ।
(ii) मति, श्रुत तथा मनःपर्यवज्ञान ।
(4) **चार ज्ञान** - मति, श्रुत, अवधि तथा मनःपर्यवज्ञान ।
(5) **पांच ज्ञान** - एक साथ कभी नहीं होते हैं ।

(1225) पांच ज्ञानों में से परोक्ष ज्ञान कितने हैं ?

उत्तर : **दो परोक्ष ज्ञान** - (1) मतिज्ञान (2) श्रुतज्ञान ।

(1226) पांच ज्ञानों में से प्रत्यक्ष ज्ञान कितने हैं ?

उत्तर : तीन प्रत्यक्ष ज्ञान - (1) अवधिज्ञान (2) मनःपर्यवज्ञान (3) केवलज्ञान ।

(1227) परोक्ष ज्ञान किसे कहते है ?

उत्तर : मन तथा इन्द्रियों की सहायता से होने वाला ज्ञान, परोक्ष ज्ञान कहलाता है ।

(1228) प्रत्यक्ष ज्ञान किसे कहते है ?

उत्तर : मन और इन्द्रियों की सहायता के बिना आत्मा को साक्षात् होने वाला ज्ञान, प्रत्यक्ष ज्ञान कहलाता है ।

(1229) तीर्थंकर के आधार पर बताईये कि पांचों ज्ञानों का-क्रम इस प्रकार क्यों रखा गया ?

उत्तर : 1 तीर्थंकर परमात्मा जब माता के गर्भ में आते हैं, तब तीन ज्ञान होते हैं ।

2 दीक्षा लेते ही उन्हें चतुर्थ मनःपर्यव ज्ञान की प्राप्ति होती है ।

3 समस्त घाती कर्मों का सर्वथा क्षय कर वे परम-अनुत्तर केवलज्ञान को प्राप्त करते हैं ।

(1230) मति से पूर्व श्रुतज्ञान क्यों नहीं रखा गया ?

उत्तर : श्रुतज्ञान जब भी होता है, मतिपूर्वक ही होता है अतः प्रथम स्थान पर मतिज्ञान रखा गया ।

श्रुतज्ञान होने से पूर्व मतिज्ञान अवश्यमेव होता है परन्तु मतिज्ञान होने के बाद श्रुतज्ञान हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता है ।

(1231) मति और श्रुतज्ञान, दोनों निकट क्यों रखे गये ?

उत्तर : 1 दोनों ज्ञान मन तथा इन्द्रियों की सहायता से होते हैं ।

2 दोनों ज्ञान परोक्ष ज्ञान हैं ।

3 दोनों ज्ञान समस्त सम्यक्त्वी जीवों में पाये जाते हैं ।

4 सम्यक्त्वी जीव जब मिथ्यात्व को प्राप्त होता है तब मतिज्ञान

मतिअज्ञान में और श्रुतज्ञान श्रुतअज्ञान में बदल जाता है और सम्यक्त्व प्राप्ति के समय दोनों अज्ञान, ज्ञान में परिवर्तित हो जाते हैं।

5 दोनों ज्ञान के विषय समान हैं।

6 दोनों ज्ञान के स्वामी समान हैं।

(1232) श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान साथ-साथ क्यों रखे गये ?

उत्तर : 1 दोनों ज्ञानों का विषय रूपी पदार्थ हैं।

2 दोनों ज्ञान चारों गतियों में पाये जाते हैं।

3 दोनों ज्ञान अविरतिधर को हो सकते हैं।

4 दोनों ज्ञानों का उत्कृष्ट काल साधिक 66 सागरोपम का होता है।

5 मिथ्यात्व में जिस प्रकार मति-श्रुतज्ञान, अज्ञान में बदल जाते हैं, उसी प्रकार अवधिज्ञान भी मिथ्यात्व में अवधिअज्ञान में बदल जाता है।

6 श्रुतज्ञानी की अपेक्षा अवधिज्ञानी अल्प होने से श्रुतज्ञान के बाद अवधिज्ञान रखा गया।

(1233) अवधि और मनःपर्यवज्ञान निकट क्यों रखे गये ?

उत्तर : 1 दोनों ज्ञान प्रत्यक्ष ज्ञान हैं।

2 दोनों ज्ञानों में मन और इन्द्रियों की आवश्यकता नहीं होती है।

3 दोनों ज्ञान कर्मभूमिज पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय को ही हो सकते हैं।

4 दोनों ज्ञानों का विषय रूपी पदार्थ हैं।

5 दोनों ज्ञान क्षायोपशमिक ज्ञान कहे गये हैं।

(1234) मनःपर्यवज्ञान और केवलज्ञान साथ-साथ क्यों रखे गये ?

उत्तर : 1 दोनों ज्ञान सर्वविरतिधर महात्मा को ही होते हैं।

2 दोनों ज्ञानों का प्रादुर्भाव अप्रमत्त अवस्था में ही होता है।

3 दोनों ज्ञान कर्मभूमिज पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय मनुष्यों में ही पाये जाते हैं।

4 दोनों, विपुल मति मनःपर्यवज्ञान तथा केवलज्ञान निश्चयतः सिद्धपद प्रदान करते हैं।

5 दोनों ज्ञान आत्म प्रत्यक्ष कहे गये हैं।

(1235) पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय में कितने ज्ञान पाये जाते हैं ?

उत्तर : सिद्धान्तानुसार पृथ्वीकाय आदि तीन में एक भी ज्ञान नहीं होता है। कर्मग्रंथानुसार पृथ्वीकायादि में मतिज्ञान एवं श्रुतज्ञान पाये जाते हैं।

(1236) पृथ्वी, अप् तथा वनस्पतिकाय में मति तथा श्रुतज्ञान किस प्रकार संभवित है ?

उत्तर : ईशान देवलोक तक का देव जब बादर लब्धिपर्याप्त पृथ्वीकाय आदि तीन स्थावरों में उत्पन्न होता है, तब अपर्याप्त अवस्था में सास्वादन सम्यक्त्व होने से मतिज्ञान तथा श्रुतज्ञान पाये जाते हैं।

(1237) तेउकाय और वायुकाय में कितने ज्ञान पाये जाते हैं ?

उत्तर : एक भी ज्ञान नहीं होता है।

(1238) विकलेन्द्रिय त्रिक में कितने ज्ञान पाये जाते हैं ?

उत्तर : दो ज्ञान - मतिज्ञान एवं श्रुतज्ञान।

(1239) विकलेन्द्रिय त्रिक में मति-श्रुतज्ञान कैसे संभवित है ?

उत्तर : जब सास्वादन सम्यक्त्वी पंचेन्द्रिय तिर्यंच एवं मनुष्य विकलेन्द्रिय त्रिक में उत्पन्न होता है, तब अपर्याप्त अवस्था मे सम्यक्त्व होने से उनमें मति एवं श्रुतज्ञान पाये जाते हैं।

(1240) गर्भज तिर्यंच में कितने ज्ञान पाये जाते हैं ?

उत्तर : तीन ज्ञान - मतिज्ञान, श्रुतज्ञान तथा अवधिज्ञान।

(1241) नारकी में कितने ज्ञान पाये जाते हैं ?

उत्तर : तीन ज्ञान - मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान ।

(1242) दस भवनपति, व्यतंर, ज्योतिष्क एवं वैमानिक देवों में कितने ज्ञान पाये जाते हैं ?

उत्तर : तीन ज्ञान - मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान ।

(1243) देव, नारकी एवं गर्भज तिर्यंच में मनःपर्यवज्ञान एवं केवलज्ञान क्यों नही पाये जाते हैं ?

उत्तर : 1 मनःपर्यवज्ञान अप्रमत्त लब्धि संपन्न सर्वविरतिधर मुनीश्वर को ही होता है, जबकि देवादि तीनों में सर्वविरति नहीं होती है ।

2 केवलज्ञान देवादि में नहीं होने कारण निम्न हैं -

1. उनमें सर्वविरति का अभाव होता है ।
2. घाती कर्मों का सर्वथा क्षय होने पर ही केवलज्ञान होता है जबकि देव आदि घाती कर्मों से युक्त ही होते हैं ।

3 केवलज्ञान तेरहवें तथा चौदहवें गुणस्थानक में पाया जाता है जबकि देव तथा नारकी जीवों में प्रथम चार गुणस्थानक तथा गर्भज तिर्यंच में प्रथम पांच गुणस्थानक ही पाये जाते हैं ।

(1244) गर्भज मनुष्य में कितने ज्ञान पाये जाते हैं ?

उत्तर : पांच ज्ञान - मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञान तथा केवलज्ञान ।

(1245) कर्मभूमिज मनुष्यों में कितने ज्ञान पाये जाते हैं ?

उत्तर : पाँच ज्ञान ।

(1246) अन्तर्द्वीपज तथा अकर्मभूमिज मनुष्यों में कितने ज्ञान पाये जाते हैं ?

उत्तर : दो ज्ञान - मतिज्ञान तथा श्रुतज्ञान ।

(1247) भरत, ऐरावत एवं महाविदेह क्षेत्र में कितने ज्ञान पाये

जाते हैं ?

उत्तर : 1 भरत एवं ऐरावत क्षेत्र में उत्सर्पिणी तथा अवसर्पिणी के पहले, दूसरे, पांचवें तथा छट्ठे आरे में मति और श्रुत, दो ज्ञान ही पाये जाते हैं।

2 भरत एवं ऐरावत क्षेत्र में उत्सर्पिणी एवं अवसर्पिणी के तीसरे - चौथे आरे में पांच ज्ञान पाये जाते हैं।

3 महाविदेह क्षेत्र में सर्वदा चतुर्थ आरे के भाव होने से पांचों ज्ञानों का सद्भाव होता है।

(1248) ज्ञान रहित कितने दण्डक कहे गये हैं ?

उत्तर : **सिद्धान्तानुसार** - पांच दण्डक (पृथ्वीकायादि पांच स्थावर)

कर्मग्रन्थानुसार - दो दण्डक (तेउकाय तथा वायुकाय)।

(1249) एक ज्ञान कितने दण्डकों में पाया जाता है ?

उत्तर : एक ज्ञान किसी भी दण्डक में नहीं होता हैं।

(1250) दो ज्ञान कितने दण्डकों में पाये जाते है ?

उत्तर : **सिद्धान्तानुसार** - तीन दण्डकों में (विकलेन्द्रिय त्रिक)।

कर्मग्रंथानुसार - छह दण्डकों में (विकलेन्द्रिय त्रिक, पृथ्वी-अप् - वनस्पतिकाय)।

(1251) तीन ज्ञान कितने दण्डकों में पाये जाते है ?

उत्तर : **चौदह दण्डकों में** - (1-13) समस्त देव, (14) नारकी।

(1252) चार ज्ञान अथवा पांच ज्ञान कितने दण्डकों में पाये जाते हैं ?

उत्तर : **एक** - गर्भज मनुष्य में।

(1253) उर्ध्वलोक, मतिज्ञान कितने दण्डकों में पाया जाता है ?

उत्तर : **सिद्धान्तानुसार** - उन्नीस दण्डकों में (पांच स्थावर को छोडकर)।

कर्मग्रन्थानुसार - बावीस दण्डकों में (तेउकाय और वायुकाय

को छोड़कर) ।

(1254) श्रुतज्ञान कितने दण्डकों में पाया जाता है ?

उत्तर : मतिज्ञान की भाँति समझना चाहिये ।

(1255) अवधिज्ञान कितने दण्डकों में पाया जाता है ?

उत्तर : सोलह दण्डकों में – दस भवनपति-व्यंतर-ज्योतिष्क-वैमानिक देव, गर्भज मनुष्य, गर्भज तिर्यंच, नारकी ।

(1256) मनःपर्यवज्ञान कितने दण्डकों में पाया जाता है ?

उत्तर : गर्भज मनुष्य के एक दण्डक में ।

(1257) केवलज्ञान कितने दण्डकों में पाया जाता है ?

उत्तर : गर्भज मनुष्य के एक दण्डक में ।

(1258) मनुष्य गति में कितने ज्ञान पाये जाते हैं ?

उत्तर : पांच ज्ञान ।

(1259) नरक, तिर्यंच और देवगति में कितने ज्ञान पाये जाते हैं ?

उत्तर : तीन ज्ञान – मतिज्ञान, श्रुतज्ञान तथा अवधिज्ञान ।

(1260) त्रस जीवों में कितने ज्ञान पाये जाते हैं ?

उत्तर : पांच ज्ञान ।

(1261) स्थावर जीवों में कितने ज्ञान पाये जाते हैं ?

उत्तर : सिद्धान्तानुसार – एक भी ज्ञान नहीं होता है ।

कर्मग्रंथानुसार – दो ज्ञान (मतिज्ञान-श्रुतज्ञान) पाये जाते हैं ।

(1262) बादर जीवों में कितने ज्ञान पाये जाते हैं ?

उत्तर : पांच ज्ञान ।

(1263) सूक्ष्म जीवों में कितने ज्ञान पाये जाते हैं ?

उत्तर : एक भी ज्ञान नहीं होता है ।

(1264) गर्भज जीवों में कितने ज्ञान पाये जाते हैं ?

उत्तर : पांच ज्ञान ।

(1265) संमूर्च्छिम जीवों में कितने ज्ञान पाये जाते हैं ?

उत्तर : **दो ज्ञान** - मतिज्ञान और श्रुतज्ञान ।

(1266) उर्ध्वलोक,औपपातिक जीवों में कितने ज्ञान पाये जाते हैं ?

उत्तर : **तीन ज्ञान** - 1. मतिज्ञान 2. श्रुतज्ञान 3. अवधिज्ञान ।

(1267) मध्यलोक एवं अधोलोक में कितने ज्ञान पाये जाते हैं ?

उत्तर : पांच ज्ञान ।

(1268) उर्ध्वलोक एवं अधोलोक में केवलज्ञान का सद्भाव कैसे हो सकता है क्योंकि वह तो मध्यलोक में स्थित गर्भज मनुष्य के एक दण्डक में ही पाया जाता है ?

उत्तर : (i) उर्ध्वलोक में जो मन:पर्यवज्ञान तथा केवलज्ञान कहा गया है, वह मेरुपर्वत के उर्ध्व भाग में स्थित गुफाओं में ये दोनों ज्ञान होने से उनकी अपेक्षा से कहा गया है ।

(ii) अधोलोक में अवस्थित कुबडी विजय में केवली भगवंतों का विचरण होने वहाँ केवलज्ञान एवं मन:पर्यवज्ञान पाये जाते हैं ।

(1269) पुरुष, स्त्री तथा नपुंसक वेद में कितने ज्ञान पाये जाते हैं ?

उत्तर : पांच ज्ञान ।

(1270) भव्य जीवों में कितने ज्ञान पाये जाते हैं ?

उत्तर : पांच ज्ञान ।

(1271) अभव्य जीवों में कितने ज्ञान पाये जाते हैं ?

उत्तर : एक भी ज्ञान नहीं होता है ।

(1272) संज्ञी जीवों में कितने ज्ञान पाये जाते हैं ?

उत्तर : पांच ज्ञान ।

(1273) असंज्ञी जीवों में कितने ज्ञान पाये जाते हैं ?

उत्तर : **दो ज्ञान** - मतिज्ञान तथा श्रुतज्ञान ।

(1274) एकेन्द्रिय जीवों में कितने ज्ञान पाये जाते हैं ?

उत्तर : **सिद्धान्तानुसार** - एक भी ज्ञान नहीं होता है ।

कर्मग्रंथानुसार - दो ज्ञान - मतिज्ञान तथा श्रुतज्ञान ।

(1275) पंचेन्द्रिय जीवों में कितने ज्ञान पाये जाते हैं ?

उत्तर : पांच ज्ञान ।

(1276) किस ज्ञान वाले दण्डक सर्वाधिक हैं ?

उत्तर : मतिज्ञान एवं श्रुतज्ञान के ।

(1277) किस ज्ञान वाले दण्डक सबसे कम हैं ?

उत्तर : मनःपर्यवज्ञान एवं केवलज्ञान के (गर्भज मनुष्य के एक दण्डक में) ।

(1278) मतिज्ञान, श्रुतज्ञान एवं अवधिज्ञान कितने गुणस्थानकों में पाये जाते हैं ?

उत्तर : **विवक्षा भेद से** -

(i) **1 - 5 कर्मग्रंथानुसार** - 4 से 12 गुणस्थानक (चतुर्थ कर्मग्रंथ, गाथा - 20) ।

(ii) **षष्टम् कर्मग्रंथानुसार** - 3 से 12 गुणस्थानक (षष्टम कर्मग्रंथ, गाथा - 56 तथा श्रीजिनवल्लभीय षडशीति टीका) ।

(iii) **सिद्धान्तानुसार** - 2 से 12 गुणस्थानक (चतुर्थ कर्मग्रंथ, गाथा - 20) ।

(1279) मनःपर्यवज्ञान कितने गुणस्थानकों में पाया जाता है ?

उत्तर : सात गुणस्थानकों में (6 से 12 तक के गुणस्थानकों में) ।

(1280) केवलज्ञान कितने गुणस्थानकों में पाया जाता है ?

उत्तर : दो गुणस्थानकों में (13वें तथा 14वें गुणस्थानकों में) ।

(1281) प्रत्येक जीवों में कितने ज्ञान पाये जाते हैं ?

उत्तर : पांच ज्ञान ।

(1282) साधारण जीवों में कितने ज्ञान पाये जाते हैं ?

उत्तर : एक भी नहीं ।

(1283) कितने ज्ञान ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से प्रकट होते हैं ?

उत्तर : चार ज्ञान - मति-श्रुत-अवधि तथा मनःपर्यवज्ञान ।

(1284) कौनसा ज्ञान ज्ञानावरणीय कर्म का सर्वथा क्षय होने पर उत्पन्न होता है ?

उत्तर : केवलज्ञान ।

(1285) पांचों ज्ञानों को रोकने वाला कर्म कौनसा है ?

उत्तर : ज्ञानावरणीय कर्म ।

(1286) मति एवं श्रुतज्ञान का काल कितना कहा गया है ?

उत्तर : जघन्यतः - अन्तर्मुहूर्त ।
उत्कृष्टतः - साधिक 66 सागरोपम ।

(1287) अवधिज्ञान का काल कितना कहा गया है ?

उत्तर : जघन्यतः - एक समय ।
उत्कृष्टतः - साधिक 66 सागरोपम ।

(1288) मनःपर्यवज्ञान का काल कितना कहा गया है ?

उत्तर : जघन्यतः - एक समय ।
उत्कृष्टतः - देशोण करोड पूर्व ।

(1289) केवलज्ञान का काल कितना कहा गया है ?

उत्तर : सादि अनन्तकाल ।

(1290) सम्यक्त्वी जीवों में कितने ज्ञान पाये जाते हैं ?

उत्तर : पांच ज्ञान ।

(1291) मिथ्यात्वी जीवों में कितने ज्ञान पाये जाते हैं ?

उत्तर : एक भी नहीं ।

(1292) पर्याप्त अवस्था में कितने ज्ञान पाये जाते हैं ?

उत्तर : पांच ज्ञान ।

(1293) अपर्याप्त अवस्था में कितने ज्ञान पाये जाते हैं ?

उत्तर : **तीन ज्ञान** – मति, श्रुत तथा अवधिज्ञान ।

(1294) कषाय युक्त जीवों में कितने ज्ञान पाये जाते हैं ?

उत्तर : प्रथम चार ज्ञान ।

(1295) अकषायी जीवों में कितने ज्ञान पाये जाते हैं ?

उत्तर : पांच ज्ञान ।

(1296) अकषायी जीवों में केवल केवलज्ञान होता है तो फिर अन्य चार ज्ञान किस प्रकार हो सकते हैं ?

उत्तर : **अकषायी दो प्रकार के कहे गये हैं** – (i) छद्मस्थ वीतराग (ii) केवली ।

छद्मस्थ केवली ग्यारहवें व बारहवें गुणस्थानक में होने से उनमें चार ज्ञान हो सकते हैं ।

(1297) षड्लेशी जीवों में कितने ज्ञान पाये जाते हैं ?

उत्तर : प्रथम पांच अर्थात् कृष्ण, नील, कापोत, तेजो और पद्म लेश्या वाले जीवों में प्रथम चार अर्थात् मति यावत् मनःपर्यवज्ञान पाया जाता है । शुक्ल लेशी जीवों में पाचों ज्ञान पाये जाते हैं क्योंकि केवलज्ञानी के शुक्ल लेश्या होती है ।

(1298) अलेश्य (लेश्या रहित) जीवों में कितने ज्ञान पाये जाते हैं ?

उत्तर : **एक ज्ञान** – केवलज्ञान ।

(1299) मनोयोग आदि तीन योग में कितने ज्ञान पाये जाते हैं ?

उत्तर : पांच ज्ञान ।

(1300) आहारी जीवों में कितने ज्ञान पाये जाते हैं ?

उत्तर : आहारी जीवों में पांचों ज्ञान पाये जाते हैं क्योंकि केवलज्ञानी भी आहार करते हैं ।

(1301) अनाहारी जीवों में कितने ज्ञान पाये जाते हैं ?

उत्तर : केवली समुद्घात, अयोगी दशा में जीव अनाहारी होता है, अतः उनमें मनःपर्यवज्ञानातिरिक्त चार ज्ञान पाये जाते हैं ।

(1302) अनाहारी जीवों में मनःपर्यवज्ञान का अभाव क्यों होता है ?

उत्तर : मनःपर्यवज्ञान आहारी जीवों को ही होता है ।

(1303) ज्ञानी, ज्ञानी रूप में कितने समय तक रहता है ?

उत्तर : ज्ञानी दो प्रकार के हैं -

(i) सादि अपर्यवसित - अनन्तकाल तक क्योंकि केवलज्ञान अपर्यवसित होता है ।

(ii) सादि सपर्यवसित -

जघन्यतः - अन्तर्मुहूर्त

उत्कृष्टतः - साधिक छियासठ सागरोपम ।

त्रयोदशम अज्ञान द्वार का विवेचन

(1304) अज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर : वस्तु में स्थित विशेष धर्म को बताने वाली सम्यक्त्व रहित आत्मिक शक्ति को अज्ञान कहते है ।

(1305) अज्ञान कितने प्रकार के कहे गये है ?

उत्तर : **तीन प्रकार के** - (1) मति अज्ञान (2) श्रुत अज्ञान (3) अवधि अज्ञान (विभंगज्ञान)।

(1306) मति अज्ञान किसे कहते है ?

उत्तर : मन और इन्द्रियों की सहायता से वस्तु में स्थित विशेष धर्म को बताने वाली सम्यक्त्व रहित आत्मिक शक्ति को मति अज्ञान कहते है।

(1307) श्रुत अज्ञान किसे कहते है ?

उत्तर : मन और इन्द्रियों की सहायता से शब्द में छिपे अर्थ को बताने वाली सम्यक्त्व रहित आत्मिक शक्ति को श्रुत अज्ञान कहते है।

(1308) अवधि अज्ञान किसे कहते है ?

उत्तर : मन और इन्द्रियों की सहायता के बिना रुपी द्रव्यों में स्थित विशेष धर्म को बताने वाली सम्यक्त्व रहित आत्मिक शक्ति को अवधि अज्ञान (विभंगज्ञान) कहते है।

(1309) तीन अज्ञान इस क्रम में क्यों रखे गये ?

उत्तर : (1) ज्ञानों के क्रम का अनुकरण किया गया है।
(2) अवधिअज्ञानी की अपेक्षा मति-श्रुतअज्ञानी अधिक है।
(3) जीव की सर्वाधिक-प्रारंभिक अविकसित निगोद अवस्था में भी प्रथम दो अज्ञान पाये जाते हैं।

(1310) ज्ञान पांच कहे गये, जबकि अज्ञान तीन ही कहे गये हैं। मनःपर्यवअज्ञान और केवल अज्ञान क्यों नहीं कहे गये ?

उत्तर : मिथ्यात्व अवस्था में अज्ञान कहलाता है और सम्यक्त्व अवस्था में ज्ञान कहलाता हैं।

मिथ्यात्व अवस्था मे मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान, क्रमशः मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान और अवधिअज्ञान कहलाते हैं।

मनःपर्यवज्ञान सम्यक्त्वी, अप्रमत्त संयमी को ही हो सकता है, अतः वह अज्ञान रूप नहीं हो सकता ।

केवलज्ञान मिथ्यात्व का संपूर्ण क्षय होने पर ही उत्पन्न होता है, अतः वह अज्ञान रूप कदापि नहीं हो सकता ।

(1311) पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय और वनस्पतिकाय के पांच दण्डकों में कितने अज्ञान पाये जाते हैं ?

उत्तर : दो अज्ञान - (1) मति अज्ञान (2) श्रुत अज्ञान ।

(1312) विकलेन्द्रिय त्रिक में कितने अज्ञान पाये जाते हैं ?

उत्तर : दो अज्ञान - (1) मति अज्ञान (2) श्रुत अज्ञान ।

(1313) नारकी, दस भवनपति देव, व्यंतर-ज्योतिष्क-वैमानिक देवों में कितने अज्ञान पाये जाते हैं ?

उत्तर : तीन अज्ञान ।

(1314) किन देवो में एक भी अज्ञान नहीं पाया जाता है ?

उत्तर : अनुत्तर वैमानिक देवों में ।

(1315) गर्भज मनुष्य तथा गर्भज तिर्यंच में कितने अज्ञान पाये जाते हैं ?

उत्तर : तीन अज्ञान ।

(1316) कितने दण्डकों में दो अज्ञान पाये जाते हैं ?

उत्तर : आठ दण्डकों में - पांच स्थावर, एवं तीन विकलेन्द्रिय में ।

(1317) कितने दण्डकों में तीन अज्ञान पाये जाते हैं ?

उत्तर : सोलह दण्डकों में - पांच स्थावर व विकलेन्द्रिय त्रिक सिवाय।

(1318) मति अज्ञान एवं श्रुत अज्ञान कितने दण्डकों में पाये जाते हैं ?

उत्तर : चौबीस दण्डकों में ।

(1319) अवधिअज्ञान कितने दण्डकों में पाया जाता है ?

उत्तर : सोलह दण्डकों में - दस भवनपति देव, व्यंतर, ज्योतिष्क, वैमानिक देव, गर्भज मनुष्य, गर्भज तिर्यंच और नारकी ।

(1320) चारों गतियों में कितने अज्ञान पाये जाते हैं ?

उत्तर : तीन अज्ञान ।

(1321) एकेन्द्रिय में कितने अज्ञान पाये जाते हैं ?

उत्तर : दो अज्ञान - मति अज्ञान तथा श्रुत अज्ञान ।

(1322) पंचेन्द्रिय में कितने अज्ञान पाये जाते हैं ?

उत्तर : तीन अज्ञान ।

(1323) स्थावर में कितने अज्ञान पाये जाते हैं ?

उत्तर : दो अज्ञान - मति अज्ञान तथा श्रुत अज्ञान ।

(1324) त्रस जीवों में कितने अज्ञान पाये जाते हैं ?

उत्तर : तीन अज्ञान ।

(1325) तीन वेदों में कितने अज्ञान पाये जाते हैं ?

उत्तर : तीन अज्ञान ।

(1326) उर्ध्वलोक, मध्यलोक और अधोलोक में कितने अज्ञान पाये जाते हैं ?

उत्तर : तीन अज्ञान ।

(1327) गर्भज जीवों में कितने अज्ञान पाये जाते हैं ?

उत्तर : तीन अज्ञान ।

(1328) संमूर्च्छिम जीवों में कितने अज्ञान पाये जाते हैं ?

उत्तर : दो अज्ञान - मतिअज्ञान तथा श्रुतअज्ञान ।

(1329) औपपातिक जीवों में कितने अज्ञान पाये जाते हैं ?

उत्तर : तीन अज्ञान ।

(1330) बादर जीवों में कितने अज्ञान पाये जाते हैं ?

उत्तर : तीन अज्ञान ।

(1331) सूक्ष्म जीवों में कितने अज्ञान पाये जाते हैं ?

उत्तर : **दो अज्ञान** - मति और श्रुत अज्ञान ।

(1332) संज्ञी जीवों में कितने अज्ञान पाये जाते हैं ?

उत्तर : तीन अज्ञान ।

(1333) असंज्ञी जीवों में कितने अज्ञान पाये जाते हैं ?

उत्तर : **दो अज्ञान** - मति अज्ञान तथा श्रुत अज्ञान ।

(1334) भव्य तथा अभव्य जीवों में कितने अज्ञान पाये जाते हैं ?

उत्तर : तीन अज्ञान ।

(1335) तीनों अज्ञान कितने गुणस्थानक में पाये जाते हैं ?

उत्तर : (i) **1 - 5 कर्मग्रंथानुसार** - 1 से 3 गुणस्थानक तक (आधार - चतुर्थ कर्मग्रंथ, गाथा - 20) ।

(ii) **षष्टम कर्मग्रंथानुसार** - 1 व 2 गुणस्थानक में (षष्टम कर्मग्रंथ,गाथा - 56 तथा श्रीजिनवल्लभीय षडशीति टीका) ।

(iii) **सिद्धान्तानुसार** - प्रथम गुणस्थानक में (चतुर्थ कर्मग्रंथ, गाथा - 20) ।

(1336) प्रत्येक जीवों में कितने अज्ञान पाये जाते हैं ?

उत्तर : तीन अज्ञान ।

(1337) साधारण जीवों में कितने अज्ञान पाये जाते हैं ?

उत्तर : **दो अज्ञान** - मति एवं श्रुत अज्ञान ।

(1338) सम्यक्त्वी जीवों में कितने अज्ञान पाये जाते हैं ?

उत्तर : एक भी नहीं।

(1339) मिथ्यात्वी जीवों में कितने अज्ञान पाये जाते हैं ?

उत्तर : तीन अज्ञान।

(1340) पर्याप्त एवं अपर्याप्त अवस्था में कितने अज्ञान पाये जाते हैं ?

उत्तर : तीन अज्ञान।

(1341) अपर्याप्त अवस्था में अवधि अज्ञान किस प्रकार संभवित हैं ?

उत्तर : जब कोई मिथ्यात्वी जीव देवलोक में उत्पन्न होता है, तब अपर्याप्त अवस्था में उसमें अवधि अज्ञान का सद्भाव होता है।

(1342) सकषायी जीवों में कितने अज्ञान पाये जाते हैं ?

उत्तर : तीन अज्ञान।

(1343) अकषायी जीवों में कितने अज्ञान पाये जाते हैं ?

उत्तर : एक भी नहीं।

(1344) सलेशी-अलेशी, योगी-अयोगी, वेदी-अवेदी, आहारी-अनाहारी जीवों में कितने अज्ञान पाये जाते हैं ?

उत्तर : सलेशी, सयोगी, सवेदी एवं आहारी जीवों में तीन अज्ञान पाये जाते हैं परन्तु अलेशी, अयोगी, अवेदी जीवों में एक भी अज्ञान नहीं पाया जाता है। विग्रह गति अपेक्षया अनाहारी जीव में मति-श्रुत, दो अज्ञान हो सकते हैं।

(1345) मति-श्रुत अज्ञान का कितना काल कहा गया है ?

उत्तर : अभव्य की अपेक्षा से अजघन्यतः अनुत्कृष्टतः अनन्तकाल कहा गया है।

सादि सान्त अर्थात् एक बार सम्यक्त्व का स्पर्श करके जो जीव

मिथ्यात्व में चले गये हैं, उनकी अपेक्षा से -

जघन्यतः - अन्तर्मुहूर्त ।

उत्कृष्टतः - अनन्त उत्सर्पिणी एवं अवसर्पिणी ।

(1346) विभंगज्ञान (अवधिअज्ञान) का काल कितना कहा गया है ?

उत्तर : जघन्यतः - एक समय ।

उत्कृष्टतः - साधिक तैंतीस सागरोपम ।

(1347) अज्ञानी कितने समय तक अज्ञानी रहता है ?

उत्तर : अज्ञानी तीन प्रकार के कहे गये हैं -

(i) **अनादि अपर्यवसित अज्ञानी** - वह अज्ञानी जो कभी भी मोक्ष में नहीं जायेगा । यह अज्ञानी अनन्तकाल तक अज्ञान में ही रहेगा ।

(ii) **अनादि सपर्यवसित अज्ञानी** - वह अनादि अज्ञानी जो कभी न कभी मोक्ष पायेगा । इसकी स्थिति कह नहीं सकते क्योंकि एक बार ज्ञानी होने से वह सादि सपर्यवसित कहलाता है ।

(iii) **सादि सपर्यवसित अज्ञानी** - जिसने एक बार सम्यक्त्व प्राप्त कर प्रनः मिथ्यात्व में चला गया है उसकी जघन्यतः स्थिति अन्तर्मुहूर्त एवं उत्कृष्टतः स्थिति देशोण अर्द्धपुद्गल परावर्तन है ।

चतुर्दशम योग द्वार का विवेचन

(1348) योग किसे कहते है ?

उत्तर : सोचने, बोलने और करने की प्रवृत्ति को योग कहते है ।

मन, वचन एवं काया के द्वारा आत्मा में जो व्यापार होता है, उसे योग कहते है ।

(1349) मुख्य रूप से कितने प्रकार के योग कहे गये हैं ?

उत्तर : **तीन प्रकार के** - (1) मनोयोग (2) वचनयोग (3) काययोग ।

(1350) मनोयोग किसे कहते है ?

उत्तर : मन के द्वारा चिन्तन करना, सोचना, मनोयोग कहलाता है ।

(1351) वचनयोग किसे कहते है ?

उत्तर : शब्दोच्चारण करना, वचनयोग कहलाता है ।

(1352) काययोग किसे कहते है ?

उत्तर : काया के द्वारा की जाने वाली प्रवृत्ति को काययोग कहते है ।

(1353) तीनों योगों का इस प्रकार अनुक्रम क्यों दिया गया ?

उत्तर : (१) मन-प्रयोग से वचन-प्रयोग कम होता है । वचन का अपेक्षा काय-प्रयोग कम होता है ।

(२) मन की प्राप्ति महापुण्य से होती है, वचन योग की प्राप्ति के लिये भी पुण्य चाहिये । कायिक योग प्रत्येक भव में मिलता है ।

(३) मन सूक्ष्म हैं और वचन तथा काय क्रमशः अधिक स्थूल है ।

(४) मनोयोग पंचेन्द्रिय में ही हो सकता है । वचन चतुरिन्द्रिय में भी होता है पर काय योग समस्त जीवों में पाया जाता है ।

इस प्रकार प्रयोग, महत्त्व, स्थूल-सूक्ष्म एवं जीवों के आधार पर तीनों योगों का उपरोक्त प्रकरण क्रम दिया गया ।

(1354) मनोयोग कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

उत्तर : **चार प्रकार के** - (1) सत्य मनोयोग (2) असत्य मनोयोग (3) सत्यमृषा (मिश्र) मनोयोग (4) असत्यामृषा (व्यवहार) मनोयोग ।

(1355) सत्य मनोयोग किसे कहते है ?

उत्तर : वस्तु के यथार्थ गुण/स्वरूप आदि के बारे में चिन्तन/विचार करना, सत्य मनोयोग कहलाता हैं ।

(1356) सत्य मनोयोग का उदाहरण प्रस्तुत कीजिये ।

उत्तर : वीतराग परमात्मा का शासन कल्याणकारी है । सुदेव, सुगुरु और सुधर्म ही भवजल-तारक हैं, इस प्रकार का चिन्तन करना, सत्य मनोयोग कहलाता है ।

(1357) असत्य मनोयोग किसे कहते है ?

उत्तर : वस्तु के यथार्थ गुण/स्वरूप से विपरीत चिन्तन करना, असत्य मनोयोग कहलाता है ।

(1358) असत्य मनोयोग का उदाहरण बताओ ।

उत्तर : संसार और शरीर का सुख ही वास्तविक है । आत्मा, पुर्नजन्म, किसने देखा ? यह सब कोरी कल्पनाएँ हैं, इस प्रकार का चिन्तन करना, असत्य मनोयोग कहलाता है ।

(1359) सत्यमृषा मनोयोग किसे कहते है ?

उत्तर : सत्य अर्थात् यथार्थ ।

मृषा अर्थात् अयथार्थ, असत्य ।

वस्तु - स्वरूप के बारे में थोडा गलत और थोडा सही चिन्तन करना, सत्यमृषा मनोयोग कहलाता है । इस योग में सत्य और असत्य दोनों का मिश्रण होने से इसे मिश्र मनोयोग भी कहा जाता है ।

(1360) सत्यमृषा मनोयोग का उदाहरण बताओ ।

उत्तर : जिन धर्म बहुत सुंदर है पर यह हिंदु धर्म के बाद प्रकट हुआ है, इस प्रकार का चिन्तन करना, सत्यमृषा मनोयोग कहलाता है ।

(1361) असत्यामृषा मनोयोग किसे कहते है ?

उत्तर : असत्य - सत्य नहीं ।

अमृषा - असत्य नहीं ।

जो विचार न गलत हैं, न सही हैं । व्यवहार में स्वीकार्य है, उसे असत्यमृषा मनोयोग कहते है ।

(1362) असत्यामृषा मनोयोग का उदाहरण बताओ ।

उत्तर : यह सड़क मुंबई जाती है इस प्रकार का चिन्तन, असत्यामृषा मनोयोग कहलाता है । वास्तव में सड़क कही भी नहीं जाती है, फिर भी व्यवहार में ऐसे विचार स्वीकार्य हैं ।

(1363) वचनयोग कितने प्रकार का कहा गया है ?

उत्तर : **चार प्रकार का** - (1) सत्य वचनयोग (2) असत्य वचनयोग (3) सत्यमृषा (मिश्र) वचनयोग (4) असत्यामृषा वचनयोग ।

(1364) सत्य वचनयोग किसे कहते है ?

उत्तर : वस्तु के यथार्थ स्वरूप का कथन करना, सत्य वचन उच्चारित करना, सत्य वचनयोग कहलाता है ।

(1365) सत्य वचनयोग का उदाहरण बताओ ।

उत्तर : आम के वन के लिये 'यह आम का वन है' ऐसा कथन करना, सत्य वचनयोग कहलाता है ।

(1366) असत्य वचनयोग किसे कहते है ?

उत्तर : वस्तु के स्वरूप से विपरीत कथन करना, असत्य कथन उच्चारित करना, असत्य वचनयोग कहलाता है ।

(1367) असत्य वचनयोग का उदाहरण बताओ ।

उत्तर : आम के वन को जामुन आदि अन्य फल वाला वन कहना, असत्य वचन योग कहलाता है ।

(1368) सत्यमृषा वचनयोग किसे कहते है ?

उत्तर : वस्तु के स्वरूप के बारे में थोडा सही और थोडा गलत कथन करना, सत्यमृषा वचनयोग कहलाता है । सत्य तथा असत्य, दोनों का कथन होने से इसे मिश्र वचनयोग भी कहा जाता है ।

(1369) सत्यमृषा वचनयोग का उदाहरण बताओ ।

उत्तर : आम वृक्ष सहित विविध फलों वाले वन को आम्र-वन कहना, सत्यमृषा वचन योग कहलाता है।

(1370) असत्यामृषा वचन योग किसे कहते है ?

उत्तर : असत्य - सत्य नहीं।
अमृषा - असत्य नहीं।
जो वचन सत्य भी न हो, असत्य भी न हो, उसे असत्यामृषा वचनयोग कहते है। इसे व्यवहार भाषा भी कहते है।

(1371) असत्यामृषा वचनयोग का उदाहरण बताओ।

उत्तर : 'चूल्हा जलता है' ऐसा कथन वास्तव में असत्य है क्योंकि चूल्हा नहीं, ईंधन जलता है, फिर भी व्यवहार में मान्य होने के कारण सत्य की भाँति स्वीकार्य है।

(1372) काययोग के कितने प्रकार होते हैं ?

उत्तर : **सात प्रकार** - (1) औदारिक काययोग (2) औदारिक मिश्र काययोग (3) वैक्रिय काययोग (4) वैक्रिय मिश्र काययोग (5) आहारक काययोग (6) आहारक मिश्र काययोग (7) कार्मण काययोग।

(1373) औदारिक काययोग किसे कहते है ?

उत्तर : औदारिक शरीरधारी जीव के द्वारा की जाने वाली कायिक प्रवृत्ति को औदारिक काययोग कहते है।

(1374) औदारिक मिश्र काययोग किसे कहते है ?

उत्तर : औदारिक और कार्मण शरीर अथवा औदारिक और वैक्रिय शरीर अथवा औदारिक और आहारक शरीर संयुक्त होने पर उनके द्वारा की जाने वाली प्रवृत्ति को औदारिक मिश्र काययोग कहते है।

(1375) औदारिक मिश्र काययोग कब होता है ?

उत्तर : छह प्रकार की पर्याप्तियों में से शरीर पर्याप्ति के पूर्ण होने से पूर्व औदारिक मिश्र काययोग होता है ।

अन्य आचार्यों के मत में - समस्त पर्याप्तियों के पूर्ण होने से पूर्व औदारिक मिश्र काययोग होता है ।

(1376) औदारिक मिश्र काययोग मनुष्य में कब-कब होता है ?

उत्तर : मनुष्य की उत्पत्ति के दूसरे समय कार्मण और औदारिक शरीर के पुद्गल साथ-साथ होने से औदारिक मिश्र काययोग होता है ।

सिद्धान्तानुसार -

(i) मनुष्य के द्वारा वैक्रिय शरीर की रचना के समय औदारिक शरीर के पुद्गलों के साथ वैक्रिय शरीर के पुद्गल होने से औदारिक मिश्र काययोग होता है ।

(ii) आहारक शरीर की रचना के समय औदारिक शरीर के पुद्गलों के साथ आहारक शरीर के पुद्गल होने से औदारिक मिश्र काययोग होता है ।

(iii) केवली भगवंत के द्वारा केवली समुद्घात करने पर उसके दूसरे, छट्ठे और सातवें समय में औदारिक मिश्र काययोग होता है ।

(1377) तिर्यंचों को औदारिक मिश्र काययोग कब-कब होता है ?

उत्तर : तिर्यंच जीव को उत्पत्ति के द्वितीय समय कार्मण मिश्रित औदारिक काययोग होने से औदारिक मिश्र काययोग होता है ।

सिद्धान्तानुसार - पंचेन्द्रिय तिर्यंच तथा वायुकाय के वैक्रिय शरीर निर्माण के समय औदारिक मिश्र काययोग होता है ।

(1378) वैक्रिय काययोग किसे कहते है ?

उत्तर : वैक्रिय शरीरधारी जीव के द्वारा की जाने वाली प्रवृत्ति को वैक्रिय

कायर्योग कहते है ।

(1379) वैक्रिय मिश्र काययोग किसे कहते है ?

उत्तर : वैक्रिय शरीर और औदारिक शरीर अथवा वैक्रिय शरीर तथा कार्मण शरीर के संयुक्त होने पर, उस शरीर के द्वारा की जाने वाली प्रवृत्ति को वैक्रिय मिश्र काययोग कहते है ।

(1380) देव एवं नारकी जीवों को वैक्रिय मिश्र काययोग कब होता है ?

उत्तर : देव तथा नारकी को अपर्याप्त अवस्था में वैक्रिय मिश्र काययोग होता है ।

1. **कर्मग्रंथानुसार** – देव तथा नारकी के द्वारा उत्तर वैक्रिय शरीर बनाते समय वैक्रिय मिश्र काययोग होता है ।
2. **सिद्धान्तानुसार** - उत्तर वैक्रिय शरीर निर्माण एवं संहरण दोनों समय वैक्रिय मिश्र काययोग होता है ।

(1381) मनुष्य तथा तिर्यंच को वैक्रिय मिश्र काययोग कब होता है ?

उत्तर : **सिद्धान्तानुसार** – मनुष्य तथा तिर्यंच को वैक्रिय शरीर के संहरण समय में वैक्रिय मिश्र काययोग होता है ।

कर्मग्रंथानुसार – वैक्रिय शरीर निर्माण तथा संहरण, दोनों समय वैक्रिय मिश्र काययोग होता है ।

(1382) आहारक काययोग किसे कहते है ?

उत्तर : आहारक शरीरधारी जीव के द्वारा की जाने वाली प्रवृत्ति को आहारक काययोग कहते है ।

(1383) आहारक मिश्र काययोग किसे कहते है ?

उत्तर : आहारक और औदारिक शरीर के संयुक्त होने पर, उस शरीर के द्वारा की जाने वाली प्रवृत्ति को आहारक मिश्र काययोग कहते है ।

(1384) आहारक मिश्र काययोग कब होता है ?

उत्तर : **सिद्धान्तानुसार** – आहारक शरीर के संहरण के समय आहारक

मिश्र काययोग होता है ।

कर्मग्रंथानुसार - आहारक शरीर निर्माण एवं संहरण, दोनों समय आहारक मिश्र काययोग होता है ।

(1385) कार्मण काययोग किसे कहते है ?

उत्तर : तैजस तथा कार्मण, मात्र इन दो शरीरों के द्वारा की जाने वाली प्रवृत्ति को कार्मण काययोग कहते है ।

(1386) कार्मण काययोग कब-कब होता है ?

उत्तर : 1 जीव के एक भव से दूसरे भव में जाते समय अर्थात् विग्रह गति में कार्मण काययोग होता है ।

2 केवली समुद्घात के 3-4-5वें समय कार्मण काययोग होता है ।

(1387) तैजसकाय योग क्यों नहीं कहा गया ?

उत्तर : तैजस तथा कार्मण शरीर सर्वदा साथ रहते हैं, अत: कार्मण के साथ तैजसकाय योग को अध्याहार से समझना चाहिये ।

(1388) पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय और वनस्पतिकाय में कितने योग पाये जाते हैं ?

उत्तर : **तीन योग** - (1) औदारिक काययोग (2) औदारिक मिश्र काययोग (3) कार्मण काययोग ।

(1389) वायुकाय में कितने योग पाये जाते है ?

उत्तर : **पांच योग** - (1) औदारिक काययोग (2) औदारिक मिश्र काययोग (3) वैक्रिय काययोग (4) वैक्रिय मिश्र काययोग (5) कार्मण काययोग ।

(1390) वायुकाय में वैक्रिय एवं वैक्रिय मिश्र काययोग किस प्रकार संभव है ?

उत्तर : वायुकाय में विश्रसा अर्थात् स्वाभाविक रूप से वैक्रिय-वैक्रिय मिश्र काययोग होते हैं । उसमें बुद्धि प्रयोग का अभाव होता है ।

(1391) विकलेन्द्रिय में कितने योग पाये जाते हैं ?

उत्तर : **चार योग** - (1) औदारिक काययोग (2) औदारिक मिश्र काययोग

(3) कार्मण काययोग (4) असत्यामृषा वचनयोग ।

(1392) देव और नारकी में कितने योग पाये जाते हैं ?

उत्तर : ग्यारह योग - (1) सत्य मनोयोग (2) असत्य मनोयोग (3) सत्यमृषा (मिश्र) मनोयोग (4) असत्यामृषा (व्यवहार) मनोयोग (5) सत्य वचनयोग (6) असत्य वचनयोग (7) सत्यमृषा (मिश्र) वचनयोग (8) असत्यामृषा (व्यवहार) वचनयोग (9) वैक्रिय काययोग (10) वैक्रिय मिश्र काययोग (11) कार्मण काययोग ।

(1393) देव और नारकी में शेष चार योग किस कारण नहीं होते हैं ?

उत्तर : देव और नारकी में औदारिक शरीर का अभाव होने से औदारिक एवं औदारिक मिश्र काययोग नहीं होते हैं ।

आहारक लब्धि का अभाव होने के कारण तदाश्रित आहारक एवं आहारक मिश्र काययोग नहीं पाये जाते हैं ।

(1394) गर्भज तिर्यंच में कितने योग पाये जाते हैं ?

उत्तर : तेरह योग - उपरोक्त ग्यारह योगों के साथ औदारिक काययोग तथा औदारिक मिश्र काययोग होते हैं ।

(1395) गर्भज तिर्यंच में आहारक एवं आहारक मिश्र काय योग क्यों नहीं पाये जाते हैं ?

उत्तर : गर्भज तिर्यंच में सर्वविरति का अभाव होने से चौदह पूर्वों का ज्ञान नहीं होता है जबकि चौदह पूर्वधर ही आहारक लब्धि द्वारा आहारक शरीर बना सकते हैं ।

(1396) गर्भज मनुष्य में कितने योग पाये जाते हैं ?

उत्तर : पंद्रह योग - उपरोक्त तेरह योगों सहित आहारक काययोग एवं आहारक मिश्र काययोग होते हैं ।

(1397) कर्मभूमिज मनुष्यों में कितने योग पाये जाते हैं ?

उत्तर : तीनों योग एवं उपभेदों की अपेक्षा से पन्द्रह योग पाये जाते हैं ।

(1398) अकर्मभूमिज तथा अन्तर्द्वीपज मनुष्यों में कितने योग पाये जाते हैं ?

उत्तर : मन, वचन एवं काय रूप तीनों योग पाये जाते हैं।

उपभेदों की अपेक्षा से ग्यारह योग - (1-4) चार मनोयोग, (5-8) चार वचनयोग, (9) औदारिक काययोग (10) औदारिक मिश्र काययोग (11) कार्मण काययोग।

लब्धि के अभाव में शेष चारों योगों का अभाव होता है।

(1399) भरत, ऐरावत एवं महाविदेह क्षेत्र में योग किस प्रकार पाये जाते हैं ?

उत्तर : (i) भरत एवं ऐरावत क्षेत्र में उत्सर्पिणी तथा अवसर्पिणी के पहले, दूसरे, पांचवें एवं छट्ठे आरे में ग्यारह योग पाये जाते हैं -

(1-4) चार मनोयोग, (5-8) चार वचनयोग, (9) औदारिक काय योग, (10) औदारिक मिश्र काय योग, (11) कार्मण काय योग।

(ii) भरत-ऐरावत क्षेत्र में तीसरे-चौथे आरे में पन्द्रह योग पाये जाते हैं।

(iii) महाविदेह में पन्द्रह योग सर्वदा पाये जाते हैं।

(1400) सत्य मनोयोग कितने दण्डकों में पाया जाता है ?

उत्तर : सोलह दण्डकों में - दस भवनपति देव, व्यंतर-ज्योतिष्क-वैमानिक देव, गर्भज तिर्यंच, गर्भज मनुष्य, नारकी।

(1401) असत्य मनोयोग कितने दण्डकों में पाया जाता है ?

उत्तर : उपरोक्त सोलह दण्डकों में।

(1402) सत्यमृषा मनोयोग कितने दण्डकों में पाया जाता है ?

उत्तर : उपरोक्त सोलह दण्डकों में।

(1403) असत्यामृषा (व्यवहार) मनोयोग कितने दण्डकों में पाया जाता है ?

उत्तर : उपरोक्त सोलह दण्डकों में ।

(1404) सत्य वचनयोग कितने दण्डकों में पाया जाता है ?

उत्तर : उपरोक्त सोलह दण्डकों में ।

(1405) असत्य वचनयोग कितने दण्डकों में पाया जाता है ?

उत्तर : उपरोक्त सोलह दण्डकों में ।

(1406) सत्यमृषा वचनयोग कितने दण्डकों में पाया जाता है ?

उत्तर : उपरोक्त सोलह दण्डकों में ।

(1407) असत्यामृषा वचनयोग कितने दण्डकों में पाया जाता है ?

उत्तर : **उन्नीस दण्डकों में** - दस भवनपति देव, व्यंतर-ज्योतिष्क-वैमानिक देव, नारकी, गर्भज तिर्यंच, गर्भज मनुष्य और विकलेन्द्रिय त्रिक ।

(1408) औदारिक काययोग कितने दण्डकों में पाया जाता है ?

उत्तर : **दस दण्डकों में** - पांच स्थावर, विकलेन्द्रिय त्रिक, गर्भज तिर्यंच तथा गर्भज मनुष्य ।

(1409) औदारिक मिश्र काययोग कितने दण्डकों में पाया जाता है ?

उत्तर : उपरोक्त दस दण्डकों में ।

(1410) वैक्रिय काययोग कितने दण्डकों में पाया जाता है ?

उत्तर : **सतरह दण्डकों में** - दस भवनपति देव, व्यंतर-ज्योतिष्क-वैमानिक देव, नारकी, गर्भज तिर्यंच, गर्भज मनुष्य और वायुकाय ।

(1411) वैक्रिय मिश्र काययोग कितने दण्डकों में पाया जाता है ?

उत्तर : उपरोक्त सतरह दण्डकों में ।

(1412) आहारक काययोग कितने दण्डकों में पाया जाता है ?

उत्तर : गर्भज मनुष्य के एक दण्डक में ।

(1413) आहारक मिश्र काययोग कितने दण्डकों में पाया जाता है ?

उत्तर : गर्भज मनुष्य के एक दण्डक में ।

(1414) कार्मण काययोग कितने दण्डकों में पाया जाता है ?

उत्तर : चौबीस दण्डकों में ।

(1415) मनोयोग कितने दण्डकों में पाया जाता है ?

उत्तर : सोलह दण्डकों में - दस भवनपति देव, व्यंतर-ज्योतिष्क-वैमानिक देव, नारकी, गर्भज मनुष्य, गर्भज तिर्यंच ।

(1416) वचनयोग कितने दण्डकों में पाया जाता है ?

उत्तर : उन्नीस दण्डकों में - विकलेन्द्रिय त्रिक सहित उपरोक्त सोलह दण्डक ।

(1417) काययोग कितने दण्डकों में पाया जाता है ?

उत्तर : समस्त दण्डकों में ।

(1418) केवल मनोयोग कितने दण्डकों में पाया जाता है ?

उत्तर : एक भी दण्डक में नहीं ।

(1419) केवल वचनयोग कितने दण्डकों में पाया जाता है ?

उत्तर : एक भी दण्डक में नहीं ।

(1420) केवल काययोग कितने दण्डकों में पाया जाता है ?

उत्तर : पांच दण्डकों में - पृथ्वी-अप्-तेउ-वायु-वनस्पतिकाय ।

(1421) तीन योग कितने दण्डकों में पाये जाते हैं ?

उत्तर : चार दण्डकों में - पृथ्वी-अप्-तेउ और वनस्पतिकाय ।

(1422) चार योग कितने दण्डकों में पाये जाते हैं ?

उत्तर : तीन दण्डकों में - विकलेन्द्रिय त्रिक ।

(1423) पांच योग कितने दण्डकों में पाये जाते हैं ?

उत्तर : एक दण्डक में - वायुकाय ।

(1424) ग्यारह योग कितने दण्डकों में पाये जाते हैं ?

उत्तर : चौदह दण्डकों में - दस भवनपति देव, व्यंतर देव, ज्योतिष्क देव,

वैमानिक देव, नारकी ।

(1425) तेरह योग कितने दण्डकों में पाये जाते हैं ?

उत्तर : **एक दण्डक में** - गर्भज तिर्यंच ।

(1426) पंद्रह योग कितने दण्डकों में पाये जाते हैं ?

उत्तर : **एक दण्डक में** - गर्भज मनुष्य ।

(1427) सर्वाधिक दण्डकों में पाया जाने वाला कौनसा योग है ?

उत्तर : कार्मण काययोग - चौबीस दण्डकों में ।

(1428) सबसे कम दण्डकों में पाया जाने वाला कौनसा योग है ?

उत्तर : आहारक काययोग एवं आहारक मिश्र काययोग - एक गर्भज मनुष्य के दण्डक में ।

(1429) सर्वाधिक दण्डकों में पाया जाने वाला कौनसा मनोयोग है ?

उत्तर : चारों मनोयोग सोलह दण्डकों में पाये जाने से उसमें अल्पता-अधिकता नहीं है ।

(1430) सर्वाधिक दण्डकों में पाया जाने वाला कौनसा वचनयोग है ?

उत्तर : **असत्यामृषा वचनयोग** - उन्नीस दण्डकों में - (1-13) समस्त देव, (14) नारकी, (15) गर्भज मनुष्य, (16) गर्भज तिर्यंच, (17-19) विकलेन्द्रिय त्रिक ।

(1431) सर्वाधिक दण्डकों में पाया जाने वाला कौनसा काययोग है ?

उत्तर : कार्मण काययोग - समस्त दण्डकों में ।

(1432) सबसे कम दण्डकों में पाया जाने वाला कौनसा काय योग है ?

उत्तर : **दो योग** - आहारक एवं आहारक मिश्र काय योग ।

(1433) मनुष्य गति में कितने योग पाये जाते हैं ?

उत्तर : पन्द्रह योग ।

(1434) देव तथा नरक गति में कितने योग पाये जाते हैं ?

उत्तर : ग्यारह योग - आहारक - आहारक मिश्र, औदारिक - औदारिक मिश्र काय योग को छोड़कर ।

(1435) तिर्यंच गति में कितने योग पाये जाते है ?

उत्तर : तेरह योग - आहारक - आहारक मिश्र काय योग को छोड़कर ।

(1436) त्रस पर्याय में कितने योग पाये जाते हैं ?

उत्तर : पंद्रह योग ।

(1437) स्थावर पर्याय में कितने योग पाये जाते हैं ?

उत्तर : पांच योग - औदारिक-औदारिक मिश्र-वैक्रिय-वैक्रिय मिश्र-कार्मण काययोग ।

(1438) सूक्ष्म जीवों में कितने योग पाये जाते हैं ?

उत्तर : तीन योग - औदारिक-औदारिक मिश्र-कार्मण काययोग ।

(1439) बादर जीवों में कितने योग पाये जाते हैं ?

उत्तर : पन्द्रह योग ।

(1440) गर्भज जीवों में कितने योग पाये जाते हैं ?

उत्तर : पन्द्रह योग ।

(1441) संमूर्च्छिम जीवों में कितने योग पाये जाते हैं ?

उत्तर : छह योग - औदारिक-औदारिक मिश्र-वैक्रिय-वैक्रिय मिश्र-कार्मण काययोग-असत्यामृषा वचनयोग ।

(1442) औपपातिक जीवों में कितने योग पाये जाते हैं ?

उत्तर : ग्यारह योग - चार मनोयोग, चार वचनयोग, वैक्रिय-वैक्रिय मिश्र तथा कार्मण काययोग ।

(1443) संज्ञी जीवों में कितने योग पाये जाते हैं ?

उत्तर : पंद्रह योग ।

(1444) असंज्ञी जीवों में कितने योग पाये जाते हैं ?

उत्तर : छह योग - संमूर्च्छिम के समान ।

(1445) भव्य जीवों में कितने योग पाये जाते हैं ?

उत्तर : पंद्रह योग ।

(1446) अभव्य जीवों में कितने योग पाये जाते हैं ?

उत्तर : **तेरह योग** - आहारक एवं आहारक मिश्र काययोग को छोड़कर ।

(1447) उर्ध्वलोक, मध्यलोक तथा अधोलोक में कितने योग पाये जाते हैं ?

उत्तर : पंद्रह योग ।

(1448) पुरुष तथा नपुंसक वेद में कितने योग पाये जाते हैं ?

उत्तर : पंद्रह योग ।

(1449) स्त्री वेद में कितने योग पाये जाते हैं ?

उत्तर : **तेरह योग** - आहारक तथा आहारक मिश्र को छोड़कर ।

(1450) पहले, दूसरे एवं चौथे गुणस्थानक में कितने योग पाये जाते हैं ?

उत्तर : आहारक एवं आहारक मिश्र काययोग के अतिरिक्त तेरह योग पाये जाते हैं ।

(1451) तीसरे गुणस्थानक में कितने योग पाये जाते हैं ?

उत्तर : **दस योग** - चार मनोयोग, चार वचनयोग, औदारिक-वैक्रिय-काययोग ।

(1452) पांचवें गुणस्थानक में कितने योग पाये जाते हैं ?

उत्तर : **ग्यारह योग** - चार मनोयोग, चार वचनयोग, औदारिक-वैक्रिय तथा वैक्रिय मिश्र काययोग ।

(1453) छट्ठे गुणस्थानक में कितने योग पाये जाते हैं ?

उत्तर : **तेरह योग** - कार्मण तथा औदारिक मिश्र काययोग बिना ।

(1454) सातवें गुणस्थानक में कितने योग पाये जाते हैं ?

उत्तर : **ग्यारह योग** - औदारिक मिश्र-वैक्रिय मिश्र-आहारक मिश्र तथा कार्मण काययोग को छोड़कर ।

(1455) 8,9,10,11 तथा 12 वें गुणस्थानक में कितने योग पाये जाते हैं ?

उत्तर : **नौ योग** - चार मनोयोग, चार वचनयोग एवं औदारिक काययोग ।

(1456) तेरहवें गुणस्थानक में कितने योग पाये जाते हैं ?

उत्तर : **ग्यारह योग** - चार मनोयोग, चार वचनयोग, औदारिक-औदारिक मिश्र-कार्मण काययोग ।

(1457) चौदहवें गुणस्थानक में कितने योग पाये जाते हैं ?

उत्तर : एक भी योग नहीं होता है ।

(1458) प्रत्येक जीवों में कितने योग पाये जाते हैं ?

उत्तर : पन्द्रह योग ।

(1459) साधारण जीवों में कितने योग पाये जाते हैं ?

उत्तर : **तीन योग** - 1 औदारिक काययोग 2 औदारिक मिश्र काययोग 3 कार्मण काययोग ।

(1460) सम्यक्त्वी एवं मिथ्यात्वी जीवों में कितने योग पाये जाते हैं ?

उत्तर : **तीन योग** - मन - वचन - काय योग ।

(1461) सम्यक्त्वी में उपभेदों की अपेक्षा से कितने योग पाये जाते हैं ?

उत्तर : पन्द्रह योग ।

(1462) मिथ्यात्वी में उपभेदों की अपेक्षा से कितने योग पाये जाते हैं ?

उत्तर : **ग्यारह योग** - (1-4) चार मनोयोग, (5-8) चार वचनयोग, (9-10) औदारिक - औदारिक मिश्र काययोग, (11) कार्मण काययोग ।

(1463) पर्याप्त अवस्था में कितने योग पाये जाते हैं ?

उत्तर : **तीन योग** - मन - वचन - काय योग ।

(1464) पर्याप्त अवस्था में उपभेदों की अपेक्षा से कितने योग पाये जाते हैं ?

उत्तर : पन्द्रह योग ।

(1465) कामयोगी का काल कितना कहा गया है ?

उत्तर : जघन्यतः - अन्तर्मुहूर्त ।

उत्कृष्टतः - वनस्पतिकाल (अनन्तकाल) ।

(1466) मनोयोग एवं वचनयोग का काल कितना कहा गया है ?

उत्तर : **दोनों योगों का काल -**

जघन्यतः - एक समय ।

उत्कृष्टतः - अन्तर्मुहूर्त ।

(1467) मनोयोगी एवं वचनयोगी का उत्कृष्टतः काल अन्तर्मुहूर्त ही क्यों कहा गया जबकि एक व्यक्ति घण्टों तक बोलता-या सोचता हुआ जाना जाता है ?

उत्तर : व्यवहार में हमें उक्त प्रकारेण प्रतीत होता है परन्तु यथार्थ में अन्तर्मुहूर्त में जीव-स्वभाव के कारण मन एवं वचन योग के प्रयोग में अवश्य उपरत (अलग) होने से उसमें अन्तर पड़ता है, कदाचित काल की सूक्ष्मता के कारण हमें उसका वेदन-संवेदन एवं ज्ञान नहीं हो पाता है ।

पंचदशम उपयोग द्वार का विवेचन

(1468) उपयोग किसे कहते है ?

उत्तर : वस्तु में स्थित विशेष अथवा सामान्य धर्म को जानने वाली आत्मिक शक्ति के व्यापार को उपयोग कहते है।

(1469) उपयोग कितने प्रकार के होते हैं ?

उत्तर : दो प्रकार के - (1) साकारोपयोग (2) निराकारोपयोग ।

(1470) साकारोपयोग किसे कहते है ?

उत्तर : वस्तु में स्थित विशेष धर्म को बताने वाली आत्मिक शक्ति के व्यापार को साकारोपयोग कहते है। इसे विशेषोपयोग भी कहते है।

(1471) निराकारोपयोग किसे कहते है ?

उत्तर : वस्तु में स्थित सामान्य धर्म को बताने वाली आत्मिक शक्ति के व्यापार को निराकारोपयोग कहते है। इसे दर्शनोपयोग एवं सामान्योपयोग भी कहते है।

(1472) साकारोपयोग कितने प्रकार का कहा गया है ?

उत्तर : दो प्रकार का - (1) ज्ञानोपयोग (2) अज्ञानोपयोग ।

(1473) ज्ञानोपयोग कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

उत्तर : पांच प्रकार के - (1) मतिज्ञानोपयोग (2) श्रुतज्ञानोपयोग (3) अवधिज्ञानोपयोग (4) मनःपर्यवज्ञानोपयोग (5) केवलज्ञानोपयोग ।

(1474) मतिज्ञानोपयोग किसे कहते है ?

उत्तर : मन और इन्द्रियों की सहायता से वस्तु में स्थित विशेष धर्म को बताने वाली सम्यक्त्व सहित आत्मिक शक्ति के व्यापार को मतिज्ञानोपयोग कहते है।

(1475) श्रुतज्ञानोपयोग किसे कहते है ?

उत्तर : मन और इन्द्रियों की सहायता से शास्त्र, ग्रंथादि के श्रवण, वांचन आदि से शब्द में छिपे अर्थ का ज्ञान कराने वाली सम्यक्त्व सहित आत्मिक शक्ति के व्यापार को श्रुतज्ञानोपयोग कहते है।

(1476) अवधिज्ञानोपयोग किसे कहते है ?

उत्तर : मन और इन्द्रियों की सहायता के बिना मात्र रूपी द्रव्यों में स्थित विशेष धर्म को बताने वाली सम्यक्त्व सहित आत्मिक शक्ति के व्यापार को अवधिज्ञानोपयोग कहते है ।

(1477) मनःपर्यवज्ञानोपयोग किसे कहते है ?

उत्तर : मन और इन्द्रियों की सहायता के बिना ढाई द्वीप में स्थित संज्ञी प्राणियों के मन के विचारों को बताने वाली आत्मिक शक्ति के व्यापार को मनःपर्यवज्ञानोपयोग कहते है ।

(1478) केवलज्ञानोपयोग किसे कहते है ?

उत्तर : त्रिकाल में स्थित समस्त द्रव्य एवं उनके समस्त पर्यायों में स्थित विशेष धर्म को एक साथ बताने वाली आत्मिक शक्ति के व्यापार को केवलज्ञानोपयोग कहते है ।

(1479) अज्ञानोपयोग कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

उत्तर : **तीन प्रकार के** - (1) मति अज्ञानोपयोग (2) श्रुत अज्ञानोपयोग (3) अवधि अज्ञानोपयोग ।

(1480) मति अज्ञानोपयोग किसे कहते है ?

उत्तर : मन और इन्द्रियों से वस्तु में स्थित विशेष धर्म को बताने वाली सम्यक्त्व रहित आत्मिक शक्ति के व्यापार को मति अज्ञानोपयोग कहते है ।

(1481) श्रुत अज्ञानोपयोग किसे कहते है ?

उत्तर : शास्त्र, ग्रंथादि के श्रवण अथवा वांचन आदि से शब्द के साथ अर्थ का ज्ञान कराने वाली सम्यक्त्व रहित आत्मिक शक्ति के व्यापार को श्रुत अज्ञानोपयोग कहते है ।

(1482) अवधि अज्ञानोपयोग किसे कहते है ?

उत्तर : मन और इन्द्रियों की सहायता के बिना मात्र रूपी द्रव्यों में स्थित

विशेष धर्म को बताने वाली सम्यक्त्व रहित आत्मिक शक्ति के व्यापार को अवधि अज्ञानोपयोग कहते है। इसे विभंगज्ञानोपयोग भी कहते है।

(1483) दर्शनोपयोग कितने प्रकार का कहा गया है ?

उत्तर : चार प्रकार का - (1) चक्षुदर्शनोपयोग (2) अचक्षुदर्शनोपयोग (3) अवधिदर्शनोपयोग (4) केवलदर्शनोपयोग।

(1484) चक्षुदर्शनोपयोग किसे कहते है ?

उत्तर : चक्षु (आँख) की सहायता से वस्तु में स्थित सामान्य धर्म को बताने वाली आत्मिक शक्ति के व्यापार को चक्षुदर्शनोपयोग कहते है।

(1485) अचक्षुदर्शनोपयोग किसे कहते है ?

उत्तर : चक्षुरिन्द्रिय के अतिरिक्त शेष चार इन्द्रियों में से किसी भी इन्द्रिय की सहायता से एवं मन के द्वारा वस्तु में स्थित सामान्य धर्म को बताने वाली आत्मिक शक्ति के व्यापार को अचक्षुदर्शनोपयोग कहते है।

(1486) अवधिदर्शनोपयोग किसे कहते है ?

उत्तर : मन और इन्द्रियों की सहायता के बिना मात्र रुपी द्रव्यों में स्थित सामान्य धर्म को बताने वाली आत्मिक शक्ति के व्यापार को अवधिदर्शनोपयोग कहते है।

(1487) केवलदर्शनोपयोग किसे कहते है ?

उत्तर : तीनों काल में स्थित समस्त द्रव्यों एवं उनकी समस्त पर्यायों में स्थित सामान्य धर्म को बताने वाली आत्मिक शक्ति के व्यापार को केवलदर्शनोपयोग कहते है।

(1488) पृथ्वीकायिक, अप्कायिक और वनस्पतिकायिक जीवों में कितने उपयोग पाये जाते हैं ?

उत्तर : **सिद्धान्तानुसार तीन उपयोग** - (1) मति अज्ञानोपयोग (2) श्रुत अज्ञानोपयोग (3) अचक्षु दर्शनोपयोग ।

कर्मग्रंथानुसार - उपरोक्त तीन उपयोग सहित मतिज्ञानोपयोग एवं श्रुतज्ञानोपयोग होने से पांच उपयोग पाये जाते हैं ।

(1489) तेउकायिक तथा वायुकायिक जीवों में कितने उपयोग पाये जाते हैं ?

उत्तर : **तीन उपयोग** - (1) मति अज्ञानोपयोग (2) श्रुत अज्ञानोपयोग (3) अचक्षु दर्शनोपयोग ।

(1490) द्वीन्द्रिय तथा त्रीन्द्रिय में कितने उपयोग पाये जाते हैं ?

उत्तर : **पांच उपयोग** - (1) मतिज्ञानोपयोग (2) श्रुतज्ञानोपयोग (3) मतिअज्ञानोपयोग (4) श्रुतअज्ञानोपयोग (5) अचक्षुदर्शनोपयोग ।

(1491) चतुरिन्द्रिय में कितने उपयोग पाये जाते हैं ?

उत्तर : **छह उपयोग** - उपरोक्त पांच उपयोग और चक्षुदर्शनोपयोग ।

(1492) दस भवनपति देव, व्यंतर देव, ज्योतिष्क देव, वैमानिक देव, नारकी, गर्भज तिर्यंच में कितने उपयोग पाये जाते हैं ?

उत्तर : **नव उपयोग** - (1) मतिज्ञानोपयोग (2) श्रुतज्ञानोपयोग (3) अवधिज्ञानोपयोग (4) मतिअज्ञानोपयोग (5) श्रुतअज्ञानोपयोग (6) अवधिअज्ञानोपयोग (7) चक्षुदर्शनोपयोग (8) अचक्षुदर्शनोपयोग (9) अवधिदर्शनोपयोग ।

(1493) अनुत्तर वैमानिक देवों में कितने उपयोग पाये जाते हैं ?

उत्तर : **छह उपयोग** - (1-3) मति-श्रुत-अवधिज्ञानोपयोग (4-6) चक्षु-अचक्षु-अवधिदर्शनोपयोग ।

(1494) गर्भज मनुष्य में कितने उपयोग पाये जाते हैं ?

उत्तर : बारह उपयोग ।

(1495) कर्मभूमिज मनुष्य में कितने उपयोग पाये जाते हैं ?

उत्तर : बारह उपयोग ।

(1496) भरत, ऐरावत एवं महाविदेह क्षेत्र की अपेक्षा से उपयोग स्पष्ट करो ।

उत्तर : (i) भरत एवं ऐरावत क्षेत्र में अवसर्पिणी एवं उत्सर्पिणी के तीसरे एवं चौथे आरे में द्वादश उपयोग पाये जाते हैं ।

(ii) भरत एवं ऐरावत क्षेत्र में शेष आरों में छह उपयोग (मति-श्रुतज्ञानोपयोग, मति - श्रुतअज्ञानोपयोग, चक्षु - अचक्षु-दर्शनोपयोग) पाये जाते हैं ।

(iii) महाविदेह क्षेत्र में सर्वदा चतुर्थ आरा प्रवर्तमान होने से वहाँ द्वादश उपयोग पाये जाते हैं ।

(1497) अकर्मभूमिज तथा अन्तर्द्वीपज मनुष्यों में कितने उपयोग पाये जाते हैं ?

उत्तर : **छह उपयोग** - (1) मतिज्ञानोपयोग (2) श्रुतज्ञानोपयोग (3) मतिअज्ञानोपयोग (4) श्रुतअज्ञानोपयोग (5) चक्षुदर्शनोपयोग (6) अचक्षुदर्शनोपयोग ।

(1498) मतिज्ञानोपयोग और श्रुतज्ञानोपयोग कितने दण्डकों में पाये जाते हैं ?

उत्तर : **(i) सिद्धान्तानुसार** - पांच स्थावरों के सिवाय उन्नीस दण्डकों में पाये जाते हैं ।

(ii) कर्मग्रंथानुसार - बावीस दण्डकों में - उन्नीस दण्डकों के अतिरिक्त पृथ्वीकाय, अप्काय तथा वनस्पतिकाय में भी मति-श्रुतज्ञानोपयोग पाये जाते हैं ।

(1499) अवधिज्ञानोपयोग कितने दण्डकों में पाया जाता है ?

उत्तर : **सोलह दण्डकों में** - देवों के तेरह दण्डक, नारकी, गर्भज मनुष्य तथा गर्भज तिर्यंच ।

(1500) मनःपर्यवज्ञानोपयोग तथा केवलज्ञानोपयोग कितने दण्डकों में पाये जाते हैं ?

उत्तर : गर्भज मनुष्य के एक दण्डक में ।

(1501) मतिअज्ञानोपयोग एवं श्रुतअज्ञानोपयोग कितने दण्डकों में पाये जाते हैं ?

उत्तर : समस्त चौबीस दण्डकों में ।

(1502) अवधिअज्ञानोपयोग कितने दण्डकों में पाया जाता है ?

उत्तर : अवधिज्ञानोपयोग की भाँति सोलह दण्डकों में पाया जाता है ।

(1503) अचक्षुदर्शनोपयोग कितने दण्डकों में पाया जाता है ?

उत्तर : समस्त चौबीस दण्डकों में ।

(1504) चक्षुदर्शनोपयोग कितने दण्डकों में पाया जाता है ?

उत्तर : **सतरह दण्डकों में** - देव के तेरह दण्डक, गर्भज मनुष्य, गर्भज तिर्यंच, नारकी, चतुरिन्द्रिय ।

(1505) अवधिदर्शनोपयोग कितने दण्डकों में पाया जाता है ?

उत्तर : उपरोक्त सतरह दण्डकों में से चतुरिन्द्रिय को छोडकर शेष सोलह दण्डकों में ।

(1506) केवलदर्शनोपयोग कितने दण्डकों में पाया जाता है ?

उत्तर : गर्भज मनुष्य के एक दण्डक में ।

(1507) तीन उपयोग कितने दण्डकों में पाये जाते हैं ?

उत्तर : **सिद्धान्तानुसार** - पृथ्वीकाय आदि पांच स्थावरों के पांच दण्डकों में ।

कर्मग्रंथानुसार - तेउकाय और वायुकाय के दो दण्डकों में ।

(1508) पांच उपयोग कितने दण्डकों में पाये जाते हैं ?

उत्तर : **सिद्धान्तानुसार** - द्वीन्द्रिय एवं त्रीन्द्रिय के दो दण्डकों में ।

कर्मग्रंथानुसार - पृथ्वी-अप्-वनस्पतिकाय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय के

पांच दण्डकों में ।

(1509) छह उपयोग कितने दण्डकों में पाये जाते हैं ?

उत्तर : चतुरिन्द्रिय के एक दण्डक में ।

(1510) नौ उपयोग कितने दण्डकों में पाये जाते हैं ?

उत्तर : **पन्द्रह दण्डकों में** - देव के तेरह दण्डक, गर्भज तिर्यंच, नारकी ।

(1511) बारह उपयोग कितने दण्डकों में पाये जाते हैं ?

उत्तर : गर्भज मनुष्य के एक दण्डक में ।

(1512) ज्ञानोपयोग कितने दण्डकों में पाया जाता है ?

उत्तर : **सिद्धान्तानुसार** - उन्नीस दण्डकों में (पांच स्थावर को छोड़कर) पाया जाता है ।

कर्मग्रंथानुसार - बावीस दण्डकों में (तेउ-वायुकाय छोड़कर) पाया जाता है ।

(1513) अज्ञानोपयोग कितने दण्डकों में पाया जाता है ?

उत्तर : समस्त दण्डकों में ।

(1514) दर्शनोपयोग कितने दण्डकों में पाया जाता है ?

उत्तर : समस्त दण्डकों में ।

(1515) मनुष्य गति में कितने उपयोग पाये जाते हैं ?

उत्तर : बारह उपयोग ।

(1516) देव, तिर्यंच और नरक गति में कितने-कितने उपयोग पाये जाते हैं ?

उत्तर : नव-नव उपयोग ।

(1517) त्रस में कितने उपयोग पाये जाते हैं ?

उत्तर : बारह उपयोग ।

(1518) स्थावर में कितने उपयोग पाये जाते हैं ?

उत्तर : सिद्धांत में तीन उपयोग कहे गये हैं ।
कर्मग्रंथ में पांच उपयोग कहे गये हैं ।

(1519) गर्भज जीवों में कितने उपयोग पाये जाते हैं ?

उत्तर : बारह उपयोग ।

(1520) संमूर्च्छिम जीवों में कितने उपयोग पाये जाते हैं ?

उत्तर : छह उपयोग ।

(1521) औपपातिक जीवों में कितने उपयोग पाये जाते हैं ?

उत्तर : नौ उपयोग ।

(1522) बादर जीवों में कितने उपयोग पाये जाते हैं ?

उत्तर : बारह उपयोग ।

(1523) सूक्ष्म जीवों में कितने उपयोग पाये जाते हैं ?

उत्तर : तीन उपयोग ।

(1524) उर्ध्व, मध्य एवं अधोलोक में कितने उपयोग पाये जाते हैं ?

उत्तर : बारह उपयोग ।

(1525) पुरुष वेद, स्त्री वेद और नपुंसक वेद में कितने उपयोग पाये जाते हैं ?

उत्तर : पुरुष वेद, स्त्री वेद तथा नपुंसक वेद में बारह-बारह उपयोग पाये जाते हैं ।

(1526) संज्ञी जीवों में कितने उपयोग पाये जाते हैं ?

उत्तर : बारह उपयोग ।

(1527) असंज्ञी जीवो में कितने उपयोग पाये जाते हैं ?

उत्तर : छह उपयोग ।

(1528) प्रत्येक जीवों में कितने उपयोग पाये जाते हैं ?

उत्तर : बारह उपयोग ।

(1529) साधारण जीवों में कितने उपयोग पाये जाते हैं ?

उत्तर : **तीन उपयोग** - (1) मतिअज्ञानोपयोग (2) श्रुतअज्ञानोपयोग (3) अचक्षुदर्शनोपयोग ।

(1530) भव्य जीवों में कितने उपयोग पाये जाते हैं ?

उत्तर : बारह उपयोग ।

(1531) अभव्य जीवों में कितने उपयोग पाये जाते हैं ?

उत्तर : **कर्मग्रंथानुसार पाँच उपयोग** -

1. मतिअज्ञानोपयोग 2. श्रुतअज्ञानोपयोग 3. अवधिअज्ञानोपयोग 4. चक्षुदर्शनोपयोग 5. अचक्षुदर्शनोपयोग ।

सिद्धान्तानुसार - अवधिदर्शनोपयोग सहित छह दर्शन पाये जाते हैं ।

(1532) सबसे अधिक दण्डकों में पाये जाने वाले उपयोग कौन से हैं ?

उत्तर : 1. मतिअज्ञानोपयोग 2. श्रुतअज्ञानोपयोग 3. अचक्षुदर्शनोपयोग, ये तीनों उपयोग समस्त दण्डकों में पाये जाते हैं ।

(1533) सबसे कम दण्डकों में पाये जाने वाले उपयोग कौन से हैं ?

उत्तर : 1. मनःपर्यवज्ञानोपयोग 2. केवलज्ञानोपयोग 3. केवल-दर्शनोपयोग, ये तीनों उपयोग गर्भज मनुष्य के एक दण्डक में ही पाये जाते हैं ।

(1534) मति-श्रुत-अवधिज्ञानोपयोग कितने गुणस्थानकों में पाये जाते हैं ?

उत्तर : **विवक्षा भेद से** -

1 - 5 कर्मग्रंथानुसार - 4 से 12 गुणस्थानक (चतुर्थ कर्म ग्रंथानुसार, गाथा - 20) ।

षष्टम् कर्मग्रंथानुसार - 3 से 12 गुणस्थानक (षष्टम कर्म ग्रंथानुसार, गाथा - 56 तथा श्रीजिनवल्लभीय षडशीति टीका)।

सिद्धान्तानुसार - 2 से 12 गुणस्थानक (चतुर्थ कर्मग्रंथानुसार, गाथा -20)।

(1535) मनःपर्यवज्ञानोपयोग कितने गुणस्थानकों में पाया जाता है ?

उत्तर : सात गुणस्थानकों में (6 से 12 तक)।

(1536) केवलज्ञानोपयोग कितने गुणस्थानकों में पाया जाता है ?

उत्तर : दो गुणस्थानकों में (13 एवं 14 में)।

(1537) मति-श्रुत तथा अवधिअज्ञानोपयोग कितने गुणस्थानकों में पाये जाते हैं ?

उत्तर : 1 - 5 कर्मग्रंथानुसार - 1 से 3 गुणस्थानक (चतुर्थ कर्म ग्रंथानुसार, गाथा - 20)।

षष्टम् कर्मग्रंथानुसार - 1 व 2 गुणस्थानक (षष्टम कर्म ग्रंथानुसार, गाथा - 56 तथा श्रीजिनवल्लभीय षडशीति टीका)।

सिद्धान्तानुसार - प्रथम गुणस्थानक (चतुर्थ कर्मग्रंथानुसार, गाथा - 20)।

(1538) चक्षु और अचक्षुदर्शनोपयोग कितने गुणस्थानकों में पाया जाता है ?

उत्तर : बारह गुणस्थानकों में (1 से 12 तक)।

(1539) अवधिदर्शनोपयोग कितने गुणस्थानकों में पाया जाता है ?

उत्तर : 1 - 5 कर्मग्रंथानुसार - 4 से 12 गुणस्थानक (चतुथ कर्म ग्रंथानुसार, गाथा - 20)।

षष्टम् कर्मग्रंथानुसार - 3 से 12 गुणस्थानक (षष्टम कर्म ग्रंथानुसार, गाथा - 56 तथा श्रीजिनवल्लभीय षडशीति टीका)।

सिद्धान्तानुसार - 1 से 12 गुणस्थानक (चतुर्थ कर्मग्रंथानुसार,

गाथा - 20) ।

(1540) केवलदर्शनोपयोग कितने गुणस्थानकों में पाया जाता है ?

उत्तर : दो गुणस्थानकों में (13 वें तथा 14 वें) में ।

(1541) साकारोपयोग तथा निराकारोपयोग में क्या अन्तर है ?

उत्तर : 1. वस्तु में स्थित विशेष धर्म में प्रवृत्त होने वाला साकारोपयोग कहलाता है जबकि वस्तु में स्थित सामान्य धर्म में प्रवृत्त होने वाला निराकारोपयोग कहलाता है ।

2. साकारोपयोग के ज्ञानोपयोग एवं अज्ञानोपयोग रूप दो भेद हैं जबकि निराकारोपयोग, दर्शनोपयोग रूप एक भेद वाला है ।

3. साकारोपयोग के उत्तर भेद आठ होते हैं जबकि निराकारोपयोग के उत्तर भेद चार होते हैं ।

(1542) सम्यक्त्वी जीवों में कितने उपयोग पाये जाते हैं ?

उत्तर : तीन अज्ञानोपयोग के सिवाय नौ उपयोग पाये जाते हैं ।

(1543) मिथ्यात्वी जीवों में कितने उपयोग पाये जाते हैं ?

उत्तर : **सिद्धान्तानुसार** - छह उपयोग (1-3) तीन अज्ञानोपयोग, (4-6) चक्षु-अचक्षु-अवधिदर्शनोपयोग ।

कर्मग्रंथानुसार - पांच उपयोग (1-3) तीन अज्ञानोपयोग, (4-5) चक्षु-अचक्षुदर्शनोपयोग ।

(1544) पर्याप्त अवस्था में कितने उपयोग पाये जाते हैं ?

उत्तर : बारह उपयोग ।

(1545) अपर्याप्त अवस्था में कितने उपयोग पाये जाते हैं ?

उत्तर : **नौ उपयोग** - (1-3) प्रथम तीन ज्ञानोपयोग, (4-6) तीन अज्ञानोपयोग, (7-9) प्रथम तीन दर्शनोपयोग ।

षोडशम उपपात एवं सप्तदशम च्यवन द्वार का विवेचन

(1546) उपपात किसे कहते है ?

उत्तर : जन्म लेना, उपपात कहलाता है ।

नारक आदि पर्याय में जन्म लेने की प्रक्रिया को उपपात कहते है ।

(1547) च्यवन किसे कहते है ?

उत्तर : जीव का मृत्यु को प्राप्त होना च्यवन कहलाता है ।

(1548) उपपात द्वार में किसका विवेचन किया गया है ?

उत्तर : किस दण्डक में एक समय में कितने जीव उत्पन्न होते हैं, इसका विवेचन उपपात द्वार में किया गया है ।

(1549) च्यवन द्वार में किसका विवेचन गया है ?

उत्तर : एक समय में किस दण्डक में कितने जीव मरते हैं, इसका विवेचन च्यवन द्वार में किया गया है ।

(1550) एक समय में कितने पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय और वायुकाय के जीव उत्पन्न होते हैं अथवा मरते हैं ?

उत्तर : असंख्य ।

(1551) एक समय में कितने वनस्पतिकाय के जीव उत्पन्न होते हैं अथवा मरते हैं ?

उत्तर : अनंत ।

(1552) एक समय में कितने द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय एवं चतुरिन्द्रिय जीव उत्पन्न होते हैं अथवा मरते हैं ?

उत्तर : संख्य अथवा असंख्य ।

(1553) एक समय में कितने गर्भज तिर्यंच उत्पन्न होते हैं अथवा मरते हैं ?

उत्तर : संख्य अथवा असंख्य ।

(1554) एक समय में कितने गर्भज मनुष्य उत्पन्न होते हैं अथवा मरते हैं ?

उत्तर : संख्य ।

(1555) एक समय में कितने देव उत्पन्न होते हैं अथवा मरते हैं ?

उत्तर : संख्य अथवा असंख्य देव उत्पन्न होते हैं एवं मरते हैं परन्तु नौवें सहस्रार देवलोक से अनुत्तर वैमानिक देव की उपपात तथा च्यवन संख्या संख्यात ही है ।

(1556) एक समय में सहस्रार से उपर के देवलोकों में च्यवन तथा उपपात संख्या संख्यात ही क्यों है ?

उत्तर : सहस्रार आदि देवलोकों में केवल गर्भज मनुष्य की ही गति-आगति होती है और गर्भज मनुष्य संख्यात ही कहे गये हैं, अतः उपपात एवं च्यवन संख्या संख्यात ही है ।

(1557) एक समय में कितने नैरयिक उत्पन्न होते हैं अथवा मरते हैं ?

उत्तर : संख्य अथवा असंख्य ।

(1558) एक समय में केवल संख्य जीव उत्पन्न होने वाले या मरने वाले कितने दण्डक हैं ?

उत्तर : गर्भज मनुष्य का एक दण्डक ।

(1559) एक समय में केवल असंख्य जीव उत्पन्न होने वाले या मरने वाले कितने दण्डक हैं ?

उत्तर : चार **दण्डक** - (1) पृथ्वीकाय, (2) अप्काय, (3) तेउकाय, (4) वायुकाय ।

(1560) एक समय में संख्य अथवा असंख्य जीव उत्पन्न होने वाले या मरने वाले कितने दण्डक हैं ?

उत्तर : **अठारह दण्डक** - तेरह देव दण्डक, नारकी, विकलेन्द्रिय त्रिक,

गर्भज तिर्यंच ।

(1561) कितने दण्डकों में अनंत जीव एक समय में उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर : वनस्पतिकाय के एक दण्डक में ।

(1562) एक समय में कितने संज्ञी जीव उत्पन्न होते हैं अथवा मरते हैं ?

उत्तर : संख्य अथवा असंख्य ।

(1563) एक समय में कितने असंज्ञी जीव उत्पन्न होते हैं अथवा मरते हैं ?

उत्तर : अनंत ।

(1564) देव गति एवं नरक गति में एक समय में कितने जीव उत्पन्न होते हैं अथवा मरते हैं ?

उत्तर : संख्य अथवा असंख्य ।

(1565) मनुष्य गति में एक समय में कितने जीव उत्पन्न होते हैं अथवा मरते हैं ?

उत्तर : संख्य अथवा असंख्य ।

(1566) तिर्यंच गति में एक समय में कितने जीव उत्पन्न होते हैं अथवा मरते हैं ?

उत्तर : अनंत ।

(1567) एक समय में कितने त्रस जीव उत्पन्न होते हैं अथवा मरते हैं ?

उत्तर : संख्य अथवा असंख्य ।

(1568) एक समय में कितने स्थावर जीव उत्पन्न होते हैं अथवा मरते हैं ?

उत्तर : अनंत ।

(1569) एक समय में कितने गर्भज जीव उत्पन्न होते हैं अथवा मरते हैं ?

उत्तर : संख्य अथवा असंख्य ।

(1570) एक समय में कितने संमूर्च्छिम जीव उत्पन्न होते हैं अथवा मरते हैं ?

उत्तर : अनंत ।

(1571) एक समय में कितने औपपातिक जीव उत्पन्न होते हैं अथवा मरते हैं ?

उत्तर : संख्य अथवा असंख्य ।

(1572) एक समय में कितने एकेन्द्रिय जीव उत्पन्न होते हैं अथवा मरते हैं ?

उत्तर : अनंत ।

(1573) एक समय में कितने पंचेन्द्रिय जीव उत्पन्न होते हैं अथवा मरते हैं ?

उत्तर : संख्य अथवा असंख्य ।

(1574) तीनों लोकों में एक समय में कितने जीव उत्पन्न होते हैं अथवा मरते हैं ?

उत्तर : अनंत ।

(1575) एक समय में कितने नपुंसक वेदी जीव उत्पन्न होते हैं अथवा मरते हैं ?

उत्तर : अनंत ।

(1576) एक समय में कितने पुरुष अथवा स्त्री वेदी जीव उत्पन्न होते हैं अथवा मरते हैं ?

उत्तर : संख्य अथवा असंख्य ।

(1577) एक समय में कितने बादर और सूक्ष्म जीव उत्पन्न होते हैं अथवा मरते हैं ?

उत्तर : अनंत ।

(1578) एक समय में प्रथम गुणस्थानक में कितने जीव उत्पन्न होते हैं अथवा मरते हैं ?

उत्तर : अनंत ।

(1579) एक समय में दूसरे, तीसरे और चौथे गुणस्थानक में कितने जीव उत्पन्न होते हैं अथवा मरते हैं ?

उत्तर : दूसरे एवं चौथे गुणस्थानक में संख्य अथवा असंख्य जीव उत्पन्न होते हैं अथवा मरते हैं परन्तु तीसरे गुणस्थानक में कोई भी जीव न जन्म लेता है, न मृत्यु को प्राप्त करता है ।

(1580) एक समय में पंचम गुणस्थानक में कितने जीव उत्पन्न होते हैं अथवा मरते हैं ?

उत्तर : पंचम गुणस्थानक को लेकर कोई भी जीव उत्पन्न नहीं होता है । प्रस्तुत गुणस्थानक में गर्भज मनुष्य एवं पंचेन्द्रिय गर्भज तिर्यंच होने से संख्य अथवा असंख्य का च्यवन होता है ।

(1581) एक समय में षष्टम यावत् एकादशम् गुणस्थानक में कितने जीव उत्पन्न होते हैं अथवा मरते हैं ?

उत्तर : इन गुणस्थानकों में कोई भी जन्म नहीं लेता है और गर्भज मनुष्य ही इन गुणस्थानकों में होने से च्यवन संख्य कहा गया है ।

(1582) एक समय में बारहवें, तेरहवें तथा चौदहवें गुणस्थानक में कितने जीव उत्पन्न होते हैं अथवा मरते हैं ?

उत्तर : बारहवें एवं तेरहवें गुणस्थानक में च्यवन-उपपात का अभाव है

और चौदहवें गुणस्थानक में निर्वाण रूप च्यवन संख्यात प्रमाण कहा गया है ।

(1583) एक समय में कितने सम्यक्त्वी जीव उत्पन्न होते हैं अथवा मरते हैं ?

उत्तर : संख्य अथवा असंख्य ।

(1584) एक समय में कितने मिथ्यात्वी जीव उत्पन्न होते हैं अथवा मरते हैं ?

उत्तर : अनन्त ।

(1585) एक समय में पर्याप्त अवस्था में कितने जीव उत्पन्न होते हैं अथवा मरते हैं ?

उत्तर : पर्याप्त अवस्था में किसी भी जीव का जन्म नहीं होता है क्योंकि प्रत्येक जीव जन्म समय अपर्याप्त ही होता है । पर्याप्त अवस्था में अनन्त जीवों का च्यवन होता है ।

(1586) एक समय में अपर्याप्त अवस्था में कितने जीव उत्पन्न होते हैं अथवा मरते हैं ?

उत्तर : अनन्त ।

उपपात तथा च्यवन विरहकाल का कथन

(1587) उपपात विरहकाल किसे कहते है ?

उत्तर : किसी भी दण्डक में जितना समय जीवोत्पत्ति बिना का होता है, उसे उपपात विरहकाल कहते है । किसी भी दण्डक में एक जीव की उत्पत्ति से जितने समय तक दूसरा जीव उत्पन्न नहीं होता है, उसे उपपात विरहकाल कहते है ।

(1588) च्यवन विरहकाल किसे कहते है ?

उत्तर : किसी भी दण्डक में जितना समय मृत्यु बिना का होता है अथवा एक जीव की मृत्यु के बाद जितने समय तक कोई भी जीव मरण को प्राप्त नहीं करता है, उसे च्यवन विरहकाल कहते है। इसे उद्वर्तना विरहकाल भी कहते है।

(1589) नारकी के दण्डक में कितने समय तक जीव उत्पन्न नहीं होते हैं अथवा नहीं मरते है ?

उत्तर : सामान्य से बारह मुहूर्त तक।

(1590) प्रथम नरक में उत्कृष्टतः कितने समय तक जीव उत्पन्न नहीं होते हैं अथवा मरते नहीं हैं ?

उत्तर : चौबीस मुहूर्त तक।

(1591) दूसरी नरक में उत्कृष्टतः कितने समय तक जीव उत्पन्न नहीं होते हैं अथवा मरते नहीं हैं ?

उत्तर : सात दिन तक।

(1592) तीसरी नरक में उत्कृष्टतः कितने समय तक जीव उत्पन्न नहीं होते हैं अथवा मरते नहीं हैं ?

उत्तर : पन्द्रह दिन तक।

(1593) चौथी नरक में उत्कृष्टतः कितने समय तक जीव उत्पन्न नहीं होते हैं अथवा मरते नहीं हैं ?

उत्तर : एक माह तक।

(1594) पांचवीं नरक में उत्कृष्टत: कितने समय तक जीव उत्पन्न नहीं होते हैं अथवा मरते नहीं हैं ?

उत्तर : दो माह तक।

(1595) छट्ठी नरक में उत्कृष्टत: कितने समय तक जीव उत्पन्न नहीं होते हैं अथवा मरते नहीं हैं ?

उत्तर : चार माह तक।

(1596) सातवीं नरक में उत्कृष्टत: कितने समय तक जीव उत्पन्न नहीं होते हैं अथवा मरते नहीं हैं ?

उत्तर : छह माह तक ।

(1597) देवों के दण्डकों में उत्कृष्टत: कितने समय तक जीव उत्पन्न नहीं होते हैं अथवा मरते नहीं हैं ?

उत्तर : सामान्य से 12 मुहूर्त तक ।

(1598) भवनपति देव, व्यंतर एवं ज्योतिष्क निकाय में उत्कृष्टत: कितने समय तक जीव उत्पन्न नहीं होते हैं अथवा मरते नहीं हैं ?

उत्तर : चौबीस मुहूर्त तक ।

(1599) पहले तथा दूसरे देवलोक में उत्कृष्टत: कितने समय तक जीव उत्पन्न नहीं होते हैं अथवा मरते नहीं हैं ?

उत्तर : चौबीस मुहूर्त तक ।

(1600) तीसरे देवलोक में उत्कृष्टत: कितने समय तक जीव उत्पन्न नहीं होते हैं अथवा मरते नहीं हैं ?

उत्तर : नौ दिन बीस मुहूर्त तक ।

(1601) चौथे देवलोक में उत्कृष्टत: कितने समय तक जीव उत्पन्न नहीं होते हैं अथवा मरते नहीं हैं ?

उत्तर : बारह दिन दस मुहूर्त तक ।

(1602) पांचवें देवलोक में उत्कृष्टत: कितने समय तक जीव उत्पन्न नहीं होते हैं अथवा मरते नहीं हैं ?

उत्तर : बावीस दिन पन्द्रह मुहूर्त तक ।

(1603) छट्ठे देवलोक में उत्कृष्टत: कितने समय तक जीव उत्पन्न नहीं होते हैं अथवा मरते नहीं हैं ?

उत्तर : पैंतालीस दिन तक ।

(1604) सातवें देवलोक में उत्कृष्टत: कितने समय तक जीव उत्पन्न

नहीं होते हैं अथवा मरते नहीं हैं ?

उत्तर : अस्सी दिन तक ।

(1605) आठवें देवलोक में उत्कृष्टत: कितने समय तक जीव उत्पन्न नहीं होते हैं अथवा मरते नहीं हैं ?

उत्तर : सौ दिन तक ।

(1606) नौवें देवलोक में उत्कृष्टत: कितने समय तक जीव उत्पन्न नहीं होते हैं अथवा मरते नहीं हैं ?

उत्तर : दस महिने तक ।

(1607) दसवें देवलोक में उत्कृष्टत: कितने समय तक जीव उत्पन्न- नहीं होते हैं अथवा मरते नहीं हैं ?

उत्तर : ग्यारह महिने तक ।

(1608) ग्यारहवें-बारहवें देवलोक में उत्कृष्टत: कितने समय तक जीव उत्पन्न नहीं होते हैं अथवा मरते नहीं हैं ?

उत्तर : सौ वर्ष तक ।

(1609) प्रथम तीन ग्रैवेयक में उत्कृष्टत: कितने समय तक जीव उत्पन्न नहीं होते हैं अथवा मरते नहीं हैं ?

उत्तर : हजार वर्ष तक ।

(1610) मध्यवर्ती तीन ग्रैवेयक में उत्कृष्टत: कितने समय तक जीव उत्पन्न नहीं होते हैं अथवा मरते नहीं हैं ?

उत्तर : एक लाख वर्ष तक ।

(1611) अन्तिम तीन ग्रैवेयक में उत्कृष्टत: कितने समय तक जीव उत्पन्न नहीं होते हैं अथवा मरते नहीं हैं ?

उत्तर : एक करोड वर्ष तक ।

(1612) **चार अनुत्तर वैमानिक देवों में उत्कृष्टत: कितने समय तक जीव उत्पन्न नहीं होते हैं अथवा मरते नहीं हैं ?**

उत्तर : पल्योपम के असंख्यातवें भाग तक ।

(1613) **सर्वार्थ सिद्ध विमान में उत्कृष्टत: कितने समय तक जीव उत्पन्न नहीं होते हैं अथवा मरते नहीं हैं ?**

उत्तर : पल्योपम के संख्यातवें भाग तक ।

(1614) **गर्भज मनुष्य तथा गर्भज तिर्यंच में उत्कृष्टतः कितने समय तक जीव उत्पन्न नहीं होते हैं अथवा मरते नहीं हैं ?**

उत्तर : बारह मुहूर्त्त तक ।

(1615) **विकलेन्द्रिय त्रिक में उत्कृष्टतः कितने समय तक जीव उत्पन्न नहीं होते हैं अथवा मरते नहीं हैं ?**

उत्तर : अन्तर्मुहूर्त्त तक ।

(1616) **एकेन्द्रिय में कितना उपपात या च्यवन विरहकाल होता है ?**

उत्तर : एकेन्द्रिय में उपपात या च्यवन विरहकाल नहीं होता है क्योंकि उनका जन्म-मरण निरन्तर चालू रहता है ।

(1617) **समस्त दण्डकों में जघन्य से विरहकाल कितना है ?**

उत्तर : एक समय का ।

(1618) **कितने दण्डकों में च्यवन - उपपात विरहकाल पाया जाता है ?**

उत्तर : **उन्नीस दण्डकों में** - (1-13) समस्त देव, (14-15) गर्भज तिर्यंच - मनुष्य, (16) नारकी, (17-19) विकलेन्द्रिय त्रिक ।

(1619) **कितने दण्डकों में च्यवन - उपपात विरहकाल का अभाव होता है ?**

उत्तर : **पांच दण्डकों में** - पृथ्वीकायादि पांच स्थावर ।

(1620) सूक्ष्म जीवों में कितना विरहकाल होता है ?

उत्तर : सूक्ष्म जीवों का निरन्तर च्यवन-उपपात होने से विरहकाल का अभाव कहा गया है ।

(1621) बादर जीवों में कितना विरहकाल कहा गया है ?

उत्तर : पांच स्थावर की अपेक्षा से विरह कभी नहीं होता है । शेष अपेक्षा से -
जघन्यतः - एक समय ।
उत्कृष्टतः - पल्योपम का संख्यातवा भाग ।

(1622) एकेन्द्रिय जीवों में कितना विरहकाल कहा गया है ?

उत्तर : उनमें विरहकाल का अभाव है ।

(1623) पंचेन्द्रिय जीवों में कितना विरहकाल कहा गया है ?

उत्तर : जघन्यतः - एक समय ।
उत्कृष्टतः - पल्योपम का संख्यातवां भाग ।

(1624) स्थावर जीवों में कितना विरहकाल कहा गया है ?

उत्तर : उनमें विरहकाल का अभाव होता है ।

(1625) त्रस जीवों में कितना विरहकाल कहा गया है ?

उत्तर : जघन्यतः - एक समय ।
उत्कृष्टतः - पल्योपम का संख्यातवां भाग ।

(1626) औपपातिक जीवों में कितना विरहकाल कहा गया है ?

उत्तर : जघन्यतः - एक समय ।
उत्कृष्टतः - पल्योपम का संख्यातवां भाग ।

(1627) गर्भज जीवों में कितना विरहकाल कहा गया है ?

उत्तर : जघन्यतः - एक समय ।
उत्कृष्टतः - बारह मुहूर्त ।

(1628) संमूर्च्छिम जीवों में कितना विरहकाल कहा गया है ?

उत्तर : पृथ्वीकाय पांच प्रकार के संमूर्च्छिम जीवों में नित्य-निरन्तर जन्म होने से कभी भी विरहकाल नहीं पड़ता है ।

(1629) नरक गति में कितना विरहकाल कहा गया है ?

उत्तर : जघन्यतः - एक समय ।

उत्कृष्टतः - छह माह ।

(1630) देव गति में कितना विरहकाल कहा गया है ?

उत्तर : जघन्यतः - एक समय ।

उत्कृष्टतः - पल्योपम का संख्यातवां भाग ।

(1631) मनुष्य गति में कितना विरहकाल कहा गया है ?

उत्तर : जघन्यतः - एक समय ।

उत्कृष्टतः - बारह मुहूर्त

(1632) तिर्यंच गति में कितना विरहकाल कहा गया है ?

उत्तर : पांच स्थावरों में विरहकाल का अभाव होने से तिर्यंच गति में जन्म-मरण सदा होता है ।

(1633) उर्ध्वलोक में कितना विरहकाल कहा गया है ?

उत्तर : पांच स्थावरों को छोड़कर -

जघन्यतः - एक समय ।

उत्कृष्टतः - पल्योपम का संख्यातवां भाग ।

(1634) मध्यलोक में कितना विरहकाल कहा गया है ?

उत्तर : पांच स्थावरों को छोड़कर -

जघन्यतः - एक समय ।

उत्कृष्टतः - चौबीस मुहूर्त ।

(1635) अधोलोक में कितना विरहकाल कहा गया है ?

उत्तर : पांच स्थावरों को छोड़कर -

जघन्यतः - एक समय ।

उत्कृष्टतः - छह माह ।

(1636) सम्पूर्ण लोक में कितना विरहकाल कहा गया है ?

उत्तर : पृथ्वीकायादि एकेन्द्रिय जीवों का नित्य च्यवनोपपात होने से लोक में विरहकाल का अभाव ही होता है ।

(1637) अलोक में कितना विरहकाल कहा गया है ?

उत्तर : अलोक में जीव का अभाव है, अतः विरहकाल का अभाव या सद्भाव, दोनों का कथन असंभव है ।

(1638) नवीन सम्यक्दृष्टि का विरहकाल कितना है ?

उत्तर : सात दिन का ।

(1639) नवीन श्रावक का विरहकाल कितना है ?

उत्तर : बारह दिन का ।

(1640) नवीन साधु का विरहकाल कितना है ?

उत्तर : पन्द्रह दिन का ।

(1641) इन्द्र का विरहकाल कितना कहा गया है ?

उत्तर : जघन्यतः - एक समय ।
उत्कृष्टतः - छह माह ।

(1642) एक जीव चक्रवर्ती बनने के बाद कितने समय में पुनः चक्रवर्ती बन सकता है ?

उत्तर : जघन्यतः - साधिक एक सागरोपम ।
उत्कृष्टतः - देशोण अपार्द्ध पुद्गल परावर्तनकाल ।

(1643) एक जीव सम्यक्त्व से मिथ्यात्व जाने पर पुनः कितने समय में सम्यक्त्व प्राप्त कर सकता है ?

उत्तर : जघन्यतः - अन्तर्मुहूर्त ।
उत्कृष्टतः - देशोण अर्द्ध पुद्गल परावर्तनकाल ।

(1644) सिद्धों में उपपात विरहकाल कितना कहा गया है ?

उत्तर : जघन्यतः - एक समय ।

उत्कृष्टतः - छह माह ।

(1645) सिद्धों में च्यवन विरहकाल कितना कहा गया है ?

उत्तर : सिद्धों में च्यवन विरहकाल का अभाव होता है ।

(1646) सिद्धों में च्यवन विरहकाल का अभाव क्यों है ?

उत्तर : सिद्ध भगवंतों की स्थिति सादि अनन्त कही गयी है । कोई जीव जब शिव-सिद्ध पद को प्राप्त करता है तब उसकी सादि होती है । सिद्धात्मा में आयुष्य का अभाव होने से उनकी स्थिति अक्षय अनन्त होती है । कोई भी जीव अनन्तकाल तक सिद्धावस्था में ही अवस्थित होने के कारण उनमें च्यवन विरहकाल का अभाव कहा गया है ।

(1647) भरत-ऐरावत क्षेत्र की अपेक्षा चक्रवर्ती, बलदेव तथा वासुदेव का विरहकाल कितना है ?

उत्तर : जघन्यतः - 242000 वर्षों का ।

उत्कृष्टतः - लगभग 18 कोड़ाकोड़ी सागरोपम का ।

(1648) तीर्थंकर का विरहकाल कितना है ?

उत्तर : जघन्यतः - 84000 वर्षों का ।

उत्कृष्टतः - लगभग 18 कोड़ाकोड़ी सागरोपम का ।

(1649) चतुर्विध संघ का विरहकाल कितना है ?

उत्तर : जघन्यतः - 63000 वर्ष का ।

उत्कृष्टतः - 18 कोड़ा कोड़ी सागरोपम का ।

(1650) एक जीव अपेक्षया नरक, देव एवं मनुष्य गति का विरहकाल कितना कहा गया है ?

उत्तर : जघन्यतः - अन्तर्मुहूर्त ।

उत्कृष्टतः - अनन्तकाल ।

(1651) **एक जीव अपेक्षया तिर्यंचगति का विरहकाल कितना कहा गया है ?**

उत्तर : जघन्यतः - अन्तर्मुहूर्त ।

उत्कृष्टतः - सागरोपम शत पृथक्त्व ।

(1652) **एक जीव कितने समय तक एकेन्द्रिय में उत्पन्न नहीं होता है ?**

उत्तर : जघन्यतः - अन्तर्मुहूर्त ।

उत्कृष्टतः - संख्य वर्षाधिक दो हजार सागरोपम ।

(1653) **एक जीव कितने समय तक विकलेन्द्रिय तथा पंचेन्द्रिय में उत्पन्न नहीं होता है ?**

उत्तर : जघन्यतः - अन्तर्मुहूर्त ।

उत्कृष्टतः - अनन्तकाल ।

(1654) **एक जीव कितने समय तक पृथ्वी-अप्-तेउ-वायु एवं त्रसकाय में उत्पन्न नहीं होता है ?**

उत्तर : जघन्यतः - अन्तर्मुहूर्त ।

उत्कृष्टतः - अनन्तकाल ।

(1655) **एक जीव कितने समय तक वनस्पतिकाय में उत्पन्न नहीं होता है ?**

उत्तर : जघन्यतः - अन्तर्मुहूर्त ।

उत्कृष्टतः - असंख्य उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी ।

(1656) **एक जीव कितने समय तक सूक्ष्म पर्याय में उत्पन्न नहीं होता है ?**

उत्तर : जघन्यतः - अन्तर्मुहूर्त ।

उत्कृष्टतः -

(i) पृथ्वी-अप्-तेउ-वायुकाय की अपेक्षा से - अनन्तकाल ।

(ii) वनस्पतिकाय की अपेक्षा से असंख्य उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी ।

(1657) एक जीव कितने समय तक बादर पर्याय में उत्पन्न नहीं होता है ?

उत्तर : जघन्यतः - अन्तर्मुहूर्त ।

उत्कृष्टतः - अनन्तकाल ।

(1658) एक जीव अपेक्षया सम्यक्त्व का विरहकाल कितना कहा गया है ?

उत्तर : **सादि अपर्यवसित** - विरह नहीं है (अनन्तकाल तक सिद्धों में क्षायिक सम्यक्त्व रहता है) ।

अनादि सपर्यवसित - विरह नहीं है (एक बार सम्यक्त्व पाने के बाद वह अनादि नहीं, सादि सपर्यवसित कहा जायेगा) ।

सादि सपर्यवसित में सम्यक्त्व विरहकाल -

जघन्यतः - अन्तर्मुहूर्त ।

उत्कृष्टतः - देशोण अर्द्धपुद्गल परावर्तन काल ।

(1659) एक जीव अपेक्षया मिथ्यात्व का विरहकाल कितना कहा गया है ?

उत्तर : (1) अनादि अपर्यवसित - यह अभव्य जीव में होने से विरह नहीं है ।

(2) अनादि सपर्यवसित - विरह नहीं है ।

(3) सादि सपर्यवसित -

जघन्यतः - अन्तर्मुहूर्त ।

उत्कृष्टतः - साधिक 66 सागरोपम ।

(1660) एक जीव अपेक्षया अज्ञान का विरहकाल कितना कहा गया है ?

उत्तर : (i) अनादि अपर्यवसित - विरह नहीं है (अभव्य जीव) ।

(ii) अनादि सपर्यवसित - विरह नहीं है ।

(iii) सादि सपर्यवसित -

जघन्यतः - अन्तर्मुहूर्त ।

उत्कृष्टतः - साधिक 66 सागरोपम ।

(1661) एक जीव अपेक्षया ज्ञान का विरहकाल कितना कहा गया है ?

उत्तर : (i) सादि अपर्यवसित - विरह नहीं है ।

(सिद्धों में अनन्तकाल तक ज्ञान होता है)

(ii) अनादि सपर्यवसित - विरह नहीं है ।

(iii) सादि सपर्यवसित -

जघन्यतः - अन्तर्मुहूर्त ।

उत्कृष्टतः - देशोण अर्द्धपुद्गल परावर्तनकाल ।

(1662) एक जीव अपेक्षया संज्ञी पर्याय का विरहकाल कितना कहा गया है ?

उत्तर : जघन्यतः - अन्तर्मुहूर्त ।

उत्कृष्टतः - अनन्तकाल ।

(1663) एक जीव अपेक्षया असंज्ञी पर्याय का विरहकाल कितना कहा गया है ?

उत्तर : जघन्यतः - अन्तर्मुहूर्त ।

उत्कृष्टतः - साधिक सागरोपम शत पृथक्त्व ।

(1664) एक जीव अपेक्षया मनोयोग एवं वचनयोग का विरहकाल कितना कहा गया है ?

उत्तर : जघन्यतः - अन्तर्मुहूर्त ।

उत्कृष्टतः - अनन्तकाल ।

(1665) एक जीव अपेक्षया काययोग का कितना विरहकाल कहा गया है ?

उत्तर : जघन्यतः - एक समय ।
उत्कृष्टतः - अन्तर्मुहूर्त ।

(1666) एक जीव अपेक्षया पुरुष वेद एवं स्त्री वेद का विरहकाल कितना कहा गया है ?

उत्तर : जघन्यतः - अन्तर्मुहूर्त ।
उत्कृष्टतः - अनन्तकाल ।

(1667) एक जीव अपेक्षया नपुंसक वेद का विरहकाल कितना कहा गया है ?

उत्तर : जघन्यतः - अन्तर्मुहूर्त ।
उत्कृष्टतः - सागरोपम शत पृथक्त्व ।

(1668) एक जीव अपेक्षया चक्षुदर्शन का विरहकाल कितना कहा गया है ?

उत्तर : जघन्यतः - अन्तर्मुहूर्त ।
उत्कृष्टतः - अनन्तकाल ।

(1669) एक जीव अपेक्षया अचक्षुदर्शन का विरहकाल कितना कहा गया है ?

उत्तर : अनादि अपर्यवसित (अभव्य) एवं अनादि सपर्यवसित, दोनों की अपेक्षा से विरहकाल नहीं है ।

(1670) एक जीव अपेक्षया अवधिदर्शन का विरहकाल कितना कहा गया है ?

उत्तर : जघन्यतः - एक समय (कहीं-कहीं अन्तर्मुहूर्त का भी उल्लेख है) ।
उत्कृष्टतः - अनन्तकाल ।

(1671) एक जीव अपेक्षया केवलदर्शन का विरहकाल कितना कहा गया है ?

उत्तर : केवलदर्शन में विरहकाल का अभाव है क्योंकि वह अप्रतिपाती है।

(1672) एक जीव अपेक्षया क्रोध-मान-माया कषाय का विरहकाल कितना कहा गया है ?

उत्तर : जघन्यतः - एक समय।

उत्कृष्टतः - अन्तर्मुहूर्त्त।

(1673) एक जीव अपेक्षया लोभ कषाय का विरहकाल कितना कहा गया है ?

उत्तर : जघन्यतः एवं उत्कृष्टतः - अन्तर्मुहूर्त्त।

(1674) एक जीव अपेक्षया पांच ज्ञानों का विरहकाल कितना कहा गया है ?

उत्तर : प्रथम चार ज्ञानों का विरहकाल -

जघन्यतः - अन्तर्मुहूर्त्त।

उत्कृष्टतः - अनन्तकाल।

केवलज्ञान का विरहकाल नहीं है क्योंकि वह अप्रतिपाती है।

(1675) एक जीव अपेक्षया औदारिक शरीर का विरहकाल कितना कहा गया है ?

उत्तर : जघन्यतः - एक समय।

उत्कृष्टतः - साधिक तैंतीस सागरोपम।

(1676) एक जीव अपेक्षया वैक्रिय शरीर का विरहकाल कितना कहा गया है ?

उत्तर : जघन्यतः - अन्तर्मुहूर्त्त।

उत्कृष्टतः - अनन्तकाल।

(1677) एक जीव अपेक्षया आहारक शरीर का विरहकाल कितना कहा गया है ?

उत्तर : जघन्यतः - अन्तर्मुहूर्त्त ।

उत्कृष्टतः - देशोण अर्द्ध पुद्गल परावर्तनकाल ।

(1678) एक जीव अपेक्षया तैजस तथा कार्मण शरीर का विरहकाल कितना कहा गया है ?

उत्तर : तैजस तथा कार्मण शरीर का विरहकाल नहीं होता है क्योंकि एक बार विरह होने पर इनका पुनर्बंध असंभव है ।

(1679) एक जीव अपेक्षया कृष्ण-नील तथा कापोत लेश्या का विरहकाल कितना कहा गया है ?

उत्तर : जघन्यतः - अन्तर्मुहूर्त्त ।

उत्कृष्टतः - साधिक तैंतीस सागरोपम ।

(1680) एक जीव अपेक्षया तेजो, पद्म तथा शुक्ल लेश्या का विरहकाल कितना कहा गया है ?

उत्तर : जघन्यतः - अन्तर्मुहूर्त्त ।

उत्कृष्टतः - अनन्तकाल ।

(1681) एक जीव अपेक्षया मनुष्य-मानुषी, देव-देवी पर्याय का विरहकाल कितना कहा गया है ?

उत्तर : जघन्यतः - अन्तर्मुहूर्त्त ।

उत्कृष्टतः - अनन्तकाल ।

अष्टदशम स्थिति द्वार का विवेचन

(1682) स्थिति के पर्यायवाची शब्द क्या है ?

उत्तर : आयुष्य एवं जीवन ।

(1683) 'स्थिति' शब्द का व्युत्पत्तिपरक अर्थ बताओ ।

उत्तर : आयुष्य कर्म को भोगता हुआ जीव नारकादि पर्यायों में जितने

समय तक अवस्थित रहता है, उसे स्थिति कहते है ।

(1684) आयुष्य किसे कहते है ?

उत्तर : जीव जितना जीवन जीता है, उसे आयुष्य कहते है ।
जिसके पूर्ण होने से पहले जीव मर नहीं सकता और पूर्ण होने के पश्चात् जी नहीं सकता, उसे आयुष्य कहते है ।
जन्म से मृत्यु तक जीव जितने कालपर्यंत देवादि पर्यायों में अव्यवछिन्न रूप से रहता है, उसे आयुष्य कहते है ।

(1685) आयुष्य कितने प्रकार के कहे गये है ?

उत्तर : **चार प्रकार के** - (1) देवायुष्य (2) मनुष्य आयुष्य (3) नरक आयुष्य (4) तिर्यंच आयुष्य ।

(1686) मनुष्य आयुष्य किसे कहते है ?

उत्तर : जिसके परिपूर्ण होने के पूर्व मनुष्य अन्य भव में नहीं जा सकता है, उसे मनुष्य आयुष्य कहते है ।

(1687) देव आयुष्य किसे कहते है ?

उत्तर : जिसके परिपूर्ण होने से पूर्व देव अन्य भव में नही जा सकता है, उसे देव आयुष्य कहते है ।

(1688) तिर्यंच आयुष्य किसे कहते है ?

उत्तर : जिसके परिपूर्ण होने से पूर्व तिर्यंच अन्य भव में नहीं जा सकता है, उसे तिर्यंच आयुष्य कहते है ।

(1689) नरक आयुष्य किसे कहते है ?

उत्तर : जिसके परिपूर्ण होने से पूर्व नारकी अन्य भव में नहीं जा सकता है, उसे नरक आयुष्य कहते है ।

(1690) आयुष्य के अन्य कौन से भेद होते है ?

उत्तर : **दो प्रकार के आयुष्य** -
(1) निरुपक्रमी आयुष्य (2) सोपक्रमी आयुष्य ।

दो प्रकार के आयुष्य -

(1) जघन्य आयुष्य (2) उत्कृष्ट आयुष्य ।

(1691) सोपक्रमी आयुष्य किसे कहते है ?

उत्तर : वह आयुष्य जो कारणवश मध्य में टूट सकता है, उसे सोपक्रमी आयुष्य कहते है ।

(1692) एक जीव अपेक्षा शास्त्रों में कहा गया है कि जीव आयुष्य भोगने से पहले अन्य भव में नहीं जा सकता है फिर सोपक्रमी आयुष्य किस प्रकार संभव है ?

उत्तर : चिंता, अपमान आदि आंतरिक कारणवशात् तथा विष पान आदि बाह्य कारणों से दीर्घकाल तक भोगने योग्य आयुष्य कर्म के जो दलिक अल्पकाल में ही भोग कर नष्ट कर लिये जाते हैं, उसे सोपक्रमी आयुष्य कहते है ।

सोपक्रमी आयुष्य प्रदेशों (पुद्गलों) की अपेक्षा से पूर्णतः भोग लिया जाता है, केवल काल की अपेक्षा से उसमें अल्पता आती है ।

जीव यदि ज्यादा जीने वाला था पर दुर्घटनादि कारणवश वह पूर्व में मरता है तो सोपक्रमी आयुष्य कहलाता है । यदि उसका कारणपूर्वक ही मरना पहले से ही कर्माधीन था, तो वह निरुपक्रमी आयुष्य कहलाता है ।

(1693) स्थानांग सूत्र में आयुष्य टूटने के कितने कारण उल्लिखित है ?

उत्तर : **सात कारण -**

1. **अध्यवसाय** - तीव्र राग, द्वेष, कषायादि से ।
2. **निमित्त** - दण्ड, शस्त्रादि से ।
3. **आहार** - अति आहार या आहार के अभाव से ।
4. **वेदना** - उदर, मस्तक आदि में शूल उठने से ।

5. <u>पराघात</u> - कूप आदि में गिरने से ।

6. <u>स्पर्श</u> - सर्प आदि के दंश से ।

7. <u>आनप्राण</u> - श्वासोच्छ्‌वास की गति रुकने से अथवा अत्यधिक तीव्र होने से ।

(1694) निरुपक्रमी आयुष्य किसे कहते है ?

उत्तर : वह आयुष्य जो काल की अपेक्षा से कम नहीं होता हैं, पूर्णतः भोगा जाता है, उसे निरुपक्रमी आयुष्य कहते है ।

(1695) सोपक्रमी एवं निरुपक्रमी आयुष्य को क्या कहा जाता है ?

उत्तर : क्रमशः अपवर्तनीय तथा अनपर्वतनीय आयुष्य कहा जाता है ।

(1696) किन - किन जीवों का निरुपक्रमी आयुष्य ही होता है ? -

उत्तर : 1. तीर्थंकर 2. चक्रवर्ती 3. वासुदेव 4. बलदेव 5. प्रतिवासुदेव 6. चरमशरीरी 7. देवता 8. नारकी 9. युगलिक ।

(1697) जघन्य आयुष्य किसे कहते है ?

उत्तर : जितनी आयु से पहले जीव मर नहीं सकता, उसे जघन्य आयुष्य कहते है ।

(1698) उत्कृष्ट आयुष्य किसे कहते है ?

उत्तर : जितना आयुष्य भोगने के बाद जीव अवश्य मरता है, उसे उत्कृष्ट आयुष्य कहते है ।

(1699) जीवन के अन्तिम छह मास रहने पर कौन कौन आयुष्य बांधते हैं ?

उत्तर : 1. देव 2. नारकी 3. युगलिक मनुष्य 4. युगलिक तिर्यंच ।
मतांतर - कुछ आचार्यों का अभिमत है कि छह माह आयुष्य शेष रहने पर देवादि अवश्यमेव आयु-बंध करते हैं ।

(1700) आयुष्य कर्म को पाँव में बंधी बेडी के समान क्यों कहा गया है ?

उत्तर : जिस प्रकार पाँव में बंधी बेडी वाला व्यक्ति उसके टूटने-कटने से पहले गमनागमन नहीं कर सकता है, उसी प्रकार आयुष्य

पूर्ण होने से पहले जीव अन्य भव में नहीं जा सकता है ।

(1701) पृथ्वीकायिक जीवों का जघन्य आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर : पर्याप्त-अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकाय का एवं पर्याप्त-अपर्याप्त बादर पृथ्वीकाय का जघन्य आयुष्य अन्तर्मुहूर्त प्रमाण होता है ।

(1702) पृथ्वीकायिक जीवों का उत्कृष्ट आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर : पर्याप्त-अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकाय का एवं लब्धि अपर्याप्त बादर पृथ्वीकाय का उत्कृष्ट आयुष्य अन्तर्मुहूर्त प्रमाण होता है ।

पर्याप्त बादर पृथ्वीकाय का उत्कृष्ट आयुष्य 22000 वर्ष का होता है ।

(1703) पृथ्वीकाय के विभिन्न भेदों का उत्कृष्ट तथा जघन्य आयुष्य बताईये ।

उत्तर : पृथ्वीकाय के विभिन्न भेदों का उत्कृष्ट तथा जघन्य आयुष्य इस प्रकार दिया गया है ।

1.	पीली मिट्टी की आयु	-	600 वर्ष
2.	सफेद मिट्टी की आयु	-	700 वर्ष
3.	लाल मिट्टी की आयु	-	900 वर्ष
4.	काली मिट्टी की आयु	-	1000 वर्ष
5.	हरी मिट्टी की आयु	-	1000 वर्ष
6.	कोमल मिट्टी की आयु	-	1000 वर्ष
7.	खारी मिट्टी की आयु	-	11000 वर्ष
8.	नमक की आयु	-	12000 वर्ष
9.	तांबे की आयु	-	13000 वर्ष
10.	लोहे की आयु	-	14000 वर्ष
11.	शीशे की आयु	-	14000 वर्ष
12.	रुपा की आयु	-	15000 वर्ष

13. सोने की आयु - 16000 वर्ष
14. हरताल की आयु - 16000 वर्ष
15. मणसील की आयु - 16000 वर्ष
16. हिंगुल की आयु - 17000 वर्ष
17. कंकर की आयु - 18000 वर्ष
18. भूखरां पाषाण की आयु - 19000 वर्ष
19. कालमीढ पाषाण की आयु - 20000 वर्ष
20. आरसपहाण पाषाण की आयु - 21000 वर्ष
21. हीरा, माणिक, मोती की आयु - 22000 वर्ष

इन सभी का जघन्य आयुष्य अन्तर्मुहूर्त प्रमाण होता है।

(1704) अप्कायिक जीवों का जघन्य आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर : पर्याप्त-अपर्याप्त सूक्ष्म तथा पर्याप्त-अपर्याप्त बादर जीवों का जघन्य आयुष्य अन्तर्मुहूर्त प्रमाण होता है।

(1705) अप्कायिक जीवों का उत्कृष्ट आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर : पर्याप्त-अपर्याप्त सूक्ष्म तथा लब्धि अपर्याप्त बादर अप्काय का उत्कृष्ट आयुष्य अन्तर्मुहूर्त का होता है। पर्याप्त बादर अप्काय का उत्कृष्ट आयुष्य 7000 वर्ष का होता है।

(1706) तेउकायिक जीवों का जघन्य आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर : पर्याप्त-अपर्याप्त सूक्ष्म तथा पर्याप्त-अपर्याप्त बादर तेउकायिक जीवों का जघन्य आयुष्य अन्तर्मुहूर्त प्रमाण होता है।

(1707) तेउकायिक जीवों का उत्कृष्ट आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर : पर्याप्त-अपर्याप्त सूक्ष्म तथा लब्धि अपर्याप्त बादर तेउकायिक जीवों का उत्कृष्ट आयुष्य अन्तर्मुहूर्त प्रमाण होता है। पर्याप्त बादर तेउकायिक जीवों का उत्कृष्ट आयुष्य तीन दिन का होता है।

(1708) वायुकायिक जीवों का जघन्य आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर : पर्याप्त-अपर्याप्त सूक्ष्म एवं पर्याप्त-अपर्याप्त बादर वायुकायिक जीवों का जघन्य आयुष्य अन्तर्मुहूर्त्त प्रमाण होता है।

(1709) वायुकायिक जीवों का उत्कृष्ट आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर : पर्याप्त-अपर्याप्त सूक्ष्म तथा लब्धि अपर्याप्त बादर वायुकायिक जीवों का उत्कृष्ट आयुष्य अन्तर्मुहूर्त्त प्रमाण होता है। पर्याप्त बादर वायुकाय का उत्कृष्ट आयुष्य 3000 वर्ष का होता है।

(1710) वनस्पतिकायिक जीवों का जघन्य आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर : पर्याप्त-अपर्याप्त सूक्ष्म साधारण वनस्पतिकाय, पर्याप्त-अपर्याप्त साधरण एवं प्रत्येक बादर वनस्पतिकाय का जघन्य आयुष्य अन्तर्मुहूर्त्त प्रमाण होता है।

(1711) वनस्पतिकायिक जीवों का उत्कृष्ट आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर : पर्याप्त-अपर्याप्त सूक्ष्म बादर साधारण वनस्पतिकाय का एवं लब्धि अपर्याप्त बादर वनस्पतिकाय का उत्कृष्ट आयुष्य अन्तर्मुहूर्त्त का होता है। पर्याप्त बादर वनस्पतिकाय का उत्कृष्ट आयुष्य 10000 वर्ष का होता है।

(1712) पर्याप्ता द्वीन्द्रिय जीवों का जघन्य तथा उत्कृष्ट आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर : जघन्य आयुष्य - अन्तर्मुहूर्त्त।
उत्कृष्ट आयुष्य - 12 वर्ष।

(1713) पर्याप्ता त्रीन्द्रिय जीवों का जघन्य तथा उत्कृष्ट आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर : जघन्य आयुष्य - अन्तर्मुहूर्त्त।
उत्कृष्ट आयुष्य - 49 दिवस।

(1714) पर्याप्ता चतुरिन्द्रिय जीवों का जघन्य तथा उत्कृष्ट आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर : जघन्य आयुष्य - अन्तर्मुहूर्त ।
उत्कृष्ट आयुष्य - छह माह ।

(1715) लब्धि अपर्याप्ता द्वीन्द्रियादि विकलेन्द्रिय जीवों का जघन्य तथा उत्कृष्ट आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर : जघन्यतः एवं उत्कृष्टतः - अन्तर्मुहूर्त ।

(1716) नारकी जीवों का जघन्य तथा उत्कृष्ट आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर : जघन्य आयुष्य - दस हजार वर्ष ।
उत्कृष्ट आयुष्य - 33 सागरोपम ।

(1717) प्रथम नरक में जघन्य तथा उत्कृष्ट आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर : जघन्य आयुष्य - दस हजार वर्ष ।
उत्कृष्ट आयुष्य - एक सागरोपम ।

(1718) दूसरी नरक में जघन्य तथा उत्कृष्ट आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर : जघन्य आयुष्य - एक सागरोपम ।
उत्कृष्ट आयुष्य - तीन सागरोपम ।

(1719) तीसरी नरक में जघन्य तथा उत्कृष्ट आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर : जघन्य आयुष्य - तीन सागरोपम ।
उत्कृष्ट आयुष्य - सात सागरोपम ।

(1720) चौथी नरक में जघन्य तथा उत्कृष्ट आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर : जघन्य आयुष्य - सात सागरोपम ।
उत्कृष्ट आयुष्य - दस सागरोपम ।

(1721) पांचवीं नरक में जघन्य तथा उत्कृष्ट आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर : जघन्य आयुष्य - दस सागरोपम ।
उत्कृष्ट आयुष्य - सतरह सागरोपम ।

(1722) छट्ठी नरक में जघन्य तथा उत्कृष्ट आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर : जघन्य आयुष्य - सतरह सागरोपम ।
उत्कृष्ट आयुष्य - बावीस सागरोपम ।

(1723) सातवीं नरक में जघन्य तथा उत्कृष्ट आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर : जघन्य आयुष्य - बावीस सागरोपम ।
उत्कृष्ट आयुष्य - तैंतीस सागरोपम ।

(1724) अपर्याप्त देव एवं नारकी जीवों का जघन्य तथा उत्कृष्ट आयुष्य कितना कहा गया है ?

उत्तर : जघन्यतः एवं उत्कृष्टतः दोनों की अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त्त आयुष्य कहा गया है ।

(1725) क्या देव तथा नारकी अन्तर्मुहूर्त्तकाल में मृत्यु को प्राप्त कर सकते हैं ?

उत्तर : अपर्याप्त नारकी एवं देव जीवों का जघन्य तथा उत्कृष्ट आयुष्य जो अन्तर्मुहूर्त्त प्रमाण कहा गया, वह करण अपर्याप्ता की अपेक्षा से है, लब्धि अपर्याप्ता की अपेक्षा से नहीं है । अर्थात् स्वयोग्य पर्याप्तियाँ पूर्ण करने से पूर्व जीव करण अपर्याप्ता कहलाता है । इस करण अपर्याप्त अवस्था में देव व नारकी जीव अन्तर्मुहूर्त्त तक रहते हैं, उसके बाद वे पर्याप्त अवस्था को प्राप्त कर लेते हैं । देव एवं नारकी की भाँति असंख्य वर्षायु वाले मनुष्य एवं तिर्यंच भी करण से ही अपर्याप्त होते हैं, लब्धि से नहीं ।

(1726) पंचेन्द्रिय तिर्यंच का जघन्य एवं उत्कृष्ट आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर : जघन्यतः - अन्तर्मुहूर्त ।

उत्कृष्टतः - तीन पल्योपम ।

(1727) लब्धि अपर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यंच का जघन्य तथा उत्कृष्ट आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर : जघन्यतः एवं उत्कृष्टतः - अन्तर्मुहूर्त ।

(1728) गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यंच का जघन्य तथा उत्कृष्ट आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर : जघन्यतः - अन्तर्मुहूर्त ।

उत्कृष्टतः - तीन पल्योपम ।

(1729) गर्भज जलचर का जघन्य तथा उत्कृष्ट आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर : जघन्य आयुष्य - अन्तर्मुहूर्त ।

उत्कृष्ट आयुष्य - करोड पूर्व ।

(1730) गर्भज चतुष्पद का जघन्य तथा उत्कृष्ट आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर : जघन्य आयुष्य - अन्तर्मुहूर्त ।

उत्कृष्ट आयुष्य - तीन पल्योपम ।

(1731) गर्भज उरपरिसर्प का जघन्य तथा उत्कृष्ट आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर : जघन्य आयुष्य - अन्तर्मुहूर्त ।

उत्कृष्ट आयुष्य - करोड पूर्व ।

(1732) गर्भज भुजपरिसर्प का जघन्य तथा उत्कृष्ट आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर : जघन्य आयुष्य - अन्तर्मुहूर्त ।
उत्कृष्ट आयुष्य - करोड पूर्व ।

(1733) गर्भज खेचर का जघन्य तथा उत्कृष्ट आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर : जघन्य आयुष्य - अन्तर्मुहूर्त ।
उत्कृष्ट आयुष्य - पल्योपम का असंख्यातवां भाग ।

(1734) गर्भज तिर्यंचनी का जघन्य तथा उत्कृष्ट आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर : जघन्य आयुष्य - अन्तर्मुहूर्त ।
उत्कृष्ट आयुष्य - तीन पल्योपम ।

(1735) गर्भज जलचर, उरपरिसर्प और भुजपरिसर्प तिर्यंचनी का जघन्य तथा उत्कृष्ट आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर : जघन्य आयुष्य - अन्तर्मुहूर्त ।
उत्कृष्ट आयुष्य - पूर्व कोटि वर्ष ।

(1736) गर्भज चतुष्पद तिर्यंचनी का जघन्य तथा उत्कृष्ट आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर : जघन्य आयुष्य - अन्तर्मुहूर्त ।
उत्कृष्ट आयुष्य - तीन पल्योपम ।

(1737) खेचर गर्भज तिर्यंचनी का जघन्य तथा उत्कृष्ट आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर : जघन्य आयुष्य - अन्तर्मुहूर्त ।
उत्कृष्ट आयुष्य - पल्योपम का असंख्यातवां भाग ।

(1738) मनुष्य का जघन्य तथा उत्कृष्ट आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर : जघन्य आयुष्य - अन्तर्मुहूर्त ।
उत्कृष्ट आयुष्य - तीन पल्योपम ।

(1739) गर्भज लब्धि अपर्याप्त मनुष्यों का जघन्य तथा उत्कृष्ट आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर : अन्तर्मुहूर्त ।

(1740) हिमवन्त एवं हिरण्यवंत क्षेत्र के गर्भज पर्याप्त मनुष्यों का जघन्य तथा उत्कृष्ट आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर : जघन्य आयुष्य - देशोन एक पल्योपम ।
उत्कृष्ट आयुष्य - एक पल्योपम ।

(1741) हरिवर्ष एवं रम्यक् क्षेत्र के गर्भज पर्याप्त मनुष्यों का जघन्य तथा उत्कृष्ट आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर : जघन्य आयुष्य - देशोन दो पल्योपम (लोकप्रकाश) ।
उत्कृष्ट आयुष्य - दो पल्योपम ।

(1742) देवकुरु तथा उत्तरकुरु के गर्भज पर्याप्त मनुष्यों का जघन्य तथा उत्कृष्ट आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर : जघन्य आयुष्य - देशोन तीन पल्योपम (लोकप्रकाश) ।
उत्कृष्ट आयुष्य - तीन पल्योपम ।

(1743) छप्पन अन्तर्द्वीप के गर्भज पर्याप्त मनुष्यों का जघन्य तथा उत्कृष्ट आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर : जघन्य आयुष्य - देशोन पल्योपम का असंख्यातवां भाग ।
उत्कृष्ट आयुष्य - पल्योपम का असंख्यातवां भाग ।

(1744) महाविदेह क्षेत्र के गर्भज पर्याप्त मनुष्यों का जघन्य तथा उत्कृष्ट आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर : जघन्य आयुष्य - अन्तर्मुहूर्त ।
उत्कृष्ट आयुष्य - पूर्व करोड वर्ष ।

(1745) भरत एवं ऐरावत क्षेत्र के गर्भज मनुष्यों का अवसर्पिणी काल में जघन्य तथा उत्कृष्ट आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर :

क्र	अवसर्पिणी	जघन्य आयुष्य	उत्कृष्ट आयुष्य
1	पहला आरा	अन्तर्मुहूर्त्त	तीन पल्योपम
2	दूसरा आरा	अन्तर्मुहूर्त्त	दो पल्योपम
3	तीसरा आरा	अन्तर्मुहूर्त्त	एक पल्योपम
4	चौथा आरा	अन्तर्मुहूर्त्त	संख्य वर्ष
5	पांचवा आरा	अन्तर्मुहूर्त्त	साधिक सौ वर्ष
6	छट्ठा आरा	अन्तर्मुहूर्त्त	बीस वर्ष ।

(1746) भरत एवं ऐरावत क्षेत्र के उत्सर्पिणी में गर्भज मनुष्यों का जघन्य तथा उत्कृष्ट आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर :

क्र	अवसर्पिणी	जघन्य आयुष्य	उत्कृष्ट आयुष्य
1	पहला आरा	अन्तर्मुहूर्त्त	बीस वर्ष
2	दूसरा आरा	अन्तर्मुहूर्त्त	साधिक सौ वर्ष
3	तीसरा आरा	अन्तर्मुहूर्त्त	संख्य वर्ष
4	चौथा आरा	अन्तर्मुहूर्त्त	एक पल्योपम
5	पांचवा आरा	अन्तर्मुहूर्त्त	दो पल्योपम
6	छट्ठा आरा	अन्तर्मुहूर्त्त	तीन पल्योपम

(1747) मनुष्यनी का आयुष्य कितना कहा गया है ?

उत्तर : जघन्यतः - अन्तर्मुहूर्त्त तथा उत्कृष्टतः - तीन पल्योपम ।

(1748) भरत तथा ऐरावत क्षेत्र की मनुष्यनी आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर : जघन्यतः - अन्तर्मुहूर्त्त तथा उत्कृष्टतः - तीन पल्योपम ।

(1749) महाविदेह क्षेत्र की मनुष्यनी आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर : जघन्यतः - अन्तर्मुहूर्त्त तथा उत्कृष्टतः - पूर्व करोड वर्ष ।

(1750) हिमवंत एवं हिरण्यवंत क्षेत्र की मनुष्यनी आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर : जघन्यतः - देशोन पल्योपम तथा उत्कृष्टतः - पूर्व करोड वर्ष ।

(1751) हरिवर्ष एवं रम्यक् क्षेत्र की मनुष्यनी आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर : जघन्यतः - देशोन दो पल्योपम तथा उत्कृष्टतः - दो पल्योपम ।

(1752) देवकुरू तथा उत्तरकुरू क्षेत्र की मनुष्य स्त्रियों का आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर : जघन्यतः - देशोन तीन पल्योपम ।
उत्कृष्टतः - तीन पल्योपम ।

(1753) देवों का जघन्य तथा उत्कृष्ट रूप से कितना आयुष्य कहा गया है ?

उत्तर : जघन्यतः - दस हजार वर्ष तथा उत्कृष्टतः - तैंतीस सागरोपम ।

(1754) देवियों का जघन्यतः एवं उत्कृष्टतः कितना आयुष्य होता है ?

उत्तर : जघन्यतः - दस हजार वर्ष तथा उत्कृष्टतः - पचपन पल्योपम ।

(1755) भवनपति देवों का आयुष्य कितना होता है?

उत्तर : असुरकुमार निकाय के देवों का उत्कृष्ट आयुष्य साधिक एक सागरोपम तथा शेष नागकुमारादि नव निकायों के देवों का उत्कृष्ट आयुष्य देशोन दो पल्योपम का होता है । समस्त भवनपति देवों का जघन्य आयुष्य दस हजार वर्ष का होता है ।

(1756) व्यंतर देवों का आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर : जघन्य आयुष्य - दस हजार वर्ष ।
उत्कृष्ट आयुष्य - एक पल्योपम ।

(1757) पंद्रह परमाधामी देवों का आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर : जघन्य आयुष्य - दस हजार वर्ष ।
उत्कृष्ट आयुष्य - देशोन दो पल्योपम ।

(1758) तिर्यग्जृंभक देवों का आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर : जघन्य आयुष्य - दस हजार वर्ष ।

उत्कृष्ट आयुष्य - एक पल्योपम ।

(1759) ज्योतिष्क देवों का जघन्य तथा उत्कृष्ट आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर : जघन्यतः - पल्योपम का आठवां भाग ।

उत्कृष्टतः - लक्षवर्षाधिक एक पल्योपम ।

(1760) सूर्य विमान के देवों का आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर : जघन्य आयुष्य - पल्योपम का चौथा भाग ।

उत्कृष्ट आयुष्य - एक हजार वर्ष अधिक एक पल्योपम ।

(1761) चन्द्र विमान के देवों का आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर : जघन्य आयुष्य - पल्योपम का चौथा भाग ।

उत्कृष्ट आयुष्य - एक लाख वर्ष अधिक एक पल्योपम ।

(1762) ग्रह विमान के देवों का आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर : जघन्य आयुष्य - पल्योपम का चतुर्थांश ।

उत्कृष्ट आयुष्य - एक पल्योपम ।

(1763) नक्षत्र विमान के देवों का आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर ; जघन्य आयुष्य - पल्योपम का चतुर्थांश ।

उत्कृष्ट आयुष्य - अर्ध पल्योपम ।

(1764) तारा विमान के देवों का आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर : जघन्य आयुष्य - पल्योपम का अष्टमांश ।

उत्कृष्ट आयुष्य - पल्योपम का चतुर्थांश ।

(1765) वैमानिक देवों का जघन्य तथा उत्कृष्ट आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर : जघन्यतः - एक पल्योपम ।

उत्कृष्टतः - तैंतीस सागरोपम ।

(1766) बारह देवलोक के देवों का आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर :

क्र	देवलोक	उत्कृष्ट	जघन्य
1	सौधर्म देवलोक	दो सागरोपम	एक पल्योपम
2	ईशान देवलोक	साधिक दो सागरोपम	साधिक एक पल्योपम
3	सानत्कुमार देवलोक	सात सागरोपम	दो सागरोपम
4	माहेन्द्र देवलोक	साधिक सात सागरोपम	साधिक दो सागरोपम
5	ब्रह्मलोक देवलोक	दस सागरोपम	सात सागरोपम
6	लान्तक देवलोक	चौदह सागरोपम	दस सागरोपम
7	महाशुक्र देवलोक	सतरह सागरोपम	चौदह सागरोपम
8	सहस्रार देवलोक	अठारह सागरोपम	सत्रह सागरोपम
9	आनत देवलोक	उन्नीस सागरोपम	अठारह सागरोपम
10	प्राणत देवलोक	बीस सागरोपम	उन्नीस सागरोपम
11	आरण देवलोक	इक्कीस सागरोपम	बीस सागरोपम
12	अच्युत देवलोक	बावीस सागरोपम	इक्कीस सागरोपम

(1767) नवग्रैवेयक के देवों का आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर :

क्र	देवलोक	उत्कृष्ट	जघन्य
1	पहला ग्रैवेयक	23 सागरोपम	22 सागरोपम
2	दूसरा ग्रैवेयक	24 सागरोपम	23 सागरोपम
3	तीसरा ग्रैवेयक	25 सागरोपम	24 सागरोपम

4	चौथा ग्रैवेयक	26 सागरोपम	25 सागरोपम
5	पांचवां ग्रैवेयक	27 सागरोपम	26 सागरोपम
6	छठ्ठा ग्रैवेयक	28 सागरोपम	27 सागरोपम
7	सातवां ग्रैवेयक	29 सागरोपम	28 सागरोपम
8	आठवां ग्रैवेयक	30 सागरोपम	29 सागरोपम
9	नवमां ग्रैवेयक	31 सागरोपम	30 सागरोपम

(1768) पांच अनुत्तर विमान के देवों का आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर : विजय, वैजयन्त, जयन्त तथा अपराजित देवों का जघन्य आयुष्य 31 सागरोपम तथा उत्कृष्ट आयुष्य 33 सागरोपम होता है।

सर्वार्थसिद्ध विमान के देवों का जघन्य तथा उत्कृष्ट आयुष्य 33 सागरोपम होता है।

मतांतर - तत्त्वार्थाधिगम सूत्र के चतुर्थ अध्ययन सूत्र क्रमांक 42 के भाष्य में सर्वार्थसिद्ध विमान के देवों की जघन्य स्थिति 32 सागरोपम की बताई गई है।

(1769) भवनपति देवियों का आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर : समस्त भवनपति देवियों का जघन्य आयुष्य दस हजार वर्ष का होता है।

असुरकुमार निकायवर्ती देवियों का उत्कृष्ट आयुष्य सार्द्ध चार पल्योपम का होता है।

नागकुमार आदि शेष नव भवनपति निकायवर्ती देवियों का उत्कृष्ट आयुष्य देशोन एक पल्योपम का होता है।

(1770) परमाधामी देवियों का आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर : असुरकुमार निकायवर्ती देवियों के समान जानना चाहिये।

(1771) वाणव्यंतर देवियों का आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर : जघन्यतः - दस हजार वर्ष।

उत्कृष्टतः - सार्द्ध चार पल्योपम ।

(1772) ज्योतिष्क देवियों का आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर : जघन्यतः - पल्योपम का आठवां भाग ।

उत्कृष्टतः - पचास हजार वर्षाधिक अर्द्ध पल्योपम ।

(1773) चंद्र विमान की देवियों का आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर : जघन्यतः - पल्योपम का चौथा भाग ।

उत्कृष्टतः - पचास हजार वर्षाधिक अर्द्ध पल्योपम ।

(1774) सूर्य विमान की देवियों का आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर : जघन्यतः - पल्योपम का चौथा भाग ।

उत्कृष्टतः - पांच सौ वर्षाधिक अर्द्ध पल्योपम ।

(1775) ग्रह विमान की देवियों का आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर : जघन्यतः - पल्योपम का चौथा भाग ।

उत्कृष्टतः - अर्द्ध पल्योपम ।

(1776) नक्षत्र विमान की देवियों का आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर : जघन्यतः - पल्योपम का चौथा भाग ।

उत्कृष्टतः - साधिक पल्योपम का चौथा भाग ।

(1777) तारा विमान की देवियों का आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर : जघन्यतः - पल्योपम का आठवां भाग ।

उत्कृष्टतः - साधिक पल्योपम का आठवां भाग ।

(1778) वैमानिक देवियों का आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर : जघन्यतः - एक पल्योपम ।

उत्कृष्टतः - पचपन पल्योपम ।

(1779) सौधर्म वैमानिक देवियों का आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर : सौधर्म देवलोक में परिगृहिता तथा अपरिगृहिता देवियों का जघन्य आयुष्य 1 पल्योपम होता है । परिगृहिता देवियों का उत्कृष्ट आयुष्य 7 पल्योपम तथा अपरिगृहिता देवियों का उत्कृष्ट आयुष्य

50 पल्योपम का होता है ।

(1780) ईशान वैमानिक देवियों का आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर :

ईशान देवलोक	**जघन्य आयुष्य**	**उत्कृष्ट आयुष्य**
परिगृहिता	साधिक एक पल्योपम	9 पल्योपम
अपरिगृहिता	,,	55 पल्योपम

नोट : भवनपति आदि चारों निकाय में इन्द्रों की देव की अपेक्षा से और इन्द्राणी की देवी की अपेक्षा से उत्कृष्ट स्थिति होती है ।

(1781) देव तथा नरक गति में उत्कृष्ट तथा जघन्य आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर : जघन्य आयुष्य - दस हजार वर्ष ।
उत्कृष्ट आयुष्य - 33 सागरोपम ।

(1782) मनुष्य तथा तिर्यंच गति में उत्कृष्ट तथा जघन्य आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर : जघन्य आयुष्य - अन्तर्मुहूर्त ।
उत्कृष्ट आयुष्य - 3 पल्योपम ।

(1783) स्थावर जीवों का जघन्य तथा उत्कृष्ट आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर : जघन्य - अन्तर्मुहूर्त ।
उत्कृष्ट - 22 हजार वर्ष (पृथ्वीकाय) ।

(1784) त्रस जीवों का जघन्य तथा उत्कृष्ट आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर : जघन्य - अन्तर्मुहूर्त ।
उत्कृष्ट - 33 सागरोपम (नारकी/देव) ।

(1785) संज्ञी जीवों का जघन्य तथा उत्कृष्ट आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर : जघन्य - अन्तर्मुहूर्त ।
उत्कृष्ट - 33 सागरोपम (नारकी/देव) ।

(1786) असंज्ञी जीवों का जघन्य तथा उत्कृष्ट आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर : जघन्य - अन्तर्मुहूर्त ।

उत्कृष्ट - करोड पूर्व (संमूर्च्छिम जलचर)

(1787) अधोलोक तथा उर्ध्वलोक में जघन्य तथा उत्कृष्ट आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर : जघन्य - अन्तर्मुहूर्त ।

उत्कृष्ट - 33 सागरोपम (नारकी/देव) ।

(1788) मध्यलोक में जघन्य तथा उत्कृष्ट आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर : जघन्य - अन्तर्मुहूर्त ।

उत्कृष्ट - तीन पल्योपम (मनुष्य/तिर्यंच) ।

(1789) प्रत्येक जीवों का जघन्य तथा उत्कृष्ट आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर : जघन्य आयुष्य - अन्तर्मुहूर्त ।

उत्कृष्ट आयुष्य - 33 सागरोपम (देव/नारकी)

(1790) एकेन्द्रिय जीवों का उत्कृष्ट तथा जघन्य आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर : जघन्य - अन्तर्मुहूर्त ।

उत्कृष्ट - 22 हजार वर्ष (पृथ्वीकाय) ।

(1791) पंचेन्द्रिय जीवों का जघन्य तथा उत्कृष्ट आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर : जघन्य - अन्तर्मुहूर्त ।

उत्कृष्ट - 33 सागरोपम (नारकी/देव) ।

(1792) सूक्ष्म जीवों का जघन्य तथा उत्कृष्ट आयुष्य कितना

होता है ?

उत्तर : जघन्य तथा उत्कृष्ट - अन्तर्मुहूर्त ।

(1793) बादर जीवों का जघन्य तथा उत्कृष्ट आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर : जघन्य - अन्तर्मुहूर्त ।
उत्कृष्ट - 33 सागरोपम (नारकी/देव) ।

(1794) संमूर्च्छिम जीवों का जघन्य तथा उत्कृष्ट आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर : जघन्य - अन्तर्मुहूर्त ।
उत्कृष्ट - करोड पूर्व (संमूर्च्छिम जलचर) ।

(1795) गर्भज जीवों का जघन्य तथा उत्कृष्ट आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर : जघन्य - अन्तर्मुहूर्त ।
उत्कृष्ट - तीन पल्योपम (मनुष्य/तिर्यंच) ।

(1796) औपपातिक जीवों का जघन्य तथा उत्कृष्ट आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर : जघन्य - दस हजार वर्ष ।
उत्कृष्ट - 33 सागरोपम (देव/नारकी) ।

(1797) साधारण जीवों का आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर : जघन्य एवं उत्कृष्ट आयुष्य - अन्तर्मुहूर्त ।

(1798) पुरुष वेद में कितना आयुष्य होता है ?

उत्तर : जघन्य - अन्तर्मुहूर्त
उत्कृष्ट - 33 सागरोपम (देव) ।

(1799) स्त्री वेद में कितना आयुष्य होता है ?

उत्तर : जघन्य - अन्तर्मुहूर्त ।
उत्कृष्ट - 55 पल्योपम (वैमानिक देवी) ।

(1800) नपुंसक वेद में कितना आयुष्य होता है ?

उत्तर : जघन्य - अन्तर्मुहूर्त (स्थावरादि) ।

उत्कृष्ट - 33 सागरोपम (नारकी) ।

(1801) सम्यक्त्वी एवं भव्य जीवों का कितना आयुष्य होता है ?

उत्तर : जघन्य - अन्तर्मुहूर्त ।

उत्कृष्ट - 33 सागरोपम (देव) ।

(1802) मिथ्यात्वी एवं अभव्य जीवों का कितना आयुष्य होता है ?

उत्तर : जघन्य - अन्तर्मुहूर्त ।

उत्कृष्टतः - 33 सागरोपम (सातवीं नरक) ।

(1803) मनुष्य एवं तिर्यंच गति के जीव कितना आयुष्य बांध सकते हैं ?

उत्तर : जघन्यतः - अन्तर्मुहूर्त ।

उत्कृष्टतः - 33 सागरोपम ।

(1804) देव एवं नरक गति के जीव कितना आयुष्य बांध सकते हैं ?

उत्तर : जघन्य - अन्तर्मुहूर्त ।

उत्कृष्ट - 3 पल्योपम ।

एकोनविंशतितम पर्याप्ति द्वार का विवेचन

(1805) पर्याप्ति किसे कहते है ?

उत्तर : पुद्गल के समूह से आत्मा में प्रकट होने वाली शक्ति को पर्याप्ति कहते है ।

जिस शक्ति के द्वारा जीव आहार ग्रहण करके उसे रस में परिणमित करता है । रस को शरीर एवं इन्द्रियों में रूपान्तरित करता है । श्वासोच्छ्वास, भाषा और मन योग्य पुद्गल

वर्गणाओं को ग्रहण कर श्वासोच्छ्वास भाषा और मन रूप बनाता है, जीव की उस शक्ति को पर्याप्ति कहते है।

(1806) पर्याप्तियाँ कितनी होती हैं ?

उत्तर : **छह** - (1) आहार पर्याप्ति (2) शरीर पर्याप्ति (3) इन्द्रिय पर्याप्ति (4) श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति (5) भाषा पर्याप्ति (6) मन पर्याप्ति।

(1807) आहार पर्याप्ति किसे कहते है ?

उत्तर : जिस शक्ति से जीव आहार आदि ग्रहण करके रस में परिणत करता है, उसे आहार पर्याप्ति कहते है।

(1808) शरीर पर्याप्ति किसे कहते है ?

उत्तर : जिस शक्ति से जीव रस को रक्त, मांस, अस्थि, मज्जा आदि सप्त धातुओं में परिणत करता है, उसे शरीर पर्याप्ति कहते है।

(1809) इन्द्रिय पर्याप्ति किसे कहते है ?

उत्तर : जिस शक्ति से जीव शरीर रूप परिणत पुद्गलों को स्पर्शनादि पांच इन्द्रियों में परिणत करता है, उसे इन्द्रिय पर्याप्ति कहते है।

(1810) श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति किसे कहते है ?

उत्तर : जिस शक्ति से जीव श्वासोच्छ्वास वर्गणा के पुद्गलों को ग्रहण - करके श्वासोच्छ्वास में परिणत करता है और छोडता है, उसे श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति कहते है।

(1811) भाषा पर्याप्ति किसे कहते है ?

उत्तर : जिस शक्ति से जीव भाषा वर्गणा के पुद्गलों को ग्रहण करके शब्द/भाषा के रूप में परिणत करके छोडता है, उसे भाषा पर्याप्ति कहते है।

(1812) मन पर्याप्ति किसे कहते है ?

उत्तर : जिस शक्ति से जीव मनोवर्गणा के पुद्गलों को ग्रहण करके मन

रूप परिणत करता है और सोच कर छोड़ता है, उसे मन पर्याप्ति कहते है ।

(1813) पर्याप्ता किसे कहते है ?

उत्तर : जिस जीव ने स्वयोग्य पर्याप्तियाँ पूर्ण कर ली है, उसे पर्याप्ता कहते है । जैसे एकेन्द्रिय जीव स्वयोग्य चार पर्याप्तियाँ पूर्ण करने के पश्चात् पर्याप्ता कहलाता है ।

(1814) अपर्याप्ता जीव किसे कहते है ?

उत्तर : स्वयोग्य पर्याप्तियाँ पूर्ण करने से पूर्व जीव अपर्याप्ता कहलाता है । जैसे एकेन्द्रिय जीव स्वयोग्य चार पर्याप्तियाँ पूर्ण करने से पूर्व अपर्याप्ता कहलाता है ।

(1815) पर्याप्ता जीवों के कितने भेद होते हैं ?

उत्तर : **दो भेद** - (1) करण पर्याप्ता (2) लब्धि पर्याप्ता ।

(1816) अपर्याप्ता जीवों के कितने भेद होते हैं ?

उत्तर : **दो भेद** - (1) करण अपर्याप्ता (2) लब्धि अपर्याप्ता ।

(1817) करण पर्याप्ता किसे कहते है ?

उत्तर : जिस जीव ने स्वयोग्य पर्याप्तियाँ पूर्ण कर ली है, वह करण पर्याप्ता कहलाता है ।

(1818) लब्धि पर्याप्ता किसे कहते है ?

उत्तर : जिस जीव ने स्वयोग्य पर्याप्तियाँ पूर्ण कर ली है या भविष्य में स्वयोग्य पर्याप्तियाँ अवश्यमेव पूर्ण करेगा, वह लब्धि पर्याप्ता कहलाता है ।

(1819) करण अपर्याप्ता किसे कहते है ?

उत्तर : जिस जीव ने स्वयोग्य पर्याप्तियाँ पूर्ण नहीं की है और भविष्य में पूर्ण करें अथवा न करें, वह करण अपर्याप्ता कहलाता है ।

(1820) लब्धि अपर्याप्ता किसे कहते है ?

उत्तर : जिस जीव ने स्वयोग्य पर्याप्तियाँ पूर्ण नहीं की हैं और पूर्ण करने से पूर्व ही मर जायेगा, उसे लब्धि अपर्याप्ता कहते है ।

(1821) लब्धि पर्याप्ता-अपर्याप्ता एवं करण पर्याप्ता-अपर्याप्ता में पारस्परिक संबंध प्रस्तुत कीजिये ।

उत्तर : 1 लब्धि पर्याप्ता जीव स्वपर्याय योग्य पर्याप्तियाँ पूर्ण करने से पूर्व करण अपर्याप्ता कहलाता है और पूर्ण करने के पश्चात् करण पर्याप्ता कहलाता है, अतः लब्धि पर्याप्ता जीव में करण पर्याप्ता-करण अपर्याप्ता रूप दोनों भेद घटित होते हैं ।

2 लब्धि पर्याप्ता और करण पर्याप्ता भेद एक ही जीव में एक समय में एक साथ घटित होते हैं क्योंकि पर्याप्तियाँ पूर्ण करने के बाद भी जीव अतीत की अपेक्षा से लब्धि पर्याप्ता कहलाता हैं और पर्याप्तियाँ पूर्ण करने के पश्चात् करण पर्याप्ता भी कहलाता है ।

3 लब्धि अपर्याप्ता करण अपर्याप्ता ही होता है, वह कभी भी करण पर्याप्ता नहीं बनता है ।

4 करण अपर्याप्ता यदि लब्धि पर्याप्ता है तो करण पर्याप्ता बनता है और यदि लब्धि अपर्याप्ता है तो करण अपर्याप्ता ही रहता है अर्थात् स्वपर्याय योग्य पर्याप्तियाँ पूर्ण किये बिना ही मृत्यु को प्राप्त हो जाता है ।

5 करण पर्याप्ता जीव अवश्यमेव लब्धि पर्याप्ता ही होता है ।

(1822) पर्याप्तियों का प्रारंभ किस प्रकार होता है ?

उत्तर : छहों पर्याप्तियों का प्रारंभ एक साथ होता है ।

(1823) पर्याप्तियों की पूर्णता किस प्रकार होती है ?

उत्तर : आहार पर्याप्ति सर्वप्रथम पूर्ण होती है, तत्पश्चात् शरीर पर्याप्ति पूर्ण होती है । इसी प्रकार शेष इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा और

मन पर्याप्ति की समाप्ति क्रमशः होती है ।

(1824) पर्याप्तियों का निर्माण एक साथ शुरु होने पर भी पूर्णता में भेद किस कारण है ?

उत्तर : जिस प्रकार शिल्पकार को स्तंभ-निर्माण में अल्प काल लगता है परन्तु प्रतिमा-निर्माण में अधिककाल लगता है क्योंकि स्तंभ की अपेक्षा प्रतिमा-निर्माण में अधिक काल, प्रज्ञा एवं श्रम की आवश्यकता होती है, इसी प्रकार आहार पर्याप्ति से शरीर पर्याप्ति सूक्ष्म है । छहों पर्याप्तियाँ उत्तरोत्तर सूक्ष्म-सूक्ष्मतर है अतः सूक्ष्म से सूक्ष्मतर पर्याप्ति की पूर्णता में अधिक काल लगता है । अतः पर्याप्तियों के निर्माण का प्रारंभ एक साथ होने पर उनकी परिपूर्णता में अन्तर होता है ।

(1825) पर्याप्तियों की पूर्णता में कितना काल लगता है ?

उत्तर : आहार पर्याप्ति की पूर्णता में एक समय लगता है । शेष पर्याप्ति पंचक को पूर्ण होने में अन्तर्मुहूर्त का समय लगता है ।

(1826) कितनी पर्याप्तियाँ पूर्ण होने के पश्चात् ही जीव मृत्यु को प्राप्त करता है ?

उत्तर : प्रथम तीन पर्याप्तियाँ ।

(1827) एकेन्द्रिय जीवों में कितनी पर्याप्तियाँ होती हैं ?

उत्तर : **चार पर्याप्तियाँ** - आहार, शरीर, इन्द्रिय और श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति ।

(1828) द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, और चतुरिन्द्रिय जीवों के कितनी पर्याप्तियाँ होती हैं ?

उत्तर : **पांच पर्याप्तियाँ** - आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास और भाषा पर्याप्ति ।

(1829) संज्ञी पंचेन्द्रिय मनुष्य, देवता, नारकी और गर्भज तिर्यंच

जीवों के कितनी पर्याप्तियाँ होती हैं ?

उत्तर : छह पर्याप्तियाँ - आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा और मन ।

(1830) असंज्ञी पंचेन्द्रिय मनुष्य एवं तिर्यंच में कितनी पर्याप्तियाँ होती हैं ?

उत्तर : मन पर्याप्ति के अतिरिक्त पांच पर्याप्तियाँ होती हैं ।

(1831) कौन-कौन से जीव पर्याप्ता और अपर्याप्ता होते हैं ?

उत्तर : एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, देव, नारकी, गर्भज-संमूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यंच तथा गर्भज मनुष्य पर्याप्ता तथा अपर्याप्ता, दोनों होते हैं ।

(1832) कौन से जीव नियमतः अपर्याप्त ही होते हैं ?

उत्तर : संमूर्च्छिम मनुष्य नियमतः अपर्याप्ता ही होते हैं ।

(1833) पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय एवं वनस्पतिकाय में कितनी पर्याप्तियाँ होती हैं ?

उत्तर : **चार पर्याप्तियाँ** - 1 आहार 2 शरीर 3 इन्द्रिय 4 श्वासोच्छ्वास ।

(1834) त्रस जीवों में कितनी पर्याप्तियाँ पायी जाती हैं ?

उत्तर : छह पर्याप्तियाँ ।

(1835) स्थावर जीवों में कितनी पर्याप्तियाँ पायी जाती हैं ?

उत्तर : **चार पर्याप्तियाँ** - 1 आहार 2 शरीर 3 इन्द्रिय 4 श्वासोच्छ्वास ।

(1836) गर्भज तथा औपपातिक जीवों में कितनी पर्याप्तियाँ पायी जाती हैं ?

उत्तर : छह पर्याप्तियाँ ।

(1837) संमूर्च्छिम जीवों में कितनी पर्याप्तियाँ पायी जाती हैं ?

उत्तर : **पांच पर्याप्तियाँ** - 1 आहार, 2 शरीर, 3 इन्द्रिय, 4 श्वासोच्छ्वास, 5 भाषा ।

(1838) सूक्ष्म जीवों में कितनी पर्याप्तियाँ पायी जाती हैं ?

उत्तर : **चार पर्याप्तियाँ** - 1 आहार 2 शरीर 3 इन्द्रिय 4 श्वासोच्छ्वास ।

(1839) बादर जीवों में कितनी पर्याप्तियाँ पायी जाती हैं ?

उत्तर : छह पर्याप्तियाँ ।

(1840) भव्य एवं अभव्य जीवों में कितनी पर्याप्तियाँ पायी जाती हैं ?

उत्तर : छह पर्याप्तियाँ ।

(1841) तीनों लोक में कितनी पर्याप्तियाँ पायी जाती हैं ?

उत्तर : छह पर्याप्तियाँ ।

(1842) प्रत्येक जीवों में कितनी पर्याप्तियाँ पायी जाती हैं ?

उत्तर : छह पर्याप्तियाँ ।

(1843) साधारण जीवों में कितनी पर्याप्तियाँ पायी जाती हैं ?

उत्तर : प्रथम चार पर्याप्तियाँ ।

(1844) पुरुषादि तीनों वेद में कितनी पर्याप्तियाँ पायी जाती हैं ?

उत्तर : छह पर्याप्तियाँ ।

(1845) चार पर्याप्तियाँ कितने दण्डकों में पायी जाती हैं ?

उत्तर : पांच दण्डकों में - स्थावर पंचक ।

(1846) पांच पर्याप्तियाँ कितने दण्डकों में पायी जाती हैं ?

उत्तर : तीन दण्डकों में - विकलेन्द्रिय त्रिक ।

(1847) छह पर्याप्तियाँ कितने दण्डकों में पायी जाती हैं ?

उत्तर : सोलह दण्डकों में - देव, नारकी, गर्भज तिर्यंच और गर्भज मनुष्य ।

(1848) आहार, शरीर, इन्द्रिय तथा श्वासोच्छ्वास, ये चार पर्याप्तियाँ कितने दण्डकों में पायी जाती हैं ?

उत्तर : चौबीस दण्डकों में ।

(1849) भाषा पर्याप्ति कितने दण्डकों में पायी जाती हैं ?

उत्तर : उन्नीस दण्डकों में - स्थावर पंचक बिना ।

(1850) मन पर्याप्ति कितने दण्डकों में पायी जाती हैं ?

उत्तर : सोलह दण्डकों में - स्थावर पंचक तथा विकलेन्द्रिय त्रिक बिना ।

(1851) संज्ञी जीवों में कितनी पर्याप्तियाँ पायी जाती हैं ?

उत्तर : छह पर्याप्तियाँ ।

(1852) असंज्ञी जीवों में कितनी पर्याप्तियाँ पायी जाती हैं ?

उत्तर : पांच पर्याप्तियाँ (मन सिवाय) ।

(1853) कितने गुणस्थानकों में कितनी पर्याप्तियाँ पायी जाती हैं ?

उत्तर : छह पर्याप्तियाँ समस्त चौदह गुणस्थानकों में पायी जाती है।

(1854) एकेन्द्रिय में कितनी पर्याप्तियाँ पायी जाती हैं ?

उत्तर : प्रथम चार पर्याप्तियाँ ।

(1855) पंचेन्द्रिय जीवों में कितनी पर्याप्तियाँ पायी जाती हैं ?

उत्तर : छह पर्याप्तियाँ ।

(1856) सम्यक्त्वी एवं मिथ्यात्वी जीवों में कितनी पर्याप्तियाँ पायी जाती हैं ?

उत्तर : छह पर्याप्तियाँ ।

(1857) पर्याप्त अवस्था का काल कितना कहा गया है ?

उत्तर : जघन्यतः - अन्तर्मुहूर्त ।
उत्कृष्टतः - साधिक सागरोपम शतक पृथक्त्व ।

(1858) अपर्याप्त अवस्था का काल कितना कहा गया है ?

उत्तर : जघन्यतः तथा उत्कृष्टतः - अन्तर्मुहूर्त ।

विंशतितम किमाहार द्वार का विवेचन

(1859) किमाहार द्वार किसे कहते है ?

उत्तर : चतुर्विंशति दण्डकवर्ती जीवों में से कौनसा जीव कितनी एवं कौनसी दिशाओं से आहार ग्रहण करता है, इस संदर्भ में विवेचन जिस द्वार में किया गया है, उसे किमाहार द्वार कहते है ।

(1860) आहार किसे कहा गया है ?

उत्तर : जो क्षुधा एवं तृषा को आंशिक रूप से अथवा पूरी तरह से शान्त करता है, उसे आहार कहते है ।

(1861) आहार कितने प्रकार का कहा गया है ?

उत्तर : **तीन प्रकार का** - (1) ओजाहार (2) लोमाहार (3) कवलाहार।

(1862) ओजाहार से क्या अभिप्राय है ?

उत्तर : उत्पत्ति के प्रथम समय से स्वयोग्य पर्याप्तियाँ पूर्ण होने तक औदारिक वर्गणा के जो पुद्गल ग्रहण किये जाते हैं, उसे ओजाहार कहते है।

तैजस तथा कार्मण शरीर के द्वारा जो आहार लिया जाता है, उसे ओजाहार कहते है।

(1863) ओजाहार कब लिया जाता है ?

उत्तर : उत्पति के प्रथम समय से स्वयोग्य पर्याप्तियाँ पूर्ण होने तक ओजाहार लिया जाता है। कुछ आचार्य उत्पत्ति के प्रथम समय से शरीर पर्याप्ति पूर्ण होने तक लिये जाने वाले आहार को ओजाहार कहते है।

(1864) कौन-कौनसे जीव ओजाहारी होते हैं ?

उत्तर : समस्त जीव अपर्याप्त अवस्था तक ओजाहारी होते हैं।

(1865) लोमाहार किसे कहते हैं ?

उत्तर : स्पर्शनेन्द्रिय (त्वचा) के द्वारा लिया जाने वाला आहार लोमाहार कहलाता है।

(1866) लोमाहारी कौन कौनसे जीव होते हैं ?

उत्तर : समस्त पर्याप्ता जीव लोमाहारी होते हैं।

(1867) कवलाहार किसे कहते है ?

उत्तर : मुख से ग्रहण किया जाने वाला आहार कवलाहार कहलाता है। इसे प्रक्षेपाहार भी कहा जाता है।

(1868) कौन-कौनसे जीव कवलाहारी होते हैं ?

उत्तर : विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय तिर्यंच और मनुष्य कवलाहारी होते हैं।

(1869) किन-किन जीवों में कवलाहार का अभाव होता है ?

उत्तर : (1) पृथ्वीकायिक-अप्कायिक-तेउकायिक-वायुकायिक-

वनस्पतिकायिक जीव (समस्त स्थावर/एकेन्द्रिय),

(2) समस्त देव,

(3) समस्त नारकी ।

(1870) जब देव एवं नारकी जीव कवलाहार नहीं करते हैं, तो उनमें आहार किस प्रकार होता है ?

उत्तर : देव तथा नारकी मनुष्य की भाँति कवलाहारपूर्वक क्षुधा-तृषा को शान्त नहीं करते हैं। मन इच्छित भोजन के लिये पुद्गल स्वतः आहार रूप परिणमित होते हैं। इच्छा के संकल्प में परिणमित हो जाने के बाद उत्तम पुद्गल शरीर में प्रविष्ट हो जाते हैं। उन्हें अमीरस पान की भाँति डकार आती है और क्षुधा शान्त हो जाती है। देवों को आहार लेने के पश्चात् संतोष एवं तृप्ति का अनुभव होता है। देवों के शुभ पुद्गल और नारकी के अशुभ पुद्गल आहार रूप में परिणमित होते हैं।

(1871) पृथ्वीकायादि पांच स्थावरकाय में कितने प्रकार का आहार पाया जाता है ?

उत्तर : तीन प्रकार का - (1) ओजाहार (2) लोमाहार (3) कवलाहार ।

(1872) विकलेन्द्रिय में कितने प्रकार का आहार पाया जाता है ?

उत्तर : दो प्रकार का - (1) ओजाहार (2) लोमाहार ।

(1873) गर्भज मनुष्य और गर्भज तिर्यंच में कितने प्रकार का आहार पाया जाता है ?

उत्तर : तीनों प्रकार का ।

(1874) देव और नारकी में कितने प्रकार का आहार पाया जाता है ?

उत्तर : दो प्रकार का - (1) ओजाहार (2) लोमाहार ।

(1875) प्रज्ञापना सूत्र में आहार के कितने प्रकार बताये गये हैं ?

उत्तर : तीन प्रकार के - (1) सचित्ताहार (2) अचित्ताहार (3) मिश्राहार ।

(1876) सचित्ताहार किसे कहते है ?

उत्तर : जो आहार जीव युक्त हो, जिस आहार में चेतना हो, उसे सचित्ताहार कहते है।

(1877) अचित्ताहार किसे कहते है ?

उत्तर : जो आहार जीव रहित हो, उसे अचित्ताहार कहते है।

(1878) मिश्राहार किसे कहते है ?

उत्तर : जो आहार आंशिक रूप से सचित्त हो और आंशिक रूप से अचित्त हो, उसे मिश्राहार कहते है।

(1879) नारकी एवं देवों में कौनसा आहार पाया जाता है ?

उत्तर : अचित्ताहार।

(1880) एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, मनुष्य तथा पंचेन्द्रिय तिर्यंच में कौनसे आहार पाये जाते हैं ?

उत्तर : एकेन्द्रियादि में सचित्तादि तीनों प्रकार के आहार पाये जाते हैं।

(1881) नारकी जीवों का आहार कितने प्रकार का कहा गया है ?

उत्तर : चार प्रकार का -

(1) **अंगारोपम** - अल्पकालीन दाह वाला।

(2) **मुर्मरोपम** - दीर्घकालीन दाह वाला।

(3) **शीतल** - अल्प शीत वेदना उत्पन्न करने वाला।

(4) **हिमशीतल** - अत्याधिक शीत वेदना उत्पन्न करने वाला।

(1882) तिर्यंच प्राणियों का आहार कितने प्रकार का कहा गया है ?

उत्तर : चार प्रकार का -

(1) **कंकोपम** - सरलता से खाने एवं पचाने योग्य आहार।

(2) **विलोपम** - बिना चबाये निगला जाने वाला आहार।

(3) **पाण-मांसोपम** - चाण्डाल के मांस के समान घृणित आहार ।

(4) **पुत्र-मांसोपम** - पुत्र के मांस के समान निन्द्य आहार ।

(1883) देवों का आहार कितने प्रकार का कहा गया है ?

उत्तर : चार प्रकार का -

(1) उत्तम वर्ण वाला (2) उत्तम गंध वाला

(3) उत्तम रस वाला (4) उत्तम स्पर्श वाला

(1884) मनुष्यों का आहार कितने प्रकार का कहा गया है ?

उत्तर : चार प्रकार का -

(1) अशन आहार (2) पान आहार

(3) खादिम आहार (4) स्वादिम आहार ।

(1885) अशन आहार किसे कहते है ?

उत्तर : जो आहार दीर्घकाल तक क्षुधा को शांत करने में सक्षम हो, उसे अशन आहार कहते है ।

(1886) पान आहार किसे कहते है ?

उत्तर : जो पीया जाता है, उसे पान आहार कहते है ।

(1887) खादिम आहार किसे कहते है ?

उत्तर : जो भोज्य पदार्थ कुछ समय के लिये भूख का उपशमन करने में समर्थ हो, उसे खादिम आहार कहते है ।

(1888) स्वादिम आहार किसे कहते है ?

उत्तर : जिसका स्वाद लिया जाता है, उसे स्वादिम आहार कहते है ।

(1889) पुरुष, स्त्री एवं नपुंसक का उत्कृष्टतः कितना कवलाहार होता है ?

उत्तर : पुरुष का 32 कवल प्रमाण, स्त्री का 28 कवल प्रमाण तथा नपुंसक का 24 कवल प्रमाण आहार कहा गया है ।

(1890) जीव कितनी दिशाओं से आहार ग्रहण करता है ?

उत्तर : छह दिशाओं से - (1) पूर्व (2) पश्चिम (3) उत्तर (4) दक्षिण (5) उर्ध्व (6) अधो ।

(1891) कौन से जीव छह दिशाओं से आहार ग्रहण करते हैं ?

उत्तर : देव, नारकी, गर्भज तिर्यंच, गर्भज मनुष्य और विकलेन्द्रिय छह दिशाओं से आहार ग्रहण करते हैं ।

(1892) कौन से जीव पांच दिशाओं से आहार ग्रहण करते हैं ?

उत्तर : लोक के अन्त भाग के किसी एक दिशा में स्थित सूक्ष्म पृथ्वीकायादि के जीव एक दिशा से अलोक को स्पर्श करने से पाँच दिशाओं से आहार ग्रहण करते हैं ।

(1893) कौन से जीव चार दिशाओं से आहार ग्रहण करते हैं ?

उत्तर : लोक के उर्ध्व या अधो भाग की परिधि सीमा में स्थित सूक्ष्म पृथ्वीकायादि के जीव दो दिशाओं से अलोक को स्पर्श करने से चार दिशी आहार ग्रहण करते हैं ।

(1894) कौन से जीव तीन दिशाओं से आहार ग्रहण करते हैं ?

उत्तर : लोक के परिधि सीमा के ऊपरी या नीचे के कोने (विदिशा) में स्थित सूक्ष्म पृथ्वीकायादि के जीव तीन दिशा से अलोक को स्पर्श करने से तीन दिशी आहार ग्रहण करते हैं ।

(1895) स्थावरों में कितनी दिशाओं से आहार ग्रहण होता है ?

उत्तर : स्थावरों में छह, पाँच, चार, तीन दिशाओं से आहार ग्रहण होता है ।

(1896) त्रसकायिक जीव कितनी दिशाओं से आहार लेते हैं ?

उत्तर : छहों दिशाओं से ।

(1897) पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय एवं वनस्पतिकाय, ये पाचों एकेन्द्रिय जीव कितनी दिशाओं से आहार ग्रहण

करते हैं ?

उत्तर : तीन, चार, पांच अथवा छह दिशाओं से ।

(1898) पंचेन्द्रिय कितनी दिशाओं से आहार लेते हैं ?

उत्तर : छहों दिशाओं से ।

(1899) संमूर्च्छिम जीव कितनी दिशाओं से आहार लेते हैं ?

उत्तर : तीन, चार, पांच अथवा छह दिशाओं से ।

(1900) गर्भज एवं औपपातिक जीव कितनी दिशाओं से आहार लेते हैं ?

उत्तर : छहो दिशाओं से ।

(1901) प्रत्येक एवं साधारण जीव कितनी दिशाओं से आहार लेते हैं ?

उत्तर : तीन, चार, पांच तथा छह दिशाओं से ।

(1902) सूक्ष्म तथा बादर जीव कितनी दिशाओं से आहार लेते हैं ?

उत्तर : तीन, चार, पांच तथा छह दिशाओं से ।

(1903) पुरुष तथा स्त्री वेदी जीव कितनी दिशाओं से आहार लेते हैं ?

उत्तर : छह दिशाओं से ।

(1904) नपुंसक वेदी जीव कितनी दिशाओं से आहार लेते हैं ?

उत्तर : तीन, चार, पांच अथवा छह दिशाओं से ।

(1905) तीनों लोकों में कितनी दिशाओं का आहार होता है ?

उत्तर : तीन, चार, पांच अथवा छह दिशाओं से ।

(1906) कितने दण्डकों में तीन, चार या पांच दिशाओं का आहार पाया जाता है ?

उत्तर : पांच दण्डकों में (पृथ्वीकायादि पांच स्थावर)।

(1907) कितने दण्डकों में छह दिशाओं का आहार पाया जाता है ?

उत्तर : समस्त चौबीस दण्डकों में।

(1908) संज्ञी जीव कितनी दिशाओं से आहार लेते हैं ?

उत्तर : छहों दिशाओं से।

(1909) असंज्ञी जीव कितनी दिशाओं से आहार लेते हैं ?

उत्तर : तीन, चार, पांच अथवा छह दिशाओं से।

(1910) भव्य और अभव्य जीव कितनी दिशाओं से आहार लेते हैं ?

उत्तर : तीन, चार, पांच अथवा छह दिशाओं से।

(1911) कितने गुणस्थानकों में आहार-ग्रहण पाया जाता है ?

उत्तर : तेरह गुणस्थानकों में (एक से तेरह)।

(1912) कौन-कौनसे जीव अनाहारी होते हैं ?

उत्तर : (1) विग्रह गति को प्राप्त जीव - वे जीव जो विषम श्रेणी को प्राप्त हैं, वे उत्कृष्टतः दो समय तक अनाहारी होते हैं।

(2) केवली समुद्घात के 3रे, 4थे तथा 5वें समय में जीव अनाहारी होता है।

(3) अयोगी गुणस्थानकवर्ती जीव।

(4) सिद्ध गति वाले जीव।

(1913) सिद्ध कितने समय तक अनाहारी रहते हैं ?

उत्तर : अनन्तकाल तक।

(1914) केवली कितने समय तक अनाहारी कहे गये हैं ?

उत्तर : (i) सयोगी केवली अजघन्यतः अनुत्कृष्टतः तीन समय तक।

(ii) अयोगी केवली अन्तर्मुहूर्त तक।

(1915) छद्मस्थ कितने समय तक अनाहारी कहा गया है ?

उत्तर : जघन्यतः - एक समय तक ।

उत्कृष्टतः - चार समय तक (भगवती सूत्र) ।

दो समय तक (जीवाभिगम सूत्र वृत्ति) ।

(1916) केवली कितने समय तक आहारी कहे गये हैं ?

उत्तर : जघन्यतः - अन्तर्मुहूर्त ।

उत्कृष्टतः - देशोणपूर्वकोटि ।

(1917) छद्मस्थ कितने समय तक आहारी कहे गये हैं ?

उत्तर : जघन्यतः - दो समय कम क्षुल्लक भव ।.

उत्कृष्टतः - अनन्तकाल ।

(1918) एकेन्द्रिय जीवों को आहार की इच्छा कितने समय में होती है ?

उत्तर : उन्हें निरन्तर आहार की इच्छा होती है ।

(1919) विकलेन्द्रिय जीवों को आहार की इच्छा कितने समय में होती है ?

उत्तर : जघन्यतः - एक समय में ।

उत्कृष्टतः - अन्तर्मुहूर्त में ।

(1920) पंचेन्द्रिय तिर्यंचों को आहार की इच्छा कितने समय में होती है ?

उत्तर : जघन्यतः - एक समय में ।

उत्कृष्टतः - दो अहोरात्रि में ।

(1921) मनुष्य को आहार की इच्छा कितने समय में होती है ?

उत्तर : जघन्यतः - एक समय में ।

उत्कृष्टतः - तीन अहोरात्रि में ।

(1922) तपाचार से युक्त मनुष्य को आहार की इच्छा उत्कृष्टतः कितने समय तक नहीं होती है ?

उत्तर : ऋषभदेव प्रभु के शासन में एक वर्ष तक तथा महावीर स्वामी के शासन में छह माह तक आहार की इच्छा नहीं होती है ।

(1923) नारकी जीवों को कितने समय में आहार की इच्छा होती है ?

उत्तर : जघन्यतः - एक समय ।

उत्कृष्टतः - अन्तर्मुहूर्त ।

(1924) देवों को कितने समय में आहार करने की इच्छा होती है ?

उत्तर : **उत्कृष्टतः आहार-इच्छा इस प्रकार है -**

(1) जिन देवों का आयुष्य दस हजार वर्ष का है, उन्हें एक-एक दिन के अन्तराल में आहार करने की इच्छा होती है ।

(2) जिन देवों का आयुष्य पल्योपम प्रमाण है, उन्हें दिवस पृथक्त्व (दो दिन से नौ दिन) में आहार लेने की इच्छा होती है ।

(3) जिन देवों का आयुष्य जितने सागरोपम का है, उन्हें उतने हजार वर्षों में आहार लेने की इच्छा होती है ।

समस्त देवों को जघन्यतः एक समय में आहार करने की इच्छा होती है ।

(1925) व्यंतर तथा ज्योतिष्क देवों को आहार की इच्छा कितने समय में होती है ?

उत्तर : अजघन्यतः अनुत्कृष्टतः दिवस पृथक्त्व (दो दिन से लेकर नौ दिन) में होती है ।

(1926) भवनपति देवों को आहार की इच्छा कितने समय में होती है ?

उत्तर : (1) जो असुरकुमार दस हजार वर्षायु वाले हैं, उनको बीच-बीच में एक-एक दिन छोड़कर आहार की इच्छा होती है ।

(2) साधिक सागरोपम वाले असुरकुमारों को आहार की इच्छा साधिक सहस्र वर्षों में होती है ।

(3) पल्योपम के असंख्यातवें भाग तथा उससे अधिकायु वाले अर्थात् नागकुमारादि भवनपति देवों को आहार की इच्छा दिवस पृथक्त्व (दो दिन से नौ दिन) में होती है ।

(1927) सौधर्म कल्प के देवों को आहार की इच्छा कितने समय में होती है ?

उत्तर : जघन्यतः - दिवस पृथक्त्व में ।

उत्कृष्टतः - दो हजार वर्ष में ।

(1928) ईशान कल्प के देवों को आहार की इच्छा कितने समय में होती है ?

उत्तर : जघन्यतः - साधिक दिवस पृथक्त्व में ।

उत्कृष्टतः - साधिक दो हजार वर्ष में ।

(1929) सानत्कुमार कल्प के देवों को आहार की इच्छा कितने समय में होती है ?

उत्तर : जघन्यतः - दो हजार वर्ष में ।

उत्कृष्टतः - सात हजार वर्ष में ।

(1930) माहेन्द्र कल्प के देवों को आहार की इच्छा कितने समय में होती है ?

उत्तर : जघन्यतः - साधिक दो हजार वर्ष में ।

उत्कृष्टतः - साधिक सात हजार वर्ष में ।

(1931) ब्रह्मलोक कल्प के देवों को आहार की इच्छा कितने समय में होती है ?

उत्तर : जघन्यतः - सात हजार वर्ष में ।

उत्कृष्टतः - दस हजार वर्ष में ।

(1932) लान्तक कल्प के देवों को आहार की इच्छा कितने समय में होती है ?

उत्तर : जघन्यतः - दस हजार वर्ष में ।

उत्कृष्टतः - चौदह हजार वर्ष में ।

(1933) महाशुक्र कल्प के देवों को आहार की इच्छा कितने समय में होती है ?

उत्तर : जघन्यतः - चौदह हजार वर्ष में ।

उत्कृष्टतः - सतरह हजार वर्ष में ।

(1934) सहस्रार कल्प के देवों को आहार की इच्छा कितने समय में होती है ?

उत्तर : जघन्यतः - सतरह हजार वर्ष में ।

उत्कृष्टतः -अठारह हजार वर्ष में ।

(1935) आनत कल्प के देवों को आहार की इच्छा कितने समय में होती है ?

उत्तर : जघन्यतः - अठारह हजार वर्ष में ।

उत्कृष्टतः - उन्नीस हजार वर्ष में ।

(1936) प्राणत कल्प के देवों को आहार की इच्छा कितने समय में होती है ?

उत्तर : जघन्यतः - उन्नीस हजार वर्ष में ।

उत्कृष्टतः - बीस हजार वर्ष में ।

(1937) आरण कल्प के देवों को आहार की इच्छा कितने समय में होती है ?

उत्तर : जघन्यतः - बीस हजार वर्ष में ।

उत्कृष्टतः - इक्कीस हजार वर्ष में ।

(1938) अच्युत कल्प के देवों को आहार की इच्छा कितने समय में होती है ?

उत्तर : जघन्यतः - इक्कीस हजार वर्ष में ।

उत्कृष्टतः - बावीस हजार वर्ष में ।

(1939) नवग्रैवेयक के देवों को आहार की इच्छा कितने समय में होती है ?

उत्तर :

क्रमांक	नाम	जघन्य	उत्कृष्ट
1	नवग्रैवेयक	22 हजार वर्ष	23 हजार वर्ष
2	नवग्रैवेयक	23 हजार वर्ष	24 हजार वर्ष
3	नवग्रैवेयक	24 हजार वर्ष	25 हजार वर्ष
4	नवग्रैवेयक	25 हजार वर्ष	26 हजार वर्ष
5	नवग्रैवेयक	26 हजार वर्ष	27 हजार वर्ष
6	नवग्रैवेयक	27 हजार वर्ष	28 हजार वर्ष
7	नवग्रैवेयक	28 हजार वर्ष	29 हजार वर्ष
8	नवग्रैवेयक	29 हजार वर्ष	30 हजार वर्ष
9	नवग्रैवेयक	30 हजार वर्ष	31 हजार वर्ष

(1940) पांच अनुत्तर विमानों के देवों को आहार की इच्छा कितने समय में होती है ?

उत्तर : 1 - 4 **विजयादि चार अनुत्तर विमानों में -**

जघन्यतः - इकतीस हजार वर्ष में ।

उत्कृष्टतः - तैंतीस हजार वर्ष में ।

5 **सर्वार्थ सिद्ध विमान में -**

अजघन्यतः - अनुत्कृष्टतः - तैंतीस हजार वर्ष में ।

एकविंशतितम संज्ञी द्वार का विवेचन

(1941) संज्ञा किसे कहते है ?

उत्तर : जिस विशेष ज्ञान के कारण इष्ट में प्रवृत्ति और अनिष्ट से निवृत्ति होती है, उसे संज्ञा कहते है ।

प्रथम दो संज्ञाओं में व्यवहार की अपेक्षा से इष्ट (प्रिय) में प्रवृत्ति और अनिष्ट (अप्रिय) में निवृत्ति होती है । दृष्टिवादोपदेशिकी संज्ञा में आत्म-सुख की अपेक्षा से प्रवृत्ति और निवृत्ति होती है ।

(1942) संज्ञा कितने प्रकार की होती है ?

उत्तर : **तीन प्रकार की** - (1) हेतुवादोपदेशिकी संज्ञा (2) दीर्घकालिकी संज्ञा (3) दृष्टिवादोपदेशिकी संज्ञा ।

(1943) हेतुवादोपदेशिकी संज्ञा किसे कहते है ?

उत्तर : जिस संज्ञा में वर्तमान के संदर्भ में ही चिन्तन हो, वर्तमानकालीन दुःख-मुक्ति और सुख-प्राप्ति का विचार हो, उसे हेतुवादोपदेशिकी संज्ञा कहते है ।

(1944) हेतुवादोपदेशिकी संज्ञा का उदाहरण दीजिये ।

उत्तर : जैसे विकलेन्द्रिय (चींटी इत्यादि) जीवों को अग्नि आदि का उपद्रव होने पर वे वहाँ से हटकर अन्य स्थान पर जाकर सुखानुभूति करते हैं पर वे इतना नहीं सोचते हैं कि पूर्व में यहाँ अग्नि आदि का उपद्रव हुआ था अथवा भविष्य में हो सकता है । अतः हेतुवादोपदेशिकी संज्ञा में वर्तमान की अपेक्षा से वर्तन-निवर्तन होता है ।

(1945) दीर्घकालिकी संज्ञा किसे कहते है ?

उत्तर : जिस संज्ञा में भूत, वर्तमान एवं भविष्य, इन तीनों कालों का

चिन्तन होता है, उसे दीर्घकालिकी संज्ञा कहते है ।

(1946) दीर्घकालिकी संज्ञा का अन्य नाम क्या है ?

उत्तर : संप्रसारण संज्ञा ।

(1947) दीर्घकालिकी संज्ञा किन जीवों में पायी जाती है ?

उत्तर : मनोबल प्राण वाले जीवों में ।

(1948) दृष्टिवादोपदेशिकी संज्ञा किसे कहते है ?

उत्तर : जिस संज्ञा में आत्मा के हित-अहित, सुगति-दुर्गति का विचार होता है, उसे दृष्टिवादोपदेशिकी संज्ञा कहते है ।

(1949) दृष्टिवादोपदेशिकी संज्ञा किन जीवों में पायी जाती है ?

उत्तर : पंचेन्द्रिय गर्भज मनुष्यों में ।

(1950) देव, नारकी एवं गर्भज तिर्यंच में सम्यक्त्व पाया जाता है, अतः वे हिताहित का विचार कर सकते हैं तो फिर उनमें दृष्टिवादोपदेशिकी संज्ञा क्यों नहीं कही गयी ?

उत्तर : सम्यक्त्व की अपेक्षा से चारों गतियों में दृष्टिवादोपदेशिकी संज्ञा पायी जाती है, परन्तु प्रकरणकार ने देव, नारकी तथा गर्भज तिर्यंच में दृष्टिवादोपदेशिकी संज्ञा नहीं कहने के निम्न कारण प्रस्तुत किये हैं -

1 देव और नारकी में सम्यक्त्व के कारण हेय-ज्ञेय तथा उपादेय का ज्ञान होने पर भी वे तदनुरूप स्वीकरण एवं त्याग नहीं कर पाते है, अतः उनमें दृष्टिवादोपदेशिकी संज्ञा नहीं कही गयी है ।

2 दण्डक प्रकरण की वृत्ति तथा अवचूरि में पंचेन्द्रिय तिर्यंच में दृष्टिवादोपदेशिकी संज्ञा कही है, परन्तु अल्प प्रमाण में ही होने से उनमें इस संज्ञा का अभाव कहा है ।

3 सम्यक्त्वी गर्भज मनुष्य ही हिताहित का विज्ञान प्राप्त कर

सर्वविरति चारित्र ग्रहण कर सकते हैं और द्वादशांगी का ज्ञान प्राप्त कर आत्म कल्याण-मोक्षमार्ग की साधना कर सकते हैं। अतः उनमें दृष्टिवादोपदेशिकी संज्ञा कही गयी है। देव, नारकी एवं गर्भज तिर्यंच उसी भव में सर्वविरति ग्रहण कर मोक्ष प्राप्त करने में असमर्थ है, अतः उनमें दृष्टिवादोपदेशिकी संज्ञा का अभाव कहा गया है।

(1951) पृथ्वीकाय-अप्काय-तेउकाय-वायुकाय-वनस्पतिकाय में कितनी संज्ञा पायी जाती हैं ?

उत्तर : उनमें एक भी संज्ञा नहीं होती है।

(1952) एकेन्द्रिय तथा विकलेन्द्रिय में पूर्वोक्त गाथाओं में आहारादि दस संज्ञा कही गयी हैं और प्रस्तुत गाथा में विकलेन्द्रिय में हेतुवादोपदेशिकी संज्ञा कही है तो फिर उन्हें असंज्ञी क्यों कहा गया ?

उत्तर : 1 एकेन्द्रिय में आहारादि दस संज्ञा होने पर भी वह अस्पष्ट होती हैं, अतः उन्हें संज्ञी नहीं कहा जा सकता।

2 विकलेन्द्रिय में आहारादि दस संज्ञाएँ तथा अस्पष्ट बोध वाली हेतुवादोपदेशिकी संज्ञा होने से वैसे ही संज्ञी नहीं कहा जा सकता जैसे अल्प बुद्धि वाले को बुद्धिमान एवं अल्प धन वाले को धनवान नहीं कहा जाता हैं।

3 एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय जीव इन संज्ञाओं के संज्ञी नहीं कहे जाते हैं। मनोबल प्राण वाले जीव संज्ञी कहलाते हैं पर उनमें मनोबल का अभाव होने से वे संज्ञी नहीं हैं।

(1953) गर्भज तिर्यंच, देव तथा नारकी में कितनी संज्ञाएँ पायी जाती हैं ?

उत्तर : एक – दीर्घकालिकी संज्ञा ।

(1954) गर्भज मनुष्य में कितनी संज्ञाएँ पायी जाती हैं ?

उत्तर : **दो संज्ञा** – (1) दीर्घकालिकी संज्ञा (2) दृष्टिवादोपदेशिकी संज्ञा ।

(1955) तीन काल का विचार करने वाले देवादि में एक दीर्घकालिकी कही गयी है परन्तु उनमें वर्तमान काल विषयक हेतुवादोपदेशिकी संज्ञा भी हो सकती है तो फिर उनमें दो संज्ञाएँ क्यों नहीं कही गयी ?

उत्तर : जिस प्रकार करोड़पति के पास लाख रुपये होने पर भी उसे लखपति नहीं कहा जाता है क्योंकि करोड़पति में लखपति का समावेश स्वतः हो जाता है ।

जिस प्रकार एम. कॉम. उत्तीर्ण को बी. कॉम. उत्तीर्ण कहने की जरूरत नहीं है क्योंकि एम. कॉम. में बी. कॉम., सीनियर आदि स्वतः समाविष्ट हो जाते हैं ।

जिस प्रकार केवलज्ञान में मतिज्ञानादि ज्ञान स्वतः समाहित हो जाते हैं, अतः केवलज्ञानी को मतिज्ञानी आदि कहने की आवश्यकता नहीं है ।

ठीक इसी न्याय से दीर्घकालिकी संज्ञा में हेतुवादोपदेशिकी संज्ञा का समावेश हो जाता है, अतः अलग से उसके कथन की आवश्यकता नहीं है ।

(1956) मनुष्य गति में कितनी संज्ञा पायी जाती है ?

उत्तर : **तीन संज्ञा** – 1 दीर्घकालिकी 2 दृष्टिवादोपदेशिकी 3 असंज्ञी मनुष्यों को हेतुवादोपदेशिकी संज्ञा होती है ।

(1957) अकर्मभूमिज तथा अन्तर्द्वीपज मनुष्यों में कितनी संज्ञा पायी जाती हैं ?

उत्तर : (i) सम्यक्त्व की अपेक्षा से दृष्टिवादोपदेशिकी संज्ञा की व्याख्या की जाये तो तीनों संज्ञा पायी जाती है ।

(ii) सर्वविरति की अपेक्षा से दृष्टिवादोपदेशिकी संज्ञा की व्याख्या की जाये तो विरति का अभाव होने से हेतुवादोपदेशिकी एवं दीर्घकालिकी संज्ञा पायी जाती है ।

(1958) तिर्यंच गति में कितनी संज्ञा पायी जाती है ?

उत्तर : **दो संज्ञा** - 1 हेतुवादोपदेशिकी संज्ञा 2 दीर्घकालिकी संज्ञा ।

(1959) देव तथा नरक गति में कितनी संज्ञा पायी जाती है ?

उत्तर : एक संज्ञा - दीर्घकालिकी ।

(1960) एकेन्द्रिय में कितनी संज्ञा पायी जाती है ?

उत्तर : एकेन्द्रिय संज्ञा रहित होते हैं ।

(1961) द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय में कितनी संज्ञा पायी जाती है ?

उत्तर : **एक** - हेतुवादोपदेशिकी संज्ञा ।

(1962) पंचेन्द्रिय जीवों में कितनी संज्ञा पायी जाती है ?

उत्तर : **तीन संज्ञा** - 1 हेतुवादोपदेशिकी 2 दीर्घकालिकी 3 दृष्टिवादोपदेशिकी ।

(1963) स्थावर में कितनी संज्ञा पायी जाती है ?

उत्तर : स्थावर संज्ञा रहित होते हैं ।

(1964) त्रस में कितनी संज्ञा पायी जाती है ?

उत्तर : तीनों संज्ञा पायी जाती हैं ।

(1965) पुरुष तथा स्त्री वेद में कितनी संज्ञा पायी जाती है ?

उत्तर : **दो संज्ञा** - 1 दीर्घकालिकी 2 दृष्टिवादोपदेशिकी ।

(1966) नपुंसक वेद में कितनी संज्ञा पायी जाती है ?

उत्तर : तीनों संज्ञा पायी जाती हैं ।

(1967) भव्य जीवों में कितनी संज्ञा पायी जाती है ?

उत्तर : तीनों संज्ञा पायी जाती हैं ।

(1968) अभव्य जीवों में कितनी संज्ञा पायी जाती है ?

उत्तर : **दो संज्ञा** - 1 हेतुवादोपदेशिकी 2 दीर्घकालिकी ।

(1969) संज्ञी जीवों में कितनी संज्ञा पायी जाती है ?

उत्तर : **दो संज्ञा** - 1 दीर्घकालिकी 2 दृष्टिवादोपदेशिकी ।

(1970) असंज्ञी जीवों में कितनी संज्ञा पायी जाती है ?

उत्तर : **एक** - हेतुवादोपदेशिकी संज्ञा ।

(1971) तीनों लोक में कितनी संज्ञा पायी जाती है ?

उत्तर : तीन-तीन संज्ञा पायी जाती हैं ।

(1972) हेतुवादोपदेशिकी संज्ञा कितने गुणस्थानकों में पायी जाती है ?

उत्तर : प्रथम दो गुणस्थानकों में ।

(1973) दीर्घकालिकी संज्ञा कितने गुणस्थानकों में पायी जाती है ?

उत्तर : पहले से बारहवें गुणस्थानक तक ।

(1974) दृष्टिवादोपदेशिकी संज्ञा कितने गुणस्थानकों में पायी जाती है ?

उत्तर : यह संज्ञा सम्यक्त्वी जीवों में ज्ञानावरणीय आदि कर्मों के क्षयोपशम से प्राप्त होती है अतः 4थे से 12वे गुणस्थानक तक पायी जाती है । 13वें तथा 14वें गुणस्थानक में केवलज्ञान होने से वहाँ नहीं है ।

(1975) एक संज्ञा कितने दण्डकों में पायी जाती है ?

उत्तर : अठारह दण्डकों में (13 देव दण्डक, नारकी, विकलेन्द्रिय त्रिक) ।

(1976) दो संज्ञा कितने दण्डकों में पायी जाती है ?

उत्तर : एक दण्डक में (गर्भज मनुष्य) ।

(1977) तीन संज्ञा कितने दण्डकों में पायी जाती है ?

उत्तर : एक भी दण्डक में तीन संज्ञा नहीं पायी जाती है ।

(1978) हेतुवादोपदेशिकी संज्ञा कितने दण्डकों में पायी जाती है ?

उत्तर : **तीन दण्डकों में** – विकलेन्द्रिय त्रिक ।

(1979) दीर्घकालिकी संज्ञा कितने दण्डकों में पायी जाती है ?

उत्तर : **सोलह दण्डकों में** – 13 देव, नारकी, गर्भज तिर्यंच – मनुष्य ।

(1980) दृष्टिवादोपदेशिकी संज्ञा कितने दण्डकों में पायी जाती है ?

उत्तर : **एक दण्डक में** – गर्भज मनुष्य के ।

(1981) प्रत्येक जीवों में कितनी संज्ञा पायी जाती है ?

उत्तर : तीन संज्ञा ।

(1982) साधारण जीवों में कितनी संज्ञा पायी जाती है ?

उत्तर : असंज्ञी होने से एक भी संज्ञा नहीं होती है ।

(1983) मिथ्यात्वी जीवों में कितनी संज्ञा पायी जाती है ?

उत्तर : **दो संज्ञा** – (1) हेतुवादोपदेशिकी (2) दीर्घकालिकी ।

(1984) सम्यक्त्वी जीवों में कितनी संज्ञा पायी जाती है ?

उत्तर : सम्यक्त्वी में तीनों संज्ञा होती हैं, जैसे करोड़पति है वह, लखपति-सहस्रपति भी है । उस कारण जिनको दृष्टिवादोपदेशिकी संज्ञा है, उनमें वर्तमान आदि तीनों कालों की विचार-क्षमता होने से तीनों संज्ञा होती हैं ।

(1985) पर्याप्त अवस्था में कितनी संज्ञा पायी जाती है ?

उत्तर : तीन संज्ञा ।

(1986) अपर्याप्त अवस्था में कितनी संज्ञा पायी जाती है ?

उत्तर : (i) हेय-ज्ञेय-उपादेय की अपेक्षा से दृष्टिवादोपदेशिकी संज्ञा अपर्याप्त अवस्था में नहीं होती है ।

(ii) सम्यक्त्वी जीवों में दृष्टिवादोपदेशिकी संज्ञा होती है । उस व्याख्यानुसार अपर्याप्त अवस्था में यह संज्ञा मिलने से अपर्याप्त अवस्था में तीनों संज्ञा पायी जाती हैं ।

द्वाविंशतितम गति द्वार का विवेचन

(1987) गति किसे कहते है ?

उत्तर : जीव मृत्यु को प्राप्त कर जिस दण्डक में उत्पन्न होता है, उसे गति कहते है ।

(1988) गतियाँ कितने प्रकार की कही गयी हैं ?

उत्तर : चार प्रकार की - (1) मनुष्य गति (2) देव गति (3) तिर्यंच गति (4) नरक गति ।

(1989) मनुष्य गति किसे कहते है ?

उत्तर : जिस गति में विवेक एवं सर्वविरति रूप धर्म की प्राप्ति होती है एवं मोक्ष गति मिलती है, उस भव में जाने को मनुष्य गति कहते है ।

(1990) देव गति किसे कहते है ?

उत्तर : सुख, संपत्ति, साधन, शक्ति आदि की अधिकता एवं दुःख की अल्पता से युक्त भव में जाने को देव गति कहते है ।

(1991) तिर्यंच गति किसे कहते है ?

उत्तर : देशविरति धर्म एवं विशेष अविवेक से युक्त भव में जाने को तिर्यंच गति कहते है ।

(1992) नरक गति किसे कहते है ?

उत्तर : अतिशय दुःख से परिपूर्ण भव में जाने को नरक गति कहते है ।

(1993) मनुष्य गति के जीव कितनी गतियों में जाते हैं ?

उत्तर : चारों गतियों में ।

(1994) देव गति के जीव कितनी गतियों में जाते हैं ?

उत्तर : दो - मनुष्य और तिर्यंच गति में ।

(1995) तिर्यंच गति के जीव कितनी गतियों में जाते हैं ?

उत्तर : चारों गतियों में ।

(1996) नरक गति के जीव कितनी गतियों में जाते हैं ?

उत्तर : **दो गतियों में** - मनुष्य और तिर्यंच गति में ।

(1997) एकेन्द्रिय जाति के जीव कितनी गतियों में जाते हैं ?

उत्तर : **दो गतियों में** - मनुष्य एवं तिर्यंच गति में ।

(1998) एकेन्द्रिय जाति के जीव कितने दण्डकों में जाते है ?

उत्तर : **दस दण्डकों में** - (1-5) स्थावरपंचक (6-8) विकलेन्द्रिय त्रिक (9-10) गर्भज मनुष्य-तिर्यंच ।

(1999) विकलेन्द्रिय जाति के जीव कितनी गतियों में जाते हैं ?

उत्तर : **दो गतियों में** - मनुष्य तथा तिर्यंच गति में ।

(2000) पंचेन्द्रिय जाति के जीव कितनी गतियों में जाते हैं ?

उत्तर : चारों गतियों में ।

(2001) पंचेन्द्रिय कितने दण्डकों में जाते हैं ?

उत्तर : चौबीस दण्डकों में ।

(2002) पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय के जीव कितनी गतियों में जाते हैं ?

उत्तर : **दो गतियों में** - मनुष्य तथा तिर्यंच गति में ।

(2003) तेउकाय और वायुकाय के जीव कितनी गतियों में जाते हैं ?

उत्तर : **एक** - तिर्यंच गति में ।

(2004) स्थावर कितनी गतियों में जाते हैं ?

उत्तर : **दो गतियों में** - (1) मनुष्य गति (2) तिर्यंच गति ।

(2005) स्थावर कितने दण्डकों में जाते हैं ?

उत्तर : एकेन्द्रियवत दस दण्डकों में ।

(2006) त्रसकाय के जीव कितनी गतियों में जाते हैं ?

उत्तर : चारों गतियों में ।

(2007) त्रस कितने दण्डकों में जाते हैं ?

उत्तर : चौबीस दण्डकों में ।

(2008) किस दण्डक के जीवों की गति एवं आगति समान है ?

उत्तर : एक गर्भज तिर्यंच की । इस दण्डक जीव चौबीस दण्डकों में जाते हैं तथा चौबीस दण्डकों के जीव उस दण्डक में आते हैं ।

(2009) कितनी गति के जीव पुनः उसी गति में उत्पन्न नहीं होते हैं ?

उत्तर : दो - नरक एवं देव गति के ।

(2010) वह कौनसा दण्डक है जिसके जीव जिन दो दण्डकों में जाते हैं, उन्हीं दो दण्डकों के जीव उसमें आते हैं ?

उत्तर : नारकी का । नारकी के जीव गर्भज तिर्यंच एवं गर्भज मनुष्य में जाते हैं तथा गर्भज तिर्यंच-मनुष्य के जीव ही नरक में आते हैं ।

(2011) वे कौनसे तीन दण्डक हैं जो जिन दस दण्डकों में जाते हैं, वे ही दस दण्डकवर्ती जीव उनमें उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर : विकलेन्द्रिय त्रिक । ये स्थावर पंचक, विकलेन्द्रिय त्रिक, गर्भज मनुष्य-तिर्यंच में जाते हैं और स्थावर आदि दस दण्डक, विकलेन्द्रिय में उत्पन्न होते हैं ।

(2012) पृथ्वीकाय, अप्काय एवं वनस्पतिकाय के जीव कितने दण्डकों में जाते हैं ?

उत्तर : **दस दण्डकों में** - 1-5 पांच पृथ्वीकायादि स्थावर, 6-8 विकलेन्द्रिय त्रिक, 9 गर्भज तिर्यंच, 10 गर्भज मनुष्य ।

(2013) पृथ्वी-अप् एवं वनस्पतिकाय के जीव कितने जीव-भेदों में उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर : जीव के 563 भेदों में से 179 भेदों में जाते हैं -

संमूर्च्छिम अपर्याप्त मनुष्य के	- 101 भेद
कर्मभूमिज गर्भज पर्याप्ता-अपर्याप्ता मनुष्य के	- 30 भेद
पृथ्वीकायादि स्थावर पंचक के	- 22 भेद

विकलेन्द्रिय त्रिक के	- 6 भेद
पंचेन्द्रिय तिर्यंच के	- 20 भेद
कुल	-179 भेद

(2014) तेउकाय एवं वायुकाय के जीव कितने दण्डकों में जाते हैं ?

उत्तर : **नौ दण्डकों में** - पांच स्थावर, विकलेन्द्रिय त्रिक, गर्भज तिर्यंच।

(2015) तेउकाय एवं वायुकाय के जीव कितने भेदों में गति पाते हैं ?

उत्तर :

स्थावर के	- 22 भेद
विकलेन्द्रिय के	- 6 भेद
पंचेन्द्रिय तिर्यंच के	- 20 भेद
कुल	- 48 भेद

(2016) विकलेन्द्रिय त्रिक कितने दण्डकों में जाते हैं ?

उत्तर : **दस दण्डकों में** - पांच स्थावर, विकलेन्द्रिय त्रिक, गर्भज तिर्यंच एवं गर्भज मनुष्य।

(2017) विकलेन्द्रिय त्रिक के जीव कितने भेदों में गति पाते हैं ?

उत्तर :

संमूर्च्छिम अपर्याप्त मनुष्य के	-101 भेद
15 कर्मभूमिज पर्याप्त गर्भज मनुष्य के	- 15 भेद
15 कर्मभूमिज अपर्याप्त गर्भज मनुष्य के	- 15 भेद
पृथ्वीकायादि पांच स्थावर के	- 22 भेद
विकलेन्द्रिय त्रिक के	- 6 भेद
पंचेन्द्रिय तिर्यंच के	- 20 भेद
कुल	-179 भेद

(2018) गर्भज तिर्यंच के जीव कितने दण्डकों में जाते हैं ?

उत्तर : चौबीस दण्डकों में।

(2019) संज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय जलचर के जीव कितने भेदों में गति पाते हैं ?

उत्तर :	मनुष्य के	-303 भेद
	स्थावर के	- 22 भेद
	विकलेन्द्रिय त्रिक के	- 6 भेद
	पंचेन्द्रिय तिर्यंच के	- 20 भेद
	देव के	-162 भेद
	नारकी के	- 14 भेद
	कुल	-527 भेद

(i) दस भवनपति, आठ व्यंतर, आठ वाणव्यंतर, पंद्रह परमाधामी, दस तिर्यग्जृंभक, दस ज्योतिष्क, तीन किल्बिषिक, नव लोकान्तिक एवं आठ वैमानिक देव, इन देवों के पर्याप्ता तथा अपर्याप्ता की अपेक्षा से देव के 162 भेदों में जलचर की उत्पत्ति होती है ।

(ii) 9 वें देवलोक से सर्वार्थ सिद्ध विमान के पर्याप्त/अपर्याप्त भेदों में जलचर नहीं जाते हैं ।

(2020) संज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय उरपरिसर्प के जीव कितने भेदों में गति पाते हैं ?

उत्तर : जलचर की गति के उपरोक्त 527 भेदों में से छट्ठी एवं सातवीं नरक के नारकी के चार भेदों को छोड़कर 523 भेदों में गर्भज उरपरिसर्प की गति होती है ।

(2021) संज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय चतुष्पद के जीव कितने भेदों में गति पाते हैं ?

उत्तर : उरपरिसर्प की गति के उपरोक्त 523 भेदों में से पांचवीं नरक के नारकी के दो भेदों को छोड़कर 521 भेदों में गति होती है ।

(2022) संज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय खेचर के जीव कितने भेदों में गति पाते हैं ?

उत्तर : चतुष्पद की गति के उपरोक्त 521 भेदों में से चौथी नरक के

नारकी के दो भेदों को छोड़कर 519 भेदों में गति होती है ।

(2023) संज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय भुजपरिसर्प के जीव कितने भेदों में गति पाते हैं ?

उत्तर : खेचर की गति के उपरोक्त 519 भेदों में से तीसरी नरक के नारकी जीवों के दो भेदों को छोड़कर 517 भेदों में गति होती हैं ।

(2024) गर्भज मनुष्य कितने दण्डकों में जाते हैं ?

उत्तर : चौबीस दण्डकों में जाते हैं ।

(2025) पन्द्रह कर्मभूमिज संज्ञी पर्याप्त मनुष्यों के जीव कितने भेदों में गति पाते हैं ?

उत्तर : वे जीव राशि के समस्त 563 भेदों में जाते हैं ।

(2026) कर्मभूमिज मनुष्य कितनी गतियों में जाते हैं ?

उत्तर : चारों गतियों में ।

(2027) पन्द्रह कर्मभूमिज अपर्याप्ता मनुष्यों के जीव कितने भेदों में गति पाते हैं ?

उत्तर :

संमूर्च्छिम अपर्याप्ता मनुष्य के	-101 भेद
तिर्यंच के	- 48 भेद
15 कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों के	- 30 भेद
कुल	-179 भेद

(2028) अकर्मभूमिज तथा अन्तर्द्वीपज मनुष्य कितनी गतियों में जाते हैं ?

उत्तर : **एक गति में** – देव गति में ।

(2029) देवकुरु तथा उत्तरकुरु अकर्मभूमिज संज्ञी पर्याप्ता मनुष्यों के जीव कितने भेदों में गति पाते हैं ?

उत्तर :

परमाधामी देवों के	- 30 भेद
भवनपति देवों के	- 20 भेद

व्यंतर देवों के	- 16 भेद
वाणव्यंतर देवों के	- 16 भेद
तिर्यग्जृंभक देवों के	- 20 भेद
ज्योतिष्क देवों के	- 20 भेद
पहले-दूसरे देवलोक के	- 4 भेद
पहले किल्बिषिक के	- 2 भेद
कुल	-128 भेद

(2030) हरिवर्ष तथा रम्यक् क्षेत्र के अकर्मभूमिज गर्भज संज्ञी पर्याप्ता मनुष्यों के जीव कितने भेदों में गति पाते हैं ?

उत्तर : पूर्वोक्त 128 भेदों में गति होती है ।

(2031) हिमवंत-हिरण्यवंत क्षेत्र के अकर्मभूमिज गर्भज संज्ञी पर्याप्ता मनुष्यों के जीव कितने भेदों में गति पाते हैं ?

उत्तर : पूर्वोक्त 128 भेदों में से दूसरे देवलोक के पर्याप्ता एवं अपर्याप्ता के दो भेदों को छोड़कर 126 भेदों में गति होती है ।

(2032) तीस अकर्मभूमिज एवं छप्पन अन्तर्द्वीपज के गर्भज अपर्याप्ता मनुष्यों के जीव कितने भेदों में गति पाते हैं ?

उत्तर : युगलिक गर्भज मनुष्य (अकर्मभूमिज-अन्तर्द्वीपज) अपर्याप्त अवस्था में मृत्यु को प्राप्त नहीं होने से गति संभव नहीं है ।

(2033) छप्पन अन्तर्द्वीपज संज्ञी पर्याप्ता मनुष्यों के जीव कितने भेदों में गति पाते हैं ?

उत्तर :

परमाधामी देवों के	- 30 भेद
भवनपति देवों के	- 20 भेद
व्यंतर देवों के	- 16 भेद
वाणव्यंतर देवों के	- 16 भेद
तिर्यग्जृंभक देवों के	- 20 भेद
कुल	-102 भेद

(2034) बलदेव जीव के कितने भेदों में गति पाता है ?

उत्तर :	12 देवलोकों के	- 24 भेद
	9 ग्रैवेयक देवों के	- 18 भेद
	9 लोकान्तिक देवों के	- 18 भेद
	5 अनुत्तर वैमानिक देवों के	- 10 भेद
	कुल	- 70 भेद

(2035) वासुदेव की गति कितने भेदों में होती है ?

उत्तर : नरक के चौदह भेदों में वासुदेव की गति होती है ।

(2036) साधु के जीव कितने भेदों में गति पाते हैं ?

उत्तर :	बारह देवलोक के	- 24 भेद
	नव लोकान्तिक देवों के	- 18 भेद
	नव ग्रैवेयक देवों के	- 18 भेद
	पांच अनुत्तर देवों के	- 10 भेद
	कुल	- 70 भेद

(2037) श्रावक के जीव कितने भेदों में गति पाते हैं ?

उत्तर :	12 देवलोक के	- 24 भेद
	9 लोकान्तिक के	- 18 भेद
	कुल	- 42 भेद

(2038) सम्यक्दृष्टि वाले जीव कितने भेदों में गति पाते हैं ?

उत्तर :	15 कर्मभूमिज गर्भज मनुष्य के	- 30 भेद
	30 अकर्मभूमिज गर्भज मनुष्य के	- 60 भेद
	5 संज्ञी गर्भज पर्याप्ता पंचेन्द्रिय तिर्यंच के	- 10 भेद
	विकलेन्द्रिय अपर्याप्ता के	- 3 भेद
	असंज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय के	- 5 भेद
	6 नरक के	- 12 भेद

8 व्यंतर देव के	- 16 भेद
8 वाणव्यंतर देव के	- 16 भेद
10 भवनपति देव के	- 20 भेद
10 तिर्यग्जृंभक देव के	- 20 भेद
10 ज्योतिष्क देव के	- 20 भेद
12 देवलोक के	- 24 भेद
9 लोकान्तिक के	- 18 भेद
9 ग्रैवेयक के	- 18 भेद
5 अनुत्तर के	- 10 भेद
कुल	-282 भेद

ये भेद सिद्धान्तानुसार कहे गये हैं । कर्मग्रंथानुसार लब्धि पर्याप्ता पृथ्वी-अप्-वनस्पतिकाय, इन तीन भेदों में भी सम्यक्त्वी की गति होने से कुल 285 भेद होते हैं ।

(2039) मिथ्यादृष्टि वाले जीव कितने भेदों में गति पाते हैं ?

उत्तर : अनुत्तर विमान के 10 भेदों को छोड़कर शेष 553 भेदों में गति होती है ।

(2040) मांडलिक राजा के जीव कितने भेदों में गति पाते हैं ?

उत्तर : 563 भेदों में से नवग्रैवेयक और पांच अनुत्तर विमान, इनके 28 भेदों को छोड़कर शेष 535 भेदों में गति होती है ।

(2041) नारकी जीव कितने दण्डकों में जाते हैं ?

उत्तर : **दो दण्डकों में** - (1) गर्भज तिर्यंच (2) गर्भज मनुष्य ।

(2042) रत्नप्रभा से तमःप्रभा नरक तक के पर्याप्ता नारकी के जीव कितने भेदों में गति पाते हैं ?

उत्तर :

15 कर्मभूमिज गर्भज पर्याप्ता मनुष्य के	- 15 भेद
5 संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच के	- 5 भेद
कुल	- 20 भेद

(2043) सातवीं नरक के नारकी के जीव कितने भेदों में गति पाते हैं ?

उत्तर : संज्ञी पर्याप्ता पंचेन्द्रिय तिर्यंच के 5 भेदों में गति होती है ।

(2044) सातों नरकों के अपर्याप्ता नारकी के जीव कितने भेदों में गति पाते हैं ?

उत्तर : अपर्याप्त अवस्था में नारकी जीवों की मृत्यु नहीं होने से गति नहीं है ।

(2045) भवनपति देव, व्यंतर, वाणव्यंतर, ज्योतिष्क कितने दण्डकों में जाते हैं ?

उत्तर : **पांच दण्डकों में** - (1-3) पृथ्वी-अप्-वनस्पतिकाय (4) गर्भज तिर्यंच (5) गर्भज मनुष्य ।

(2046) भवनपति, व्यंतर, वाणव्यंतर, तिर्यग्जृंभक, परमाधामी देवों के जीव कितने भेदों में गति पाते हैं ?

उत्तर :

15 कर्मभूमिज गर्भज पर्याप्त मनुष्य के	- 15 भेद
बादर पर्याप्त - पृथ्वीकाय का	- 1 भेद
बादर पर्याप्त - अप्काय का	- 1 भेद
बादर पर्याप्त - प्रत्येक वनस्पतिकाय का	- 1 भेद
संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्ता तिर्यंच के	- 5 भेद
कुल	- 23 भेद

(2047) पहले, दूसरे देवलोक के देव कितने दण्डकों में जाते हैं ?

उत्तर : भवनपति देव की भाँति पांच दण्डकों में ।

(2048) ज्योतिष्क, प्रथम-द्वितीय देवलोक तथा प्रथम किल्बिषिक देवों के जीव कितने भेदों में गति पाते हैं ?

उत्तर : भवनपति की भाँति 23 भेदों में गति होती है ।

(2049) तीसरे से आठवें देवलोक के देव कितने दण्डकों में जाते हैं ?

उत्तर : *दो दण्डकों में* – (1) गर्भज तिर्यंच (2) गर्भज मनुष्य ।

(2050) तीसरे से आठवें देवलोक तक के देव, नवलोकान्तिक देव एवं दूसरे-तीसरे किल्बिषिक देवों के जीव कितने भेदों में गति पाते हैं ?

उत्तर :

कर्मभूमिज संज्ञी पर्याप्त मनुष्य के	-	15 भेद
संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंच के	-	5 भेद
कुल	-	20 भेद

(2051) 9वें से 12वें, नवग्रैवेयक एवं अनुत्तर वैमानिक देव कितने दण्डकों में जाते हैं ?

उत्तर : *एक दण्डक में* – गर्भज मनुष्य ।

(2052) नौवें से बारहवें देवलोक, नवग्रैवेयक एवं अनुत्तर विमान देवों के जीव कितने भेदों में गति पाते हैं ?

उत्तर : उपरोक्त देवों की कर्मभूमिज संज्ञी पर्याप्त मनुष्य के 15 भेदों में ही गति होती है ।

(2053) पुरुष एवं नपुंसक वेदी जीव कितने भेदों में गति पाते हैं ?

उत्तर : समस्त 563 भेदों में गति होती है ।

(2054) स्त्री वेदी जीव कितने भेदों में गति पाते हैं ?

उत्तर : सातवीं नरक के दो भेदों को छोड़कर शेष 561 भेदों में गति होती है ।

(2055) प्रथम वज्रऋषभनाराच संघयण वाला जीव किस देवलोक तक जा सकता है ?

उत्तर : सर्वार्थसिद्ध विमान तक ।

(2056) ऋषभनाराच संघयण वाला जीव किस देवलोक तक जा सकता है ?

उत्तर : बारहवें देवलोक तक ।

(2057) नाराच संघयण वाला जीव किस देवलोक तक जा सकता है ?

उत्तर : दसवें देवलोक तक ।

(2058) अर्द्धनाराच संघयण वाला जीव किस देवलोक तक जा सकता है ?

उत्तर : आठवें देवलोक तक ।

(2059) कीलिका संघयण वाला जीव किस देवलोक तक जा सकता है ?

उत्तर : छट्ठे देवलोक तक ।

(2060) छेवट्ठ संघयण वाला जीव किस देवलोक तक जा सकता है ?

उत्तर : चौथे देवलोक तक ।

(2061) अभव्य जीव द्रव्य संयम का पालन कर किस देवलोक तक जा सकता है ?

उत्तर : भवनपति से नवग्रैवेयक तक जा सकता हैं, पर नवलोकान्तिक देव नहीं बन सकता हैं ।

(2062) अप्रमत्त साधु किस देवलोक तक जा सकता है ?

उत्तर : सौधर्म देवलोक से सर्वार्थ सिद्ध विमान तक ।

(2063) आराधक श्रावक किस देवलोक तक जा सकता है ?

उत्तर : सौधर्म देवलोक से अच्युत देवलोक तक ।

(2064) संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच किस देवलोक तक जा सकता है ?

उत्तर : आठवें देवलोक तक ।

(2065) अन्यतीर्थिक (अन्यलिंगी) किस देवलोक तक जा सकता है ?

उत्तर : पांचवें देवलोक तक ।

(2066) दर्शनभ्रष्ट (निन्हव) किस देवलोक तक जा सकता है ?

उत्तर : नवग्रैवेयक तक ।

(2067) विराधित संयमी किस देवलोक तक जा सकता है ?

उत्तर : भवनपति से सौधर्म कल्प तक ।

(2068) विराधक श्रावक किस देवलोक तक जा सकता है ?

उत्तर : भवनपति से ज्योतिष्क देवलोक तक ।

(2069) किल्बिषिक (ज्ञान का अवर्णवादी) किस देवलोक तक जा सकता है ?

उत्तर : सौधर्म कल्प से लांतक देवलोक तक ।

(2070) आजीवकमति किस देवलोक तक जा सकता है ?

उत्तर : भवनपति से बारहवें देवलोक तक ।

(2071) आभियौगिक (मंत्र-तंत्र से दूसरों को वश में करने वाला) किस देवलोक तक जा सकता है ?

उत्तर : भवनपति से बारहवें देवलोक तक ।

(2072) तापस किस देवलोक तक जा सकता है ?

उत्तर : भवनपति से ज्योतिष्क तक ।

(2073) चरक परिव्राजक किस देवलोक तक जा सकता है ?

उत्तर- : भवनपति से पांचवें ब्रह्म देवलोक तक ।

(2074) सम्यक्त्वी किस देवलोक तक जा सकता है ?

उत्तर : पन्द्रह परमाधामी एवं तीन किल्बिषिक को छोड़कर किसी भी देवलोक में जा सकता है । यह कथन सम्यक्त्वी श्रमण की अपेक्षा से कहा गया है ।

(2075) चतुर्दश पूर्वधर किस देवलोक तक जा सकता है ?

उत्तर : चतुर्दश पूर्वधर पांचवें देवलोक से उपर किसी भी देवलोक में जा सकता है ।

(2076) वज्रऋषभनाराच संघयण वाला जीव किस नरक तक जा सकता है ?

उत्तर : सातवीं नरक तक ।

(2077) ऋषभनाराच संघयण वाला जीव किस नरक तक जा सकता है ?

उत्तर : छट्ठी नरक तक ।

(2078) नाराच संघयण वाला जीव किस नरक तक जा सकता है ?

उत्तर : पांचवीं नरक तक ।

(2079) अर्द्धनाराच संघयण वाला जीव किस नरक तक जा सकता है ?

उत्तर : चौथी नरक तक ।

(2080) कीलिका संघयण वाला जीव किस नरक तक जा सकता है ?

उत्तर : तीसरी नरक तक ।

(2081) छेवट्ठ संघयण वाला जीव किस नरक तक जा सकता है ?

उत्तर : दूसरी नरक तक ।

(2082) चक्रवर्ती की क्या गति होती है ?

उत्तर : दीक्षा ले तो देव गति या मोक्ष की प्राप्ति होती है । दीक्षित न हो तो नियमतः नरक में ही जाता है ।

(2083) बलदेव की क्या गति होती है ?

उत्तर : देव गति या मोक्ष की प्राप्ति ।

(2084) वासुदेव तथा प्रतिवासुदेव की क्या गति होती है ?

उत्तर : नियमतः नरक गति होती है ।

(2085) देव तथा नारकी मरकर पुनः देवलोक या नरक में क्यों नहीं जाते है ?

उत्तर : देवलोक तथा नरक में सराग संयम, अकाम निर्जरा आदि का अभाव होने से देव तथा नारकी मरण प्राप्त कर देवलोक में नहीं जाते हैं ।

देवलोक तथा नरक में नरक आयुष्य बंध प्रायोग्य आरंभ-समारंभ, परिग्रह में आसक्ति आदि का अभाव होने से देव तथा नारकी मृत्यु को प्राप्त कर नरक में नहीं जाते हैं ।

(2086) युगलिक मरकर नियमतः देवलोक में ही क्यों जाते है ?

उत्तर : युगलिक अल्पकषायी, सरल, मंद आसक्ति वाले होने से देवगति में ही जाते हैं ।

(2087) पृथ्वीकाय आदि स्थावर पंचक एवं विकलेन्द्रिय के जीव मरकर देव एवं नरक गति में क्यों नहीं जाते हैं ?

उत्तर : पृथ्वीकाय आदि में मनोबल का अभाव होता है, इस कारण उनमें नरकायु बंध प्रायोग्य तीव्र संक्लेश-अशुभ अध्यवसाय का अभाव होता है । इसी प्रकार मन के अभाव में देवायु बंध प्रायोग्य शुद्ध-विशुद्ध आत्मिक परिणामों का अभाव होता है । फलस्वरूप वे मरकर देवलोक और नरक में नहीं जाते हैं ।

(2088) तेउकायिक एवं वायुकायिक जीवों की मनुष्य में उत्पत्ति निषिद्ध क्यों है ?

उत्तर : तेउ तथा वायुकाय के परिणाम क्लिष्ट-अशुभ होने के कारण मनुष्यायु के बंधाभाव में वे मनुष्य गति में नहीं जाते हैं ।

(2089) सम्यक्त्वी एवं मिथ्यात्वी जीव कितनी गतियों में जाते हैं ?

उत्तर : चारों गतियों में ।

(2090) सम्यक्त्वी नरक एवं तिर्यंच गति में कैसे जा सकता है ?

उत्तर : मिथ्यात्व अवस्था में जिस जीव ने आयुबंध किया हो, तदुपरान्त

सम्यक्त्व पाया हो, वे सम्यक्त्वी नरक अथवा तिर्यंच गति में जाते है।

(2091) मिथ्यात्वी देव कैसे बन सकता है ?

उत्तर : शुद्ध-शुभ अध्यवसायों के अभाव में भी उत्कृष्ट क्रिया के परिणाम स्वरूप मिथ्यात्वी जीव अकाम निर्जरा करके देव गति में जा सकता है।

(2092) संज्ञी जीव कितनी गतियों में जाता है ?

उत्तर : चारों गतियों में।

(2093) असंज्ञी जीव कितनी गतियों में जाता है ?

उत्तर : चारों गतियों में।

(2094) पुरुष, स्त्री एवं नपुंसक वेदी जीव कितनी गतियों में जाते हैं ?

उत्तर : चारों गतियों में।

(2095) उर्ध्व, अधो तथा मध्य लोक के जीव कितनी गतियों में जाते हैं ?

उत्तर : चारों गतियों में।

(2096) औपपातिक जन्म वाले जीव कितनी गतियों में जाते हैं ?

उत्तर : **दो गतियों में** - (1) मनुष्य गति, (2) तिर्यंच गति।

(2097) गर्भज जन्म वाले जीव कितनी गतियों में जाते हैं ?

उत्तर : चारों गतियों में।

(2098) संमूर्च्छिम जन्म वाले जीव कितनी गतियों में जाते हैं ?

उत्तर : चारों गतियो में।

(2099) भव्य एवं अभव्य जीव कितनी गतियों में जाते हैं ?

उत्तर : चारों गतियों में।

(2100) उत्सर्पिणी एवं अवसर्पिणी की अपेक्षा से बताओ कि जीव कितनी गतियों में जाते हैं ?

उत्तर : (1) महाविदेह में सर्वदा चतुर्थ आरा होने से जीव चारों गतियों में जाते हैं ।

(2) भरत-ऐरावत क्षेत्र में उत्सर्पिणी पांचवें-छट्ठे तथा अवसर्पिणी में पहले-दूसरे आरे में जीव देव गति में जाते हैं ।

(3) भरत-ऐरावत क्षेत्र में उत्सर्पिणी के पहले-दूसरे-तीसरे-चौथे तथा अवसर्पिणी के तीसरे-चौथे-पांचवें-छट्ठे आरे में जीव चारों गतियों में जाते हैं ।

(2101) प्रथम गुणस्थानकवर्ती जीव कितनी गतियों में जाते हैं ?

उत्तर : चारों गतियों में ।

(2102) द्वितीय गुणस्थानकवर्ती जीव कितनी गतियों में जाते हैं ?

उत्तर : **तीन गतियों में** - (1) देव गति, (2) मनुष्य गति, (3) तिर्यंच गति ।

(2103) तृतीय गुणस्थानकवर्ती जीव कितनी गतियों में जाते हैं ?

उत्तर : मिश्रदृष्टि नामक तीसरे गुणस्थानक में कोई भी जीव मृत्यु को प्राप्त नहीं करता है, अतः इस गुणठाणे के जीव किसी भी गति में नहीं जाते हैं ।

(2104) चतुर्थ गुणस्थानकवर्ती जीव कितनी गतियों में जाते हैं ?

उत्तर : चारों गतियों में ।

(2105) पंचम से एकादशम गुणस्थानकवर्ती जीव कितनी गतियों में जाते हैं ?

उत्तर : **एक गति में** - देव गति में ।

(2106) द्वादशम व त्रयोदशम गुणस्थानकवर्ती जीव कितनी गतियों में जाते हैं ?

उत्तर : इन गुणस्थानकों में मृत्यु का अभाव होने से जीव किसी भी गति में नही जाते हैं ।

(2107) चतुर्दशम गुणस्थानकवर्ती जीव कितनी गतियों में जाते हैं ?

उत्तर : संसार एवं कर्म फलस्वरुप प्राप्त नरकादि चारों गतियों में से एक भी गति में नहीं जाता है । इस गुणस्थानक का जीव मोक्ष रूपी शाश्वत गति को प्राप्त करता है ।

(2108) मनुष्य किन-किन गुणस्थानकों से किन-किन गतियों में जाता है ?

उत्तर : पहले में चारों गतियों में, दूसरे में तीन (नरक सिवाय) गतियों में, तीसरे में मृत्यु नहीं, चौथे में चारों गतियों में, पाचवें से ग्यारहवें में देव गति में, बारहवें/तेरहवें में मृत्यु नहीं, चौदहवें में मोक्ष में जाता है ।

(2109) तिर्यंच किन-किन गुणस्थानकों में किन-किन गतियों में जाते हैं ?

उत्तर : वे पांचवें गुणस्थानक तक ही होते हैं । वहाँ तक उनकी गति मनुष्य की भाँति जाननी चाहिये ।

(2110) देव एवं नारकी किन-किन गुणस्थानकों में किन-किन गतियों में जाते हैं ?

उत्तर : पहले/दूसरे में दो गतियों में - (1) तिर्यंच गति, (2) मनुष्य गति ।
तीसरे में - मृत्यु नहीं ।
चौथे में - मनुष्य गति में ।

(2111) त्रिषष्ठिशलाका पुरुष कितनी गतियों में जाते हैं ?

उत्तर : 24 तीर्थंकर - मोक्ष में ।
12 चक्रवर्ती - मोक्ष में अथवा नरक-देवलोक में ।
9 बलदेव - मोक्ष अथवा देवलोक में ।

9 वासुदेव - नरक में ।

9 प्रतिवासुदेव - नरक में ।

(2112) प्रत्येक जीव कितनी गतियों में जाते है ?

उत्तर : चारों गतियों में ।

(2113) साधारण जीव मरकर कितनी गतियों में जाते हैं ?

उत्तर : **दो गतियों में** - (1) तिर्यंच गति (2) मनुष्य गति ।

(2114) कितने दण्डक के जीव देव गति में जाते हैं ?

उत्तर : **दो दण्डक के** - (1) गर्भज तिर्यंच, (2) गर्भज मनुष्य ।

(2115) कितने दण्डक के जीव मनुष्य गति में जाते हैं ?

उत्तर : **बावीस दण्डक के** - (1-13) समस्त देव, (14-15) गर्भज तिर्यंच-मनुष्य, (16) नारकी, (17-19) विकलेन्द्रिय त्रिक, (20-22) पृथ्वी-अप्-वनस्पतिकाय ।

(2116) कितने दण्डक के जीव नरक गति में जाते हैं ?

उत्तर : **दो दण्डक के** - (1) गर्भज मनुष्य, (2) गर्भज तिर्यंच ।

(2117) कितने दण्डक के जीव तिर्यंच गति में जाते हैं ?

उत्तर : समस्त चौबीस दण्डक के ।

(2118) कितने दण्डक के जीव एक गति में जाते हैं ?

उत्तर : **दो दण्डक के** - (1) तेउकाय, (2) वायुकाय ।
ये तिर्यंच गति में ही जाते हैं ।

(2119) कितने दण्डक के जीव दो गति में जाते हैं ?

उत्तर : **सात दण्डक के** - (1-3) पृथ्वी-अप्-वनस्पतिकाय, (4-6) विकलेन्द्रिय त्रिक, (7) नारकी (8-17) भवनपति देव (18) व्यंतर देव (19) ज्योतिष्क देव (20) वैमानिक देव । ये मनुष्य तथा तिर्यंच गति में ही जाते हैं ।

(2120) कितने दण्डक के जीव चारों गतियों में जाते हैं ?

उत्तर : दो दण्डक के - (1) गर्भज मनुष्य, (2) गर्भज तिर्यंच ।

(2121) कौन से जीव देवगति में जाते है ?

उत्तर : सराग संयमी, संयमासंयमी, अकामनिर्जराशील तथा बाल तप करने वाले जीव देवगति में जाते हैं ।

(2122) कौन से जीव मनुष्य गति में जाते है ?

उत्तर : अल्पारंभी, अल्प-परिग्रही, सरल-भद्र अध्यवसायी, पदार्थों के प्रति अल्प-मूर्च्छा रखने वाले जीव मरकर मनुष्य गति में जाते हैं ।

(2123) कौन से जीव तिर्यंच गति में जाते है ?

उत्तर : आर्त्त ध्यान करने वाले, माया-कपट करने वाले, दुराचार-कुशील में रत जीव मरकर तिर्यंच गति में जाते हैं ।

(2124) कौन से जीव नरक गति में जाते है ?

उत्तर : गाढ मिथ्यात्वी, तीव्र कषायी, महारंभी-समारंभी, संसार में अति-आसक्त, मांसाहारी, पंचेन्द्रिय जीवघाती, महापरिग्रही, तीव्र रौद्र ध्यान धरने वाले जीव नरक गति में जाते हैं ।

त्रयोविंशतितम आगति द्वार का विवेचन

(2125) आगति किसे कहते है ?

उत्तर : जीव जिन गतियों/दण्डकों से आकर उत्पन्न होता है, उसे आगति कहते है ।

(2126) आगति कितनी गतियों से होती है ?

उत्तर : चार - 1 मनुष्य गति 2 देव गति 3 तिर्यंच गति 4 नरक गति ।

(2127) मनुष्य गति में कितनी गति के जीव आते हैं ?

उत्तर : चारों गतियों के ।

(2128) तिर्यंच गति में कितनी गति के जीव आते हैं ?

उत्तर : चारों गतियों के ।

(2129) देव तथा नरक गति में कितनी गति के जीव आते हैं ?

उत्तर : **दो गति के** – (1) मनुष्य गति (2) तिर्यंच गति ।

(2130) एकेन्द्रिय जाति में कितनी गति के जीव आते हैं ?

उत्तर : नरक सिवाय तीन गति के जीव आते हैं ।

(2131) विकलेन्द्रिय में कितनी गति के जीव आते हैं ?

उत्तर : **दो गति के** – (1) मनुष्य (2) तिर्यंच ।

(2132) पंचेन्द्रिय में कितनी गति के जीव आते हैं ?

उत्तर : चारों गतियों के ।

(2133) पृथ्वीकाय, अप्काय एवं वनस्पतिकाय में कितनी गति से जीव आते हैं ?

उत्तर : नरक सिवाय तीन गति के जीव आते हैं ।

(2134) तेउकाय एवं वायुकाय में कितनी गति से जीव आते हैं ?

उत्तर : **दो गति से** – 1 मनुष्य गति 2 तिर्यंच गति ।

(2135) त्रसकाय में कितनी गति से जीव आते हैं ?

उत्तर : चारों गतियों से ।

(2136) पृथ्वीकाय, अप्काय तथा वनस्पतिकाय के तीन दण्डकों में कितने दण्डक के जीव आकर उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर : नरक के सिवाय तैवीस दण्डकों के जीव आकर उत्पन्न होते हैं ।

(2137) तेउकाय तथा वायुकाय में कितने दण्डकों के जीव आकर उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर : **दस दण्डकों के** – (1-5) स्थावर पंचक, (6-8) विकलेन्द्रिय त्रिक (9-10) गर्भज मनुष्य-तिर्यंच ।

(2138) बादर पर्याप्ता पृथ्वीकाय, अप्काय एवं प्रत्येक वनस्पतिकाय में जीव के कितने भेद उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर : संमूर्च्छिम मनुष्य के -101 भेद

कर्मभूमिज गर्भज मनुष्य के	- 30 भेद
तिर्यंच के	- 48 भेद
भवनपति देव (पर्याप्ता) के	- 10 भेद
परमाधामी देव (पर्याप्ता) के	- 15 भेद
व्यंतर देव (पर्याप्ता) के	- 8 भेद
वाणव्यंतर देव (पर्याप्ता) के	- 8 भेद
तिर्यग्जृंभक देव (पर्याप्ता) के	- 10 भेद
ज्योतिष्क देव (पर्याप्ता) के	- 10 भेद
पहले-दूसरे देवलोक (पर्याप्ता) के	- 2 भेद
पहला किल्बिषिक (पर्याप्ता) के	- 1 भेद
कुल	-243 भेद

(2139) पृथ्वीकायादि के 11 भेदों (पृथ्वीकाय, अप्काय, वनस्पतिकाय के सूक्ष्म पर्याप्ता व अपर्याप्ता के छह भेद, बादर अपर्याप्ता पृथ्वीकाय, अप्काय, साधारण वनस्पतिकाय, प्रत्येक वनस्पतिकाय के चार भेद, बादर पर्याप्ता साधारण वनस्पतिकाय का एक भेद)में जीवों के कितने भेद उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर :

संमूर्च्छिम मनुष्य के	-101 भेद
कर्मभूमिज गर्भज मनुष्य के	- 30 भेद
तिर्यंच के	- 48 भेद
कुल	-179 भेद

(2140) बादर पर्याप्ता तेउकाय-वायुकाय में जीव के कितने भेद उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर : बादर पृथ्वीकाय की आगति के 243 भेदों में से देव के 64 भेदों को छोड़कर शेष 179 भेद उत्पन्न होते हैं -

संमूर्च्छिम मनुष्य	-101 भेद
कर्मभूमिज गर्भज मनुष्य	- 30 भेद
तिर्यंच	- 48 भेद
कुल	-179 भेद

(2141) सूक्ष्म पर्याप्ता-अपर्याप्ता तेउकाय, वायुकाय तथा बादर अपर्याप्ता तेउकाय, वायुकाय में जीव के कितने भेद उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर : तिर्यंच के 48 भेद उत्पन्न होते हैं -

पृथ्वीकायादि पांच स्थावर के	- 22 भेद
विकलेन्द्रिय के	- 6 भेद
पंचेन्द्रिय तिर्यंच के	- 20 भेद
कुल	- 48 भेद

(2142) विकलेन्द्रिय में कितने दण्डकों के जीव आकर उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर : **दस दण्डकों के** - (1-5) स्थावर पंचक, (6-8) विकलेन्द्रिय त्रिक (9-10) गर्भज मनुष्य-तिर्यंच ।

(2143) विकलेन्द्रिय त्रिक में जीव के कितने भेद उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर :

संमूर्च्छिम मनुष्य के	-101 भेद
कर्मभूमिज गर्भज मनुष्य के	- 30 भेद
तिर्यंच के	- 48 भेद
कुल	-179 भेद

(2144) गर्भज तिर्यंच में कितने दण्डक के जीव आकर उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर : चौबीस दण्डक के ।

(2145) पांच संज्ञी गर्भज तिर्यंच पंचेन्द्रिय में जीव के कितने भेद

उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर :	संमूर्च्छिम मनुष्य के	-101 भेद
	कर्मभूमिज गर्भज मनुष्य के	- 30 भेद
	तिर्यंच के	- 48 भेद
	भवनपति देव के (पर्याप्ता)	- 10 भेद
	परमाधामी देव के (पर्याप्ता)	- 15 भेद
	व्यंतर देव के (पर्याप्ता)	- 8 भेद
	वाणव्यंतर देव के (पर्याप्ता)	- 8 भेद
	तिर्यग्जृंभक देव के (पर्याप्ता)	- 10 भेद
	ज्योतिष्क देव के (पर्याप्ता)	- 10 भेद
	आठवें वैमानिक तक (पर्याप्ता)	- 8 भेद
	लोकांतिक देव के (पर्याप्ता)	- 9 भेद
	किल्बिषिक देव के (पर्याप्ता)	- 3 भेद
	नारकी के (पर्याप्ता)	- 7 भेद
	कुल	-267 भेद

(2146) पांच गर्भज अपर्याप्ता पंचेन्द्रिय तिर्यंच तथा संमूर्च्छिम पर्याप्ता-अपर्याप्ता पंचेन्द्रिय तिर्यंच में कितने जीव उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर :	संमूर्च्छिम मनुष्य के	-101 भेद
	कर्मभूमिज गर्भज मनुष्य के	- 30 भेद
	तिर्यंच के	- 48 भेद
	कुल	-179 भेद

(2147) गर्भज मनुष्य में कितने दण्डक के जीव आकर उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर : **बावीस दण्डकों के** - तेउकाय एवं वायुकाय को छोडकर शेष दण्डक ।

(2148) कर्मभूमिज गर्भज संज्ञी पर्याप्ता मनुष्य में जीव के कितने भेद उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर :

संमूर्च्छिम मनुष्य के	-101 भेद
कर्मभूमिज गर्भज मनुष्य के	- 30 भेद
तिर्यंच के	- 40 भेद
देवों के (पर्याप्ता)	- 99 भेद
प्रथम छह नरक के (पर्याप्ता)	- 6 भेद
कुल	-276 भेद

नोट : तेउकाय एवं वायुकाय के 8 भेद मनुष्य में उत्पन्न नहीं होते हैं ।

(2149) कर्मभूमिज गर्भज अपर्याप्ता मनुष्य में जीव के कितने भेद उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर :

संमूर्च्छिम मनुष्य के	-101 भेद
कर्मभूमिज गर्भज मनुष्य के	- 30 भेद
तिर्यंच के	- 40 भेद
कुल	-171 भेद

नोट : तेउकाय एवं वायुकाय के आठ भेद मनुष्य में उत्पन्न नहीं होते हैं ।

(2150) तीस अकर्मभूमिज संज्ञी पर्याप्त गर्भज मनुष्यों में जीव के कितने भेद उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर :

15 कर्मभूमिज गर्भज पर्याप्ता मनुष्य के	- 15 भेद
संज्ञी पर्याप्त तिर्यंच पंचेन्द्रिय के	- 5 भेद

कुल - 20 भेद

(2151) अन्तर्द्वीपज मनुष्यों में जीव के कितने भेद उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर : 15 कर्मभूमिज गर्भज पर्याप्ता मनुष्य के - 15 भेद
गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्ता के - 5 भेद
संमूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्ता के - 5 भेद
कुल - 25 भेद

(2152) चक्रवर्ती में जीव के कितने भेद उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर : पर्याप्ता देव के भेद के - 81 भेद
पर्याप्ता पहली नरक के - 1 भेद
कुल - 82 भेद

(i) पन्द्रह परमाधामी एवं तीन किल्बिषिक से आने वाला देव चक्रवर्ती नहीं बन सकता है ।

(ii) आवश्यक निर्युक्ति के अनुसार मनुष्य से निकला जीव चक्रवर्ती बन सकता है और प्रज्ञापनानुसार नहीं बन सकता है ।

(2153) वासुदेव में जीव के कितने भेद उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर : पर्याप्ता वैमानिक देव - 12 भेद
पर्याप्ता लोकान्तिक देव - 9 भेद
पर्याप्ता नवग्रैवेयक देव - 9 भेद
पर्याप्ता प्रथम दो नरक - 2 भेद
कुल - 32 भेद

नोट : वसुदेव चरित्रानुसार नागकुमार निकाय से निकला हुआ जीव वासुदेव बन सकता है ।

(2154) बलदेव में जीव के कितने भेद उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर : पर्याप्ता देव के - 81 भेद

प्रथम दो नरक के (पर्याप्ता) - 2 भेद

कुल - 83 भेद

(पन्द्रह परमाधामी एवं तीन किल्बिषिक का देव बलदेव नहीं बन सकता है ।)

(2155) साधु में जीव के कितने भेद उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर : संमूर्च्छिम मनुष्य के -101 भेद

कर्मभूमिज गर्भज मनुष्य के - 30 भेद

तिर्यंच के - 40 भेद

पर्याप्त देव के - 99 भेद

पर्याप्ता प्रथम पांच नरक के - 5 भेद

कुल -275 भेद

नोट : तेउकाय एवं वायुकाय के आठ भेद साधु नहीं बन सकते हैं, क्योंकि उनकी मनुष्यों में गति नही है ।

(2156) श्रावक में जीव के कितने भेद उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर : पूर्वोक्त (साधु की आगति) -275 भेद

छट्ठी नरक का (पर्याप्ता) - 1 भेद

कुल -276 भेद

(2157) सम्यक्दृष्टि में जीव के कितने भेद उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर : संमूर्च्छिम मनुष्य के -101 भेद

कर्मभूमिज गर्भज मनुष्य के - 30 भेद

अकर्मभूमिज गर्भज पर्याप्ता मनुष्य के - 30 भेद

अन्तर्द्वीपज गर्भज पर्याप्ता मनुष्य के - 56 भेद

देव के (पर्याप्ता) - 99 भेद

तिर्यंच के - 40 भेद

नरक के (पर्याप्ता)	- 7 भेद
कुल	-363 भेद

नोट : तेउकाय एवं वायुकाय के आठ भेद सम्यग्दृष्टि नहीं बन सकते हैं।

(2158) मिथ्यादृष्टि में जीव के कितने भेद उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर :

संमूर्च्छिम मनुष्य के	-101 भेद
कर्मभूमिज गर्भज मनुष्य के	- 30 भेद
अकर्मभूमिज गर्भज पर्याप्ता मनुष्य के	- 30 भेद
अन्तर्द्वीपज गर्भज पर्याप्ता मनुष्य के	- 56 भेद
पर्याप्त देवों के	- 94 भेद
तिर्यंच के	- 48 भेद
पर्याप्त नारकी के	- 7 भेद
कुल	-366 भेद

पर्याप्त अनुत्तर देवों के पांच भेद मिथ्यात्वी जीवों में उत्पन्न नहीं होते हैं।

देव, नारकी, गर्भज अकर्मभूमिज-अन्तर्द्वीपज मनुष्य अपर्याप्त अवस्था में मृत्यु को प्राप्त नहीं होने से इनकी गति असंभव है।

नोट - मिथ्यादृष्टि जीवों में आगति की अपेक्षा से एक अन्य मतानुसार पांच अनुत्तर वैमानिक देवों को भी गिना जाता है। कुछ समय के लिये मनुष्य भव में उनके अनुसार कोई क्षायोपशमिक सम्यक्त्वी मिथ्यात्व का स्पर्श कर पुन: सम्यक्त्वी हो सकता है। यथार्थ तो केवली भगवंत ही जानते हैं।

(2159) मांडलिक राजा में जीव के कितने भेद उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर :

संमूर्च्छिम मनुष्य के	-101 भेद
कर्मभूमिज गर्भज मनुष्य के	- 30 भेद

पर्याप्त देव के	- 99 भेद
छह नरक के (पर्याप्त)	- 6 भेद
तिर्यंच के	- 40 भेद
कुल	-276 भेद

नोट : तेउकाय एवं वायुकाय के जीव मांडलिक राजा नहीं बन सकते हैं ।

(2160) नरक में कितने दण्डक के जीव आकार उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर : दो दण्डक के - (1) गर्भज मनुष्य, (2) गर्भज तिर्यंच ।

(2159) प्रथम नरक में जीव के कितने भेद उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर :

कर्मभूमिज गर्भज पर्याप्ता मनुष्य के	- 15 भेद
गर्भज-संमूर्च्छिम तिर्यंच पंचेन्द्रिय-पर्याप्त के	- 10 भेद
कुल	- 25 भेद

(2161) दूसरी नरक में जीव के कितने भेद उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर :

कर्मभूमिज गर्भज पर्याप्ता मनुष्य के	- 15 भेद
गर्भज पर्याप्ता तिर्यंच पंचेन्द्रिय के	- 5 भेद
कुल	- 20 भेद

(2162) तीसरी नरक में जीव के कितने भेद उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर : उपरोक्त 20 भेदों में से गर्भज पर्याप्त भुजपरिसर्प को छोड़कर 19 भेद तीसरी नरक में उत्पन्न होते हैं ।

(2163) चौथी नरक में जीव के कितने भेद उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर : उपरोक्त 19 भेदों में से गर्भज पर्याप्त खेचर को छोड़कर 18 भेद चौथी नरक में उत्पन्न होते हैं ।

(2164) पांचवीं नरक में जीव के कितने भेद उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर : उपरोक्त 18 भेदों में से गर्भज पर्याप्त स्थलचर को छोड़कर 17

भेद पांचवीं नरक में उत्पन्न होते हैं।

(2165) छट्ठी नरक में जीव के कितने भेद उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर : उपरोक्त 17 भेदों में से गर्भज पर्याप्त उरःपरिसर्प को छोड़कर 16 भेद छट्ठी नरक में उत्पन्न होते हैं।

(2166) सातवीं नरक में जीव के कितने भेद उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर : गर्भज पर्याप्त कर्मभूमिज मनुष्य के 15 भेद एवं गर्भज पर्याप्ता जलचर, कुल 16 भेद में सातवीं नरक में उत्पन्न होते हैं।

(2167) भवनपति, व्यंतर, ज्योतिष्क एवं आठवें वैमानिक देवलोक तक के देवों में कितने दण्डक के जीव आकर उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर : **दो दण्डक के** - (1) गर्भज मनुष्य, (2) गर्भज तिर्यंच।

(2168) भवनपति, व्यंतर, वाणव्यंतर, परमाधामी, तिर्यग्जृंभक देवों में जीव के कितने भेद उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर :

गर्भज पर्याप्ता संज्ञी मनुष्य के	-101 भेद
गर्भज पर्याप्ता तिर्यंच पंचेन्द्रिय के	- 5 भेद
संमूर्च्छिम पर्याप्ता तिर्यंच पंचेन्द्रिय के	- 5 भेद
कुल	-111 भेद

(2169) ज्योतिष्क, प्रथम सौधर्म देवलोक, प्रथम किल्बिषिक में जीव के कितने भेद उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर :

कर्मभूमिज गर्भज पर्याप्ता मनुष्य के	- 15 भेद
अकर्मभूमिज गर्भज पर्याप्ता मनुष्य के	- 30 भेद
संज्ञी पर्याप्ता गर्भज तिर्यंच के	- 5 भेद
कुल	- 50 भेद

(2170) दूसरे देवलोक में जीव के कितने भेद उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर :	कर्मभूमिज गर्भज पर्याप्त मनुष्य के	- 15 भेद
	देवकुरु-उत्तरकुरु गर्भज पर्याप्त मनुष्य के	- 10 भेद
	रम्यक्-हरिवर्ष गर्भज पर्याप्त मनुष्य के	- 10 भेद
	गर्भज पर्याप्ता पंचेन्द्रिय तिर्यंच के	- 5 भेद
	कुल	- 40 भेद

(2171) तीसरे से आठवें देवलोक, नवलोकान्तिक, 2-3 किल्बिषिक में जीव के कितने भेद उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर :	कर्मभूमिज गर्भज पर्याप्त मनुष्य के	- 15 भेद
	गर्भज पर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यंच के	- 5 भेद
	कुल	- 20 भेद

(2172) 9 वें से 12 वें देवलोक, नवग्रैवेयक एवं अनुत्तर विमान में कितने दण्डकों के जीव आकर उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर : **एक दण्डक के** - गर्भज मनुष्य ।

(2173) 9 वें से 12 वें देवलोक, नवग्रैवेयक, पांच अनुत्तर विमान में जीव के कितने भेद उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर : कर्मभूमिज गर्भज पर्याप्ता मनुष्य के 15 भेद उपरोक्त देवों में उत्पन्न होते हैं ।

(2174) किस देवलोक से निकला देव का जीव चक्रवर्ती बन सकता है ?

उत्तर : पन्द्रह परमाधामी एवं तीन किल्बिषिक के सिवाय किसी भी देवलोक से निकला देव का जीव चक्रवर्ती बन सकता है ।

(2175) किस देवलोक से निकला देव का जीव वासुदेव बन सकता है ?

उत्तर : बारह वैमानिक, नवग्रैवेयक एवं नवलोकान्तिक देव का जीव वासुदेव बन सकता है ।

(2176) किस देवलोक से निकला देव का जीव बलदेव बन सकता है ?

उत्तर : चक्रवर्ती की भाँति चारों देव निकायों से निकला देव का जीव बलदेव बन सकता है परन्तु पन्द्रह परमाधामी तथा तीन किल्बिषिक का देव बलदेव नहीं बन सकता है ।

(2177) किस देवलोक से निकला देव का जीव मांडलिक पद प्राप्त कर सकता है ?

उत्तर : चारों निकायों का देव ।

(2178) किस देवलोक से निकला देव का जीव मिथ्यात्वी हो सकता है ?

उत्तर : अनुत्तर वैमानिक देवों के पांच भेदों को छोड़कर किसी भी देवलोक देव का जीव मिथ्यात्वी हो सकता है ।

(2179) किस नरक से आने वाला जीव चक्रवर्ती बन सकता है ?

उत्तर : प्रथम नरक से ।

(2180) किस नरक से आने वाला जीव वासुदेव या बलदेव बन सकता है ?

उत्तर : प्रथम एवं द्वितीय नरक से ।

(2181) किस नरक से आने वाला जीव तीर्थंकर बन सकता है ?

उत्तर : प्रथम तीन नरक से ।

(2182) किस नरक से आने वाला जीव केवली बन सकता है ?

उत्तर : प्रथम चार नरक से ।

(2183) किस नरक से आने वाला जीव साधु बन सकता है ?

उत्तर : प्रथम पांच नरक से ।

(2184) किस नरक से आने वाला जीव श्रावक बन सकता है ?

उत्तर : प्रथम छह नरक से ।

(2185) किस नरक से आने वाला जीव सम्यक्त्वी बन सकता है ?

उत्तर : सातों नरकों से ।

(2186) **किस नरक से आने वाला जीव मिथ्यात्वी बन सकता है ?**

उत्तर : सातों नरकों से ।

(2187) **त्रिषष्ठिशलाका पुरुष कितनी गतियों से आते है ?**

उत्तर : **दो गतियो से** - (1) देवगति (2) नरक गति ।

(2188) **केवली, साधु, श्रावक एवं सम्यक्त्वी कितनी गतियों से आते है ?**

उत्तर : चारों गतियों से ।

(2189) **तीनों लोकों में कितनी गतियों के जीव आते हैं ?**

उत्तर : चारों गतियों से ।

(2190) **कितनी गतियों से आकर औपपातिक जन्म पाते हैं ?**

उत्तर : **दो गतियो से** - (1) तिर्यंच गति (2) मनुष्य गति ।

(2191) **कितनी गतियों से आकार जीव संमूर्च्छिम अथवा गर्भज जन्म पाते हैं ?**

उत्तर : चारों गतियों से ।

(2192) **कर्मभूमिज मनुष्यों में कितनी गति के जीव आते हैं ?**

उत्तर : चारों गतियों के ।

(2193) **अन्तर्द्वीपज तथा अकर्मभूमिज मनुष्यों में कितनी गति के जीव आते हैं ?**

उत्तर : **दो गति के** - (1) मनुष्य गति (2) तिर्यंच गति ।

(2194) **प्रथम एवं चतुर्थ गुणस्थानक में कितनी गति के जीव आकर उत्पन्न होते है ?**

उत्तर : चारों गति के ।

(2195) **दूसरे गुणस्थानक में कितनी गति के जीव आकर उत्पन्न होते हैं ?**

उत्तर : नरक के सिवाय तीन गति के जीव ।

(2196) तीसरे गुणस्थानक में कितनी गति के जीव आकर उत्पन्न होते है ?

उत्तर : तीसरे गुणस्थानक में कोई भी जीव मृत्यु को प्राप्त नहीं करता है, अतः उसमें कोई भी जीव जन्म नहीं लेता है ।

(2197) पंचम आदि गुणस्थानकों में कितनी गति के जीव आकर उत्पन्न होते है ?

उत्तर : कोई भी जीव या पांचवें आदि गुणस्थानकों में उत्पन्न नहीं होता है क्योंकि उसमें विरति का अभाव पाया जाता है ।

(2198) कितने दण्डकों के जीव मनुष्य गति में आकर उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर : तेउ-वायु के दो दण्डकों के सिवाय बावीस दण्डकों के जीव मनुष्य गति में आते हैं ।

(2199) कितने दण्डकों के जीव तिर्यंच गति में आकर उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर : चौबीस दण्डकों के ।

(2200) कितने दण्डकों के जीव देव एवं नरक गति में आकर उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर : **दो दण्डकों के** - (1) गर्भज मनुष्य, (2) गर्भज तिर्यंच ।

(2201) कितने दण्डकों में एक गति के जीव आकर उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर : एक भी नहीं ।

(2202) कितने दण्डकों में दो गति के जीव आकर उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर : **उन्नीस दण्डकों में** - (1-13) समस्त देव (14) नारकी (15-17) विकलेन्द्रिय त्रिक (18) तेउकाय (19) वायुकाय ।

(2203) कितने दण्डकों में तीन गति के जीव आकर उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर : तीन दण्डकों में - (1) पृथ्वीकाय (2) अप्काय (3) वनस्पतिकाय ।

(2204) कितने दण्डकों में चार गति के जीव आकर उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर : **दो दण्डकों में** - (1) गर्भज तिर्यंच, (2) गर्भज मनुष्य ।

(2205) एकेन्द्रिय में कितने दण्डकों के जीव उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर : नरक सिवाय तैवीस दण्डकों के ।

(2206) पंचेन्द्रिय में कितने दण्डकों के जीव उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर : चौबीस दण्डकों के ।

(2207) स्थावर में कितने दण्डकों के जीव उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर : नरक सिवाय तैवीस दण्डकों के ।

(2208) त्रस में कितने दण्डकों के जीव उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर : चौबीस दण्डकों के ।

(2209) तीनों वेदों में कितनी गति के जीव आ सकते हैं ?

उत्तर : चारों गतियों के ।

(2210) पुरुष वेद में कौन-कौन आ सकते हैं ?

उत्तर :

संमूर्च्छिम मनुष्य के	-101 भेद
कर्मभूमिज गर्भज मनुष्य के	- 30 भेद
तिर्यंच के	- 48 भेद
देव के (पर्याप्ता)	- 99 भेद
नारकी के (पर्याप्ता)	- 7 भेद
अकर्मभूमिज गर्भज पर्याप्ता मनुष्य के	- 30 भेद
अन्तर्द्वीपज गर्भज पर्याप्ता मनुष्य के	- 56 भेद
कुल	-371 भेद

(2211) स्त्री वेद में कौन-कौन आ सकते हैं ?

उत्तर : पुरुष वेद की भाँति 371 भेद स्त्री वेद में आ सकते हैं ।

(2212) नपुंसक वेद में कौन-कौन आ सकते है ?

उत्तर :	संमूर्च्छिम मनुष्य के	-101 भेद
	कर्मभूमिज गर्भज मनुष्य के	- 30 भेद
	तिर्यंच के	- 48 भेद
	देव के (पर्याप्ता)	- 99 भेद
	नारकी के (पर्याप्ता)	- 7 भेद
	कुल	-285 भेद

चतुर्विंशतितम वेद द्वार का विवेचन

(2213) वेद किसे कहते है ?

उत्तर : काम-भोग की अभिलाषा को वेद कहते है ।

(2214) वेद कितने प्रकार के होते है ?

उत्तर : **दो प्रकार के** - (1) भाव वेद (2) द्रव्य वेद ।

(2215) भाव वेद के कितने भेद होते है ?

उत्तर : **तीन भेद** - (1) पुरुष भाव वेद (2) स्त्री भाव वेद (3) नपुंसक भाव वेद ।

(2216) पुरुष भाव वेद किसे कहते है ?

उत्तर : स्त्री के साथ काम-भोग की इच्छा को पुरुष भाव वेद कहते है ।

(2217) स्त्री भाव वेद किसे कहते है ?

उत्तर : पुरुष के साथ काम-भोग की इच्छा को स्त्री भाव वेद कहते है ।

(2218) नपुंसक भाव वेद किसे कहते है ?

उत्तर : स्त्री तथा पुरुष, दोनों के साथ काम-भोग की इच्छा को नपुंसक

भाव वेद कहते है ।

(2219) द्रव्य वेद के कितने भेद होते है ?

उत्तर : **तीन भेद** - (1) पुरुष द्रव्य वेद (2) स्त्री द्रव्य वेद (3) नपुंसक द्रव्य वेद ।

(2220) पुरुष द्रव्य वेद किसे कहते है ?

उत्तर : पुरुष की लिंगाकृति को पुरुष द्रव्य वेद कहते है ।

(2221) स्त्री द्रव्य वेद किसे कहते है ?

उत्तर : स्त्री की लिंगाकृति को स्त्री द्रव्य वेद कहते है ।

(2222) नपुंसक द्रव्य वेद किसे कहते है ?

उत्तर : नपुंसक की लिंगाकृति को नपुंसक द्रव्य वेद कहते है ।

(2223) पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय एवं वनस्पतिकाय में कौनसा वेद पाया जाता है ?

उत्तर : नपुंसक वेद ।

(2224) विकलेन्द्रिय त्रिक में कौनसा वेद पाया जाता है ?

उत्तर : नपुंसक वेद ।

(2225) गर्भज तिर्यंच में कितने वेद पाये जाते हैं ?

उत्तर :- तीन वेद ।

(2226) गर्भज मनुष्य में कितने वेद पाये जाते हैं ?

उत्तर : तीन वेद ।

(2227) देवों में कितने वेद पाये जाते हैं ?

उत्तर : **दो वेद** - 1 पुरुष वेद 2 स्त्री वेद ।

(2228) नारकी में कितने वेद पाये जाते हैं ?

उत्तर : नपुंसक वेद ।

(2229) एक वेद कितने दण्डकों में पाया जाता है ?

उत्तर : **नौ दण्डकों में** – 1-5 पृथ्वीकायादि स्थावर पंचक, 6-8 द्वीन्द्रियादि विकलेन्द्रिय त्रिक, 9 नारकी ।

(2230) दो वेद कितने दण्डकों में पाये जाते हैं ?

उत्तर : **तेरह दण्डकों में** – 1-10 असुरकुमारादि दस भवनपति देव, 11 व्यंतर देव, 12 ज्योतिष्क देव, 13 वैमानिक देव ।

(2231) तीन वेद कितने दण्डकों में पाये जाते हैं ?

उत्तर : **दो दण्डकों में** – 1 गर्भज मनुष्य, 2 गर्भज तिर्यंच ।

(2232) पुरुष वेद कितने दण्डकों में पाया जाता है ?

उत्तर : **पन्द्रह दण्डकों में** – 1-10 असुरकुमारादि दस भवनपति देव, 11 व्यंतर देव, 12 ज्योतिष्क देव, 13 वैमानिक देव, 14 गर्भज मनुष्य, 15 गर्भज तिर्यंच ।

(2233) स्त्री वेद कितने दण्डकों में पाया जाता है ?

उत्तर : पुरुष वेद की तरह पन्द्रह दण्डकों में पाया जाता है ।

(2234) नपुंसक वेद कितने दण्डकों में पाया जाता है ?

उत्तर : देवों के 13 दण्डक बिना शेष 11 दण्डकों में नपुंसक वेद पाया जाता है ।

(2235) मनुष्य गति और तिर्यंच गति में कितने वेद पाये जाते हैं ?

उत्तर : तीन वेद ।

(2236) देव गति में कितने वेद पाये जाते हैं ?

उत्तर : **दो वेद** – (1) पुरुष वेद, (2) स्त्री वेद ।

(2237) नरक गति में कितने वेद पाये जाते हैं ?

उत्तर : **एक वेद** – नपुंसक वेद ।

(2238) एकेन्द्रिय में कितने वेद पाये जाते हैं ?

उत्तर : एक - नपुंसक वेद ।

(2239) पंचेन्द्रिय में कितने वेद पाये जाते हैं ?

उत्तर : तीन वेद ।

(2240) स्थावर जीवों में कितने वेद पाये जाते हैं ?

उत्तर : एक - नपुंसक वेद ।

(2241) त्रस जीवों में कितने वेद पाये जाते हैं ?

उत्तर : तीन वेद ।

(2242) संमूर्च्छिम जीवों में कितने वेद पाये जाते हैं ?

उत्तर : एक - नपुंसक वेद ।

(2243) गर्भज जीवों में कितने वेद पाये जाते हैं ?

उत्तर : तीन वेद ।

(2244) औपपातिक जीवों में कितने वेद पाये जाते हैं ?

उत्तर : तीन वेद ।

(2245) सूक्ष्म जीवों में कितने वेद पाये जाते हैं ?

उत्तर : एक - नपुंसक वेद ।

(2246) बादर जीवों में कितने वेद पाये जाते हैं ?

उत्तर : तीन वेद ।

(2247) संज्ञी जीवों में कितने वेद पाये जाते हैं ?

उत्तर : तीन वेद ।

(2248) असंज्ञी जीवों में कितने वेद पाये जाते हैं ?

उत्तर : एक - नपुंसक वेद ।

(2249) भव्य एवं अभव्य जीवों में कितने वेद पाये जाते हैं ?

उत्तर : तीन वेद ।

(2250) किस वेद वाले दण्डक सर्वाधिक हैं ?

उत्तर : पुरुष व स्त्री वेद वाले ।

(2251) तीनों वेद कितने गुणस्थानकों तक पाये जाते हैं ?

उत्तर : भाव वेद की अपेक्षा से 9 गुणस्थानक तक तथा द्रव्य वेद की अपेक्षा से 14 गुणस्थानक तक ।

(2252) सम्यक्त्वी तथा मिथ्यात्वी जीवों में कितने वेद पाये जाते हैं ?

उत्तर : तीन वेद ।

(2253) तीनों लोकों में कितने वेद पाये जाते हैं ?

उत्तर : तीन वेद ।

(2254) साधारण जीवों में कितने वेद पाये जाते हैं ?

उत्तर : एक - नपुंसक वेद ।

(2255) प्रत्येक जीवों में कितने वेद पाये जाते हैं ?

उत्तर : तीन वेद ।

(2256) अपर्याप्त तथा पर्याप्त अवस्था में कितने वेद पाये जाते हैं ?

उत्तर : तीन वेद ।

(2257) पुरुष वेद में जीव कितने काल तक रहता है ?

उत्तर : जघन्यतः - अन्तर्मुहूर्त ।

उत्कृष्टतः - साधिक सागरोपम शत पृथक्त्व ।

(2258) स्त्री वेद में जीव कितने काल तक रहता है ?

उत्तर : जघन्यतः - एक समय ।

उत्कृष्टतः - पृथक्त्व कोटि पूर्व अधिक एक सौ दस पल्योपम ।

(2259) नपुंसक वेद में जीव कितने काल तक रहता है ?

उत्तर : जघन्यतः - एक समय ।

उत्कृष्टतः - अनंतकाल ।

(2260) अवेदी अवस्था में जीव कितने काल तक रहता है ?

उत्तर : उपशम श्रेणी आश्रित -

जघन्यतः - एक समय ।

उत्कृष्टतः - अन्तर्मुहूर्त ।

क्षपकश्रेणी आश्रित - अनंत काल ।

संमूर्च्छिम पंचेन्द्रिय मनुष्य एवं तिर्यंच में चौबीस द्वारों का विवेचन

(2261) संमूर्च्छिम पंचेन्द्रिय मनुष्य तथा तिर्यंच में कितने शरीर पाये जाते हैं ?

उत्तर : **तीन शरीर** - 1 औदारिक 2 तैजस 3 कार्मण ।

(2262) पंचेन्द्रिय संमूर्च्छिम तिर्यंच की कितनी अवगाहना होती है ?

उत्तर :

क्र.	जीव	जघन्य	उत्कृष्ट
1	जलचर	अंगुल का असंख्यातवां भाग	एक हजार योजन
2	चतुष्पद	,,	गाऊ पृथक्त्व
3	खेचर	,,	धनुष पृथक्त्व
4	उरःपरिसर्प	,,	योजन पृथक्त्व
5	भुजपरिसर्प	,,	धनुष पृथक्त्व

(2263) संमूर्च्छिम मनुष्य की अवगाहना कितनी होती है ?

उत्तर : जघन्यतः तथा उत्कृष्टतः - अंगुल का असंख्यातवां भाग ।

(2264) पंचेन्द्रिय संमूर्च्छिम मनुष्य तथा तिर्यंच में कितने संघयण पाये जाते हैं ?

उत्तर : **एक** - छेवट्ठ संघयण ।

(2265) पंचेन्द्रिय संमूर्च्छिम मनुष्य तथा तिर्यंच में कितनी संज्ञा पायी जाती हैं ?

उत्तर : 4 अथवा 10 संज्ञा ।

(2266) पंचेन्द्रिय संमूर्च्छिम मनुष्य तथा तिर्यंच में कौनसा संस्थान पाया जाता है ?

उत्तर : हुंडक संस्थान ।

(2267) पंचेन्द्रिय संमूर्च्छिम मनुष्य तथा तिर्यंच में कितने कषाय पाये जाते हैं ?

उत्तर : **चार कषाय** - क्रोध, मान, माया एवं लोभ ।

(2268) पंचेन्द्रिय संमूर्च्छिम मनुष्य तथा तिर्यंच में कितनी लेश्या पायी जाती हैं ?

उत्तर : **तीन लेश्या** - कृष्ण, नील, कापोत ।

(2269) पंचेन्द्रिय संमूर्च्छिम मनुष्य तथा तिर्यंच में कितनी इन्द्रियाँ पायी जाती हैं ?

उत्तर : **पांच इन्द्रियाँ** - स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र ।

(2270) पंचेन्द्रिय संमूर्च्छिम मनुष्य तथा तिर्यंच में कितने समुद्घात पाये जाते हैं ?

उत्तर : **तीन** - वेदना, कषाय, मरण ।

(2271) संमूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यंच में कितनी दृष्टियाँ पायी जाती हैं ?

उत्तर : **अपर्याप्ता अवस्था में दो** - सम्यक्त्वदृष्टि तथा मिथ्यादृष्टि हो सकती हैं परन्तु पर्याप्त अवस्था में मिथ्यादृष्टि ही होती है ।

(2272) संमूर्च्छिम मनुष्य में कितनी दृष्टियाँ पायी जाती हैं ?

उत्तर : संमूर्च्छिम मनुष्य नियमतः मिथ्यादृष्टि ही होते हैं ।

(2273) पंचेन्द्रिय संमूर्च्छिम मनुष्य तथा तिर्यंच में कितने दर्शन पाये जाते हैं ?

उत्तर : **दो दर्शन** - 1 चक्षुदर्शन 2 अचक्षुदर्शन ।

(2274) पंचेन्द्रिय संमूर्च्छिम तिर्यंच में कितने ज्ञान पाये जाते हैं ?

उत्तर : सिद्धान्तानुसार संमूर्च्छिम अपर्याप्ता पंचेन्द्रिय तिर्यंच में मति तथा श्रुतज्ञान पाया जाता है। कर्मग्रंथानुसार एक भी ज्ञान नहीं होता है। पर्याप्त संमूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यंच में एक भी ज्ञान नहीं होता है।

(2275) संमूर्च्छिम मनुष्य में कितने ज्ञान पाये जाते हैं ?

उत्तर : एक भी ज्ञान नहीं होता है।

(2276) संमूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यंच तथा मनुष्य में कितने अज्ञान पाये जाते हैं ?

उत्तर : **दो अज्ञान** - 1 मतिअज्ञान 2 श्रुतअज्ञान।

(2277) संमूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यंच तथा मनुष्य में कितने योग पाये जाते हैं ?

उत्तर : **अपर्याप्त अवस्था में दो योग** - 1 औदारिक मिश्र काय योग 2 कार्मण काय योग।

पर्याप्त अवस्था में दो योग - 1 औदारिक काय योग 2 असत्यामृषा वचन योग।

(2278) संमूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यंच में कितने उपयोग पाये जाते हैं ?

उत्तर : **सिद्धान्तानुसार-अपर्याप्त अवस्था में छह उपयोग होते हैं** - (1) मतिज्ञानोपयोग (2) श्रुतज्ञानोपयोग (3) मतिअज्ञानोपयोग (4) श्रुतअज्ञानोपयोग (5) चक्षुदर्शनोपयोग (6) अचक्षुदर्शनोपयोग। पर्याप्त अवस्था में मति-श्रुतज्ञानोपयोग सिवाय चार उपयोग पाये जाते हैं।

कर्मग्रन्थानुसार - पर्याप्त-अपर्याप्त, दोनों अवस्थाओं में उपरोक्त चार उपयोग पाये जाते हैं।

(2279) संमूर्च्छिम मनुष्य में कितने उपयोग पाये जाते हैं ?

उत्तर : **चार उपयोग** - 1. मतिअज्ञानोपयोग, 2. श्रुतअज्ञानोपयोग 3. चक्षुदर्शनोपयोग 4. अचक्षुदर्शनोपयोग।

(2280) पंचेन्द्रिय संमूर्च्छिम मनुष्य एवं तिर्यंच एक समय में

कितने उत्पन्न होते है अथवा मरते हैं ?

उत्तर : जघन्यतः 1-2-3 और उत्कृष्टतः असंख्य ।

(2281) संमूर्च्छिम मनुष्य एवं पंचेन्द्रिय तिर्यंच में विरह काल कितना होता है ?

उत्तर : संमूर्च्छिम मनुष्य में उत्कृष्टतः 24 मुहूर्त तथा संमूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यंच में अन्तर्मुहूर्त का विरहकाल होता है । दोनों में जघन्यतः एक समय का विरहकाल होता है ।

(2282) संमूर्च्छिम मनुष्य एवं पंचेन्द्रिय तिर्यंच की जघन्य स्थिति कितनी होती है ?

उत्तर : संमूर्च्छिम मनुष्य तथा तिर्यंच की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त प्रमाण होती है ।

(2283) संमूर्च्छिम मनुष्य की उत्कृष्ट स्थिति कितनी होती है ?

उत्तर : संमूर्च्छिम मनुष्य की - अन्तर्मुहूर्त ।

(2284) संमूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यंच की उत्कृष्ट स्थिति कितनी होती है ?

उत्तर : (1) जलचर की - 1 पूर्व करोड वर्ष ।

(2) चतुष्पद की - 84000 वर्ष ।

(3) उरपरिसर्प की - 53000 वर्ष ।

(4) भुजपरिसर्प की - 42000 वर्ष ।

(5) खेचर की - 72000 वर्ष ।

(2285) संमूर्च्छिम मनुष्य एवं पंचेन्द्रिय तिर्यंच में कितनी पर्याप्तियाँ पायी जाती हैं ?

उत्तर : संमूर्च्छिम मनुष्य एवं तिर्यंच में आहार, शरीर, इन्द्रिय श्वासोच्छ्वास तथा भाषा रूप पांच पर्याप्तियाँ होती हैं परंतु तीन पर्याप्ति पूर्ण करके ही मरते हैं ।

(2286) संमूर्च्छिम मनुष्य एवं पंचेन्द्रिय तिर्यंच कितनी दिशाओं से आहार लेते हैं ?

उत्तर : छहों दिशाओं से ।

(2287) संमूर्च्छिम मनुष्य एवं पंचेन्द्रिय तिर्यंच में कितनी संज्ञाएँ पायी जाती हैं ?

उत्तर : एक – हेतुवादोपदेशिकी ।

(2288) संमूर्च्छिम मनुष्य की गति क्या है ?

उत्तर :

संमूर्च्छिम मनुष्य के	-101 भेद
कर्मभूमिज गर्भज मनुष्य के	- 30 भेद
तिर्यंच के	- 48 भेद
कुल	-179 भेद

(2289) संमूर्च्छिम मनुष्य की आगति क्या है ?

उत्तर : उपरोक्त 179 भेदों में तेउकाय तथा वायुकाय के आठ भेदों को छोड़कर 171 भेद संमूर्च्छिम मनुष्य में आते हैं ।

(2290) अपर्याप्त संमूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यंच की गति क्या है ?

उत्तर :

संमूर्च्छिम मनुष्य के	-101 भेद
कर्मभूमिज गर्भज मनुष्य के	- 30 भेद
तिर्यंच के	- 48 भेद
कुल	-179 भेद

(2291) संमूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्ता एवं अपर्याप्ता की आगति क्या है ?

उत्तर : उपरोक्त 179 भेदों में आगति होती है ।

(2292) पर्याप्त संमूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यंच कितने भेदों में गति पाते हैं ?

उत्तर :

कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों के	- 30 भेद
तिर्यंच के	- 48 भेद
अन्तर्द्वीपज गर्भज मनुष्यों के	-112 भेद
संमूर्च्छिम मनुष्यों के	-101 भेद
प्रथम नरक के	- 2 भेद

भवनपति देवों के	- 20 भेद
व्यंतर देवों के	- 16 भेद
वाणव्यंतर देवों के	- 16 भेद
परमाधामी देवों के	- 30 भेद
तिर्यग्जृंभक देवों के	- 20 भेद
कुल	-395 भेद

(2293) संमूर्च्छिम पंचेन्द्रिय मनुष्य एवं तिर्यंच में कितने वेद पाये जाते हैं ?

उत्तर : **एक** - नपुंसक वेद ।

तीर्थंकर परमात्मा में चौबीस द्वारों का विवेचन

(2294) तीर्थंकर परमात्मा किसे कहते हैं ?

उत्तर : जो चतुर्विध संघ रुप तीर्थराज की स्थापना करते हैं, उन्हें तीर्थंकर कहते है ।

(2295) तीर्थंकर परमात्मा में कितने शरीर पाये जाते हैं ?

उत्तर : **तीन शरीर** - (1) औदारिक (2) तैजस (3) कार्मण ।

(2296) तीर्थंकर परमात्मा की अवगाहना कितनी होती हैं ?

उत्तर : जघन्य अवगाहना - सात हाथ ।
उत्कृष्ट अवगाहना - पांच सौ धनुष्य ।

(2297) तीर्थंकर परमात्मा में कितने संघयण पाये जाते हैं ?

उत्तर : **एक** - वज्रऋषभनाराच संघयण ।

(2298) तीर्थंकर परमात्मा में कितनी संज्ञा पायी जाती हैं ?

उत्तर : एक भी संज्ञा नहीं होती है ।

(2299) तीर्थंकर परमात्मा में कितने संस्थान पाये जाते हैं ?

उत्तर : **एक** - समचतुरस्र संस्थान ।

(2300) तीर्थंकर परमात्मा में कितने कषाय पाये जाते हैं ?

उत्तर : एक भी कषाय नहीं होता है ।

(2301) तीर्थंकर परमात्मा में कितनी लेश्या पायी जाती हैं ?

उत्तर : एक - शुक्ल लेश्या ।

(2301) तीर्थंकर परमात्मा में कितनी इन्द्रियाँ पायी जाती हैं ?

उत्तर : पांचों इन्द्रियाँ ।

(2302) तीर्थंकर परमात्मा में कितने समुद्घात पाये जाते हैं ?

उत्तर : एक - केवली ।

(2303) तीर्थंकर परमात्मा में कितनी दृष्टियाँ पायी जाती हैं ?

उत्तर : एक - सम्यग्दृष्टि (क्षायिक) ।

(2304) तीर्थंकर परमात्मा में कितने दर्शन पाये जाते हैं ?

उत्तर : एक - केवलदर्शन ।

(2305) तीर्थंकर परमात्मा में कितने ज्ञान पाये जाते हैं ?

उत्तर : एक - केवलज्ञान ।

(2306) तीर्थंकर परमात्मा में कितने अज्ञान पाये जाते हैं ?

उत्तर : एक भी अज्ञान नहीं होता है ।

(2307) तीर्थंकर परमात्मा में कितने योग पाये जाते हैं ?

उत्तर : 1 औदारिक काययोग 2 औदारिक मिश्र काययोग 3 सत्य मनोयोग 4 असत्यामृषा मनोयोग 5 सत्य वचनयोग 6 असत्यामृषा वचनयोग 7 कार्मण काययोग ।

(2308) तीर्थंकर परमात्मा में कितने उपयोग पाये जाते हैं ?

उत्तर : दो उपयोग - (1) केवलज्ञानोपयोग (2) केवलदर्शनोपयोग ।

(2309) जघन्यतः कितने तीर्थंकर होते हैं ?

उत्तर : बीस तीर्थंकर ।

(2310) जघन्यतः 20 तीर्थंकर किस प्रकार होते है ?

उत्तर : पांच महाविदेह क्षेत्र की 8वीं, 9वीं, 24वीं, 25वीं, इन चार विजयों

में एक-एक तीर्थंकर का सदैव विचरण होने से जघन्य से 20 तीर्थंकर होते हैं ।

(2311) एक साथ उत्कृष्टतः कितने तीर्थंकर हो सकते हैं ?

उत्तर : 170

(2312) 170 तीर्थंकर किस प्रकार होते हैं ?

उत्तर : पांच महाविदेह क्षेत्र हैं और प्रत्येक क्षेत्र में बत्तीस-बत्तीस विजय हैं । इन 160 विजयों में एक-एक तीर्थंकर का विचरण होने से कुल 160 तीर्थंकर होते हैं ।

पांच भरत तथा पांच ऐरावत, इन दस क्षेत्रों में एक-एक तीर्थंकर होते हैं । इस प्रकार उत्कृष्ट रूप से 170 तीर्थंकर एक साथ होते हैं ।

(2313) तीर्थंकर परमात्मा का आयुष्य कितना होता है ?

उत्तर : जघन्य आयुष्य - 72 वर्ष ।

उत्कृष्ट आयुष्य - 84 लाख पूर्व ।

(2314) तीर्थंकर परमात्मा में कितनी पर्याप्तियाँ पायी जाती हैं ?

उत्तर : छहों पर्याप्तियाँ ।

(2315) तीर्थंकर परमात्मा में कितनी संज्ञा होती हैं ?

उत्तर : तीर्थंकर परमात्मा में एक भी संज्ञा नहीं पायी जाती है । क्योंकि वे केवली होने से उनका ज्ञान उत्कृष्ट होता है ।

(2316) तीर्थंकर परमात्मा की गति क्या है ?

उत्तर : मोक्ष गति ।

(2317) तीर्थंकर परमात्मा की आगति क्या है ?

उत्तर :

वैमानिक देवलोक (पर्याप्ता)	- 12 भेद
ग्रैवेयक देव (पर्याप्ता)	- 9 भेद
लोकान्तिक देव (पर्याप्ता)	- 9 भेद
अनुत्तर देव (पर्याप्ता)	- 5 भेद
प्रथम तीन नरक (पर्याप्ता)	- 3 भेद
कुल	- 38 भेद

(2318) तीर्थंकर में कितने वेद होते हैं ?

उत्तर : द्रव्य की अपेक्षा से दो वेद होते हैं । भाव की अपेक्षा से एक भी वेद नहीं होता है, क्योंकि मोहनीय कर्म का पूर्णतः क्षय हो चुका है ।

(2319) तीर्थंकर परमात्मा भव्य होते हैं या अभव्य ?

उत्तर : भव्य ही होते हैं ।

(2320) तीर्थंकर परमात्मा कितने गुणस्थानकों में पाये जाते हैं ?

उत्तर : **दो गुणस्थानकों में** - (1) सयोगी केवली (2) अयोगी केवली ।

(2321) तीर्थंकर परमात्मा संज्ञी होते हैं या असंज्ञी ।

उत्तर : संज्ञी ही होते हैं ।

(2322) कितने दण्डकों में तीर्थंकर परमात्मा होते हैं ?

उत्तर : **एक** - गर्भज मनुष्य ।

(2323) तीर्थंकर परमात्मा कितने दण्डकों से आते हैं ?

उत्तर : **दो दण्डकों से** - (1) नरक (2) वैमानिक देवलोक ।

(2324) तीर्थंकर परमात्मा में कितने प्राण पाये जाते हैं ?

उत्तर : दसों प्राण पाये जाते हैं ।

(2325) तीर्थंकर परमात्मा किन लोकों में पाये जाते हैं ?

उत्तर : मध्यलोक एवं अधोलोक में पाये जाते हैं ।

(2326) तीर्थंकर परमात्मा में कितने ध्यान पाये जाते हैं ?

उत्तर : **एक** - शुक्ल ध्यान ।

(2327) छह आरों की अपेक्षा से तीर्थंकर परमात्मा कितने होते हैं ?

उत्तर : (1) अवसर्पिणी के तीसरे आरे में एक और चौथे आरे में 23 तीर्थंकर होते हैं ।

(2) उत्सर्पिणी के तीसरे आरे में 23 तीर्थंकर तथा चौथे आरे में 1 तीर्थंकर परमात्मा होते हैं ।

(3) महाविदेह में सर्वदा चतुर्थ आरा होने से वहाँ जघन्यतः 20 तीर्थंकर एवं उत्कृष्टतः 160 तीर्थंकर होते हैं।

(2328) तीर्थंकर परमात्मा तद्भव में कितने गुणस्थानकों का स्पर्श नहीं करते हैं ?

उत्तर : पहला, दूसरा, तीसरा, पांचवां एवं ग्यारहवां।

(2329) तीर्थंकर कितने कर्मों से युक्त होते हैं ?

उत्तर : चार अघाती कर्मों से।

(2330) कितनी गति के जीव तीर्थंकर होते हैं ?

उत्तर : **एक** - मनुष्य गति के।

(2331) कितनी काय के जीव तीर्थंकर होते हैं ?

उत्तर : **एक** - त्रसकाय।

केवलज्ञानी में चौबीस द्वारों का विवेचन

(2332) केवलज्ञानी में कितने शरीर पाये जाते हैं ?

उत्तर : **तीन** - 1 औदारिक 2 तैजस 3 कार्मण।

(2333) केवलज्ञानी में कितनी अवगाहना पायी जाती है ?

उत्तर : जघन्य अवगाहना - 2 हाथ।
उत्कृष्ट अवगाहना - 500 धनुष्य।

(2334) केवलज्ञानी में कितने संघयण पाये जाते हैं ?

उत्तर : **एक** - वज्रऋषभनाराच संघयण।

(2335) केवलज्ञानी में कितनी संज्ञा पायी जाती है ?

उत्तर : एक भी नहीं होती है।

(2336) केवलज्ञानी में कितने संस्थान पाये जाते हैं ?

उत्तर : छहों संस्थान।

(2337) केवलज्ञानी में कितनी इन्द्रियाँ पायी जाती है ?

उत्तर : पांचों इन्द्रियाँ ।

(2338) केवलज्ञानी में कितने दर्शन पाये जाते हैं ?

उत्तर : एक - केवलदर्शन ।

(2339) केवलज्ञानी में कितनी लेश्या पायी जाती हैं ?

उत्तर : एक - शुक्ल लेश्या ।

(2340) केवलज्ञानी में कितने कषाय पाये जाते हैं ?

उत्तर : कषाय रहित होते हैं ।

(2341) केवलज्ञानी में कितने ज्ञान पाये जाते हैं ?

उत्तर : एक - केवलज्ञान ।

(2342) केवलज्ञानी में कितने अज्ञान पाये जाते हैं ?

उत्तर : एक भी अज्ञान नहीं होता हैं ।

(2343) केवलज्ञानी में कितने उपयोग पाये जाते हैं ?

उत्तर : दो - (1) केवलज्ञानोपयोग (2) केवलदर्शनोपयोग ।

(2344) केवलज्ञानी का आयुष्य कितना होता हैं ?

उत्तर : जघन्य आयुष्य - साधिक आठ वर्ष ।
उत्कृष्ट आयुष्य - करोड पूर्व वर्ष में लगभग आठ वर्ष न्यून ।

(2345) केवलज्ञानी में कितनी पर्याप्तियाँ पायी जाती हैं ?

उत्तर : छहों ।

(2346) केवलज्ञानी में कितने वेद होते हैं ?

उत्तर : द्रव्य की अपेक्षा से तीनों होते हैं । भाव की अपेक्षा से एक भी वेद नहीं होता हैं ।

(2347) केवलज्ञानी की गति क्या है ?

उत्तर : मोक्ष ।

(2348) केवलज्ञानी की आगति क्या है ?

उत्तर : देव (पर्याप्ता) - 81 भेद
कर्मभूमिज गर्भज पर्याप्ता मनुष्य - 15 भेद

संज्ञी गर्भज पर्याप्ता पंचेन्द्रिय तिर्यंच	-	5 भेद
प्रथम चार नरक (पर्याप्ता)	-	4 भेद
पृथ्वीकाय बादर (पर्याप्ता)	-	1 भेद
अप्काय बादर (पर्याप्ता)	-	1 भेद
प्रत्येक वनस्पतिकाय बादर (पर्याप्ता)	-	1 भेद
कुल		-108 भेद

नोट : परमाधामी और किल्बिषिक के 18 देव केवलज्ञानी नहीं हो सकते हैं।

(2349) जघन्यतः कितने केवली होते हैं ?

उत्तर : दो करोड।

(2350) उत्कृष्टतः कितने केवली होते हैं ?

उत्तर : नौ करोड।

(2351) केवलज्ञानी भव्य होते हैं या अभव्य ?

उत्तर : भव्य ही होते है।

(2352) केवलज्ञानी कितने गुणस्थानकों में पाये जाते हैं ?

उत्तर : **दो** - 1 सयोगी केवली 2 अयोगी केवली।

(2353) केवलज्ञानी संज्ञी होते हैं या असंज्ञी ?

उत्तर : संज्ञी ही होते हैं।

(2354) कितने दण्डकों में केवली हो सकते हैं ?

उत्तर : **एक** - गर्भज मनुष्य।

(2355) केवली कितने दण्डकों से आते हैं ?

उत्तर : **उन्नीस दण्डकों से** - 1 पृथ्वीकाय 2 अप्काय 3 वनस्पतिकाय 4 नरक 5 गर्भज मनुष्य 6 गर्भज तिर्यंच 7-16 दस भवनपति देव 17 व्यंतर देव 18 ज्योतिष्क देव 19 वैमानिक देव।

(2356) केवलज्ञानी में कितने ध्यान पाये जाते हैं ?

उत्तर : **एक ध्यान** - शुक्ल ध्यान।

(2357) केवलज्ञानी को कितने प्राण होते हैं ?

उत्तर : दस ।

(2358) केवलज्ञानी किस लोक में पाये जाते है ?

उत्तर : तीनों लोकों में पाये जाते हैं ।

(2359) केवलज्ञानी में कितने समुद्घात पाये जाते है ?

उत्तर : एक - केवली समुद्घात ।

(2360) केवलज्ञानी कितनी गतियों से आते हैं ?

उत्तर : चारों गतियों से ।

(2361) कितनी गति के जीव केवली हो सकते हैं ?

उत्तर : एक - मनुष्य गति के ।

(2362) कितनी काय के जीव केवली हो सकते हैं ?

उत्तर : एक - त्रसकाय के ।

(2363) केवलज्ञानी तद्भव में कितने गुणस्थानकों का स्पर्श करते हैं ?

उत्तर : समस्त चौदह गुणस्थानकों का चौदह स्पर्श कर सकते हैं ।

सिद्ध परमात्मा में चौबीस द्वारों का विवेचन

(2364) सिद्ध किसे कहते हैं ?

उत्तर : समस्त कर्मों का क्षय कर जो सिद्धशिला पर आरुढ हो चुके हैं, वे सिद्ध कहलाते हैं, जिनके जन्म मरण का अंत हो चुका है, वे सिद्ध कहलाते हैं ।

(2365) सिद्ध परमात्मा में कितने शरीर पाये जाते हैं ?

उत्तर : सिद्ध भगवंत अशरीरी होते हैं ।

(2366) सिद्ध परमात्मा में कितनी अवगाहना पायी जाती है ?

उत्तर : जघन्य - एक हाथ आठ अंगुल ।
उत्कृष्ट - 333 धनुष 32 अंगुल ।

(2367) जब सिद्ध परमात्मा अशरीरी होते हैं तो फिर उनकी अवगाहना कैसे संभवित है ?

उत्तर : यद्यपि सिद्ध परमात्मा पांचों शरीरों से मुक्त है तथापि उनकी आत्मा निर्वाण अवस्था में स्थित अवगाहना के दो तिहाई भाग में अवस्थित रहती है। विशेष यह है कि सिद्धों की अवगाहना ज्योति-प्रकाश की भाँति निराबाध होती है। जिस प्रकार एक दीपक के प्रकाश में दूसरे दीपक का प्रकाश समा जाता है, उसी प्रकार उनके अवगाहन क्षेत्र में ज्योति में ज्योति मिलने तरह अन्य अनेक आत्माएँ स्थित होती हैं।

(2368) सिद्ध परमात्मा में कितने संघयण पाये जाते हैं ?

उत्तर : सिद्ध भगवंत संघयण रहित होते हैं।

(2369) सिद्ध परमात्मा में कितनी संज्ञा पायी जाती हैं ?

उत्तर : सिद्ध भगवंत संज्ञा रहित होते हैं।

(2370) सिद्ध परमात्मा में कितने संस्थान पाये जाते हैं ?

उत्तर : सिद्ध भगवंत संस्थान रहित होते हैं।

(2371) सिद्ध परमात्मा में कितनी लेश्या पायी जाती हैं ?

उत्तर : सिद्ध परमात्मा अलेशी होते हैं।

(2372) सिद्ध परमात्मा में कितने कषाय पाये जाते हैं ?

उत्तर : सिद्ध परमात्मा कषाय रहित होते हैं।

(2373) सिद्ध परमात्मा में कितनी इन्द्रियाँ पायी जाती हैं ?

उत्तर : सिद्ध परमात्मा इन्द्रिय रहित होते हैं।

(2374) सिद्ध परमात्मा में कितने समुद्घात पाये जाते हैं ?

उत्तर : सिद्ध परमात्मा समुद्घात रहित होते हैं।

(2375) सिद्ध परमात्मा में कितने दर्शन पाये जाते हैं ?

उत्तर : एक - केवल दर्शन।

(2376) सिद्ध परमात्मा में कितने ज्ञान पाये जाते हैं ?

उत्तर : एक - केवलज्ञान।

(2377) सिद्ध परमात्मा में कितने अज्ञान पाये जाते हैं ?

उत्तर : एक भी नहीं ।

(2378) सिद्ध परमात्मा में कितने योग पाये जाते हैं ?

उत्तर : अयोगी होने से एक भी योग नहीं होता है ।

(2379) सिद्ध परमात्मा में कितने उपयोग पाये जाते हैं ?

उत्तर : **दो उपयोग** - केवलज्ञानोपयोग एवं केवलदर्शनोपयोग ।

(2380) सिद्ध परमात्मा की कितनी स्थिति होती है ?

उत्तर : अनन्त ।

(2381) सिद्ध परमात्मा में कितनी पर्याप्तियाँ पायी जाती हैं ?

उत्तर : एक भी नहीं ।

(2382) सिद्ध परमात्मा में कितने वेद पाये जाते हैं ?

उत्तर : अवेदी होते हैं ।

(2383) सिद्ध की आगति क्या है ?

उत्तर :

कर्मभूमिज गर्भज पर्याप्ता मनुष्य के	- 15 भेद
कुल	- 15 भेद

(2384) सिद्ध की गति क्या है ?

उत्तर : आगे गति नहीं है ।

(2385) एक समय में जघन्य से कितने सिद्ध होते हैं ?

उत्तर : जघन्यतः एक, दो, तीन ।

(2386) एक समय में उत्कृष्टतः कितने सिद्ध होते हैं ?

उत्तर : 108 ।

(2387) कितने दण्डकों के जीव सिद्ध हो सकते हैं ?

उत्तर : **एक दण्डक** - गर्भज मनुष्य के ।

(2388) कितनी गतियों के जीव सिद्ध हो सकते हैं ?

उत्तर : **एक** - मनुष्य गति के ।

(2389) तिर्यंच, देव तथा नरक गति के जीव सिद्ध क्यों नहीं हो सकते हैं ?

उत्तर : सिद्ध पद की प्राप्ति के लिये सम्यक्दर्शन, ज्ञान तथा चारित्र, तीनों तत्त्वों की आवश्यकता होती है।

उपरोक्त तीन गतियों में सम्यक्ज्ञान एवं दर्शन का सद्भाव होता है परन्तु चारित्र (सर्वप्रत्याख्यान) का अभाव होने केवलज्ञान की प्राप्ति नहीं होती है और केवलज्ञान के अभाव में सिद्ध-पद की प्राप्ति असंभव है।

(2390) भवनपति, व्यंतर, ज्योतिष्क एवं वैमानिक देवों के तेरह दण्डकों से आये देव के जीव एक साथ कितने सिद्ध हो सकते हैं ?

उत्तर : भवनपति, व्यंतर एवं ज्योतिष्क के देव एक समय में जघन्यतः 1, 2, 3 और उत्कृष्टतः दस सिद्ध हो सकते हैं। वैमानिक देव एक समय में जघन्य 1, 2, 3 और उत्कृष्टतः 108 सिद्ध हो सकते हैं।

(2391) देवियों से आये जीव एक समय में कितने सिद्ध हो सकते हैं ?

उत्तर :

आगति	जघन्य	उत्कृष्ट
भवनपति देवियाँ	1, 2, 3	5
व्यंतर देवियाँ	1, 2, 3	5
ज्योतिष्क देवियाँ	1, 2, 3	20
वैमानिक देवियाँ	1, 2, 3	20

(2392) एक समय में मनुष्य गति से आये कितने जीव सिद्ध हो सकते हैं ?

उत्तर :

आगति	जघन्य	उत्कृष्ट
मनुष्य (नर) से आये	1, 2, 3	10
मनुष्यनी (नारी) से आये	1, 2, 3	20

(2393) एक समय में तिर्यंच गति से आये कितने जीव सिद्ध सकते हैं ?

उत्तर :

आगति	जघन्य	उत्कृष्ट
पृथ्वीकाय - अप्काय	1, 2, 3	4
वनस्पतिकाय	1, 2, 3	6
पंचेन्द्रिय तिर्यंच	1, 2, 3	10
पंचेन्द्रिय तिर्यंचनी	1, 2, 3	20

(2394) एक समय में नरक गति से आये कितने जीव सिद्ध हो सकते हैं ?

उत्तर :

आगति	जघन्य	उत्कृष्ट
1, 2, 3 नरक	1, 2, 3	10
4 नरक	1, 2, 3	4

(2395) कौन-कौन से दण्डक अगले भव में सिद्ध नहीं हो सकते हैं ?

उत्तर : (1) तेउकाय (2) वायुकाय (3) द्वीन्द्रिय (4) त्रीन्द्रिय (5) चतुरिन्द्रिय ।

(2396) कितनी कायों वाले जीव अगले भव में सिद्ध हो सकते है ?

उत्तर : **छह में से चार काय वाले** - (1) पृथ्वीकाय (2) अप्काय (3) वनस्पतिकाय (4) त्रसकाय ।

(2397) कितनी इन्द्रियों वाले जीव अगले भव में सिद्ध हो सकते हैं ?

उत्तर : **दो** - (1) एकेन्द्रिय वाले (2) पंचेन्द्रिय वाले ।

(2398) कितनी गतियों से आये जीव अगले भव सिद्ध सकते हैं ?

उत्तर : चारों गतियों से ।

(2399) कितने लोक से आये जीव अगले भव में सिद्ध हो सकते हैं ?

उत्तर : तीनों लोकों से ।

(2400) अगले भव में कौन-कौन मोक्षगामी हो सकते हैं ?

उत्तर : 1 समस्त देव (परमाधामी-किल्बिषिक सिवाय) 2 गर्भज मनुष्य 3 संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच 4 नारकी (प्रथम चार नरक) 5 पृथ्वी-अप्-वनस्पतिकाय ।

(2401) मनुष्यों में कौनसे जीव अगले भव में सिद्ध नहीं हो सकते हैं ?

उत्तर : (1) युगलिक मुनष्य (2) वासुदेव (3) प्रतिवासुदेव (4) अदीक्षित चक्रवर्ती (5) बद्धायु मनुष्य (6) संमूर्च्छिम अपर्याप्ता मनुष्य ।

(2402) देवों में कौन अगले भव में सिद्ध नहीं हो सकते हैं ?

उत्तर : परमाधामी एवं किल्बिषिक ।

(2403) नारकी में कौन अगले भव में सिद्ध नहीं हो सकते हैं ?

उत्तर : पांचवीं, छट्ठी एवं सातवीं नरक के नारकी ।

(2404) तिर्यंच में कौन-कौन अगले भव में सिद्ध नहीं हो सकते हैं ?

उत्तर : (1) तेउ-वायुकाय (2) विकलेन्द्रिय त्रिक (3) अपर्याप्ता गर्भज तिर्यंच पंचेन्द्रिय (4) संमूर्च्छिम पर्याप्ता एवं अपर्याप्त तिर्यंच पंचेन्द्रिय ।

(2405) सूक्ष्म और बादर में से कौन से जीव अगले भव में सिद्ध हो सकते है ?

उत्तर : बादर हो सकते हैं, सूक्ष्म नहीं ।

(2406) साधारण और प्रत्येक में से कौनसे जीव अगले भव में सिद्ध हो सकते हैं ?

उत्तर : प्रत्येक हो सकते हैं, साधारण नहीं ।

(2407) अवगाहना की अपेक्षा से एक समय में कितने सिद्ध होते हैं ?

उत्तर : 1 उत्कृष्ट अवगाहना वाले एक समय में 2 सिद्ध हो सकते हैं ।
2 मध्यम अवगाहना वाले एक समय में 108 सिद्ध हो सकते हैं ।

3 जघन्य अवगाहना वाले एक समय में 4 सिद्ध हो सकते हैं।

(प्रवचन सारोद्धार गाथा - 475)

(2408) लिंग की अपेक्षा से एक समय में कितने सिद्ध होते हैं ?

उत्तर : 1 एक समय में गृहस्थ लिंग सिद्ध चार हो सकते हैं।

2 एक समय में अन्य लिंग सिद्ध दस हो सकते हैं।

3 एक समय में स्वलिंग सिद्ध एक सौ आठ हो सकते हैं।

(प्रवचन सारोद्धार गाथा - 476)

(2409) वेद की अपेक्षा एक समय में सिद्धि बताओ।

उत्तर : 1	पुरुष से पुरुष होकर	-	108
2	पुरुष से स्त्री-नपुंसक होकर	-	10
3	स्त्री से स्त्री-पुरुष-नपुंसक होकर	-	10
4	नपुंसक से स्त्री-पुरुष-नपुंसक होकर	-	10

(वृहत्संग्रहणी गाथा 254-55)

काल का विवेचन

(2410) काल के कितने भेद होते है ?

उत्तर : दो भेद - (1) व्यवहार काल - समय, आवलिका, स्तोक, दिन रात्रि आदि अथवा सैकण्ड, मिनट, घण्टा आदि।

(2) निश्चय काल - अखण्डित रूप से प्रवाहित समय निश्चय काल कहलाता है।

(2411) समय किसे कहते है ?

उत्तर : काल का वह अविभाज्य अंश, जिसका केवलज्ञानी की दृष्टि (ज्ञान) में भी विभाग नहीं हो सके, वह समय कहलाता है।

(2412) समय की सूक्ष्मता को परिभाषित करने वाले उदाहरण

दीजिये ।

उत्तर : (1) एक बार पलक झपकाने में असंख्यात समय बीत जाते हैं ।

(2) गले हुए सूत के कपडे को कोई महाबलशाली दो भागों में विभाजित करें तो उस कपडे के निकटतम दो तन्तुओं को टूटने के बीच में असंख्यात समय व्यतीत हो जाते हैं ।

(2413) एक आवलिका में कितने समय होते हैं ?

उत्तर : असंख्यात समय ।

(2414) एक क्षुल्लक भव में कितनी आवलिकाएँ होती हैं ?

उत्तर : 256 ।

(2415) एक श्वासोच्छ्वास में कितनी आवलिकाएँ एवं क्षुल्लक भव होते हैं ?

उत्तर : एक श्वासोच्छ्वास में 4446.5 आवलिकाएँ एवं 17.5 क्षुल्लक होते हैं ।

(2416) सात श्वासोच्छ्वास का एक क्या होता है ?

उत्तर : स्तोक ।

(2417) 7 स्तोक का एक क्या होता है ?

उत्तर : एक लव ।

(2418) $38^1/_2$ लव में कितनी घडी होती है ?

उत्तर : एक घडी ।

(2419) एक घडी में कितने मिनट होते है ?

उत्तर : 24 मिनट ।

(2420) एक मुहूर्त कितनी घडी का होता है ?

उत्तर : दो घडी का ।

(2421) अन्तर्मुहूर्त कितने प्रकार के होते हैं ?

उत्तर : तीन प्रकार के - (1) जघन्य अन्तर्मुहूर्त (2) मध्यम अन्तर्मुहूर्त (3) उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त ।

(2422) जघन्य अन्तर्मुहूर्त किसे कहते है ?

उत्तर : दो समय से नौ समय के काल को जघन्य अन्तर्मुहूर्त कहते हैं । इसे समय पृथक्त्व भी कहते है ।

(2423) मध्यम अन्तर्मुहूर्त किसे कहते है ?

उत्तर : जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त के मध्य का काल मध्यम अन्तर्मुहूर्त कहलाता है । अर्थात् दस समय से लगाकर 48 मिनट में से दो समय कम, उस काल को मध्यम अन्तर्मुहूर्त कहते है ।

(2424) उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त किसे कहते है ?

उत्तर : मुहूर्त (48 मिनट) में एक समय न्यून (कम) होने पर उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कहलाता है ।

(2425) कितनी आवलिकाओं का एक मुहूर्त होता है ?

उत्तर : 1,67,77,216 ।

(2426) पन्द्रह मुहूर्त का एक क्या होता है ?

उत्तर : एक दिन अथवा एक रात्रि ।

(2427) 30 मुहूर्त में क्या-क्या होते हैं ?

उत्तर : एक अहोरात्र या 60 घडी या 24 घण्टे ।

(2428) अहोरात्र किसे कहते है ?

उत्तर : दिन और रात्रि को मिलाकर 30 मुहूर्त को एक अहोरात्र कहा जाता है ।

(2429) एक पक्ष में कितने अहोरात्र होते हैं ?

उत्तर : 15 ।

(2430) एक मास में कितने पक्ष होते हैं ?

उत्तर : दो पक्ष ।

(2431) एक ऋतु कितने माह की होती है ?

उत्तर : दो माह की ।

(2432) छह मास का एक क्या होता है ?

उत्तर : अयन ।

(2433) कितने अयन का एक वर्ष होता है ?

उत्तर : दो अयन का ।

(2434) कितने वर्षों का एक युग होता है ?

उत्तर : पांच वर्षों का ।

(2435) एक पूर्वांग कितने वर्षों का होता है ?

उत्तर : चौरासी लाख वर्ष का ।

(2436) कितने वर्षों का एक पूर्व होता है ?

उत्तर : 70 लाख 56 हजार करोड वर्षों का एक पूर्व होता है अर्थात् चौरासी लाख पूर्वांग का एक पूर्व होता है ।

(2437) एक पल्योपम में कितने वर्ष होते हैं ?

उत्तर : असंख्य वर्ष ।

(2438) एक सागरोपम कितने पल्योपम का होता है ?

उत्तर : दस कोडाकोडी पल्योपम का ।

(2439) कोडाकोडी से क्या आशय है ?

उत्तर : करोड को करोड से गुणा करने पर जो संख्या आती है, वह

कोडाकोडी कहलाती है । एक करोड से दस करोड को गुणित करने पर जो संख्या प्राप्त होती हैं, वह दस कोडाकोडी कहते है । इसी प्रकार अन्य उदाहरण समझने चाहिये ।

* बृहत्संग्रहणी के अनुसार मूल संख्या को एक करोड के साथ गुणा करने पर जोउत्तर आता है, उसे मूल संख्या की कोडाकोडी कहते है ।

(2440) दस कोडाकोडी सागरोपम की एक क्या होती है ?

उत्तर : अवसर्पिणी अथवा उत्सर्पिणी ।

(2441) एक उत्सर्पिणी और एक अवसर्पिणी का क्या होता है ?

उत्तर : एक कालचक्र ।

(2442) अनन्त काल चक्र का एक क्या होता है ?

उत्तर : पुद्गल परावर्तन काल ।

माप का विवेचन

(2443) अंगुल का असंख्यातवां भाग किसे कहते है ?

उत्तर : सुई की नोंक जितने स्थान को घेरती है, उस भाग का असंख्यातवां भाग अंगुल का असंख्यातवां भाग कहलाता है ।

(2444) कितने अंगुल की एक मुट्ठी होती है ?

उत्तर : छह अंगुल की ।

(2445) कितनी मुट्ठी की एक बेंत होती है ?

उत्तर : दो मुट्ठी की ।

(2446) एक हाथ कितनी बेंत का होता है ?

उत्तर : दो बेंत का ।

(2447) एक दण्ड कितने हाथ का होता है ?

उत्तर : दो हाथ का।

(2449) एक धनुष्य कितने दण्ड का होता है ?

उत्तर : दो दण्ड का।

(2450) धनुष्य पृथक्त्व किसे कहते है ?

उत्तर : दो धनुष्य से नौ धनुष्य प्रमाण को धनुष्य पृथक्त्व कहते है।

(2452) धनुष्य पृथक्त्व के भेद बताओ।

उत्तर : धनुष्य पृथक्त्व के भेद निम्नलिखित हैं -

2-3, 2-4, 2-5, 2-6, 2-7, 2-8, 2-9, 3-4, 3-5, 3-6, 3-7, 3-8, 3-9, 4-5, 4-6, 4-7, 4-8, 4-9, 5-6, 5-7, 5-8, 5-9, 6-7, 6-8, 6-9, 7-8, 7-9, 8-9।

(2453) कितने धनुष्य का एक कोस होता है ?

उत्तर : 2000 धनुष्य का।

(2454) कोस का अपर नाम क्या है ?

उत्तर : गाऊ/गव्यूत।

(2455) कोस पृथक्त्व किसे कहते है ?

उत्तर : 2 कोस से 9 कोस को कोस पृथक्त्व कहते है। इसके भेद धनुष्य पृथक्त्व की भाँति होते हैं।

(2456) कितने कोस का एक योजन होता है ?

उत्तर : चार कोस का। व्यवहार में 3.2 कि. मी. का एक कोस होता है अतः 12.8 कि. मी. का एक योजन होता है।

(2457) योजन पृथक्त्व किसे कहते है ?

उत्तर : 2 योजन से 9 योजन को योजन पृथक्त्व कहते हैं । इसके भी धनुष्य पृथक्त्व की भाँति भेद होते हैं ।

(2458) कितने योजन का एक राजलोक होता है ?

उत्तर : असंख्य ।

(2459) कितने राजलोक का विश्व होता है ?

उत्तर : चौदह ।

अल्प - बहुत्व का विवेचन

(2460) अल्प बहुत्व द्वार से तात्पर्य क्या है ?

उत्तर : कौन से जीवों की संख्या अल्प हैं, कौन से जीवों की संख्या उनसे अधिक हैं, ऐसा विचार जिस द्वार में किया गया है, उसे अल्प बहुत्व द्वार कहते है ।

(2461) विशेषाधिक से क्या अभिप्राय है ?

उत्तर : द्विगुण से कम वाली संख्या को विशेषाधिक कहते है । जैसे दस की अपेक्षा बीस द्विगुण है परन्तु उससे कुछ कम 17 अथवा 18 अथवा 19 की संख्या को विशेषाधिक कहा जाता है ।

(2462) संख्यात गुणा किसे कहते है ?

उत्तर : किसी संख्या का संख्यात की संख्या से गुणा करने पर प्राप्त परिणाम संख्यात गुणा कहलाता है ।

(2463) असंख्यात गुणा किसे कहते है ?

उत्तर : किसी संख्या का असंख्यात से गुणा करने पर प्राप्त परिणाम असंख्यात गुणा कहलाता है ।

(2464) अनन्त गुणा किसे कहते है ?

उत्तर : किसी संख्या का अनन्त से गुणा करने पर प्राप्त परिणाम अनन्त गुणा कहलाता है ।

(2465) संख्यात किसे कहते है ?

उत्तर : जिसे संख्या के रूप में अभिव्यक्त किया जा सकता है, उसे संख्या कहते है ।

(2466) असंख्यात किसे कहते है ?

उत्तर : जिसे संख्या के रूप में अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता है, उसे असंख्यात कहते है ।

(2467) अनन्त किसे कहते है ?

उत्तर : जिसका कोई अन्त न हो, उसे अनन्त कहते है ।

(2468) पर्याप्त मनुष्य कितने है ?

उत्तर : पर्याप्त मनुष्य संख्यात है ।

(2469) मनुष्य से बादर-अग्निकाय के जीव कितने अधिक है ?

उत्तर : मनुष्य से अग्निकाय के जीव असंख्यात गुणा अधिक हैं ।

(2470) बादर अग्निकाय से वैमानिक देव कितने अधिक हैं ?

उत्तर : बादर अग्निकाय से वैमानिक देव असंख्यात गुणा अधिक हैं ।

(2471) वैमानिक देवों से भवनपति देव कितने अधिक हैं ?

उत्तर : वैमानिक देवों से भवनपति देव असंख्यात गुणा अधिक हैं ।

(2472) भवनपति देवों से नारकी जीव कितने अधिक हैं ?

उत्तर : भवनपति देवों से नारकी जीव असंख्यात गुणा अधिक हैं ।

(2473) नारकी जीवों से व्यन्तर देव कितने अधिक हैं ?

उत्तर : नारकी जीवों से व्यन्तर देव असंख्यात गुणा अधिक हैं ।

(2474) व्यन्तर देवों से ज्योतिष्क देव कितने अधिक हैं ?

उत्तर : व्यन्तर देवों से ज्योतिष्क देव असंख्यात गुणा अधिक हैं ।

(2475) ज्योतिष्क देवों से चतुरिन्द्रिय कितने अधिक हैं ?

उत्तर : ज्योतिष्क देवों से असंख्यात गुणा अधिक हैं ।

(2476) चतुरिन्द्रिय जीवों से पंचेन्द्रिय तिर्यंच कितने अधिक हैं ?

उत्तर : चतुरिन्द्रिय जीवों से पंचेन्द्रिय तिर्यंच विशेषाधिक हैं ।

(2477) पंचेन्द्रिय तिर्यंच से द्वीन्द्रिय कितने अधिक हैं ?

उत्तर : पंचेन्द्रिय तिर्यंच से द्वीन्द्रिय विशेषाधिक हैं।

(2478) द्वीन्द्रिय जीवों से त्रीन्द्रिय कितने अधिक हैं ?

उत्तर : द्वीन्द्रिय जीवों से त्रीन्द्रिय विशेषाधिक हैं।

(2479) त्रीन्द्रिय से पृथ्वीकाय के जीव कितने अधिक हैं ?

उत्तर : त्रीन्द्रिय से पृथ्वीकाय के जीव असंख्यात गुणा अधिक हैं।

(2480) पृथ्वीकाय के जीवों से अप्काय के जीव कितने अधिक हैं ?

उत्तर : पृथ्वीकाय के जीवों से अप्काय के जीव असंख्यात गुणा अधिक हैं।

(2481) अप्काय के जीवों से वायुकाय के जीव कितने अधिक हैं ?

उत्तर : अप्काय के जीवों से वायुकाय के जीव असंख्यात गुणा अधिक हैं।

(2482) वायुकाय के जीवों से वनस्पतिकाय के जीव कितने अधिक हैं ?

उत्तर : वायुकाय के जीवों से वनस्पतिकाय के जीव अनंत गुणा अधिक हैं।

(2483) सबसे न्यून संख्या कौन से जीवों की हैं ?

उत्तर : सबसे न्यून संख्या मनुष्य की हैं। (29 अंक प्रमाण हैं।)

(2484) सर्वाधिक संख्या कौन से जीवों की हैं ?

उत्तर : सर्वाधिक संख्या वनस्पतिकाय के जीवों की हैं।

(2485) मनुष्य से मनुष्यनी कितनी अधिक हैं ?

उत्तर : मनुष्य से मनुष्यनी 27 गुणा और उपर 27 अधिक हैं।

(2486) तिर्यंच से तिर्यंचनी कितनी अधिक हैं ?

उत्तर : तीन गुणा और उपर तीन अधिक हैं।

(2487) देव से देवियाँ कितनी अधिक हैं ?

उत्तर : बत्तीस गुणा और उपर बत्तीस अधिक हैं।

(2488) देवों की अपेक्षा से अल्प बहुत्व बताओ।

उत्तर : सबसे अल्प अनुत्तर विमान के देव हैं।

उनसे संख्यात गुणा अधिक प्रथम-त्रिक नवग्रैवेयक देव हैं।

उनसे संख्यात गुणा अधिक मध्यम-त्रिक नवग्रैवेयक देव हैं।
उनसे संख्यात गुणा अधिक अन्तिम-त्रिक नवग्रैवेयक देव हैं।
उनसे संख्यात गुणा अधिक बारहवें देवलोक के देव हैं।
उनसे संख्यात गुणा अधिक ग्यारहवें देवलोक के देव हैं।
उनसे संख्यात गुणा अधिक दसवें देवलोक के देव हैं।
उनसे संख्यात गुणा अधिक नौवें देवलोक के देव हैं।
उनसे असंख्यात गुणा अधिक आठवें देवलोक के देव हैं।
उनसे असंख्यात गुणा अधिक सातवें देवलोक के देव हैं।
उनसे असंख्यात गुणा अधिक छट्ठे देवलोक के देव हैं।
उनसे असंख्यात गुणा अधिक पाचवें देवलोक के देव हैं।
उनसे असंख्यात गुणा अधिक चौथे देवलोक के देव हैं।
उनसे असंख्यात गुणा अधिक तीसरे देवलोक के देव हैं।
उनसे असंख्यात गुणा अधिक दूसरे देवलोक के देव हैं।
उनसे असंख्यात गुणा अधिक पहले देवलोक के देव हैं।
उनसे असंख्यात गुणा अधिक भवनपति देव हैं।
उनसे असंख्यात गुणा अधिक व्यंतर देव हैं।
उनसे असंख्यात गुणा अधिक ज्योतिष्क देव हैं।

(2489) नारकी जीवों की अपेक्षा से अल्प बहुत्व बताओ।

उत्तर : सबसे अल्प सातवीं नरक के नारकी हैं।
उनसे असंख्यात गुणा अधिक छट्ठी नरक के नारकी हैं।
उनसे असंख्यात गुणा अधिक पांचवीं नरक के नारकी हैं।
उनसे असंख्यात गुणा अधिक चौथी नरक के नारकी हैं।
उनसे असंख्यात गुणा अधिक तीसरी नरक के नारकी हैं।
उनसे असंख्यात गुणा अधिक दूसरी नरक के नारकी हैं।
उनसे असंख्यात गुणा अधिक पहली नरक के नारकी हैं।

(2490) गर्भज तिर्यंच पंचेन्द्रिय की अपेक्षा से अल्प बहुत्व बताओ।

उत्तर : सबसे अल्प खेचर पुरुष हैं।
उनसे संख्यात गुणा अधिक खेचर स्त्री हैं।
उनसे संख्यात गुणा अधिक स्थलचर पुरुष हैं।
उनसे संख्यात गुणा अधिक स्थलचर स्त्री हैं।
उनसे संख्यात गुणा अधिक जलचर पुरुष हैं।
उनसे संख्यात गुणा अधिक जलचर स्त्री हैं।
(उरपरिसर्प तथा भुजपरिसर्प का समावेश स्थलचर में किया गया है।)

(2491) विकलेन्द्रिय की अपेक्षा से अल्पबहुत्व बताओ।

उत्तर : चउरिन्द्रिय सबसे अल्प हैं।
उनसे त्रीन्द्रिय विशेष अधिक हैं।
उनसे द्वीन्द्रिय विशेष अधिक हैं।

(2492) सूक्ष्म की अपेक्षा से अल्प बहुत्व बताओ।

उत्तर : सूक्ष्म स्थावरों में सबसे अल्प सूक्ष्म तेउकायिक जीव हैं।
उनसे विशेष अधिक सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव हैं।
उनसे विशेष अधिक सूक्ष्म अप्कायिक जीव हैं।
उनसे विशेष अधिक सूक्ष्म वायुकायिक जीव हैं।
उनसे अनन्त गुणा सूक्ष्म साधारण वनस्पतिकायिक जीव हैं।

(2493) समस्त जीवात्माओं की अपेक्षा से अल्प-बहुत्व बताओ।

उत्तर : इस विश्व में -
सबसे अल्प मनुष्य गति वाले जीव हैं।
उनसे असंख्यगुणा नरक गति वाले जीव हैं।
उनसे असंख्यगुणा देव गति वाले जीव हैं।
उनसे अनन्तगुणा सिद्ध भगवंत हैं।
उनसे अनन्तगुणा तिर्यंच गति वाले जीव हैं।

(2494) वेद-त्रिक की अपेक्षा से अल्पबहुत्व समझाईये।

उत्तर : सबसे कम पुरुष वेदी जीव हैं।

उससे संख्यगुणा अधिक स्त्री वेदी जीव हैं ।

उससे अनन्तगुणा नपुंसक वेदी जीव हैं ।

(2495) प्रत्येक एवं साधारण जीवों में अल्प बहुत्व बताओ ।

उत्तर : प्रत्येक जीवों की अपेक्षा साधारण काय वाले जीव अनन्तगुणा है ।

(2496) नरक गति में आहारादि संज्ञाओं का अल्प बहुत्व बताओ ।

उत्तर : नरक गति में सबसे कम मैथुन संज्ञा वाले जीव हैं ।

उनसे संख्यगुणा परिग्रह संज्ञा वाले जीव हैं ।

उनसे संख्यगुणा आहार संज्ञा वाले जीव हैं ।

उनसे संख्यगुणा भय संज्ञा वाले जीव हैं ।

(2497) देव गति में आहारादि संज्ञाओं का अल्प बहुत्व बताओ ।

उत्तर : देव गति में सबसे कम आहार संज्ञा वाले जीव हैं ।

उनसे संख्य गुणा भय संज्ञा वाले जीव हैं ।

उनसे संख्य गुणा मैथुन संज्ञा वाले जीव हैं ।

उनसे संख्य गुणा परिग्रह संज्ञा वाले जीव हैं ।

(2498) मनुष्य गति में आहारादि संज्ञाओं का अल्प-बहुत्व बताओ ।

उत्तर : मनुष्य गति में सबसे कम भय संज्ञा वाले जीव हैं ।

उनसे संख्य गुणा आहार संज्ञा वाले जीव हैं ।

उनसे संख्य गुणा परिग्रह संज्ञा वाले जीव हैं ।

उनसे संख्य गुणा मैथुन संज्ञा वाले जीव हैं ।

(2499) तिर्यंच गति में आहारादि संज्ञाओं का अल्प-बहुत्व बताओ ।

उत्तर : तिर्यंच गति में सबसे कम परिग्रह संज्ञा वाले जीव हैं ।

उनसे संख्य गुणा मैथुन संज्ञा वाले जीव हैं ।

उनसे संख्य गुणा भय संज्ञा वाले जीव हैं ।

उनसे संख्य गुणा आहार संज्ञा वाले जीव हैं ।

(2500) दृष्टि की अपेक्षा से जीवों में अल्प बहुत्व समझाओ ।

उत्तर : सबसे कम मिश्र दृष्टि वाले जीव हैं ।

सम्यक्दृष्टि जीव उनसे अनन्तगुणे हैं ।

मिथ्यादृष्टि जीव उनसे अनन्तगुणे हैं ।

(2501) ज्ञान पंचक की अपेक्षा से जीवों अल्प बहुत्व बताओ ।

उत्तर : सबसे अल्प मनःपर्यवज्ञानी हैं ।
उनसे असंख्यात गुणा अवधिज्ञानी हैं ।
अवधिज्ञानी से मति एवं श्रुतज्ञानी, दोनों विशेषाधिक हैं और केवलज्ञानी अनन्तगुणे हैं ।

(2502) अज्ञान-त्रिक की अपेक्षा से जीवों में अल्प बहुत्व बताओ ।

उत्तर : सबसे कम विभंगज्ञानी हैं । उनसे मति एवं श्रुतअज्ञानी तुल्यरूपेण अनन्तगुणे हैं ।

(2503) दर्शन चतुष्क की अपेक्षा से जीवों में अल्प बहुत्व बताओ ।

उत्तर : अल्पतम अवधिदर्शनी हैं ।
चक्षुदर्शनी उनसे संख्यात गुणा हैं ।
केवलदर्शनी उनसे अनन्तगुणा हैं ।
अचक्षुदर्शनी उनसे अनन्तगुणा हैं ।

(2504) उपयोग द्विक की अपेक्षा से जीवों में अल्प बहुत्व बताओ ।

उत्तर : अनाकारोपयोग (दर्शनोपयोग) वाले जीवों की अपेक्षा साकारोपयोग (ज्ञानोपयोग) वाले जीव संख्यात गुणा हैं ।

(2505) पर्याप्ति की अपेक्षा से जीवों में अल्प बहुत्व बताओ ।

उत्तर : सबसे कम नो पर्याप्तक नो अपर्याप्तक (सिद्ध) हैं ।
उनसे अनन्त गुणे अपर्याप्तक जीव हैं ।
उनसे संख्यात गुणे पर्याप्तक जीव हैं ।

(2506) सूक्ष्म-बादर की अपेक्षा से जीवों में अल्प बहुत्व बताओ ।

उत्तर : सबसे कम नो सूक्ष्म-नो बादर (सिद्ध) हैं ।
बादर जीव उनसे अनन्तगुणा हैं ।
सूक्ष्म जीव उनसे असंख्यातगुणा हैं ।

(2507) संज्ञी तथा असंज्ञी की अपेक्षा से जीवों में अल्प बहुत्व बताओ ।

उत्तर : सबसे कम संज्ञी जीव हैं ।
उनसे अनन्तगुणा नो संज्ञी-नो असंज्ञी (सिद्ध) हैं ।
उनसे अनन्तगुणा असंज्ञी जीव हैं ।

(2508) दिशाओं की अपेक्षा से जीवों में अल्प बहुत्व बताओ ।

उत्तर : सबसे कम जीव पश्चिम दिशा में हैं ।
उनसे विशेषाधिक पूर्व दिशा में हैं ।
उनसे विशेषाधिक दक्षिण दिशा में है ।
उनसे विशेषाधिक उत्तर दिशा में है ।

(2509) इन्द्रिय पंचक की अपेक्षा से जीवों में अल्प बहुत्व बताओ ।

उत्तर : सबसे कम पंचेन्द्रिय हैं ।
उनसे चतुरिन्द्रिय विशेषाधिक हैं ।
उनसे त्रीन्द्रिय विशेषाधिक हैं ।
उनसे द्वीन्द्रिय विशेषाधिक हैं ।
उनसे अनिन्द्रिय (सिद्ध) अनन्तगुणा हैं ।
उनसे अनन्तगुणे एकेन्द्रिय हैं ।

(2510) कायषट्क की अपेक्षा से जीवों में अल्प बहुत्व बताओ ।

उत्तर : सबसे कम त्रसकायिक जीव हैं ।
उनसे असंख्यगुणा तेउकायिक जीव हैं ।
उनसे विशेषाधिक पृथ्वीकायिक जीव हैं ।
उनसे विशेषाधिक अप्कायिक जीव हैं ।
उनसे विशेषाधिक वायुकायिक जीव हैं ।
उनसे अनन्तगुणा वनस्पतिकायिक जीव हैं ।

(2511) योगत्रिक की अपेक्षा से जीवों में अल्प बहुत्व बताओ ।

उत्तर : सबसे कम मनोयोग वाले जीव हैं ।
उनसे वचनयोग वाले असंख्यात गुणा हैं ।
उनसे अयोगी अनन्तगुणा हैं ।
उनसे काययोगी अनन्तगुणा हैं ।

(2512) कषाय की अपेक्षा से जीवों में अल्प बहुत्व बताओ ।

उत्तर : सबसे कम अकषायी (कषाय रहित) जीव हैं ।
उनसे मान कषाय वाले अनन्तगुणे हैं ।
उनसे क्रोध कषाय वाले विशेषाधिक हैं ।
उनसे माया कषाय वाले विशेषाधिक हैं ।
उनसे लोभ कषाय वाले विशेषाधिक हैं ।

(2513) लेश्याषट्क की अपेक्षा से जीवों में अल्प बहुत्व बताओ ।

उत्तर : सबसे कम शुक्ल लेश्या वाले जीव हैं ।
उनसे संख्यात गुणा पद्म लेश्या वाले जीव हैं ।
उनसे संख्यात गुणा तेजो लेश्या वाले जीव हैं ।
उनसे अनन्त गुणा लेश्या रहित जीव हैं ।
उनसे अनन्तगुणा कापोत लेश्या वाले जीव हैं ।
उनसे विशेषाधिक नील लेश्या वाले जीव हैं ।
उनसे विशेषाधिक कृष्ण लेश्या वाले जीव हैं ।

(2514) तीन लोकों की अपेक्षा से जीवों में अल्प बहुत्व बताओ ।

उत्तर : तिर्यग्लोक की अपेक्षा ऊर्ध्वलोक में असंख्यगुणा जीव हैं और ऊर्ध्वलोक की अपेक्षा अधोलोक में विशेषाधिक हैं ।

(2515) 24 दण्डकों में अल्प बहुत्व बताओ ।

उत्तर : गर्भज मनुष्य के जीव संख्य हैं । वनस्पति के जीव अनन्त हैं । शेष बावीस दण्डकों के जीव असंख्य हैं ।

(2516) पांच शरीरों की अपेक्षा से अल्प बहुत्व बताओ ।

उत्तर : सबसे न्यून आहारक शरीरी हैं ।
उनसे वैक्रिय शरीरी असंख्यगुणा हैं ।
उनसे औदारिक शरीरी असंख्यगुणा हैं ।
उनसे तैजस तथा कार्मण शरीरी (तुल्य) असंख्यगुणा हैं ।

(2517) सात समुद्घातों की अपेक्षा से अल्प बहुत्व बताओ।

उत्तर : सबसे कम आहारक समुद्घातवर्ती जीव हैं।

उनसे संख्यगुणा केवली समुद्घातवर्ती जीव हैं।

उनसे असंख्यगुणा तैजस समुद्घातवर्ती जीव हैं।

उनसे असंख्यगुणा वैक्रिय समुद्घातवर्ती जीव हैं।

उनसे अनन्तगुणा मारणान्तिक समुद्घातवर्ती जीव हैं।

उनसे असंख्यगुणा कषाय समुद्घातवर्ती जीव हैं।

उनसे विशेषाधिक वेदना समुद्घातवर्ती जीव हैं।

24 दंडकों की तालिका

क्रमांक	दंडकके नाम	शरीर	मूल शरीर की अवगाहना		उत्तर वैक्रिय शरीरकी अवगाहना	
			जघन्य	उत्कृष्ट	जघन्य	उत्कृष्ट
1.	नारकी	वै.तै.का.	अंगुल का असं.भाग	500 धनुष	अंगुल का सं.भाग	1000 धनुष
2/11	दस भवनपति	वै.तै.का.	अंगुल का असं.भाग	7 हाथ	अंगुल का सं.भाग	एक लाख योजन
12.	पृथ्वीकाय	औ.तै.का.	अंगुल का असं.भाग	अंगुलका असं.भाग	-	-
13.	अप्काय	औ.तै.का.	अंगुल का असं.भाग	अंगुलका असं.भाग	-	-
14.	तेउकाय	औ.तै.का.	अंगुल का असं.भाग	अंगुलका असं.भाग	-	-
15.	वायुकाय	औ.वै.तै.का.	अंगुल का असं.भाग	अंगुलका असं.भाग	अंगुल काअसं.भाग	अंगुल काअसं.भाग
16.	वनस्पतिकाय	औ.तै.का.	अंगुल का असं.भाग	साधिक हजारयोजन	-	-
17.	द्वीन्द्रिय	औ.तै.का.	अंगुल का असं.भाग	12 योजन	-	-
18.	त्रीन्द्रिय	औ.तै.का.	अंगुल का असं.भाग	3 गाउ	-	-
19.	चतुरिन्द्रिय	औ.तै.का.	अंगुल का असं.भाग	1 योजन	-	-
20.	गर्भज तिर्यंच	औ.वै.तै.का.	अंगुल का असं.भाग	1 हजार योजन	अंगुल का सं.भाग	900 योजन
21.	गर्भज मनुष्य	औ.वै.आ.तै.का.	अंगुल का असं.भाग	3 गाउ	अंगुल का सं.भाग	एक लाख योजन चार अंगुल
22.	व्यन्तर देव	वै.तै.का.	अंगुल का असं.भाग	7 हाथ	अंगुल का सं.भाग	एक लाख योजन
23.	वैमानिक देव	वै.तै.का.	अंगुल का असं.भाग	7 हाथ	अंगुल का सं.भाग	एक लाख योजन
24.	ज्योतिष्क देव	वै.तै.का.	अंगुल का असं.भाग	7 हाथ	अंगुल का सं.भाग	एक लाख योजन

क्रमांक	दंडक के नाम	संघयण	संज्ञा	संस्थान	कषाय	लेश्या	इन्द्रिय
1.	नारकी	संघयण नहीं	4/6/10/16	हुंडक संस्थान	चार	कृ.नी.का.	5
2-11	दस भवनपति देव	संघयण नहीं	4/6/10/16	समचतुरस्र संस्थान	चार	कृ.नी.का.ते.	5
12.	पृथ्वीकाय	संघयण नहीं	4/6/10/16	मसूर की दाल जैसा	चार	कृ.नी.का.ते.	1
13.	अप्काय	संघयण नहीं	4/6/10/16	परपीटा जैसा	चार	कृ.नी.का.ते.	1
14.	तेउकाय	संघयण नहीं	4/6/10/16	सूई के अग्रभाग जैसा	चार	कृ.नी.का.	1
15.	वायुकाय	संघयण नहीं	4/6/10/16	ध्वजा जैसा	चार	कृ.नी.का.	1
16.	वनस्पतिकाय	संघयण नहीं	4/6/10/16	विविध	चार	कृ.नी.का.ते.	1
17.	द्वीन्द्रिय	छेवट्ठ संघयण	4/6/10/16	हुंडक संस्थान	चार	कृ.नी.का.	2
18.	त्रीन्द्रिय	छेवट्ठ संघयण	4/6/10/16	हुंडक संस्थान	चार	कृ.नी.का.	3
19.	चतुरिन्द्रिय	छेवट्ठ संघयण	4/6/10/16	हुंडक संस्थान	चार	कृ.नी.का.	4
20.	गर्भज तिर्यंच	छह संघयण	4/6/10/16	छह संस्थान	चार	छह लेश्या	5
21.	गर्भज तिर्यंच	छह संघयण	4/6/10/16	छह संस्थान	चार	छह लेश्या	5
22.	व्यन्तर देव	संघयण नहीं	4/6/10/16	समचतुरस्र संस्थान	चार	प्रथम चार	5
23.	ज्योतिष्क देव	संघयण नहीं	4/6/10/16	समचतुरस्र संस्थान	चार	तेजोलेश्या	5
24.	वैमानिक देव	संघयण नहीं	4/6/10/16	समचतुरस्र संस्थान	चार	ते.प.शु.	5

क्रमांक	दंडक के नाम	समुद्घात	दृष्टि	दर्शन	ज्ञान	अज्ञान
1.	नारकी	प्रथम चार	तीन दृष्टि	चक्षु, अचक्षु, अवधि	मति, श्रुत, अवधि	मति, श्रुत विभंग
2-11.	भवनपति देव	प्रथम चार	तीन दृष्टि	चक्षु, अचक्षु, अवधि	मति, श्रुत, अवधि	मति, श्रुत विभंग
12.	पृथ्वीकाय	प्रथम तीन	मिथ्या दृष्टि	अचक्षु दर्शन	-	मति, श्रुत अज्ञान
13.	अप्काय	प्रथम तीन	मिथ्या दृष्टि	अचक्षु दर्शन	-	मति, श्रुत अज्ञान
14.	तेउकाय	प्रथम तीन	मिथ्या दृष्टि	अचक्षु दर्शन	-	मति, श्रुत अज्ञान
15.	वायुकाय	प्रथम चार	मिथ्या दृष्टि	अचक्षु दर्शन	-	मति, श्रुत अज्ञान
16.	वनस्पतिकाय	प्रथम तीन	मिथ्या दृष्टि	अचक्षु दर्शन	-	मति, श्रुत अज्ञान
17.	द्वीन्द्रिय	प्रथम तीन	मिथ्या, सम्यग्	अचक्षु दर्शन	मति, श्रुतज्ञान	मति, श्रुत अज्ञान
18.	त्रीन्द्रिय	प्रथम तीन	मिथ्या, सम्यग्	अचक्षु दर्शन	मति, श्रुतज्ञान	मति, श्रुत अज्ञान
19.	चतुरिन्द्रिय	प्रथम तीन	मिथ्या, सम्यग्	अचक्षु, चक्षु दर्शन	मति, श्रुतज्ञान	मति, श्रुत अज्ञान
20.	गर्भज तिर्यंच	प्रथम पांच	तीन दृष्टि	चक्षु, अचक्षु, अवधि	मति, श्रुत, अवधि	मति, श्रुत विभंग
21.	गर्भज मनुष्य	सात	तीन दृष्टि	चारों दर्शन	पांच ज्ञान	मति, श्रुत विभंग
22.	व्यन्तर देव	प्रथम पांच	तीन दृष्टि	चक्षु, अचक्षु, अवधि	मति, श्रुत, अवधि	मति, श्रुत विभंग
23.	ज्योतिष्क देव	प्रथम पांच	तीन दृष्टि	चक्षु, अचक्षु, अवधि	मति, श्रुत, अवधि	मति, श्रुत विभंग
24.	वैमानिक देव	प्रथम पांच	तीन दृष्टि	चक्षु, अचक्षु, अवधि	मति, श्रुत, अवधि	मति, श्रुत विभंग

क्रमांक	दंडक के नाम	योग	उपयोग	उपपात / च्यवन
1.	नारकी	4 मन + 4 वचन + 3 काय	3 ज्ञान + 3 दर्शन + 3 अज्ञान	संख्यात/असंख्यात
2-11	भवनपति देव	4 मन + 4 वचन + 3 काय	3 ज्ञान + 3 दर्शन + 3 अज्ञान	संख्यात/असंख्यात
12.	पृथ्वीकाय	3 काय (औ.औ.मिश्र.कार्मण)	2 अज्ञान + 1 दर्शन	असंख्यात
13.	अप्काय	3 काय (औ.औ.मिश्र.कार्मण)	2 अज्ञान + 1 दर्शन	असंख्यात
14.	तेउकाय	3 काय (औ.औ.मिश्र.कार्मण)	2 अज्ञान + 1 दर्शन	असंख्यात
15.	वायुकाय	5 काय (औ.औ.मिश्र.वै.वै.मि.कार्मण)	2 अज्ञान + 1 दर्शन	असंख्यात
16.	वनस्पतिकाय	3 काय (औ.औ.मिश्र.कार्मण)	2 अज्ञान + 1 दर्शन	अनंत
17.	द्वीन्द्रिय	एक वचन (व्यवहार)+3 काय (औ.औ.मिश्र.कार्मण)	2 ज्ञान + 2 अज्ञान + 1 दर्शन	संख्यात/असंख्यात
18.	त्रीन्द्रिय	एक वचन(व्यवहार)+3 काय (औ.औ.मिश्र.कार्मण)	2 ज्ञान + 2 अज्ञान + 1 दर्शन	संख्यात/असंख्यात
19.	चतुरिन्द्रिय	एक वचन(व्यवहार)+3 काय (औ. औ.मिश्र.कार्मण)	2 ज्ञान + 2 अज्ञान + 2 दर्शन	संख्यात/असंख्यात
20.	गर्भज तिर्यंच	4 मन + 4 वचन + 5 काय (औ.औ.मिश्र.वै.वै.मि. कार्मण)	3 ज्ञान + 3 अज्ञान + 3 दर्शन	संख्यात/असंख्यात
21.	गर्भज मनुष्य	4 मन + 4 वचन + 7 काय	5 ज्ञान + 3 अज्ञान + 3 दर्शन	संख्यात
22.	व्यन्तर देव	4 मन + 4 वचन + 3 काय (वै, वै. मिश्र, कार्मणकाय)	3 अज्ञान + 3 ज्ञान + 3 दर्शन	संख्यात/असंख्यात
23.	ज्योतिष्क देव	4 मन + 4 वचन + 3 काय (वै, वै. मिश्र, कार्मणकाय)	3 अज्ञान + 3 ज्ञान + 3 दर्शन	संख्यात/असंख्यात
24.	वैमानिक देव	4 मन + 4 वचन + 3 काय (वै, वै. मिश्र, कार्मणकाय)	3 अज्ञान + 3 ज्ञान + 3 दर्शन	संख्यात/असंख्यात

क्रमांक	दंडक के नाम	आयुष्य		पर्याप्ति	किमाहार
		जघन्य	उत्कृष्ट		
1.	नारकी	10 हजार वर्ष	33 सागरोपम	6	6 दिशाओं का आहार
2-11.	भवनपति देव	10 हजार वर्ष	1 सागरोपम से अधिक	6	6 दिशाओं का आहार
12.	पृथ्वीकाय	अंतर्मुहूर्त	22000 वर्ष	प्रथम चार	3-4-5-6
13.	अप्काय	अंतर्मुहूर्त	7000 वर्ष	प्रथम चार	3-4-5-6
14.	तेउकाय	अंतर्मुहूर्त	3 अहोरात्र	प्रथम चार	3-4-5-6
15.	वायुकाय	अंतर्मुहूर्त	3000 वर्ष	प्रथम चार	3-4-5-6
16.	वनस्पतिकाय	अंतर्मुहूर्त	10000 वर्ष	प्रथम चार	3-4-5-6
17.	द्वीन्द्रिय	अंतर्मुहूर्त	12 वर्ष	प्रथम पांच	6 दिशाओं का आहार
18.	त्रीन्द्रिय	अंतर्मुहूर्त	49 दिवस	प्रथम पांच	6 दिशाओं का आहार
19.	चतुरिन्द्रिय	अंतर्मुहूर्त	6 मास	प्रथम पांच	6 दिशाओं का आहार
20.	गर्भज तिर्यंच	अंतर्मुहूर्त	3 पल्योपम	6	6 दिशाओं का आहार
21.	गर्भज मनुष्य	अंतर्मुहूर्त	3 पल्योपम	6	6 दिशाओं का आहार
22.	व्यन्तर देव	10 हजार वर्ष	1 पल्योपम	6	6 दिशाओं का आहार
23.	ज्योतिष्क देव	10 हजार वर्ष	1 पल्यो.+1 लाख वर्ष	6	6 दिशाओं का आहार
24.	वैमानिक देव	10 हजार वर्ष	33 सागरोपम	6	6 दिशाओं का आहार

क्रमांक	दंडक के नाम	संज्ञा	गति	आगति	वेद
1.	नारकी दीर्घकालिकी	गर्भज तिर्यंच, गर्भज मनुष्य	गर्भज तिर्यंच, गर्भज मनुष्य	नपुंसक	
2-11.	दस भवनपति देव	दीर्घकालिकी	गर्भज तिर्यंच, गर्भज मनुष्य	गर्भज तिर्यंच, गर्भज मनुष्य	पुरुष-स्त्री
			पृथ्वी-अप्-वनस्पति		
12.	पृथ्वीकाय	नहीं	5 स्थावर, विकलेन्द्रिय,	नरक छोड़कर 23 दंडक	नपुंसक
			गर्भज तिर्यंच, गर्भज मनुष्य		
13.	अप्कायनहीं	5 स्थावर, विकलेन्द्रिय,	नरक छोड़कर 23 दंडक	नपुंसक	
			गर्भज तिर्यंच, गर्भज मनुष्य		
14.	तेउकायनहीं	5 स्थावर, विकलेन्द्रिय,	5 स्थावर, 3 विकलेन्द्रिय	नपुंसक	
			गर्भज तिर्यंच	गर्भज मनुष्य-तिर्यंच	
15.	वायुकाय	नहीं	5 स्थावर, विकलेन्द्रिय,	5 स्थावर, 3 विकलेन्द्रिय	नपुंसक
			गर्भज तिर्यंच	गर्भज मनुष्य-तिर्यंच	
16.	वनस्पतिकाय	नहीं	5 स्थावर, विकलेन्द्रिय,	नरक के सिवाय 23 दंडक	नपुंसक
			गर्भज तिर्यंच, गर्भज मनुष्य		
17.	द्वीन्द्रियहेतुवादोपदेशिकी	5 स्थावर, विकलेन्द्रिय,	5 स्थावर, 3 विकलेन्द्रिय	नपुंसक	
			गर्भज तिर्यंच, गर्भज मनुष्य	गर्भज मनुष्य-तिर्यंच	
18.	त्रीन्द्रियहेतुवादोपदेशिकी	5 स्थावर, विकलेन्द्रिय,	5 स्थावर, 3 विकलेन्द्रिय	नपुंसक	
			गर्भज तिर्यंच, गर्भज मनुष्य	गर्भज मनुष्य-तिर्यंच	
19.	चतुरिन्द्रिय	हेतुवादोपदेशिकी	5 स्थावर, विकलेन्द्रिय,	5 स्थावर, 3 विकलेन्द्रिय	नपुंसक
			गर्भज तिर्यंच, गर्भज मनुष्य	गर्भज मनुष्य-तिर्यंच	
20.	गर्भज तिर्यंच	दीर्घकालिकी	24 दंडक	24 दंडक	तीन वेद

क्रमांक	दंडक के नाम	संज्ञा	गति	आगति	वेद
21.	गर्भज मनुष्य	दीर्घकालिकीएवं दृष्टिवादोपदेशिकी	24 दंडक	22 दंडक	तीन वेद
22.	व्यन्तर देव	दीर्घकालिकी	गर्भज तिर्यंच, गर्भज मनुष्य पृथ्वी-अप्-वनस्पतिकाय	गर्भज तिर्यंच, गर्भज मनुष्य	स्त्री/पुरुष
23.	ज्योतिष्क देव	दीर्घकालिकी	गर्भज तिर्यंच, गर्भज मनुष्य पृथ्वी-अप्-वनस्पतिकाय	गर्भज तिर्यंच, गर्भज मनुष्य	स्त्री/पुरुष
24.	वैमानिक देव	दीर्घकालिकी	गर्भज तिर्यंच, गर्भज मनुष्य	गर्भज तिर्यंच, गर्भज मनुष्य	स्त्री/पुरुष
	1) प्रथम दो देव	दीर्घकालिकी	पृथ्वीकाय,अप्काय-वनस्पति	गर्भज तिर्यंच, गर्भज मनुष्य	स्त्री/पुरुष
	2) शेष 10 देव	दीर्घकालिकी	गर्भज तिर्यंच, गर्भज मनुष्य	गर्भज तिर्यंच, गर्भज मनुष्य	पुरुष
	3) नव ग्रैवेयक एवं पांच अनुत्तर	दीर्घकालिकी	गर्भज तिर्यंच, गर्भज मनुष्य	गर्भज मनुष्य	पुरुष

तृतीय दण्डक प्रकरण परीक्षा - पत्र	पूर्णांक 100

I निम्न प्रश्नों में से किन्हीं 20 प्रश्नों के संक्षिप्त में उत्तर दीजिये। (अंक - 20)

1. दण्डक प्रकरण की रचना किसने की ?
2. दण्डक प्रकरण में कितने द्वारों का उल्लेख किया गया है ?
3. कुल कितने उपयोग कहे गये हैं ?
4. कितने दण्डकों में केवल काय योग ही पाया जाता है ?
5. चौबीस दण्डकों में से किन दो दण्डकों के जीव तिर्यंच गति में ही जाते हैं ?
6. ज्ञान से वस्तु में स्थित किस धर्म का बोध होता है ?
7. त्रसकाय की उत्कृष्ट अवगाहना कितनी होती है ?
8. तिर्यंच गति के कितने दण्डक कहे गये हैं ?
9. सम्यक् दर्शन कितने दण्डकों में पाया जाता है ?
10. केवल पुरुष वेद कितने दण्डकों में पाया जाता है ?
11. कितने दण्डक के जीव मन वाले कहे गये हैं ?
12. नारकी जीवों में कौनसे शरीर नहीं पाये जाते हैं ?
13. संघयण कितने दण्डकों में पाये जाते हैं ?
14. औपपातिक जीवों में कितने संघयण पाये जाते हैं ?
15. कितने शरीरों में संघयण पाया जाता है ?
16. चौबीस दण्डकों में से साधारण तथा प्रत्येक के दण्डक कितने हैं ?
17. चौबीस दण्डकों में से संमूर्च्छिम जन्म वाले जीवों के कितने दण्डक हैं ?

18. कितने दण्डकों के जीव उसी भव में सिद्ध हो सकते हैं ?
19. एक वेद कितने दण्डकों में पाया जाता है ?
20. संज्ञी जीवों में कितनी लेश्या पायी जाती हैं ?
21. सिद्ध परमात्मा में कितने अज्ञान पाये जाते हैं ?
22. एक मास में कितने पक्ष होते हैं ?
23. एक धनुष्य कितने दण्ड का होता है ?

II निम्न प्रश्नों में से किन्हीं 5 के उत्तर हां या ना में दीजिये। (अंक - 5)

1. तैजस समुद्घात पंद्रह दण्डकों में पाया जाता है ?
2. तीनों लोकों में तीन दृष्टियाँ नहीं पाई जाती हैं ?
3. बादर जीवों में तीन दर्शन नहीं पाये जाते हैं ?
4. संज्ञी जीवों में पांच ज्ञान पाये जाते हैं ?
5. एकेन्द्रिय में दो संस्थान पाये जाते हैं ?
6. वायुकाय में सत्य वचनयोग पाया जाता है ?
7. पांच योग दो दण्डकों में पाये जाते हैं ?

III निम्न प्रश्नों में से किन्हीं 7 प्रश्नों के उत्तर एक - दो पंक्ति में दीजिये। (अंक - 14)

1. दण्डक किसे कहते है ?
2. दण्डक चौबीस ही क्यों कहे गये ?
3. 2/3/4/5 शरीर कितने दण्डको में पाये जाते हैं ?
4. ज्ञान और दर्शन में क्या अंतर है ?
5. अभव्य जीवों में कितने दर्शन पाये जाते हैं ?
6. पांच स्थावर में कितने ज्ञान कहे गये हैं ?
7. किस गति में किस संज्ञा की प्रधानता होती है ?
8. द्रव्य लेश्या और भाव लेश्या में क्या अंतर है ?
9. अनुबंध चतुष्य में कौनसी चार बातों का उल्लेख होता है ?

IV निम्न प्रश्नों में से किन्हीं 5 प्रश्नों के उत्तर पांच पंक्तियों में दीजिये । (अंक - 20)

1. आगमों में देव गति में वज्रऋषभनाराच संघयण क्यों कहा गया है ?
2. मनःपर्यवदर्शनोपयोग क्यों नहीं होता है ?
3. चौबीस दण्डकों की गति एवं आगति बताओ ।
4. कषाय किसे कहते है ? कषाय का सेवन तथा उनका त्याग किसने किया ?
5. गर्भज तिर्यंच, देव तथा नारकी में सम्यक्त्व होने पर भी दृष्टिवादोपदेशिकी संज्ञा क्यों नहीं कही गयी ?
6. चौबीस दण्डकों में समुद्घात किस प्रकार पाये जाते हैं ?
7. मंगलाचरण प्रारंभ में क्यों किया जाता है ?

V निम्न प्रश्नों के उत्तर विस्तार से दीजिये । (अंक - 30)

1. पांच प्रकार के शरीरों को परिभाषित करो ।

अथवा

छह संस्थानों को परिभाषित करो एवं दण्डकों में कितने संस्थान पाये जाते हैं ?

2. चौबीस दण्डकों की व्याख्या प्रस्तुत करो ।

अथवा

पर्याप्ति द्वार का विवेचन करते हुए बताओ कि त्रस-स्थावर, एकेन्द्रिय-पंचेन्द्रिय में किस प्रकार पर्याप्तियाँ पाई जाती हैं ?

3. निम्न द्वारों को चार गतियों के संदर्भ में स्पष्ट करो -

1. वेद 2. कषाय 3. योग 4. संघयण 5. उपपात

अथवा

निम्न द्वारों को षट्काय के संदर्भ में स्पष्ट करो -

1. ज्ञान 2. दर्शन 3. च्यवन 4. संज्ञा 5. दृष्टि

VI निम्न रिक्त स्थानों की पूर्ति करो - (अंक - 5)

1. वैमाणिय .... हुंति ।

2. अन्नाण .... अनाणदुगं ।

3. नरेइया असुराई .... चेव ।

4. .... चउरिंदि .... भणियं ।

5. .... लिहिया .... अप्पहिया ।

VII दण्डक प्रकरण अध्ययन संबंधी अपने अनुभव लिखो तथा उसकी महत्ता पर प्रकाश डालो ।

(अंक - 6)

--00--

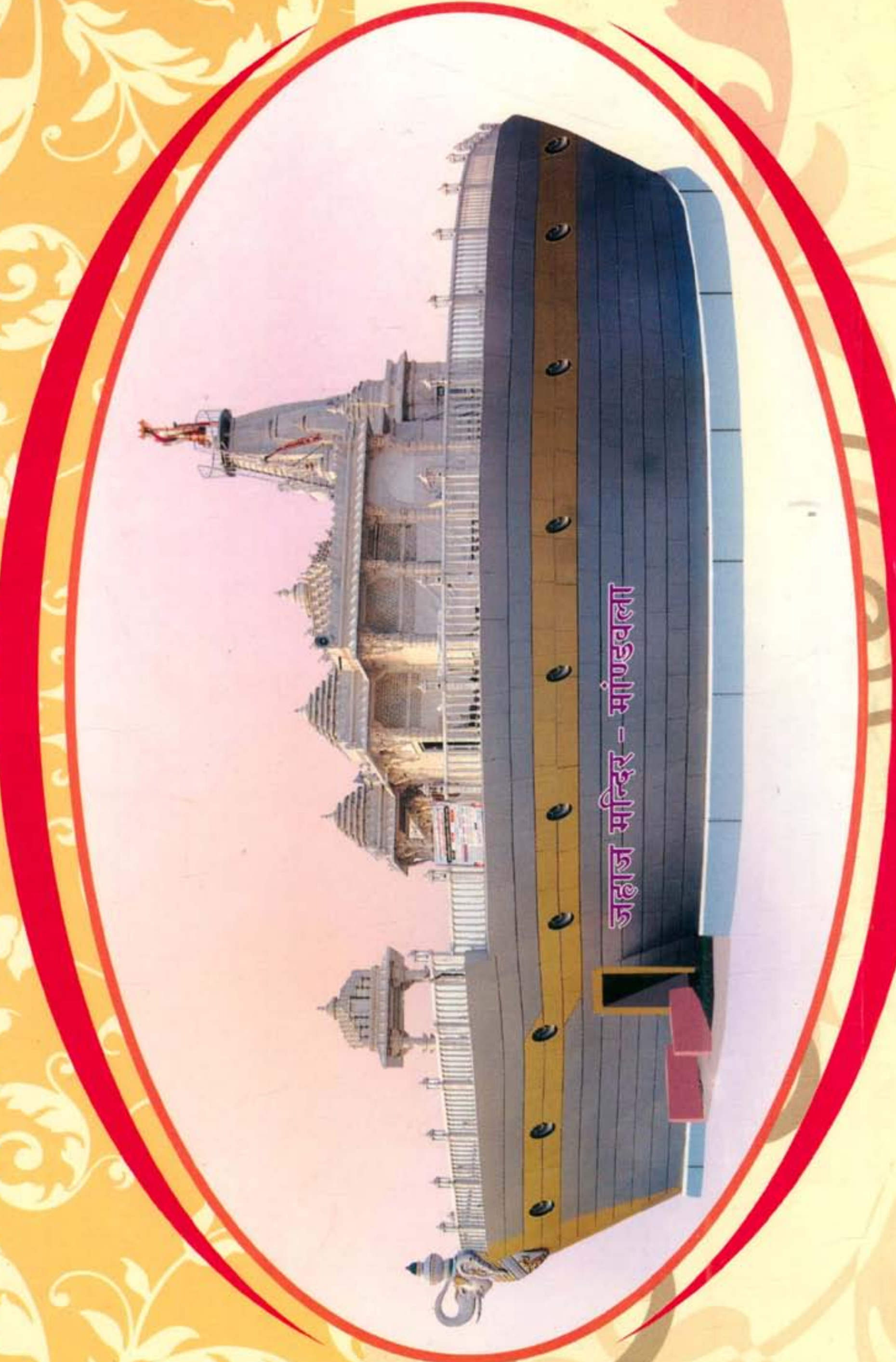

પ્રિન્ટીંગઃ જય જિનેન્દ્ર અમદાવાદ મોઃ૯૮૨૫૦ ૨૪૨૦૪